JACL-KRC
008564

योऽनूचान स नो महान्
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर

पुस्तकालय

पुस्तक संख्या ....

वर्गीकरण संख्या ....

4564

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर
परिसर

वर्गीकरण सं. ....

पुस्तक सं. 8564........ दिनाङ्क..................

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चाहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा।

SV-2024

MOTILAL BA... SIDASS DELHI

12·2P

DH
380

मिथिलाविद्यापीठग्रन्थमाला-
प्राचीनग्रन्थावली सप्तविंशतितमं पुष्पम्

परिण्डतप्रवरश्रीरत्नपाणिविरचितः

कृत्यसागरः

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय 8564

म० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट् इत्युपाध्यलङ्कृतेन न्यायव्याकरणसाहित्य-
वेदान्ताचार्येण
श्रीमहाप्रभुलालगोस्वामिना
विस्तृतभूमिकयालङ्कृत्य सम्पादितः

मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन श्रीमता काशीनाथमिश्रेण प्रकाशितः

काब्दः १८९८ सम्वत् २०३४ ऐशवीयाब्दः १९७७
मूल्यम् २८ रूप्यकाणि

Mithila Institute Series Ancient Texts No 27

KRITYASĀGARA
of
RATNAPĀNI

Edited with an Introduction
by
Dr. Maha Prabhu Lal Goswami. M.A, Ph. D. D. Litt.
Nyāyavyakaraṇa Sahityavedāntacārya.

Published by
Kashinath Mishra, M. A., Ph. D.
Director
Mithila Research Institute, Darbhanga
1977

Copies of this volume, Postage paid can be had of the Director Mithila Institute of Post-graduate Studies and Research in Sanskrit learning Maheshnagar, Darbhanga on Payment of Rs 28/- by M. O. or Postal order or Cash.

JACL-KRC
008564

Printed by the Hindustan Press, Laheriasarai, Published by the Director Mithila Institute of Post Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning, Darbhanga.

The Government of Bihar established the **Mithila Institute** *of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning at Darbhanga in 1951 with the object,* **inter alia**, *to promote advanced studies and research in Sanskrit learning, to bring together the traditional Pandits with their profound learning and the modern scholars with their technique of research and investigations, and to publish works of permanent value to scholars. This Institute is one of the five others planned by this Government as a token of their homage to the tradition of learning and scholarship for which ancient Bihar was noted. Apart from the Mithila Institute, four others have been established and have been doing useful work during the last eighteen or nineteen years— Nalanda Institute of Research and Post-Graduate Studies in Buddhist learning and Pali at Nalanda, K.P. Jaisawal Research Institute at Patna, the Bihar Rashtra Bhasha Parishad for research and advanced studies in Hindi at Patna, and the Vaishali Institute for Post-Graduate studies in Prakrit and Jainology at Vaishali. In the establishment of the Mithila Institute the State Government received a generous donation from Maharajadhiraja of Darbhanga for construction of the building on a plot of land also donated by him.*

2 *As part of this programme of rehabilitating and reorientating ancient learning and scholarship, the editing and publication of this volume have been undertaken with the co-operation of scholars in Bihar and outside. The Government of Bihar hope to continue to sponsor such projects and trust that this humble service to the world of scholarship and learning would bear fruit in the fulness of time.*

The Government of Bihar established the Mithila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning at Darbhanga in 1951 with the object, inter alia, to promote advanced studies and research in Sanskrit learning, to bring together the traditional Pandits with their profound learning and the modern scholars with their technique of research and investigations, and to publish works of permanent value to scholars. This Institute is one of the five others planned by this Government as a token of their homage to the tradition of learning and scholarship for which ancient Bihar was noted. Apart from the Mithila Institute, four others have been established and have been doing useful work during the last eighteen or nineteen years—Nalanda Institute of Research and Post-Graduate Studies in Buddhist learning and Pali at Nalanda, K. P. Jaiswal Research Institute at Patna, the Bihar Rashtra Bhasha Parishad for research and advanced studies in Hindi at Patna, and the Vaishali Institute for Post-Graduate studies in Prakrit and Jainology at Vaishali. In the establishment of the Mithila Institute the State Government received a generous donation from Maharajadhiraja of Darbhanga for construction of the building on a plot of land also donated by him.

2. As part of this programme of rehabilitating and reorientating ancient learning and scholarship, the editing and publication of this volume have been undertaken with the co-operation of scholars in Bihar and outside. The Government of Bihar hope to continue to sponsor such projects and trust that this humble service to the world of scholarship and learning would bear fruit in the fulness of time.

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति और उसका विश्वसन्देश

'भ रतीय संस्कृति और उसका विश्वसन्देश' इस विषय पर कुछ कहने से पूर्व भारतीय संस्कृति शब्द से किस विशेष अर्थ की अवगति होती है, इसे सुस्पष्ट रूप में समझ लेना नितान्त आवश्यक है।

भारतवर्ष, काश्मीर से कन्याकुमारी एवं गुजरात से बङ्गाल तक विस्तृत भूखण्ड है। इसके मध्य में बहती हुई गङ्गायमुना की विमल धारायें इसे शस्यश्यामला एवं मनोरम बनाए हुई हैं। विश्व में प्रथम संस्कृति का सन्देश पहुचाने का श्रेय इसी देश को है'। इसमें मुख्यतः तीन जातियाँ वास करती हैं—हिन्दू, मुसलमान और क्रिश्चियन। यद्यपि पारसी आदि भी भारतवर्ष में दीर्घकाल से अवस्थान कर रहे हैं, तथापि इन लोगों की संख्या नगण्य है। मुसलमान एवं क्रिश्चियन इस भारत पर परवर्तिकाल में आक्रमणकारी के रूप में आए और उन्होंने अपनी तलवार के द्वारा हिन्दुजाति को अधीनता के पाश में आवद्ध कर लिया। इन लोगों का देश की सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य का लुण्ठन ओर हिन्दुजातियों को अपने धर्म से धर्मान्तरित करना यही एक प्रधान उद्देश्य था। इसके

---

१ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥—मनु०

परिणामस्वरूप ही वर्तमानकाल में भारतवर्ष की जनता का एक विशाल भाग मुसलमान और क्रिश्चियन के रूप में परिवर्तित हो गया है। मुसलमानों ने कालक्रम में भारत पर आक्रमण कर शस्त्र के बल से जो यहाँ की जनता को धर्मान्तरित किया इसका दुष्परिणाम आज भी इस भारत का दो भागों में विभाजन हमलोगों के सम्मुख उपस्थित है। वर्तमान निबन्ध में भारतीय संस्कृति शब्द से वर्तमान भारत के निवासी सभी जातियों की संस्कृति का ग्रहण न कर मात्र हिन्दू जाति की संस्कृति का ही पर्यालोचन करूँगा एवं संस्कृति का विश्व के प्रति जो सन्देश है उसका विश्लेषण प्रस्तुत करूँगा। फलतः भारतवर्ष के मूल अधिवासियों की संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है।

संस्कृति शब्द की अनेक व्याख्यायें भिन्न रूप से की गयी हैं। संस्कृति और सभ्यता शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया गया है। किसी व्यक्ति को संस्कृत एवं सभ्य कहने पर उसकी प्रशंसा का भाव व्यक्त रहता है।[१] कतिपय बिद्वानों ने सभ्यता और संस्कृति को अपर पर्याय माना है तो कुछ ने भिन्न अर्थों में इनका प्रयोग किया है। "ब्रानिसला सैलिनाउस्की" का कथन है कि संस्कृति और सभ्यता का प्रयोग अपर पर्याय के रूप में न होकर भिन्न अर्थों में ही होना चाहिए, संस्कृति के विशेष पहलू को सभ्यता शब्द से अभिहित करना चाहिए। "टाइलर" आदि ने "प्रिमिटिव" कल्चर में सभ्यता और संस्कृति को अपरपर्याय के रूप में ग्रहण किया है। प्रसिद्ध इतिहासकार ट्वायनबी को सभ्यता शब्द का प्रयोग ही अभीष्ट है। इलियट ने संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं की है। उन्होंने कहा है कि विभिन्न क्रियाकलापों का योग ही

---

१. Cf. "Culture means at least something cultivated, something refined, it is opposed to the raw and rude."

Dewey, Democracy and Education, p. 142

संस्कृति नहीं, वह तो जीवन-यापन का एक प्रकार है। इलियट ने व्याख्यान-क्रम में यह भी कहा है कि संस्कृति का धर्म से गहरा सम्बन्ध है। इस प्रकार संस्कृति की विस्तृत व्याख्यायें भिन्न-भिन्न लेखकों ने अपने मत के अनुसार की हैं जिनका विश्लेषण कतिपय शब्दों में सम्भव नहीं है। फिर भी संस्कृति उन आचारों का समुदाय है जो हमारे अस्तित्व की रक्षा करती हुई उसको विशिष्ट एवं समृद्ध बनाती है। अर्थात् शिवदत्तज्ञानी के शब्दों में संस्कृति से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिससे उसको "सुधरा हुआ" "ऊँचा" "सभ्य" आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता है।

प्रसिद्ध आधुनिक दार्शनिक C.E.M.Jod ने संस्कृति और सभ्यता के सम्बन्धों तथा भेदों का अत्यन्त सरलढंग से विवेचन किया है। जहाँतकदोनों के भेद का प्रश्न है उनके कथन का सारांश यह है कि कोई सभ्यता जब ठोस रूप ग्रहण कर लेती है और किसी जाति विशेष के जीवन के ढंग में ढल जाती है तो वह संस्कृति कहलाती है। अतः, यह कहा जा सकता है कि किसी जाति की सभ्यता के मूर्तरूप संस्कृति में ही संरक्षित रहते हैं। सूत्र रूप में यह भी कह सकते हैं कि संस्कृति सभ्यता की उपलब्धि है।

भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म है। भारतवर्ष धर्मप्राण देश है। पूर्ण मनुष्यत्व का विकास केवल भारत में ही सम्भव है। जैसे ग्रीष्मादि परस्पर विरुद्ध सकल ऋतुओं का समावेश भारत में ही होता आया है उसी प्रकार परस्पर विरुद्ध धर्मों का समन्वय यहीं सम्भव हुआ है। किसी भी देश की संस्कृति गम्भीरता, व्यापकता एवं विरोधसमन्वय की दृष्टि से भारतीय-संस्कृति की तुलना में नहीं आ सकती है। व्यष्टि का समष्टि के साथ समन्वय यहाँ की महती देन है। हिन्दू संस्कृति एक ऐसी मूल संस्कृति है जिस के अन्तराल में अनेक देशों की संस्कृतियाँ मात्र क्रमविवर्त्तमान अवस्थाओं के रूप में हैं। एक प्रदीप से अनेक दीप जैसे प्रकाश प्राप्त करते हैं वैसे ही इस अक्षुण्ण सनातन संस्कृति के प्रकाश से अनेक उपसंस्कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। इसी सनातन संस्कृति के किसी एक विशेष अंग के आचरण का निर्वाह करने के लिए अनेक

संस्कृतियाँ जन्म लेती रही हैं, किन्तु, विश्लेषण करने पर यह सुस्पष्ट हो जायगा कि उसके मूल में प्रभा-भास्वरता प्रदान करनेवाली यही सनातन भारतीय संस्कृति है। इसकी व्यापकता और समन्वयात्मकता के कारण ही वह भिन्न होकर भी अभिन्न ही है। काल और देश के भेद से इस सार्वभौम संस्कृति का ही नामान्तर इस देश में होता रहा है। अतः, भारतीय संस्कृति को दूसरे शब्दों में सनातन संस्कृति भी कहा जा सकता है। जैसे कामना भी निष्काम में प्रतिष्ठित रहती है वैसे ही भारतीत संस्कृति का रहस्य भी समन्वय मार्ग में प्रतिष्ठित रहता है। "अविभक्तं विभक्तेषु" यह गीता का वचन इसी का डिण्डिमघोष है।

भारतीय संस्कृति अन्यसंस्कृतिओं से भिन्न अपनी समन्वयात्मकता के कारण है तो इसकी समन्वयात्मकता के भी कारण हैं। इसके ऐतिहासिक कारण आर्यों के द्राविड़ों एवं अनार्यों के साथ अत्यन्त प्राचीन समय में ही सम्पर्क से है। जिसे हम भारतीय सभ्यता और संस्कृति कहते हैं उसमें केवल वैदिक तत्त्व ही वर्त्तमान नहीं है। हिन्दूजाति के नानाप्रकार के व्यवहारों, विश्वासों और परम्पराओं का सूक्ष्म विवेचन किया जाय तो पता चलेगा कि उनके बीज शुद्ध वैदिक व्यवहारों विश्वासों और परम्पराओं में निहित नहीं पाए जाते हैं, वरन्, वैदिकेतर संस्कृति में भी पाए जाते हैं। नवीनगवेषणाओं के आधार पर यह सुनिश्चितरूप से मान लिया गया है कि सिन्धु-घाटी की सभ्यता (जिसके अवशेष अभी हरप्पा, मोहेंजोदाड़ों चेनोदाड़ों आदि स्थानों में उपलब्ध होते हैं) ने वैदिक संस्कृति पर अनेक सांस्कृतिक प्रभाव डाले। यों तो कुछ भारतीय इतिहासकारों का मत है कि सिन्धुघाटी की सभ्यता वैदिक आर्यसभ्यता ही थी परन्तु इस मत को मानने से कई विप्रतिपत्तियाँ खड़ी हो जाती हैं। अतः, अधिकतर इतिहासकार इसी मान्यता में विश्वास करते हैं कि उक्त सभ्यता एक सम्पन्न द्राविड़ी सभ्यता जिसके साथ सनातन संस्कृति सम्पन्न आर्यों को लोहा लेना पडा। उस सभ्यता के अवशेष अनेक रूपों में अभी भी प्राप्त हैं जिनके अध्ययन से सिन्धुघाटी की सभ्यता के अनेक

सांस्कृतिक तत्त्वों का पता लगाया जा चुका है। उसी के बलपर आधुनिक हिन्दू समाज के कई विषयों की समीचीन व्याख्या भी की गयी है। इस विषय को यहाँ उठाने का आशय यह है कि यह भारतीय समाज की ही विशेषता रही है कि इसने अपने शत्रुओं के भी अच्छे तत्त्वों को ग्रहण किया और उसे अपने साथ समन्वित कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया। भारतीय संस्कृति का यह लचीलापन कसौटी पर अनेकवार कसा जाकर खरा उतरा है। डेरियस और सिकन्दर के आक्रमण के साथ भी जो बाह्यतत्त्व आए वे यहाँ की संस्कृति के सागर में खोकर एकाकार होगये। पारसियों, यूनानियों और अन्य संस्कृत आक्रमणों के अतिरिक्त भारत पर शक, सीथियन और हूण जैसी वर्वरजातियों के भी निर्मम आक्रमण हुए किन्तु यहाँ की संस्कृति मन्दाकिनी ने सब को आत्मसात् कर पवित्र कर दिया। स्मरणीय है कि भारतीय संस्कृति ने जब किसी बाह्य संस्कृति को आत्मसात् किया तो भले ही बाह्य संस्कृति की निजी स्वतन्त्रसत्ता समाप्त हो गयी और वह भारतीय संस्कृति में आकर खो सी गयी, किन्तु, स्वयं भारतीय संस्कृति भी बिल्कुल ज्यों-की त्यों नहीं रही। इसमें भी कुछ परिवर्त्तन आए परन्तु वे परिवर्त्तन मधुरमिश्रण के थे, विरोध के नहीं। यहाँ अनेक की मान्यता है अवश्य किन्तु वे अनेक परस्पर विरोधी नहीं हैं। उनका अनेकत्व अपने भीतर की गति से ही एकत्व की ओर अग्रसर होता है। कुछ पाश्चात्यविचारकों ने भारतीय संस्कृति पर यह आक्षेप लगाया है कि इसमें बहुधा प्रत्यक्षसत्य की ओर से मुँह मोड़ा गया है और उस एक की सत्ता काल्पनिकरूप से निश्चित की जाती है जो हमारे प्रत्यक्ष क्षेत्र में आता ही नहीं, अतः, काल्पनिक ही है। इस प्रश्न का उत्तर तो सूक्ष्मदार्शनिक विवेचन के द्वारा ही मिल सकता है जिसके लिए हम आक्षेप कर्त्ता को विपुल अद्वैत साहित्य के अनुशीलन का ही परामर्श दे सकते हैं। किन्तु संक्षेप में हम यहाँ मोटे तौर पर यह कह देना प्रकृत संगत समझते हैं कि आक्षेप कर्त्ता ने यहाँ की संस्कृति के केवल ऊपरी स्तर को देखा, किन्तु भीतर में प्रवेश कर अमृत को छूने का कभी

प्रयास नहीं किया। यहाँ की संस्कृति 'नाना' का निरास नहीं करती बल्कि 'नाना' के ही गर्भ में गुप्त 'एक' को खोजने का उपदेश देती है। भारतीय संस्कृति के समन्वयवाद का यही रहस्य है। उक्तप्रकार के पाश्चात्य आक्षेपक को उनके ही रूप में समझाने के लिए हम हेगेल के पृष्ठसेवी महान् दार्शनिक ब्रैडले के प्रसिद्ध ग्रन्थ (Appearance and Reality) के अध्ययन का परामर्श देंगे। जिस प्रकार इसके परमतत्त्व(Absolute) के भीतर के विरोधी तत्त्व आपस के विरोध के चलते परमतत्त्व की एकात्मकता में कोई विश्रृंखलता नहीं उत्पन्न करते बल्कि उसके सामञ्जस्यपूर्ण शरीर में विरोध को खोकर अंगों के रूप में अङ्गी की स्थिति की ही अक्षुण्णता का निर्वाह करते हैं ठीक उसी प्रकार भारतीय संस्कृति के सामञ्जस्यपूर्ण (harmonious) सत्ता में विरोधी आदर्श भी कोई विश्रृंखलता की सृष्टि नहीं करते बल्कि अपने विरोध को भी इसकी एकात्मक धारा के रूप में यथस्थान रखते हुए इसके वास्तविकरूप स्थापन में सहायक ही होते हैं।

इससे कुछ तथाकथित आलोचकों के इस कथन का भी खण्डन होता है कि भारतीय संस्कृति गतिशील (Dynamic) नहीं है। गतिशीलता के बिना समन्वय की परिकल्पना ही नहीं हो सकती। यदि हेगेल की पद्धति से इसे समझा जाय तो कहना होगा कि वाद (Thesis) और प्रतिवाद (Antithesis) के आपसी टकराव (Impact) से ही सम्वाद (synthesis) की उत्पत्ति है। किसी भी प्रकार का क्यों न हो वह सम्वाद (synthesis) ही होता है जिसमें पूर्वकथित दो व्यापार होंगे ही जो बिना गति के असम्भव है। यह सोचना एक भयंकर भ्रम का ही परिणाम है कि भारतीय संस्कृति में समन्वयात्मकता के स्पष्ट परिणाम देखते हुए भी इसे स्थितिशील (static) कहा जाय।

आज का युग धर्म में आस्था खोता जा रहा है क्योंकि बहुत से

नवीन विचारकों का विश्वास है कि मनुष्य-मनुष्य में भेद उत्पन्न करनेवाला धर्म ही है। इसके उदाहरण भी अन्यदेशों में मिल ही जाते हैं। जेरुसेलम को लेकर क्रिश्चियनों और मुसलमानों के बीच जो युद्ध हुए और भयंकर रक्तपात हुआ इसका साक्षी इतिहास है। केवल भिन्न धार्मिक विश्वास के ही दोष से हजारों लोलार्डों को प्रज्वलित अग्नि में फेक कर मार डाला गया। इस प्रकार के अनगिनत उदाहरण अन्यदेशों की सांस्कृतिक परम्परा में उपलब्ध है। किन्तु भारत में धर्म को लेकर न तो कभी कोई युद्ध हुआ और न अत्याचार। यहाँ धार्मिक भिन्नताओं के रहते हुए भी उनके नाम पर रक्तपात न हुए। आज भी इसका उदाहरण देखने को मिलता है कि एक ही परिवार में कोई शाक्त है तो कोई वैष्णव। पहले भी ऐसी परम्परा थी। हुएनत्सांग ने इसका उल्लेख भी किया। स्वयं हर्षवर्द्धन के परिवार में उसने सम्राट् को 'परममाहेश्वर' पाया तो उसकी बहन राज्यश्री को बौद्धमतानुयायिनी। गौड़नरेश नारायणपाल स्वयं तो बौद्ध था किन्तु उसकी माता हैहयवंश की राजकुमारी थी जिसने सैकड़ों हर-यज्ञ कराए। ये सब उदाहरण इस बात को स्पष्ट करते हैं कि भारतीय संस्कृति का समन्वयवादी दृष्टिकोण ऊपरी भिन्नता को देखकर अन्तः में ऐक्य पर ही बल देता है। वह एकता ऐसी है जिसमें सभी भेद अपने स्वरूप को ही खो बैठते हैं। यदि ऐसा न होता तो न तो जैनतीर्थंकर ऋषभदेव की महत्ता भारत में दरसायी जाती और न दशावतार में महात्माबुद्ध का स्थान होता। भारतीय संस्कृति का यह क्रम अभी भी गतिशील है।

स्मरणीय है कि भारतीय संस्कृति ने जिस सत्य को 'धर्मसर्वस्व' कहा है वह कोई अन्धविश्वास का विषय नहीं अपितु मनोविज्ञान की खान से निकाला हुआ और तर्क के हाथों तराशा हुआ एक रत्न है।

भारतवर्ष और धर्म :—

भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म है। भारत एक धर्मप्राण देश है

यह पूर्व में ही कहा जा चुका है। यहाँ का कण कण धर्म की भावना से ओत-प्रोत है। तैत्तिरीयारण्यक में कहा गया है--"धर्म सम्पूर्ण विश्व की प्रतिष्ठा है। धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। यही कारण है कि धर्म को श्रेष्ठ कहा गया है"।[१]

भारतीय संस्कृति और धर्म को सनातन इसलिए कहा गया कि यह अपौरुषेय है, जिसप्रकार वेद की अपौरुषेयता के विचार पर आज के विचारक कुढ़ते हैं उसी प्रकार प्रायः इस विचार के प्रति भी उनकी असहमति हो सकती है, अतः, हम यहाँ स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जब हम यहाँ की संस्कृति को अपौरुषेय कहते हैं तो आशय यह होता है कि किसी पुरुष विशेषने इसे नहीं बनाया। संस्कृति में धर्म का एक मुख्य स्थान होता है। क्रिश्चियन इस्लाम आदि धर्म ऐसे हैं जिनके प्रवर्त्तक ईसामसीह एवं मुहम्मद साहब जैसे पुरुष विशेष हुए। परन्तु भारतीय संस्कृति अथवा धर्म का प्रवर्त्तक इस प्रकार का कोई व्यक्तिविशेष नहीं हुआ। इसीलिए तो यह सनातन कहलाया, यह धर्म स्वयं अवतरित हुआ है, पैगम्बरों के द्वारा कहीं अन्यत्र से नहीं लाया गया है। हमारे यह कहने का आशय यह है कि भारतीयधर्म का स्वाभाविक विकाश हुआ है और इसीलिए इसमें इतनी वैज्ञानिकता का भी समावेश है। विकाश का क्रम कहीं किसी निश्चित समय से न प्रारम्भ हुआ और न ऐसी कल्पना भी की जा सकती है। अतः यह धर्म 'सनातन' है।

धर्म का पर्यवसान आचार शिक्षण में है। आचार धर्म का मुख्य अंग है। भारतीय परम्परा में जो जितना पूर्ण होता है उसमें उतनाही सर्वज्ञत्व, तृप्ति और अनासक्ति आती है। वह भेद में अभेद का दर्शन करता है। सभी प्राणियों में आत्म का दर्शन करता है। इतना ही नहीं आत्मा में भी अशेष चराचर का

---

१ "धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पापमपनुदन्ति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति"–तै० आ० १०।६३

साक्षात्कार करता है[१]। फलस्वरूप जागतिक सुख में भी दुःख के सान्निध्य के कारण उसका आनन्द महाकरुणा के रूप में प्रकट होता है। वह आन्तरिक अभूतपूर्व उल्लास को प्राप्त करता है। जीव अवस्था में विश्व दुःखरूप में जाग्रत रहता है। वैषयिक आनन्द दुःख का ही एक भेद रहता है। अतः, प्राणिमात्र के प्रति करुणा की भावना से चित्त आर्द्र रहता है। आनन्दमयी माँ भी आर्द्र चित्त ही रहती है--"सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता"। एक ओर अशेष आनन्द और दूसरी ओर अशेष करुणा--यह भारतीय संस्कृति का मूल स्तम्भ है।

"धर्म" भारतीय संस्कृति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साथ ही साथ रहस्यमय तत्त्व है धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्। जिनलोगों ने 'मजहब' या 'रेलिजन' के अर्थ में 'धर्म' शब्द का ग्रहण किया है वे इसके तात्त्विक अर्थ को नहीं समझते। अन्य किसी भाषा में इसका समानार्थकशब्द हो ही नहीं सकता। क्योंकि, यह तो इसी भूमि की सम्पत्ति है। वास्तव में 'भारत' और 'धर्म' में समीकरण का भाव है--

The basic Indian historic ideal across the centuries, particularly stressed in those epochs when the country encountered invasion and aggression from outside, is that the land is Dharma and Dharma is the land. This has been the precious gift of the Rig-vedic Aryans to the sub-continent. The fundamental conceptions that Bharata and Dharma are identical and that neither Dharma nor its favoured home-land can perish, inspite of the vicissitudel of history have kept alive the faith of the people in political crises and befects through the millennium; (The culture And Art of India, P. 379)

भारतीय संस्कृति के अनुसार भाव और आचार में एकरूपता रहती है।

---

१ "सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि"—गी० ६।२९

मात्र भाव की पवित्रता से ही जीवन यात्रा का निर्वाह नहीं किया जाता। यहाँ का ज्ञान ज्ञान के लिए नहीं वरन् आचार के लिए है। ज्ञान की पूर्णता तदनुकूल आचरण में है। क्रिया का ही प्राधान्य यहाँ की संस्कृति का आधार है। धर्म के अनुयायियों में सदाचार की उपलब्धि न हो तो यहाँ की सांस्कृतिक-परम्परा अक्षुण्ण नहीं रह जाती। जो संस्कृति मानव समाज के जीवनस्तर को उन्नत करने के हेतु मानव की अशुभ हीन प्रवृत्तियों को हटाकर उसमें उदार उन्नत तथा विशाल विचारों को जन्म देकर सदाचार में प्रवृत्त कराती है वही संस्कृति महनीय कही जा सकती है। भारतीय संस्कृति मानव के सौन्दर्य एवं स्निग्ध भावों को जगाकर करुणा का संचार कर जीवन को स्निग्ध बनाकर शुभ मार्ग से इनकी वासानासरित प्रवाहित कराती है। संक्षेप में भारतीय संस्कृति मानवता के समग्र गुणों का उदय कर उसे पूर्ण मानव बना देती है।

सामान्यतया मनुष्य की प्रवृत्ति स्वार्थमूलक होती है। पूर्वोक्त विश्लेषण से यह सुस्पष्ट है कि स्व से बहिर्भूत इस जगत् का एक प्राणी नहीं है। भेद में आध्यात्मिक दृष्टि से स्व की व्याप्ति है। अतः, धर्म के मूल पर अवस्थित यह संस्कृति स्वार्थ को ही कारुण्य में परिवर्तित कर देती है और स्वार्थमूलक प्रवृत्ति कारुण्यमूलक प्रवृत्ति बन जाती है। लोकोपकार की भावना ही इष्ट साधन बन जाती है। यह वही संस्कृति है जो जागतिक सुख की तो चर्चा ही क्या दुःख को भी अप्राकृत आनन्द का रूप दे देती है। अष्टादश संस्कारों से शोधित पारा जैसे अपने योग से धातु विशेष को स्वर्ण के रूप में परिणत कर देता है—अलंकारशास्त्र के अनुसार स्थायी भाव शोक को अनुकूलवेदनीय करुणरस में परिणत कर देता है उसी प्रकार धर्ममूलक संस्कृति के योग से दुःख भी अप्राकृत आनन्द में परिणत हो जाता है। सबों में स्व की विश्रान्ति होने से यहाँ का भोग त्याग के धरातल को आधार बनाकर आचार सदाचार रूप में, असदाचार रूप में नहीं; भोग बहुजन के सुख भोग के रूप में, मात्र उपभोग के रूप में नहीं रहता है। यहाँ की संस्कृति का सनातन घोष है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

यहाँ के शिव भी जीव के सेवक हैं जब कि जीव शिव का सेवक है। योग-भाष्य में ईश्वर के विषय में व्यासदेव का कथन है कि—

"तस्य आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्"।

यहाँ का धर्म सब का नियन्त्रण करता है। धर्म द्वारा नियन्त्रित सबल दुर्बल को सताने का साहस नहीं कर सकता। धर्म सब को कर्तव्य द्वारा नियन्त्रित करता है। भारतीय संस्कृति में श्रेयोरूप धर्म ही है। यह उग्र से भी उग्र है। क्षत्रिय अर्थात् राजा जिसे सभी का नियन्ता समझा जाता है उसका भी नियन्ता धर्म ही है। अतः, धर्म से परे यहाँ कुछ भी नहीं है। दुर्बल भी धर्मरूपी बल द्वारा बलवान् पर विजयी होता है। यह धर्म ज्ञान रूप एवं अनुष्ठानरूप है। शास्त्रज्ञ हो या मूर्ख सभी का नियन्ता इसी धर्म को माना है। इस अर्थ को कहनेवाली श्रुति बृहदारण्यकोपनिषद् में मिलती है।[1] इस श्रुति का भाव स्पष्ट करते हुए भाष्यकार ने कहा है कि यह धर्म उद्दण्ड राजा का भी नियामक है। बलवान् पुरुषों के मध्य में जो दुर्बल है वह भी धर्माधिकरण में जयलाभ करता है। जैसे एक बलवान् राजा की सहायता से दुर्बल राजा भी विजयी होने में समर्थ होता है वैसे ही बलवान् राजा के समान भारतीयों के सम्मुख धर्म सर्वाधिक बलवान् है। अतः, इस भारतीय-संस्कृति का मूलाधार धर्म ही है—यह एक स्वीकृत तथ्य है। भारतीयों के लिए गर्भाधान से लेकर परलोकपर्यन्त पुत्रपौत्रादि परम्परा क्रम में प्रतिक्षण अनुष्ठित कार्यों के लिए धर्म अपना प्रकाश डालता है। वेद, स्मृति, महाभारतादि निबन्धों से इस धर्म का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। संक्षेप में यह धर्म भारतीय-जन साधारणों के निःश्वासप्रश्वास तक का नियन्त्रण करता है।

---

१ "तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत् धर्मं तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान्बलीयांसमाशंसते धर्मेण यथा राज्ञैवं"—बृहदारण्यको० १।४।१४

वर्तमान काल में भारतवर्ष में धर्मातङ्क रोग उत्पन्न हो गया है। धर्म शब्द का उच्चारण करने से ही वे समझते हैं कि चन्दनादि अनुलेपन अथवा शस्त्र हाथ में लेकर परराष्ट्र पर आक्रमण करना तथा उस के अधिवासियों का अग्निदाह लुण्ठन आदि के द्वारा धर्मान्तर में परिवर्तित करना। इतना सत्य है कि मुसलमान एवं क्रिश्चियन का जो धर्म संसार में परिव्याप्त हुआ है इसका मूल तलवार ही है। वे अन्यधर्मावलम्बियों को अपने धर्म में लेकर निकृष्ट राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि ही करते हैं। भारतवर्ष का अङ्गव्यवच्छेद ही आज इसका साक्ष्य वहन कर रहा है।

हिन्दू जातियो के इतिहास में भी विशाल युद्ध आदि का अनुष्ठान हुआ है तथापि हिन्दू जाति धर्म-विसर्जन कराना अथवा धर्मान्तरानुगामी व्यक्ति को अपने धर्म में दीक्षित करना महान् अधर्म समझती थी। श्रीमद्भवद्गीता हिन्दू-सभ्यता एवं संस्कृति का आधार ग्रन्थ है। उसमें महारथी अर्जुन भी युद्धभूमि में आकर युद्ध करना धर्मानुगत है या अधर्मानुगत इस आशङ्का से व्याकुल हो गये थे। धर्मान्धता के नाम पर मुसलमान एवं क्रिश्चियन ने लाखों व्यक्तियों का विनाश किया। किन्तु भारतवर्ष में हिन्दूजाति ने अपनी पूर्व वास-भूमि के विभक्त होने पर भी इसकी प्रतिहिंसा लेने का प्रयास नहीं किया है। विभिन्न धर्मावम्बियों को भय एवं आतङ्क के द्वारा धर्म परिवर्तन कराना यह हिन्दू संस्कृति के विरुद्ध है। हिन्दू संस्कृति में परधर्म को भयावह कहा गया है। उसमें अपने लिए जो प्रतिकूल वेदनीय हो सकता है वैसा आचरण दूसरों के लिये भी निषिद्ध माना गया है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

इस धरातल पर अन्यधर्मावलम्बियों का राष्ट्र भी विद्यमान है किन्तु, वहाँ पर भिन्न धर्मावलम्बियों का स्थान नहीं रहता है। यूरोप, अरब, चीन आदि राष्ट्रों की ओर दृष्टिपात करने से ही इसकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी। हिन्दू

जाति की दृष्टि में जो धर्म का स्वरूप है उससे सर्वथा विलक्षण धर्म का स्वरूप क्रिश्चियन एवं मुसलमान जातियाँ समझती हैं।

भारतीय संस्कृतिद्वारा स्थापित धर्म का यह रहस्य ऐसा सार्वभौम सत्य है जिसकी गूँज प्रत्येक धर्म में सुनाई पड़ती है। चीन के कन्फ्यूसियस ने कहा कि दूसरों के साथ वह व्यवहार मत करो जो अपने साथ पसन्द नहीं करते हो। इस्लाम के प्रवर्त्तक मुहम्मद साहब ने भी कहा था कि दूसरे पर अत्याचार न करो तो वह भी तुम्हारे साथ अत्याचार नहीं करेगा। बाइबिल का यह उद्घोष कि 'Do unto others what you want to be done unto you.' उपर्युक्त सत्य का ही प्रतिरूप है। भलेही आज के भौतिकवादी यूरोपियन क्रिश्यिचन बाइबिल की इस शिक्षा की ओर ध्यान न दें किन्तु उनका धर्मग्रन्थ अनेक स्थल में इस बात पर सर्वाधिक बल देता है।

विभिन्नधर्मों के उपर्युक्त उद्धरणों से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि भारतवर्ष ने जिस सत्य की स्थापना अत्यन्त प्राचीन समय में की वह उसकी कोई निजी मौलिक देन नहीं है। ऐसी धारणा में सम्भावित भ्रान्तियों को दूर करने के लिए हम नीचे प्रसिद्ध दर्शनव्याख्याता Dr. D. M. Datta. के पर्यालोचन को प्रस्तुत करना उपयुक्त समझते हैं :—

"It is folt that these ideas are not the monopoly of India. but can be found also in the greatest teachers of all countries and times, it will only mean, What India has always believed, that there is a bed-rock of human unity behind the superficial diversities of time and place, and that the greatest persons of many lands have often pemetrated to it"

देखिये contemporary philosophy, p. 531.

वर्तमानकाल में भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के रूप में घोषित किया गया है। किन्तु यह धर्म किसी सम्प्रदाय-विशेष के धर्म को लक्ष्य करके ही कहा गया है। हिन्दू जाति का जो धर्म है, वह सम्प्रदाय विशेष का नहीं है। गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

यह पूर्व में ही स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि वेद से लेकर परवर्ती सभी ग्रन्थों में धर्म की महिमा का ख्यापन मिलता है। यह धर्म संज्ञा किसी सम्प्रदाय के नियामक व्यक्ति विशेष से प्रदत्त नहीं है। जो नियम विश्व की स्थिति एवं मर्यादा को धारण करने में समर्थ तथा धारण किये हुए है वही धर्म है[1]। 'धारणाद्धर्म इत्याहुः" यहाँ धारण शब्द की निष्पत्ति धृञ् धारणे धातु से होती है। अतः धर्म धारणकारी है। यही कारण है कि उपनिषद् में कहा गया है "धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" अर्थात् धर्म विश्व का आश्रयभूत है। सूर्य पृथ्वी आदि भी परस्पर उपकार्य-उपकारकभाव से एक दूसरे के धारक हैं। फलतः, मनुष्य के मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा धर्म से ही है। मनुष्य के जीवन का ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो धर्म द्वारा नियन्त्रित न हो। धर्म का प्रतिपादन मुख्यतया वेद में ही किया गया है। वेद अपौरुषेय है, अतः, देश और काल से अपरिच्छिन्न है। इस विषय में व्यास का वचन[2] सारगर्भित हैं। वेद द्वारा कर्तव्य रूप से बोधक ही धर्म है।

यह धर्म केवल शुष्क आचार परिपालन में ही सीमित नहीं है। इस

---

१ धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

२ वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्य्ययः।—शान्ति० १०८।११
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुम॥ भा० ६।१।४०

धर्म का नियम समग्र विश्व के चराचर में परिव्याप्त है। सभी के प्रति मनुष्य का कर्तव्य स्वरूप धर्म नियम मानव को नियन्त्रित रखता है। धर्म को अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति का साधन कहा गया है।[1] धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ही भारतीयों ने पुरुषों के द्वारा प्रार्थ्यमान माना है। पुरुष के द्वारा अर्थ्यमान सुख ही है, कारण, सुख ही जीवन का इष्टसाधन है फलतः काम और मोक्ष साध्य है इस तरह काम और मोक्ष सुखरूप होने से मुख्य, धर्म और अर्थ उसका साधन होने से अमुख्य कहा जा सकता है। इसमें भी धर्म अदृष्ट उपाय है, अतः, इसका निरूपण प्रत्यक्ष के आधार पर नहीं हो सकता हैं, अर्थ दृष्ट साधन है। इसी प्रकार काम को अनित्य मुख्य और मोक्ष को नित्य मुख्य कहा है इस प्रसङ्ग में मुझे इतना ही कहना है कि धर्म की गति अदृष्ट है। अतः, इसका निर्णायक वेद, स्मृति एवं शिष्टाचार है।

धर्म हिन्दुओं के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित होता है। धर्म के लिए हिन्दू जाति ने सुमहान् मूल्य दिया है और अभी भी दे रही है। धर्म का परिपालन किसी उद्देश्य से प्रणोदित होकर अथवा व्यावहारिक या राजनैतिकक्षेत्र में लाभ उठाने के लिए नहीं करते हैं। इसका मूल्य इतना अधिक रहा है कि व्यवहार क्षेत्र में विभिन्न धर्मावलम्बियों के द्वारा प्रतारित होकर हिन्दू जाति कभी कभी सर्वस्वान्त होकर भी इसके पालन से बिन्दुमात्र भी च्युत नहीं हुई है। धर्म-पालन में हिन्दू जाति व्यवहारिक लाभालाभ की चिन्ता का सर्वथा विसर्जन कर देती है।

आपातदृष्टि से ऐसा ज्ञात होता है कि धर्म को कोई भी पसन्द नहीं करता है। किन्तु, गम्भीरता से विचार करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि धर्म के प्रति अतिशय स्पृहा है। कोई भी अधर्मात्मा पुत्र नहीं चाहता है। अपने अधार्मिक पुत्र अर्थात् दुराचाररत पुत्र के प्रति सभी को घृणा रहती है। पुत्र चाहता है पिता धार्मिक रहे। पति धार्मिक पत्नी को चाहती है, पत्नी धार्मिक पति को चाहती है। पुरुष धार्मिक मित्र चाहता है। इतना ही नहीं एक दूकानदार धार्मिक ग्राहक एवं ग्राहक एक धार्मिक दूकानदार को चाहता है इस समय अन्य संस्कृति के प्रभाव से बाह्योन्मुखी

---

१ यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसिद्धिः स धर्मः। वै० सू० १।२

प्रवृत्ति होने के कारण हीन-वासनाओं की पूर्ति की अभिलाषा से वैसे ही व्यक्ति को पसन्द करता है।

अब मैं भारतीय-संस्कृति की कतिपय विशेषताओं को सम्मुख रख रहा हूँ :—

१ विश्वबन्धुत्व

भारतीय संस्कृति की यह एक महनीय विशेषता है कि यह मानव-मात्र के कल्याण की भावना करती है। निकृष्ट स्वार्थ भारतीय संस्कृति की देन नहीं है। अन्यदेशीय संस्कृति राष्ट्र की परिधि से परिव्याप्त हो सङ्कीर्ण भावना से ही कल्याण की कामना करती है। किन्तु भारतीय संस्कृति में असीम समष्टि के कल्याण की भावना सन्निहित है। इसमें व्यक्ति और समाज से ऊपर उठकर मानवमात्र के कल्याण की भावना निहित है। यजुर्वेद का एक मन्त्र अशेष जगत् की शान्ति एवं विश्वबन्धुत्व की भावना से परिव्याप्त है। विश्व के प्राणिमात्र से परस्पर प्रेम, मैत्री एवं सहाय्य की भावना पद पद में अभिव्यक्त है। मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ। हम को परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें[1]।

ऋग्वेद की एक श्रुति में मानव के कर्तव्य का निर्देश करते हुए कहा गया है कि केवल अपने स्वार्थ की ही चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मानव-मात्र एक दूसरे की रक्षा तथा सहायता करें[2]। इनमें परस्पर विश्व के समस्त जीवों के प्रति बन्धुत्व की भावना प्रस्फुटित रहती है। विश्व को एक चैतन्य के विवर्त अथवा अंश के रूप में स्वीकार करने से विश्व के प्रति एकात्मता वर्तमान रहती है। यहाँ की संस्कृति में भोजन से पूर्व बलि-विश्वदेव को आवश्यक अङ्ग के रूप में स्वीकार किया है। इसके द्वारा विश्व के सभी प्राणियों को तृप्ति-प्रदान के बाद ही आत्म तृप्ति की भावना व्यक्त है। सर्पादि सरीसृप आदि की तृप्ति भी इसमें निहित[3] है। वेद में विश्व-कल्याण की

१ मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।
यजु० ३६।१८

२ पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।

३ देवाः मनुष्याः पशवो
सिद्धाश्च यक्षोरगदेवसंघाः.

भावना बहुत्र परिव्याप्त है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जैसे असीम काल से सूर्यादि परस्पर अविरोध भाव से अपने कर्तव्य पालन में लगे हैं वैसे ही तुम भी समान मन हो परस्पर सद्भावरत हो एक साथ कर्तव्य में लगे रहो[1]।

सामान्यतया यही देखा जाता है कि जिस से किसी प्रकार का सम्बन्ध है, उसीके कल्याण की भावना की जाती है। किन्तु यहाँ के महर्षि निखिल विश्व के प्राणियों के प्रति सद्भाव एवं सहानुभूति रखते हैं और सभी व्यक्तियों को इस प्रकार की भावना रखने के लिए आग्रह करते हैं। सभी व्यक्तियों के प्रति भले ही वह व्यक्ति अदृष्ट ही क्यों न हो उनके प्रति यह धारणा सुदृढ़ रूप से हृदय में अवस्थित रहती है[2]।

एक ऋषि ने यह कामना की है कि मानवमात्र का मानसिक भाव समान रहे जिससे विश्व के प्राणियों में परस्पर सौहार्द एवं सद्भावना रहे। भारतीय कभी भी क्षुद्र-कामना के लिए अपनी वाणी एवं शरीर का उपयोग

प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ताः
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्।
पिपीलिकाकीटपतङ्गकाश्च
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया प्रदत्तं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु।

तर्पण में—

ये ऽबान्धवाः बान्धवाश्च येऽन्यजन्मनि बान्धवाः

१ देवा भागं यथा पूर्वे, संजानाना उपासते॥ ऋ० ६।७५।१४

पञ्चमहायज्ञ

१ नित्य होम, देव की तृप्ति के लिए (देवयज्ञ)
२ मनुष्येतर जीवों को आहारदान (भूतयज्ञ)
पशु पक्षी कीट पतंग आदि भूत यज्ञ से आप्यायित होते हैं।
३ पितृपुरुषों के लिए उद्दिष्ट बलि (पितृ यज्ञ)
पितृभ्यः स्वधा कहकर जलदान से भी तृप्ति होती है।
४ अतिथि सेवा (नृयज्ञ)
५ नित्य स्वाध्याय (ऋषियज्ञ)

२ यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि। अ० १७।१।७

नहीं करते हैं। सतत उदात्त और उदार विचार की विमल धारा से इनका हृदय ओत-प्रोत रहता है। यही कारण है कि यहाँ की संस्कृति ने विश्व के प्रति सौहार्द्र प्रेम एवं कौटुम्बिक-भावना का विस्तार किया है। विश्व-बन्धुत्व की भावना यहाँ की बहुत बड़ी देन है, जिसकी मूल आधारशिला आध्यात्मिक एकत्व पर अवस्थित है।

अतिथि-सेवा :—

भरातीय संस्कृति का विश्व के प्रति एक सन्देश अतिथि-सेवा है। पाश्चात्य देश में वर्तमान अतिथि-सेवा केवल मौखिक शिष्टाचार है। भारतीय संस्कृति का यह एक प्रधान अङ्ग है। यात्राक्रम में आया हुआ गृहागत शील-सम्पन्न विद्वान् व्यक्ति अतिथि कहा जाता है। यह अभ्यागत का अपर पर्याय है।

प्राचीनकाल से ही भारत में अतिथियों का सत्कार प्रचलित है। वैदिककाल में भी अतिथि-सत्कार की सुन्दर व्यवस्था थी। अतिथि या अभ्यागत को सभी का पूज्य माना गया[1] है। वेद, उपनिषद् धर्मशास्त्र आदि में इस विषय के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। यज्ञादि में आतिथ्य शब्द का प्रयोग मिलता है। अतिथि का सत्कार ही आतिथ्य का अर्थ होता है। अग्नि, सोम, आदि देवताओं को यज्ञ का अतिथि कहा गया है। वे यज्ञीय-हविः को ग्रहण करने के लिए प्रीतिपूर्वक अपनी इच्छा के अनुसार बहुधा आते हैं। अग्निदेव अतिथिरूप में सभी के पूजनीय होते हैं —यह वेद एवं उपनिषद् में वर्णित है।

कठोपनिषद् में नाचिकेता को मृत्यु ने विनीत होकर कहा कि "अतिथि होकर भी मेरे घर में तीन रात तक जो आपने उपवास पूर्वक अवस्थान किया है ब्रह्मन्! आप नमस्कार के योग्य हैं। मैं अपना कल्याण चाहता हूँ। तीन रात आपने निवास किया है, अत, मैं तीन वर-प्रदान करता हूँ[2]।

१ सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।

२ तिस्त्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु तस्मात् प्रतित्रीन्वरान्वृणीष्व। कठोप० १।१

नचिकेता यमराज के घर पर आता है। यमराज अपने घर में नहीं है। वह तीन रात तक उपवासपूर्वक उसके घर पर निवास करता है। चतुर्थ दिवस यमराज घर पर आता है। उसके वृद्ध अनुचरों ने कहा—महाराज! अतिथि ब्राह्मण स्वरूप है, वह अग्निस्वरूप हो गृह में प्रवेश करता है। अग्निस्वरूप घर पर आये हुए अभ्यागत का यदि सत्कार नहीं किया जाय तो वह सम्पूर्ण कुल का नाशक होता है। अतः, पाद्य अर्घ्य आदि से उसकी सेवा करें[1]। तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा के क्रम में अतिथि सेवक होने की शिक्षा दी गई है अतिथिदेवो भव। इस प्रकार अतिथि एवं आतिथ्य के विषय में अनेक मन्त्र मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि उस काल में भी आतिथ्य का उचित स्थान था।

परवर्तिकाल में मनुसंहिता, धर्मशास्त्र आदि में अतिथि-सत्कार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई है। मनुस्मृति के तृतीयाध्याय में अतिथि को देवता के समान सभी का पूज्य माना है[2]। गृहस्थाश्रम में रहता हुआ जो गृहस्थ पञ्चमहायज्ञ का अनुष्ठान नहीं करता है, उसको पतित कहा गया है। देवता, अतिथि, भृत्य पितृलोक और आत्मा को जो व्यक्ति अन्नादि से परिपुष्ट नहीं करता है वह श्वास प्रश्वास की क्रिया सम्पन्न करता हुआ जीवित नहीं है। अर्थात् जीवित कार्य सम्पादन नहीं करता हुआ वह मरे हुए के समान है। नृयज्ञ ही अतिथि-पूजा है और पञ्च महायज्ञों में पाँचवाँ महायज्ञ है[3]।

अन्य संहिताओं में भी अतिथि-सेवा का एवं आतिथ्यविधि का विस्तृत-विवरण दिया गया है। हारीत संहिता में कहागया है कि - अतिथि के साथ स्वागतसम्भाषण, और उनको आसनादि-प्रदान और पाद-प्रक्षालन करें।

---

१ वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥ कठोप० १।७

२ देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न जीवति॥ मनु० ३।७२

३ ...... नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥ मनु० ३।७०

यह पूर्व में ही कहा गया है कि धर्म ही भारतीय संस्कृति का मूल धार है। सभी संहिताओं में अतिथि-सेवा की अवश्यकर्तव्यता सूचित करने के लिए उसके फल का निर्देश लौकिक एवं पारलौकिक फल के रूप में सूचित किया है। अतिथि के साथ स्वागत सम्भाषण से गृहाधिष्ठित अग्नि परिपुष्ट होती है। आसन आदि प्रदान करने पर देवराज विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं। पादप्रक्षालन के लिए जलप्रदान करने पर पितृलोक सन्तुष्ट होता है। कर्तव्यरूप से निर्दिष्ट यज्ञों में इसको अवश्य कर्तव्य के रूप में कहा है।[1] गृहस्थ अति दीन हो तब भी उसको आसन, भूमि, जल, प्रियवाणी इन चार वस्तुओं से अतिथि का सत्कार अवश्य करना चाहिए अन्नादि कदाचित् न रहे, परन्तु उक्तवस्तुओं की न्यूनता किसी भी गृह में नहीं रहती है[2]।

अत्रिसंहिता में अतिथिसत्कार को एक विशेष नृयज्ञ के रूप में स्वीकार किया है अतः, आतिथ्य के लिए पशुवध तक का विधान किया गया है। कारण, यह हिंसा वैध होने के कारण दोषकर नहीं है[3]।

तन्त्रशास्त्र में सदाशिव ने पार्वती को कलियुग के आश्रमधर्म की सूचना देते हुए कहा है कि–गृहस्थ व्यक्ति देवता और अतिथि की पूजा में सदा नियुक्त रहें[4]। इतना ही नहीं यह भी कहा है कि—अपना प्राण कण्ठगत रहने पर भी गृहस्थ अतिथि और मातापिता आदि को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन न करे।

पुराण में भी अतिथि-सेवा का महत्त्व अनेक स्थल में वर्णित किया है। पुराणों में इसके अनेक दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि किसी समय आतिथ्य के लिए शुकदेव जी राजा परीक्षित के समीप

---

१ हारीत सं० अ० ४
२ मनु० अ० ३।२
३ वास० सं० अ० ४
४ महानि० ८।२४

आये। महाराज ने यथोचित सत्कार के बाद कहा कि—हे ब्राह्मण! आज मैं आपके सम्पर्क से आनन्दित हुआ। आपने अतिथि रूप में उपस्थित होकर इस क्षेत्र को तीर्थ-क्षेत्र के योग्य बना दिया है[1]।

अन्य पुराणों में भी इसकी प्रशंसा अनेक प्रकार से की है तथा अतिथि-सेवा न करने वाले व्यक्ति को पातकी कहा गया है।

रामायण में अतिथि-सेवा का विशेष महत्त्व वर्णित है। निर्जन-वन में अकेली सीता अपनी पर्णकुटी में है। तपस्वी ब्राह्मणवेशधारी रावण को अतिथि के रूप में आने पर उसकी अर्चना से अपने को वञ्चित नहीं रखपाती है[2]।

महर्षि भरद्वाज के आश्रम में श्री रामचन्द्र का यथोचित आतिथ्य किया गया था। महर्षि भारद्वाज ने कहा था—हे काकुत्स्थ! तुम को अतिथि के रूप में प्राप्तकर आज मेरी अनेक दिनों की कामना पूर्ण हुई[3]।

वसिष्ठ के आश्रम में राजर्षि विश्वामित्र का विशिष्ट सत्कार हुआ था[4]।

महाभारत में अतिथि-सत्कार का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है—स्वदेश अथवा विदेश में कहीं भी अतिथि को उपवासी रखना विधेय नहीं है[5]।

---

१ श्रीमद्भा० १।१८

२ द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम्।
सर्वैरतिथि-सत्कारैः पूजयामास मैथिली॥
उपानीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमन्त्र्य च।
अब्रवीत् सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम्॥ वा० रा० ३।३३।३४

३ उपानयत् धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः। वा०

४ आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि बलस्यास्य महाबल।
तव चैवाप्रमेयस्य यथार्हं सम्प्रतीच्छ मे॥
सत्क्रियां हि भवानेतां प्रतीच्छतु मया कृताम्।
राजंस्त्वमतिथिश्रेष्ठः पूजनीयः प्रयत्नतः॥ वा० रा० १।५२।१३ १४

५ महा० शा० १६ अ० १५३ वा० रा० २।५४।१७

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने राज्यभ्रष्ट होकर वनगमन काल में उपस्थित ब्राह्मणों के सम्मुख अतिथि-सत्कार का विशेष महत्त्व बताया है। महाभारत में रन्तिदेव का चरित्र अतिथि-सेवा का ज्वलन्त उदाहरण है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में महाराज दुष्यन्त मृगया के क्रम में महर्षि कण्व के आश्रम में उपस्थित होते हैं। अनसूया और प्रियम्वदा के साथ शकुन्तला ने उनका विशेष रूप से अतिथ्य किया है। "इदानीमतिथिविशेषलाभेन। हला शकुन्तले! गच्छ उटजम् फलमिश्रमर्धमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति। राजा- भवतीनां सुनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्। अभिज्ञा॰ प्र॰अ॰।

अतिथि दुर्वासा का प्रत्याख्यान कितना भयङ्कर हो गया है। आः अतिथिपरिभाविनि—

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव [अभिज्ञा॰ अ॰ ४

ऋषियों के आश्रम में अतिथियों के आगमन पर उनकी विशेषरूप से सत्कार की योजना की जाती थी। कालिदास ने रघुवंश के प्रथम सर्ग के तिरपन पद्य में लिखा है कि-पवन द्वारा धूप समूह के आहवनसे सुगन्धि फैलाकर आश्रम की ओर जानेवाले अतिथियों को पवित्र कर रहा है। इसी प्रकार परीक्षा के लिए आए हुए महादेव का तपस्या में रत पार्वती ने अतिशय सत्कार किया था।

किरातार्जुनीयम् में हैहयपति कार्त्तवीर्य का, तपस्या में जीर्ण-शीर्ण जमदग्नि के आश्रम में महर्षि ने अपनी कामधेनु के बल पर अतिशय सत्कार किया था।

भारतीय बौद्ध एवं जैन आचार प्रक्रिया में भी अतिथि सत्कार की विशेष व्यवस्था एवं विशेष नियम का साङ्गोपाङ्गवर्णन विनयपिटक में मिलता है। प्रत्येक गृहस्थ का अवश्य कर्तव्य अतिथि सेवा थी। जिस घर में स्वामी

एवं बन्धुजनों के प्रति श्रद्धा तथा अतिथिसत्कार होता था—वे ही अच्छे गृहस्थ और उन्हीं की धर्मपत्नी आदर्श गृहिणी कही जाती थी।

जैनियों की अतिथि-सेवा भी साधरण नहीं थी। वे अतिथियों के सत्कार के लिए अतिशय प्रयत्नशील रहते थे। आज भी इस धाराक्रम में अतिथिशाला एवं धर्मशाला की व्यवस्था पाई जाती है। ये अतिथिशालाएँ भारतीय संस्कृति परम्परा की क्षीण स्मृति है।

दैनिक व्यवहार में भी देखा जाता था कि यहाँ के प्रतिष्ठित कुलीन धनाढ्य व्यक्तियों के घर में गृहपति अतिथि का सम्वाद ग्रहण कर ही भोजन करते थे।

वर्तमान समय में होटल की प्रतिष्ठा के साथ अतिथि की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी है।

अतिथि सेवा भारतीय संस्कृति का प्रधान अङ्ग है। जिसका निर्वाह वैदिक-काल से ही देखा जाता है।

इस अतिथि यज्ञ के द्वारा गृहस्थ अतिथियों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझते थे और इसको अपना कर्तव्य समझकर इसमें असावधानी नहीं करते थे। अतिथि विद्वान परोपकारी जितेन्द्रिय धार्मिक सत्यवादी छलकपटरहित एवं नित्यभ्रमणशील व्यक्ति होते थे।

भारतीय संस्कृति और विवाह

भारतवर्ष में यद्यपि गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक सारे संस्कार धर्मशास्त्र के द्वारा विधिवत् सम्पादित होते हुए अपना अपना पृथक् महत्व रखते हैं, तथापि, इनमें विवाह संस्कार अधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतवर्ष का जो विवाह बन्धन है, वह मात्र दैहिक सम्बन्ध से ही सम्बद्ध नहीं है। यह सर्वथा धर्म के ऊपर प्रतिष्ठित है। किसी भी स्थिति में यह विवाह-बन्धन नर-नारी का एक विलास-व्यसन अथवा आमोद-प्रमोद का एक अंश नहीं समझा गया है। इस जीवन की तो चर्चा ही क्या पारलौकिक कार्यों में भी इस

विवाद सम्बन्ध की महिमा बखानी गयी है। गार्हस्थ्य जीवन में यदि पत्नीशून्य हो जाय तो उसका किसी यज्ञादि के अनुष्ठान में अधिकार नहीं रहता है। इसलिए भारतीय संस्कृति के अनुसार यह विवाह सम्बन्ध सर्वथा अच्छेद्य है। नर-नारी के जीवन में युवावस्था एक निर्दिष्ट समय तक ही सीमित रहती है।

स्त्रीजाति के प्रति सम्मान

भारतीय संस्कृति का एक विशेष अङ्ग है स्त्रीजाति के प्रति सम्मान। पर स्त्री में मातृ-बुद्धि की भावना, भारतीय संस्कृति को छोड़कर, अन्य संस्कृति में कल्पनातीत है। वेद से लेकर सभी स्मृति एवं पुराण ग्रन्थों में नारी के विषय में एक ही विचारधारा रही है। नारी के विना यह सम्पूर्ण विश्व सारशून्य है। लौकिक तथा पारलौकिक दोनों साधनाओं में नारी का एक विशिष्ट स्थान है। कन्याशब्द की व्युत्पत्ति दिखाते हुए यास्काचार्य ने कहा है कि 'कन्या कमनीया भवति'। कान्ति सौन्दर्य अर्थवाचक कमुधातु से कन्या शब्द की उत्पत्ति है। अतः कन्या अर्थात् सर्वथा वाञ्छनीय यह अर्थ हुआ। स्त्री की चारुता सहज शारीरिक सौन्दर्य में नहीं वरन् मात्र प्रिय पति के विषय में यदि सौभाग्य फलक हो तो वह सार्थक है। नारी एक ओर ममता की अधिष्ठात्री होने से पुष्प से भी अधिक सुकुमार है किन्तु अन्य दृष्टि से अपने आचार-विचार में वज्र से भी अधिक कठोर है। इस प्रकार स्त्रीत्व में अर्द्धनारीश्वर के दोनों स्वरूपों के विश्लेषण से ही उसकी पूर्णता सिद्ध होती है। इसका सच्चा स्वरूप मातृ स्वरूप ही है, जिससे अनवरत करुणा की धारा का सञ्चार होता रहता है। नारी अपने पति एवं परिवार की मर्यादा के साथ साथ अपनी भी प्रतिष्ठा बनाये रखती है। वैदिककाल में पिता पुत्र और पुत्री में किसी प्रकार के भेद की उपलब्धि नहीं करता था। भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी को उच्च और ममता

की खान कहा है। मातृशक्ति को सत्याचरण अर्थात् धर्म का प्रतीक कहा है। यह भारतीय दृष्टि से शान्तिदायिनी, सेवादायिनी, भक्ति, श्रद्धा, प्रेम, सेवा और समानता की प्रतीक है। वेद में इसके सहज स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि यह शुद्ध आचार के प्रकाश से सुशोभित, प्रातःकाल के समान हृदय को पवित्र करनेवाली, उत्तम यशोयुक्त, नित्य उत्तमकर्मकरनेवाली एवं सत्यव्यवहार करनेवाली है। [शुचि भ्राजा उषसो न वेदा यशस्वतीपपस्थुवो न सत्याः ऋ० १।७६।१] प्रसन्नता ही इसके जीवन का लक्ष्य है। वह अपनी सुकोमल भावनाओं से घर को बनाकर रखती है।

मनु ने स्त्री को पूजनीय कहा है। उसकी प्रसन्नता से सभी प्रसन्न रहते हैं, उसके दुःखी और अप्रसन्न होने से सभी शोकातुर रहते हैं। स्त्रियों की अप्रसन्नता से सम्पूर्ण कुल नष्ट हो जाता है। अपने कुल की मङ्गल कामना करनेवालों के लिये स्त्रियों की पूजा विशेष रूप से कही गयी है। जिस घर में इनका सम्मान नहीं होता है वहाँ की सभी क्रियायें निष्फल रहती है[1]। स्त्री जाति की अनन्य साधारण महिमा कही गई है। यह पुनः पुनः कहा गया गया है कि—न हन्तव्याः स्त्रियः इति। इस संस्कृति का आदर्श इतनी दूर तक व्याप्त था कि इसके फलस्वरूप स्त्री पशु के भी बध का निषेध किया गया है। स्त्री को सभी अवस्था में मर्यादा का पात्र समझा गया है। किसी भी स्थिति

---

१ स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥

मनु० ३।६२

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥

मनु० ३।५७

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

मनु० ३।५७

में उस पर कठोर व्यवहार करना भारतीय संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध कहा गया है। अन्यराष्ट्र में स्त्री जाति को मात्र भोग का साधन माना गया है। अतः वहाँ स्त्री-जाति को मात्र भोग्यरूप से देखना एवं इसके प्रति कृत्रिम शिष्टाचार प्रदर्शन करने का नियम है। क्रिश्चियन एवं मुसलमान जब परराष्ट्र पर आक्रमणकर उस राष्ट्र को अपने अधिकार में करते हैं। तब ये परस्त्री के साथ दुर्व्यवहार करते हैं इसका उदाहरण भारत का इतिहास आज भी वहन कर रहा है। युद्ध के समय मुसलमान आदि सैनिकों को यह प्रेरणा देते हैं कि विजित राज्य की स्त्रियाँ तुम्हारे लिए भोग्य हो जायगी। किन्तु भारतीय संस्कृति सर्वथा इसके विपरीत है। महाभारत में कहा गया है कि विजय की इच्छा रखनेवाले राजा की सेना जब शत्रु राजा के प्रति अभियान करती थी उस समय सेनाओं को शपथ ग्रहण करना पड़ता था कि—'नार्यो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः' इस प्रकार युद्धभूमि में भी भारतीय सैनिकों का नारी के प्रति अनुशासन उपलब्ध होता है।

महाभारत और रामायण जैसे महान् ग्रन्थ आज भी स्त्री-जाति के प्रति अपमान करने से उसका प्रतिविधान कितना भयङ्कर होता है—इसी का साक्ष्य वहन कर रहे हैं।

स्त्रीजाति का पातिव्रत्य

भारतीय नारी अपने आचार के परिपालन में बहुत ही कठोर होती है। ये मन, वाणी और कर्म से कभी भी पति के प्रतिकूल आचरण नहीं करती हैं। स्त्री और श्री ये दोनों गृह की दीप्ति एवं पूजनीय हैं। पति के प्रति पत्नी का कर्तव्य उसका सतीत्व ही है। पातिव्रत्य का पाठ सभी वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। स्त्री जाति के पातिव्रत्य पालने में त्याग और तपस्या को देखकर यही कहना पड़ता है कि ऐसी संस्कृति अन्यत्र नहीं है। सतत देवता के समान पति की पूजा करना भारतीय नारी का परम कर्तव्य है।

इस प्रकार यहाँ पत्नी के हृदय में पति के प्रति आदर और प्रेम अनिवार्य ही है। पति ही एक मात्र गुरु और देवता है। इस पातिव्रत्य का अनन्य-साधारण महत्त्व देखकर अन्य धर्मावलम्बियों ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। भारतीय संस्कृति का एक प्रधान अंश स्त्री जाति का अपने पति के प्रति कर्तव्य पालन है। पत्नी का यह आदर्श जीवन सर्वथा भारतीयों की अपूर्व देन है। मृत स्वामी के साथ ज्वलन्त वह्नि में आत्म-विसर्जन कितनी बड़ी निष्ठा एवं त्याग का उदाहरण है। विदेशियों ने भी यह देखकर कितनी-बार विस्मित होकर उनकी प्रशंसा की है। अमीर खुसरो ने सती-दाह केसम्बन्ध में अतिशय पवित्र भावना व्यक्त की है।

निस्वत सती से नादो पतङ्ग के ताँसे
इसमें और उसमें इलाका हि काँहि।
वह आग में जल मरति है मूर्दे के लिए
वह बुझि शमा के गिर्द फिरता भी नहीं॥

प्रज्वलित अग्नि में पड़कर राख होते हैं ऐसे पतङ्गों का अभाव नहीं है, किन्तु इनकी सती से तुलना नहीं है, कारण, नारी के लिए आग्रह की वस्तु पति है, किन्तु, पति के मरने पर भी चिता में प्राण त्याग करती है। पतङ्ग जलती दीपशिखा के साथ प्राण त्याग करते हैं, किन्तु, बुझने पर उसके पास नहीं जाते हैं।

संगीत

संगीत की परम्परा वैदिक युग से ही आरम्भ होती है। भारतीय संस्कृति में इसका सम्बन्ध भी धर्म से ही माना जाता है। नटराज ही इसके अधिष्ठातृ देव माने गये हैं। भगवान् नटराज के किसी नृत्य के छन्द से यह जगत् कमल के समान विकसित हो रहा है एवं उन्हीं के ताण्डव से इसका लय भी होता है। नृत्य एवं संगीत के व्यावहारिक पक्ष को छोड़ कर इसमें एक आध्यात्मिकरूप भी वर्तमान है, जिसकी अभिव्यक्ति इस पद्य के द्वारा हो रही है—

गीतज्ञो यदि योगेन नाप्नुयात्परमं पदम्
रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते।

गीत यह नाद विद्या है। यह योग रूप चित्तवृत्ति के निरोध की धरा पर अवस्थित है। इसका आरम्भ सामवेद से हो रहा है। सामभ्यो गीतमेव च इस नादसूत्र के कथन से इस अर्थ की अभिव्यक्ति हो रही है। गीत शास्त्र वाद्य नृत्य का समूहरूप है। संगीत रत्नाकर में कहा है कि—नृत्य वाद्य का अनुगामी है और वाद्य गीत का अनुसरण करता है। अतः, गीत की प्रधानता है और इसके अनुगामी की अप्रधानता है

नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च।
अतो गीतं प्रधानत्वादन्तादावभिधीयते॥ सं०र० २०

गीत की परिसमाप्ति नाद में होती है। कारण, गीत श्रुतिमूलक है और श्रुति नाद से उद्भूत है। परम कारुणिक भगवान् भरत ने चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति का सुखोपाय सकलजनहित साधन संगीत को ही कहा है[1]। मैंने तो पूर्व में ही कहा है कि यहाँ के सभी विषयों में अन्तःसलिला सरस्वती के रूप में धर्म प्रवहमान है।

नाद से परे भगवती भारती भी कुछ नहीं जानती है इसलिए आज भी वीणा अपने साथ धारण करती है—

नादाब्धेरपरं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनाद् भीता तुम्बीं वहति वक्षसि॥

सङ्गीतमुक्तावली में सङ्गीत का फल प्रदर्शन करते हुए कहा है कि संगीत ही एक ऐसा योग है, जिसकी साधना से सुखपूर्वक चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति कर सकता है। शिव, विष्णु आदि की संगीतात्मक स्तुति द्वारा धर्म की प्राप्ति, राज-सभा में संगीत के अनुष्ठान से अर्थ और काम की प्राप्ति और निष्काम अनुष्ठान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।[2]

सङ्गीत का स्वरूप विवेचन करते हुए कहा है—कि गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों को सङ्गीत कहा जाता है। 'गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते' (सं० मु०) इतना ही नहीं भारतीय परम्परा में सङ्गीत और काव्य को इतना उच्चतम स्थान प्राप्त है कि इससे परे किसी को स्वीकार ही नहीं किया है। काव्यालाप और गीत ये शब्द-मूर्त्यात्मक विष्णु के अंश है।[3]

---

१ अथ परमकारुणिको भगवान् भरतमुनिः सकलजनावलिं कलिकलुषकुण्ठितधियमवलोक्य परमसुकृतैकलभ्यं चतुर्वर्गमनायासेन लब्धुं सुखोपायमेव सकलजनहिताय संगीतमाह।

२ हरीशादेः स्तुतौ धर्मो धनकामौ नृपादितः
निष्कामं तदनुष्ठानाद् मोक्षस्तस्मात्तदभ्यसेत्॥ सं० मु० ५

३ काव्यालापाश्च ये केचिद् गीतकान्यखिलानि च।
शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशाः महात्मनः॥ सं० मु० प्र० ६

मैंने पूर्व में ही बताया था कि सङ्गीत के द्वारा नादात्मक ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। नाद के बिना सङ्गीत संभव ही नहीं है। गीत कोविदों को नाद की ही साधना करनी पड़ती है। नाद के बिना न तो गीत, न स्वर है और न राग है इसलिए विश्व में नादात्मक ब्रह्म ओत-प्रोत है। नाद से ही सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति होती है। यह पूर्व में ही कहा गया है कि यहाँ सवत्र भेद में अभेद है। काल-शक्ति का आश्रयण कर ही इस विश्व का भेद भासमान हो रहा है। जन्म स्थिति आदि जो विकार है ये भावात्मक विकार हैं, वास्तविक विकार नहीं है। नाद चार प्रकार के हैं। शिव जब शक्ति के साथ युक्त होते हैं तभी विश्व का उन्मीलन होता है यह आगमाचार्यों की प्रक्रिया है। वायु और अग्नि के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है। नादरूपा पराशक्ति है नादरूप ही महेश्वर है। यही ब्रह्म का स्थान और ब्रह्मग्रन्थि है। इसी के मध्य में वायु स्थित है। प्राण से अग्नि की उत्पत्ति होती है एवं वह्नि और वायु के संयोग से ही नादात्मिका सृष्टि होती है[१]। इसी नाद से बिन्दु की उत्पत्ति और इस बिन्दु से सभी वाङ्मयसृष्टि होती है। श्रुति आदि के द्वारा आत्मा में एकाग्रता लाने से भोग और मोक्ष दोनों ही करतलस्थ हैं। अतिसूक्ष्मनाद परा है। यद्यपि सङ्गीतरत्नाकर में परा से बिन्दुरूपी नाद की उत्पत्ति कही गई है। इसका प्रधान कारण यह है कि आगम में और भर्तृहरि एव सङ्गीतरत्नाकर की प्रक्रिया में कुछ क्रमभेद है हरि ने परा न मानकर पश्यन्ती से ही वाणी का निरूपण किया है। वे बिन्दुरूपिणी और पश्यन्ती में अभेद मानते हैं। नागेश आदि ने आगम के अनुसार परा के साथ बिन्दुरूपिणी वाणी का अभेद सिद्ध किया है और नादब्रह्म-

---

१ नादरूपा परा शक्तिः नादरूपो महेश्वरः।
यदुक्त ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मग्रन्थिश्च यः स्मृतः ॥
तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणाद्वह्निसमुद्भवः।
वह्निमारुतसंयोगान्नादस्समुपजायते ॥

भरतको० पृ० ३२४

वादी सङ्गीतरत्नाकर आदि ने अतिसूक्ष्म और सूक्ष्म के आधार पर नाद का परा और बिन्दु के रूप में दो भेद किया है। परन्तु मूलाधार में स्थित पवन से संस्कृत स्पन्दशून्या बिन्दुरूपिणी वाणी को परा वाणी कहा है। दोनों ही सूक्ष्म हैं, अतः, बुद्धि से अग्राह्य हैं। मूलाधार से उत्थित वायु ही कार्य करती है--इसमें दोनों मत समान है। ये दोनों असम्प्रज्ञात अवस्थामें योगियों से ही निर्ग्राह्य हैं। सङ्गीतरत्नाकर में कहा है कि चतुर्दलात्मक आधाराख्य चक्र है उस आधार-पङ्कज में कुण्डलिनी रूप ब्रह्म शक्ति है।[1]

सभी ज्ञानों का आधार यही नादात्मक शब्द है इसके बिना कोई भी ज्ञान सम्भव नहीं है। इस विश्लेषण से मुझे यही सिद्ध करना है कि सङ्गीत में एक नाद सर्वत्र विराजमान है। इसका क्रम प्रदर्शन करते हुए कहा है कि नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से मूर्च्छना, मूर्च्छना से तान और तान से ग्राम की उत्पत्ति होती है। सङ्गीत की यह आध्यात्मिक एकता विदेशीय-सङ्गीत में सर्वथा दुर्लभ है। शुद्ध चैतन्य से एकतानता की स्थिति भारतीय-सङ्गीत में ही सम्भव है, क्योंकि यह सामवेद की तरह सनातन है।

सङ्गीत की साधना से हरिदास, मीरा, विद्यापति आदि कितने साधकों ने आनन्द की अनुभूति करते हुए उस असीम चैतन्य शक्ति को अपने में अवरुद्ध करके रखा था जिसका साक्ष्य आज भी मेरी संस्कृति का इतिवृत्ति है। नाद की शक्ति असीम है, इसीलिए नाद के साधकों के लिए शब्दार्थ का सहभाव रहता है। जल और तरङ्ग के समान नाद साधक के शब्द और अर्थ में अभिन्न रहता है।

वृष्टि और शोषण की प्रक्रिया इनके नाद से ही नियन्त्रित रहती है। मेघराग और दीपकरागादि इसके उदाहरण के रूप में लिए जा सकते हैं। यही भारतीय संस्कृति की भेद में अभेद-साधना है।

---

१ गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधाराख्यं चतुर्दलम्।
अस्ति कुण्डलिनी ब्रह्मशक्तिराधारपङ्कजे॥

सं२०० २०।१।२।१८६.

लोकरञ्जन एवं आत्मरञ्जन तो इसका सामान्य फल है। हृत्तन्त्री को झंकृत करने की शक्ति यहाँ की संगीत-साधना की देन है। अतीतकाल में सङ्गीत-साधना का चमत्कार अद्भुत रहा है। सङ्गीत द्वारा असाध्य रोगों की चिकित्सा प्रसिद्ध रही है।

इतना अवश्य सत्य है कि यहाँ की सभी साधनायें अधिकारी और अवसर की सीमा से आबद्ध हैं। विद्याध्ययनकाल एवं विशिष्ट व्रतादिकाल में विद्यार्थी, स्नातक एवं साधकों को सङ्गीत सुनना एवं उसमें भाग लेना वर्जित है। इसके विपरीत उचित अवसरों पर देवोत्सव, महाव्रत आदि के समय इसका वर्जन नहीं है।

सङ्गीत पारुष्य की अभिवृद्धि के साथ आनन्द का मधुर कोश बिखेर देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज में सङ्गीत का आदर एवं प्रचार आरम्भ से ही रहा है। धार्मिक कृत्यों में एवं आगे चलकर सामाजिक उत्सवों, मन्दिरों में पूजा के अवसरों पर इसका उपयोग होता रहता है। इस प्रकार सङ्गीत का शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक महत्त्व सर्वत्र वर्णित है।

वास्तु एवं स्थापत्य कला:—

यह कला चित्तवृत्ति की सम्पादिका सत्य शिव का साक्षात्कार कराने में समर्थ होती है। गुण और सौन्दर्य सूक्ष्म और अमूर्त है, परन्तु, जिन सामग्रियों का कलाकार उपयोग करता है, वे भौतिक एवं स्थूल हैं। सामग्री की स्थूलता के तारतम्य से कलाओं में भेद होता है। वास्तुकार को ही ईंट, पत्थर जैसी ठोस सामग्री से काम लेना पड़ता है साथ ही उसकी उपयोगिता एवं शास्त्र पर भी ध्यान रखना पड़ता है। घर बनाते समय रहने वालों मात्र की सुविधा पर ही ध्यान देता है। परन्तु, मन्दिर, समाधिगृह के निर्माण के समय रागात्मिका चित्तवृत्ति को उद्बुद्ध करना और उस चित्तवृत्ति में करुणा आदि का संचार करते हुए अपने उपास्यदेव के रूप

में इनको चित्तवृत्ति को आकार ग्रहण करने की क्षमता प्रदान करना है। और उसी कलाकार को श्मशान के चैत्यों के निर्माण में वैराग्य और असङ्ग का पाठ पढ़ाना है। रति, हास्य आदि वृत्तियों को उद्बुद्ध कर उसमें उन पाषाणों के द्वारा गुण और स्वरूप की तन्मयता के द्वारा तदाकारता का ग्रहण करता है। ये सामग्रियाँ कुछ स्थूल हैं। इनके द्वारा किसी महापुरुष के स्वरूप से उनके गुणों को अपने में लाना है।

चित्रकार की सामग्री सूक्ष्म है। इसकी अपेक्षा कवियों की सृष्टि और भी सूक्ष्म है। कवि शब्द के द्वारा ही चित्तवृत्ति का उद्बोध कर आर्द्रता सम्पन्न कराकर भगवद्रूपता की प्राप्ति का साधक होता है। चित्त की द्रवता रूप चित्तवृत्ति को उस ओर तन्मय करना है जो परमानन्द स्वरूप है। काव्य के द्वारा तन्मयी-भवनयोग्यता रहने पर द्रवित चित्त भगवदाकार को ग्रहण कर सर्वत्र लाक्षा में मिलाए गये रंग के समान सर्वत्र उसी को देखता चलता है। भक्ति का अभिप्राय ही मन की चित्तवृत्ति को अनवच्छिन्न तैलधारा के समान प्रवाहित कर सम्प्रज्ञात से असम्प्रज्ञात की ओर जाना है। निरतिशय सौन्दर्य ही इसका साधक होता है और इससे विषय के प्रति अनासक्ति स्वतः होती है।

भारतवर्ष की संस्कृति के अङ्गरूप में जो कारु शिल्प एवं स्थापत्य विद्या का प्रकर्ष देखने में आता है उसका भी पर्यवसान धर्म में ही है। कारण, भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्त में देवमन्दिर एवं विभिन्न प्रकार के देव-देवियों की जो मूर्त्तियाँ पाई जाती हैं, वह एक तरफ जैसे स्थापत्य कला के श्रेष्ठ रूप में परिगणित होने के योग्य है वैसे ही उसके माध्यम से भारतीय जन साधारण की निसर्गतः धार्मिक मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत में देवमन्दिर आदि के माध्यम से जो असाधारण स्थापत्य विद्या का निदर्शन मिल रहा है उसकी तुलना पृथिवी में अन्यत्र दुर्लभ है। यह सभी को परिज्ञान है कि ताजमहल एक असाधारण

स्थापत्य कला का निदर्शन है। परन्तु यह व्यावहारिक जगत् का पति पत्नी के प्रति जो प्रेम है उसीका दृष्टान्त वहन कर रहा है। परन्तु भारतीय रूप ने, इससे भिन्न जगन्नाथदेव के मन्दिर या मदुरा के मीनाक्षी मन्दिर के निर्माण द्वारा यही घोषित किया है कि पार्थिव जगत् की वस्तु सर्वथा नश्वर है। उसे चिरस्थायी करने की अपेक्षा सदा देव देवियों की महिमा जागरुक रखने के लिए प्रयास करना अधिक कल्याणप्रद है।

किसी किसी ने प्रश्न किया है कि भारतीय भिन्न-भिन्न स्थानों में निर्मित अनेक मन्दिरों में नरनारी के यौन-सम्भोग का चित्र भी प्रस्थर गाथा में उत्कीर्ण किया गया है। अगर भारतवर्ष की संस्कृति कर्म पर ही प्रतिष्ठित है तब देव मन्दिर में इन चित्रों को स्थान क्यों दिया गया है? इसका समाधान भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य पर ध्यान देने से ही स्पष्ट हो जायगा। जो भी व्यक्ति, देव दर्शन के लिए देव मन्दिर में गये हैं उन्हें ये कामकला के चित्र यही निर्देश कर रहे हैं कि व्यावहारिक जगत् के जो विषय हैं उस पर तुम यदि आबद्ध हो जाओगे तब इस चित्र पर ही दृष्टि निबद्ध कर के इस स्थान से प्रतिनिवृत्त होना पड़ेगा। यदि इनसे चित्रकला की अभिव्यंजना मिल रही है तो उसकी उपेक्षा कर सकते हो। तभी देवालय के आभ्यन्तर में विराजमान आनन्द की मूर्ति के साक्षात्कार में तुम समर्थ हो जाओगे। व्यावहारिक जगत् का जो रूप है यह मन्दिर के बाह्य आवरण में स्थापित होकर यही इंगित करता है कि व्यावहारिक जगत् सुख-विषय का अतिक्रमण करके ही मनुष्य अखण्डानन्द स्वरूप भगवान् का दर्शन लाभ कर सकता है।

सहिष्णुता

भारतीय संस्कृति का एक विशेष अङ्ग है परधर्म एवं परमत सहिष्णुता। परमत और परधर्म सहिष्णुता का आदर्श विभिन्न धर्मावलम्बियों के मत में भी सुनने में आता है। पर इसका वास्तव प्रयोग इतिहास में

देखने को नहीं मिलता है। परमत एवं परधर्म की असहिष्णुता कितनी प्रबल है यह वर्तमान अरब एवं इजराइल के युद्ध से स्फुट है। अरब राष्ट्र, भिन्न जाति एवं भिन्न धर्मावलम्बी होने के कारण ही यहूदी जाति का सम्पूर्ण रूप से उच्छेद करने के लिए बद्ध परिकर है। इस प्रकार भिन्न धर्मावलम्बियों के उच्छेदन करने की प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति में सर्वथा अज्ञात विषय है। यह मैंने पूर्व में ही कहा है कि इस असहिष्णुता के कारण भारत को छोड़ कर एसिया, यूरोप, अमेरिका प्रभृति देशों में भिन्न धर्मावलम्बियों का निरापद रूप से वास करना भी असम्भव है। भारतवर्ष में भी वर्तमान काल में दूसरे के मत आदि की असहिष्णुता अवसर-अवसर पर प्रकट होती है, किन्तु यह भारतीय नहीं सर्वथा अभारतीय है। यहाँ की संस्कृति की आधार-शिला प्रेम, मैत्री, कृपा एवं उपेक्षा है।

मनु के अनुशासन के उल्लेख से ही यह स्पष्ट है कि स्वयं दुःखित होने पर भी दूसरे को दुःख न दें, दूसरे की हानि करने का विचार न करे और जिस वचन से किसी को कष्ट हो इस तरह के स्वर्ग की प्राप्ति के बाधक वचन नहीं कहे गये हैं। धर्म चाहने वाला व्यक्ति मधुरवाणी का प्रयोग करे। अपमान सहन कर भी सुख का ही अनुभव करे।

"वाक्यैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता"

अपमानित होने पर भी क्षमा करने वाला मनुष्य सुखपूर्वक सोता है तथा सुखपूर्वक इस भूतल पर विचरण करता है और अपमान करने वाला मनुष्य उस पाप से नष्ट हो जाता है। प्राणिमात्र से वैर-भाव का त्याग नितान्त आवश्यक माना गया है। मर्यादा से बाहर भी किसी से कही हुई बात को सहन करे, किसी का अपमान न करे और इस नश्वर शरीर को धारण कर किसी के साथ वैर न करे। क्रोध से युक्त भी किसी के ऊपर स्वयं क्रोध न करे। किसी के द्वारा अपनी निन्दा की जाने पर भी उससे मधुर-निन्दा-रहित वाणी कहे और सप्त द्वारों से निकली हुई व्यर्थ वाणी को न कहे।

ब्रह्म के ध्यान में लीन योगासन में बैठा हुआ, किसी की अपेक्षा से रहित, विषयोपभोग की कामना से रहित और शरीर मात्र सहायक से युक्त सुख चाहने वाला इस संसार में विचरण करे। न मिलने पर विषाद और मिलने पर हर्ष न करे। इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से रोकने से राग और द्वेष से और किसी प्रकार भी पीड़ा न पहुँचने से अमरत्व की प्राप्ति करता है। इस प्रकार के विश्लेषण से यह सिद्ध है कि भारतीय-संस्कृति में सहिष्णुता का मुख्यतम स्थान है।

भेद में अभेद

भारतीय संस्कृति का एक प्रधान विषय है भेद में अभेद दर्शन। अनेक में एक का अनुसन्धान। यहाँ भेद भ्रांति के निवारणार्थ तथा सभी प्राणियों में आत्मीय भाव के जागरण के हेतु सत्कामना सनातन से सर्वविदित है। वेद मन्त्रों से लेकर आज के सन्त साहित्यों में भेद-भाव को हटा कर पर-दुख-दुःखी और पर सुखी होने का जो उच्च आदर्श स्थापित किया जा चुका है वह विश्व की अन्य संस्कृतियों में उतना अधिक पनप नहीं सका। भिन्न-भिन्न काल में शक, हूण, पठान, मोगल, अंग्रेज आदि पर-राज्य-लोलुप जातियों ने यहाँ आक्रमण कर भारतीय संस्कृति पर प्रचण्ड आघात किया। किन्तु हिन्दू जाति ने इस विजेतृ विदेशिवृन्द के साथ अपना भेद मिटाकर सदा एक ही सूत्र के द्वारा बाँधने का प्रयास किया। यह सामान्य विषय नहीं है कि विजेतृ विभिन्न धर्मावलम्बियों की अपनी जो संस्कृति अर्थात् हिन्दू जाति के प्रति बर्बरता, उसको भी अपनी सहिष्णुता के द्वारा अपने साथ अभिन्न करने का साध्यानुसार प्रयास किया है। इस प्रसङ्ग में शाकद्वीपीय ब्राह्मण एवं स्व० महात्मा गान्धी के मुसलमानों के प्रति सौहार्दभाव विश्व के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों से अङ्कित है। खेद है कि यह प्रयास पूर्णरूप से सफल न हो सका जिसका मूल कारण यह था कि विदेशी आक्रमणकारियों का लक्ष्य था कि हिन्दू जाति को धर्मान्तरित करना एवं जो धर्मान्तरित नहीं होना चाहते थे

उनका सर्वथा उच्छेद कर अपने अधिकार में अन्तर्भुक्त करना। परिणामस्वरूप हिन्दू जाति के द्वारा भेद में अभेद स्थापित करने का निरन्तर प्रयास रहने पर भी मुसलमान एवं क्रिश्चियन जाति को अपने समाज का अङ्ग नहीं बना सके। यह प्रयास इस समय भी भारतवर्ष में चल रहा है। यह दूरदर्शिता है या अदूरदर्शिता यह अवान्तर प्रश्न है क्योंकि हिन्दू जाति की संस्कृति ही ऐसी है कि वह सभी को अपना अंग बनाने या अभेद मानने का सतत प्रयास करती ही है।

ऐहिक सम्पद् के प्रति उपेक्षा

भारतीय संस्कृति का मूल आधार याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी के मुख से उच्चरित हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषद् के द्वितीय और चतुर्थ ब्राह्मण में दो बार "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इस मैत्रेयी ब्राह्मण को कहा गया है। इस मैत्रेयी ब्राह्मण के उपदेश का अवलम्बन कर भारत के सभी दार्शनिकों ने आत्मा से अतिरिक्त सभी वस्तुओं को हेय और आत्मतत्त्व को परम उपादेय कहा है। आत्मतत्त्व-विवेक में कहा है कि मैत्री यह मैत्रेयी ब्राह्मण का सारतम उपदेश भारतीय दर्शन का सार निर्यास है। इसमें भारतीय जनता का जीवन प्रवाह एवं आशा आकांक्षा पर्यवसित होती है। इस ब्राह्मण में कहा गया है कि यही अमृतत्व है। अपनी प्रियतमा मैत्रेयी को यह उपदेश देकर याज्ञवल्क्य ने सन्यास ग्रहण किया था। न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य के व्याख्यान में रघुनाथ शिरोमणि ने कहा है कि—चरम वेदान्त में जो कहा गया है इससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। शुद्ध स्वप्रकाशचित्स्वरूप ब्रह्मप्रतिपादक वेदान्तानामुपसंहारः प्रतिपाद्यान्तरविरहात् (वा० भा० व्या० ४।३।२९) मैत्रेयी ने कहा था कि भगवन् यदि सम्पूर्ण पृथिवी धन से परिपूर्ण मुझे मिलजाय तो इससे क्या अमरत्व की प्राप्ति हो सकती है? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि संसार में अनेक साधनों के रहने से जैसा जीवन व्यतीत होता है वैसा ही तुम्हारा भी जीवन

व्यतीत होगा-किन्तु अमरत्व की प्राप्ति इससे नहीं हो सकती है। स्वामी के लिए स्वामी प्रिय नहीं होता है अपने लिये स्वामी प्रिय होता है। जो भी वस्तु प्रिय लगती है वह उस वस्तु के लिए नहीं वरन आत्मा के लिए प्रिय होती है। अतः, आत्मा का ही श्रवण मनन करना चाहिए।

यहाँ की संस्कृति का स्वरूप निरूपण 'ईशावास्यमिदं' इस मन्त्र से ही होता है। सर्वत्र ईश्वर की भावना ही मुख्य रूप से रहती है। अतः, किसी मिथ्यावस्तु अर्थात् पर की वस्तु की आकांक्षा न करे। भारतीय संस्कृति करुणा प्रेम और त्याग का मूर्तिमान स्वरूप है। विश्व के क्षणिक और दिखावटी सुख को एक भयंकर चिरस्थायी सी वेदना पर टिका मानता है। जगत् की कृत्रिम स्मित रेखा के नीचे आधि, व्याधि, जरा और मरण की भीषण व्यथा का उपहास निहित है। अतः, इसकी कामना न कर शाश्वत आत्म के प्रति ही कामना है और बन्धन के कारण भौतिक भोग के प्रति अनासक्ति है।

भारतीय संस्कृति और पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति, धर्मार्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की अविरोध में जो सेवा है उसी की परिसमाप्ति है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष ये ही भारतीय मनुष्य जीवन के लक्ष्य हैं। इन में मोक्ष, चरम एवं परम लक्ष्य है। परन्तु गार्हस्थ्य-जीवन-यापन करनेवाले को धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का इस प्रकार अनुवर्तन करना चाहिए; जिससे इनमें से किसी एक का प्राधान्य नहीं हो जाय। धर्मादि का अविरोध में जो अनुवर्तन है, इसका व्यावहारिक जगत् में भी असाधारण महत्त्व है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। वर्तमान समय में पृथिवी पर जितने भिन्न राजनैतिक मतवाद उद्भूत हुये हैं उनका मूल यही है कि अर्थ एवं काम के विभाजन में, समाज में रहने वाले किस श्रेणी के वर्ग का अधिक अधिकार रहेगा—कामिनी एवं काञ्चन के विभाजन का प्रश्न लेकर ही विभिन्न राजनैतिक मतवादों का उत्थान हुआ है। इसके कारण जब एक श्रेणी दूसरे से प्रबल

होगयी तो दूसरे के उच्छेद में प्रवृत्त होगई। इसी नीति को साक्ष्य के रूप में आज भी भारतीयसंस्कृति वहन कर रही है। भारतवर्ष की परम्परा में जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को अविरोध रूप से परिपालन करने का नियम है, इसको स्वीकार किया जाता तो किसी को मतभेद का अवसर नहीं रहता और इतने राजनैतिक विवाद भी नहीं होते। भारतवर्ष की संस्कृति की विश्व संस्कृति के प्रति यही घोषणा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का भार-साम्य यथायथ रूप में ग्रहण कर मनुष्यों का जीवन नियन्त्रित होना चाहिए। इसमें जहाँ एक का आधिक्य होगा वहीं समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होगी। इसका ज्वलन्त उदाहरण एक तरफ बौद्ध धर्म एवं दूसरी तरफ राजनैतिक मतवाद हैं। बौद्धधर्म ने चार प्रकार के पुरुषार्थ रूप मनुष्य-जीवनादर्श को अस्वीकार कर मात्र धर्म को ही समधिक महत्त्व दिया था। फलस्वरूप भारतीय-समाज अतिशय दुर्बल हो गया। वर्तमान समय में पाश्चात्य जगत् का अन्धानुसरण कर अर्थ एवं काम को ही प्राधान्य दिया है। फलतः भारतवर्ष अतिशय दुर्बल एवं दुर्नीति का आकर हो गया है।

उपसंहार

भारतीय संस्कृति इतनी सुमहान् एवं सार्वभौम है कि इसको एक निबन्ध में निबद्ध करना किसी के लिये संभव नहीं है। धर्म एवं परलोक इन दोनों को भित्ति बनाकर भारतीय संस्कृति के सौध का निर्माण किया गया है। मनुष्य के लिए कल्याण कर विषय सत्य एवं सौन्दर्य का प्रतिफलन इस संस्कृति में पूर्ण रूपेण हुआ है। भारतीय संस्कृति चराचर विश्व का ईश्वर के ही शरीर रूप से अवलोकन करती है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीञ्च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन
सरित्समुद्रांश्च हरेश्शरीरं
यत्किञ्च न्यूनं प्रणमेदनन्यः।

ब्रह्मवाद के अनुसार सभी विश्व को ब्रह्म के साथ अभिन्न होने के कारण अभिन्न समझा जाता है। श्राद्धादि सभी धर्मानुष्ठान में यही चिन्ता सर्वप्रकार के विरोध को मिटाकर भारतीय संस्कृति ने एक अपूर्व महिमा का ख्यापन किया है। पिता-माता एवं गुरु के प्रति अनन्य साधारण भक्ति, सखा, बान्धव एवं भृत्य के प्रति यथोचित् सत्कार एवं समादर, यथासाध्य आश्रम धर्म का पालन, निरन्तर चार प्रकार के पुरुषार्थ का परस्पर अविरोध में अनुवर्तन, सर्वप्रकार के भेद एवं विरोध, अभेद एवं अविरोध प्रतिसन्धान सभी प्रकार कला-विधाओं का धर्म के अङ्गरूप में प्रतिष्ठान प्रभृति भारतीय संस्कृति का असाधारण वैशिष्ट्य एवं विश्व संस्कृति के प्रति सन्देश है। परस्पर सौहार्द्र, मैत्री, करुणा, परस्पर भ्रातृभाव एवं परम सहिष्णुता आदि भारतीय संस्कृति, विश्व संस्कृति के प्रति अपना सन्देश प्रदान कर रही है। सभी विषय में समन्वय कर लेना ही इसका प्रधान अङ्ग है। इसलिये भारतीय संस्कृति में सर्वत्र समन्वय ही मिलता है। ज्ञान कर्म एवं भक्ति का समन्वय, विभिन्न धर्मावलम्बियों में समन्वय, सामाजिक विभिन्न श्रेणियों के परस्पर स्वार्थ का समन्वय, विभिन्न राष्ट्र के साथ अपने पिता-पुत्र, पति-पत्नी के सम्बन्ध में समन्वयः इस प्रकार सर्वत्र समन्वय ही भारतीय संस्कृति का निर्यास है।

विदुषां विधेयः

जनवरी १९७३ महाप्रभुलाल गोस्वामी

प्रास्ताविकं किञ्चित्

नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन त्रिविधानि कर्माणि, तत्तत्कर्मविधायकत्वञ्च तत्तद्विधित्वम्। तत्र अनुष्ठाने चित्तशुद्ध्यतिरिक्तफलाजनकत्वे सति अनुष्ठाने प्रत्यवायजनकत्वं नित्यकर्मत्वम्। यथा यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति, अहरहः सन्ध्यामुपासीत इत्यादिकं वाक्यम्। नैमित्तिककर्मत्वञ्च अनुष्ठाने फलविशेषजनकत्वे सति अननुष्ठाने प्रत्यवायजनकत्वम्, यथा यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान्दहेत् सोऽग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् राहूपरागे स्नायात् इति च। काम्यकर्मत्वञ्च अनुष्ठाने प्रत्यवायाजनकत्वम्, यथा सौर्यं चरुं निर्वपेद् ब्रह्मवर्चसकामः उद्भिजा यजेत पशुकामः इत्यादिकं वाक्यम्। एतच्च शास्त्रम् वाक्यभेदेन तत्तद्विषयकशास्त्रोपप्लवात् पुनः प्रवर्त्तकम्। तथा च निमित्तसद्भावे स्वबोध्यार्थे आवश्यकप्रवृत्तिसम्पादकत्वम्। काम्यस्य च कर्मणः तत्फलेच्छाधीनतद्विषयकप्रवृत्तिसम्पादकशाब्दबोधजनकत्वम्। तत्र नैमित्तिकस्थले निमित्तप्राप्तेः क्रियाप्रवृत्तिसम्पादकतया यदा यदा यस्य प्राप्तिस्तदा तदा प्रवृत्तिः अन्यथा त्वनिष्टं स्यात्। वृद्धे समागते तस्य ह्यूर्ध्वम्प्राणा व्युत्क्रामन्ति, प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनः तान् प्रतिपद्यते इति दोषप्रतिपादकवाक्यात् तादृशी कल्पना भवति। एवं राहूपरागे स्नायात् इत्यादावपि तादृशी कल्पना अपरिहार्यैव। काम्येषु च कर्मसु कामनानामानन्त्यात् तत्सद्भावे पुनः पुनः प्रवृत्तिर्भवति। सा च यदा यदा तदा तत्कर्मणि प्रवृत्तिरिति न सकृदनुष्ठानम्। नित्यस्यानुष्ठाने प्रत्यवायानुत्पत्तिरेव फलम्। चैमिकमस्याः फलत्वम्। नैमित्तिके दोषपरिहारः काम्यं फलञ्च भवति। काम्ये च कामनाफलसिद्धिरिति।

तत्र नित्यनैमित्तिककाम्येषु कर्मसु मासस्य पक्षस्य तिथेश्च विशेषनिर्णयः कर्म

सम्पादनार्थं नितान्तमपेक्षितं भवति। एतन्निर्णयार्थं च लोकाचारः शिष्टव्यवहारः ज्योतिषधर्मशास्त्रादिविचारः आवश्यकः। अतः, तत्तद्देशेषु लोकाचारमनुरुध्य धर्मशास्त्रविचारकाणां प्रबन्धानां समयेसमये निर्माणं तत्तच्छास्त्रतत्त्वज्ञैः कृतमिति न तिरोहितं विदुषाम्। किमन्यत् सम्प्रदायानुरोधेनापि धर्मशास्त्राणां धर्मप्राणेऽस्मिन् देशे बाहुल्यमेव। मिथिलायां च मीमांसकानां बाहुल्यात् एतद्दृष्ट्या ग्रन्थनिर्माणस्यापि बाहुल्यं दृश्यते। तत्रापि च स्वच्छया कदाचितु राज्ञां निर्देशेन विशिष्टपण्डितानां धर्मशास्त्रग्रन्थनिर्माणाय प्रवृत्तिर्भवति अत्र च ये केचन नैयायिकाः मीमांसकादयः ते सर्व एव समये ग्रन्थं निर्माय स्वाभिप्रायमाविष्कृतवन्तः।

सत्स्वपि विविधेषु निबन्धेषु नातिशयप्राचीनोऽपि कृत्यसागरः मैथिलनिबन्धानुसारितिथिद्वैधनिर्णयादिविषयविभूषितत्वेन सर्वमनीषिमनोरमोऽयं तत्रभवतां पुरस्तादुपस्थाप्यते। इमं खलु सर्वतन्त्रापरतन्त्रप्रतिमस्य मिथिलामण्डलावयव 'नवानी' नामग्रामे वासिनो धर्मदत्तापराभिधस्य बच्चाशर्मणः पितामहः तीरभूक्तिवलयं शासतो महाराजाधिराजश्रीछत्रसिंहस्य सभास्तारः पण्डितरत्नपाणिशर्मा प्राणैषीत्।

यद्यपि कविशेखरमहोदयः एकोद्दिष्टसारिणीमङ्गलश्लोकस्य वैदेहाधिपसम्मदाय विविधग्रन्थावलोकी परा मेकोद्दिष्टविचारणां प्रकुरुते श्रीरत्नपाणिः सुधीः१। इत्यस्य वैदेहाधिपटीप्पण्यां वैदेहाधिपो महाराजश्रीरुद्रसिंहः इत्युक्तवान्। तथाप्येतस्य ग्रन्थस्य रचनां महाराजमाधवसिंहसूनोः छत्रसिंहस्याज्ञया कृतवान् इति स्वयमेव कथयति—

श्रीमत्खण्डबलाम्बुधिविधूराजर्षिकीर्तिः सदा।
श्रीमन्माधवसिंहभूपतिरभूत् धर्म्मावनेऽपि स्वभूः॥
राज्यं ज्येष्ठसुताय शास्त्रविधिना सर्वं समर्प्य स्वयम्।
काश्यामेत्य निजावसानसमये विश्वेशतेजो ययौ॥२॥
तत्सूनुर्द्विषदन्धकारतरणिः कल्पद्रुरभ्यर्थिनाम्।
राधाकृष्णपदारविन्दविलसत्प्रोद्यन्मनः षट्पदः॥
राजत्कीर्तिकलाकरो द्विजवरः प्रौढप्रतापोन्नतो।
वेदान्तैकविभावनो विजयते श्रीछत्रसिंहो नृपः॥३॥
तस्याज्ञां शिरसा निधाय चूडामणेर्भूभृता।
मुद्यत्कृत्यमहार्णवादिविविधग्रन्थं प्रमाणं ददत्॥

---

१ एकोद्दिष्टसारिणी। पृ० १

नत्वा पण्डितमण्डलीं हृदि मुहुर्ध्यायन् त्रिभास्यं विभुम्
कुर्वे सम्प्रति कृत्यसागरमहं श्रीरत्नपाणिः सुधीः१ ॥४॥

एतस्य विदुषः रचिताः ग्रन्थाः—

१ आचारसंग्रहः। २ पार्वणचन्द्रिका। ३ एकोद्दिष्टसारिणी। ४ व्रताचारः। ५ कृष्णार्चनचन्द्रिका। ६ रामचन्द्रप्रतिष्ठा। ७ सुबोधिनी। ८ मिथिलेशाह्निकम्। ९ मिथिलेशचरितम्। १० प्रायश्चित्तपारिजातः। ११ क्षयमासादिविवेकः। १२ नाडीपरीक्षादिचिकित्साकथनम्। १३ महादानवाक्यावली। १४ कृत्यसागरः। एतेषु सर्वेषु ग्रन्थेषु अयं 'कृत्यसागरः' विशिष्टः ग्रन्थः, यतः, अस्मिन् ग्रन्थे सर्वेषां धर्मशास्त्रीयविषयाणां विश्लेषणं वर्तते। एकेनैव निबन्धेन सर्वे सन्दिग्धाः विषयाः पूर्वपक्षादिनिर्देशपुरस्सरं व्यवस्थापिता इति।

२-२-७४ महाप्रभु गोस्वामी

---

१ कृत्यसागरः पृ० १

विषयानुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठसंख्याः
प्रस्तावना	१-३९
प्रास्ताविकम्	४०
मङ्गलाचरणम्	१
ग्रन्थनिर्माणकारणनिरूपणम्	१
विषयनिर्देशः	१
मासव्यवस्था	२-४
मलमासनिर्णयः	४
मलमासाधिमासयोरैक्यप्रतिपादनम्	५
अधिमासशब्दस्य लिङ्गनिर्णयः	५
मलमासे कर्तव्यकर्मणां त्याज्यकर्मणां च निर्देशः	६-१०
पक्षनिरूपणम्	१०-११
तिथिनिरूपणम	११
तिथिभेदनिरूपणम्	१६
तिथिवेधनिरूपणम्	१७
तिथिक्षयवृद्ध्योर्निरूपणम्	१८
व्रतसामान्यधर्मनिरूपणम्	१९
संकल्पावश्यकत्वनिरूपणम्	१९
संकल्पे मासपक्षादेरुल्लेखावश्यकत्वम्	२०
व्रतारम्भानन्तरमशौचस्याप्रतिबन्धकत्वम्	२०
उपवासपदार्थनिरूपणम्	२०
व्रतभोगविशेषव्यवस्था	२१
व्रते दन्तधावननिषेधः तद्व्यवस्था च उपवासे त्याज्यविषयाः	२१

विषयाः	पृष्ठसङ्ख्या
उपवासे ब्राह्मणभोजनस्य प्रकृष्टफलत्वम्	२१
भर्तुरननुज्ञातायाः स्त्रियाः व्रतस्य नैष्फल्यप्रतिपादनम्	२१
गृहीतव्रताकरणे दोषप्रतिपादनम्	२१
व्रतच्युतौ प्रायश्चित्तप्रतिपादनम्	२१
प्रमादादिना व्रतपरित्यागे दोषाभावप्रतिपादनम्	२२
उपवासे व्रते शुक्लवस्त्रस्य प्राशस्त्यप्रतिपादनम्	२२
पारणव्यवस्था	२२
प्रतिबन्धकवशादुपवासासामर्थ्ये प्रातिनिध्येन व्रतसम्पादनव्यवस्था	२३
नारीणां रजोदर्शने व्रतव्यवस्था	२४
उपवासिनां नियमव्यवस्था	२४
ऋतुस्नातायाः भार्यायाः अनुपगमने दोषः	२५
नक्तनिर्णयः	२५
सन्ध्यायां वर्जितकर्म्माणि	२६
नक्तभोजिनां कर्माणि	२६
हविष्यान्नम्	२६
मण्डलव्रतम्	३०
नवरात्रतिथेः निर्णयः	३१
रात्रौ कलशस्थापननिषेधः	३१
कार्तिकशुक्लप्रतिपदि द्यूतविधिः	३२
तैलाभ्यङ्गस्य नित्यत्वम्	३२
गोपूजनतिथिव्यवस्था	३२
गोवर्द्धनपूजनदिवसे द्यूते जयलाभे संवत्सरं जयः	३३
गोमयेन गोवर्द्धनपूजनविधिः	३३
गोपूजनस्य प्रतिपत्कृत्यत्वव्यवस्था	३३-३४
शिवपार्वत्योः कार्तिकशुक्लपक्षप्रभाते द्यूतक्रीडायां पार्वतीजयं लेभे	३५
प्रतिपदादिषु निषिद्धवस्तूनि	३६
उपवासव्यवस्था	३७
तैलनिषेधे प्रतिप्रसवव्यवस्था	३७
तैलशब्देन तिलतैलस्यैव ग्रहणम्	३७

विषयाः	पृष्ठसंख्या
द्वितीयायाः कृत्यादिव्यवस्था	३७
उपवासे द्वितीयानिर्णयः	३८
आषाढशुक्लद्वितीयाकृत्यम्	३९
कार्तिकशुक्लद्वितीयानिर्णयः	३९
कार्तिकशुक्लद्वितीयायां यमुनास्नाने यमलोकगमनं न भवति	३९
कार्तिकशुक्लद्वितीयायां भ्रातृपूजनविधिः	४०
यमपूजनम्	४०
यमुनास्नानमन्त्रः	४०
भ्रातृपूजने वैधव्यनिवृत्तिः	४०
पुराणोक्तानि द्वितीयाकृत्यानि	४१
श्रावणशुक्लद्वितीयायामशून्यशयनव्रतविधिः	४२
तृतीया तत्कृत्यञ्च	४६
वैशाखतृतीयायां विष्णुदर्शनपुण्यम्	४६
वैशाखतृतीयाकृत्यं तत्फलञ्च	५०
भाद्रकृष्णतृतीयानिर्णयः	५२
श्रावणशुक्लतृतीयायां मधुश्रावणीव्रतनिर्णयः	५३
चतुर्थीनिर्णयः तत्कृत्यञ्च	५३
भाद्रशुक्लचतुर्थी तिथिनिर्णयः	५९
पञ्चमीतिथिनिर्णयः तत्कृत्यञ्च	६२
नागपञ्चमीतिथिनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	६३
नागपञ्चमीकृत्यम्	६४
माघशुक्लपक्षपञ्चमीकृत्यं तत्फलञ्च	६५
सारस्वतोत्सवः	६५
भाद्रशुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी तत्कृत्यव्यवस्था।	६५
नागपञ्चमीतिथिनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	६५
चैत्रशुक्लपञ्चमीकृत्यन्तत्फलञ्च	६६
श्रीपञ्चमीविधिः	६६
षष्ठीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	६७
सप्तमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	६९

विषयाः

माघशुक्लसप्तमीफलम्	७०
आरोग्यसप्तमीफलम्	७७
पुत्रफलकसप्तमीफलम्	७७
अष्टमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	७६
कृष्णाष्टमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	८०
पारणविचारः	९२
आश्विनकृष्णाष्टमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	९४
आश्विनकृष्णाष्टम्यां जीमूतवाहनपूजाविधिः	९५
आश्विनशुक्लाष्टमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	९५
भीष्माष्टमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	९८
अशोकाष्टमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	९८
शुक्लपक्षाष्टमीनिर्णयः	१००
दूर्वाष्टमीनिर्णयः तत्कृत्यञ्च	१०१
नवमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	१०३
रामनवमीकृत्यन्तत्फलञ्च	१०४
दशमीनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	११०
आश्विनशुक्लदशमीपूजनविधिः तत्फलञ्च	११४
एकादशीनिर्णयस्तत्कृत्यन्तत्फलञ्च	११६
एकादशीपारणनिर्णयः	१३३
द्वादशीनिर्णयस्तत्कृत्यन्तत्फलञ्च	१३८
त्रयोदशीनिर्णयस्तत्कृत्यन्तत्फलञ्च	१४२
चतुर्दशीनिर्णयस्तत्कृत्यन्तत्फलञ्च	१४६
शिवरात्रिव्रतनिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	१५०
शिवरात्रिपारणव्यवस्था	१५३
भाद्रशुक्लचतुर्दशीतत्कृत्यञ्च	१५६
अनन्तव्रतपूजाप्रकारः कथा च	१६२
वटस्याख्याचतुर्दशी	१७४
पूर्णिमानिर्णयः तत्कृत्यञ्च	१७६
कोजगरास्तुत्यम्	१७७

विषया:	पृष्ठसंख्या
अमावास्यानिर्णयस्तत्कृत्यञ्च	१७६
आषाढमासव्रतविधिः	१६४
आषाढीकृत्यम्	२०१
श्रावणमासविधिः	२०२
श्रावणीकृत्यम्	२०४
भाद्रमासविधिः	२०६
भाद्रीकृत्यम्	२१७
आश्विनमासकृत्यम्	२१७
आश्विनमासे देवीपूजनविधिः	२३२
महानवमीकृत्यम्	२४२
कुमारीपूजनव्यवस्था	२४७
चण्डीपाठविधिः	२५०
शतचण्डीविधिः	२५१
शारदीपूजाविधिः	२६३
कालिकापूजाविधिः	२६६
भवानीपूजाविधिः	२६६
दुर्गापूजाविधिः	२७०
सुभद्रापूजाविधिः	२७०
छागवलिविधिः	२७०
महिषघातनविधिः	२७१
खड्गपूजाविधिः	२७१
छुरिकापूजाविधिः	२७१
कट्टालकपूजाविधिः	२७२
धनुःपूजाविधिः	२७२
वाणपूजाविधिः	२७२
शूलपूजाविधिः	२७२
चर्मपूजाविधिः	२७३
कुन्तपूजाविधिः	२७३
शङ्खपूजाविधिः	२७३
छत्रपूजाविधिः	२७३
सिंहासनपूजाविधिः	२७३

विषयाः	पृष्ठसंख्या
कनकदण्डपूजाविधिः	२७४
दुन्दुभिपूजाविधिः	२७४
पताकापूजाविधिः	२७४
पाशपूजाविधिः	२७५
शिविकापूजाविधिः	२७५
ध्वजापूजाविधिः	२७५
अश्वपूजाविधिः	२७५
रेमन्तपूजाविधिः	२७६
गजपूजाविधिः	२७६
आश्विनशुक्लषष्ठीकृत्यम्	२७७
पत्रिकाप्रवेशविधिः	२७७
महाष्टमीपूजाविधिः	२७७
महानवमीकृत्यम्	२७७
देवीविसर्जनविधिः	२७७
अभिषेकविधिः	२७८
दशम्यामपराजितापूजाविधिः	२८१
हस्तार्के खञ्जनदर्शनफलम्	२८३
आश्विनपूर्णिमाकृत्यम्	२८७
कोजगराकृत्यम्	२८८
कार्तिकमासस्तत्कृत्यञ्च	२९१
कार्तिके प्रातःस्नानफलम्	३१२
मार्गशीर्षकृत्यम्	३१५
पौषकृत्यम्	३२१
माघकृत्यम्	३२६
हस्तमुहूर्तम्	३३१
माघस्नानफलम्	३३२

विषयाः	पृष्ठसंख्या
फाल्गुनमासस्तत्कृत्यञ्च	३३९
मलमासकृत्यम्	३४४
अनन्तव्रतोद्यापनविधिः	३५६
संक्रान्तिस्तत्कृत्यञ्च	३६८
जन्मदिनकृत्यम्	३८५
जन्मतिथिव्यवस्था	३९३
एकोद्दिष्टसारिणी	३९४

अथ कृत्यसागरः प्रारभ्यते

सिन्दूरारुण-विग्रहं निजकलां भाले दधानः करैः ।
वेदैरङ्कुश-पाश-कल्पलतिकादन्तानन्तो हि यः ॥
त्र्यक्षो-रक्षणदक्ष इक्षु-रतिभृत् वक्षो-बलद्धारकः ।
दान्तः सन्ततमस्तु दन्तिवदनो मच्छ्रेयसे विघ्नहृत् ॥१॥

श्रीमत्खण्डबलाकुलाम्बुधि-विधू राजर्षि-कीर्तिः सदा ।
श्रीमन्माधवसिंह-भूपतिरभूत् धर्म्मावनेऽपि स्वभूः ॥
राज्यं ज्येष्ठसुताय शास्त्रविधिना सर्वं समर्प्य स्वयम् ।
काश्यामेत्य निजावसान-समये विश्वेशतेजो ययौ ॥२॥

तत्सूनु-र्द्विषदन्धकार-तरणिः कल्पद्रुरभ्यर्थिनाम् ।
राधाकृष्णपदारविन्दविलसत्प्रोद्यन्मनः षट्पदः ॥
राजत्कीर्तिकलाकरो द्विजवरः प्रौढप्रतापोन्नतो ।
वेदान्तैकविभावनो विजयते श्रीछत्रसिंहो नृपः ॥३॥

तस्याज्ञां शिरसा निधाय सहसा चूड़ामणे-र्भूभृता- ।
मुद्यत्कृत्यमहार्णवादि-विविधग्रन्थं प्रमाणं ददत् ॥
नत्वा पण्डितमण्डलीं हृदिमुहुर्ध्यायन् त्रिभास्यं विभुम् ।
कुर्वे सम्प्रति कृत्यसागरमहं श्रीरत्नपाणिः कृती ॥४॥

मासस्यात्र विचारणं प्रथमतः पक्षस्य चातः परम् ।
सामान्यस्य तिथेर्विशेषविधिना तत्तत्तिथेस्तत्परः ॥
तत्तन्मासविशेषकृत्यकथनं स्वज्ञान-दृष्ट्याग्रतो ।
वक्ष्ये यन्मलमासकृत्यमपरं ज्ञेयं विधेयं कृतेः ॥५॥

अथ मासव्यवस्था सिद्धान्तशिरोमणौ यथा—

"मस्यन्ते परिमीयन्ते स्वकालाः वृद्धि-हानितः ।
मास एते स्मृता मासास्त्रिशत्तिथिसमन्विताः ॥" इति
सूर्य्यस्य राशिगतिर्यत्र परिमीयते स सौरो मासः ।
अहोरात्राणां त्रिंशत्संख्या परिमीयते यत्र स सावनो मासः ।

तदुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—

"चान्द्रः शुक्लादि-दर्शान्तः सावनस्त्रिंशता दिनैः ।
एकराशौ रविर्यावत्कालं मासः स भास्करः ॥"

तत्र सौरे मासस्याद्यन्तौ मेषादिराशीनामाद्यन्ताभ्यां व्यवस्थितौ । सावने तु पुरुषेच्छादिर्न्नियामकः ।

नाक्षत्रमपि मासं केचिदिच्छन्ति "सर्वर्क्षं परिवर्तैस्तु नाक्षत्रो मास उच्यते" इति विष्णुधर्मोत्तरवचनात् । तत्रापि सप्तविंशतिसंख्या परिमीयतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या मसशब्दो योजनीयः । तथा च नाक्षत्रे नक्षत्रमेव नियामकमवधेयम् ।

चान्द्रस्तु, दर्शान्तः पूर्णिमान्तो वेति द्विधा विकल्प्यते । तथा च श्रूयते—

"अमावास्यया मासान्सम्पाद्याहरुत्सृजन्ति, अमावास्यया हि मासान् सम्पश्यन्ति, पौर्णमास्या हि मासान् सम्पाद्याहरुत्सृजन्ति, पौर्णमास्या हि मासान् सम्पश्यन्ति ।" इति ।

यद्यपि ज्योतिश्शास्त्रेऽपि रत्नमालायाञ्चतुर्विधाः मासा उक्ताः, तथा हि—

"दर्शावधिं चान्द्रमुशन्ति चान्द्रं, सौरं तथा भास्करराशिचारात् ।
त्रिंशद्दिनं सावनसंज्ञमाहुर्न्नाक्षत्रमिन्दोर्भगणभ्रमाच्च" ॥

तथापि प्रचुरव्यवहारोपयोगी मासस्त्रिविधः । चान्द्रसावनसौरभेदात् ।

तथा च ज्योतिश्शास्त्रे—

"दर्शाद्दर्शश्चान्द्रः, त्रिंशद्दिवसस्तु सावनो मासः ।
रविसंक्रान्ति-सुचिह्नः, सौरोऽपि निगद्यते सद्भिः" ॥ इति

अथ भवत्वेवं व्यवहारोपयोगिनां मासानां शास्त्रप्रतिपादितं त्रैविध्यम् परन्तु विवाह-यज्ञ-नैधनादिभेदेन कर्मणां बाहुल्यात् कुत्र कुत्र कर्म्मणि कीदृशो मासः परिगृहीतव्य इति शङ्का समुदेत्यतः तदनुत्पत्तिर्यथा भवेत्तथाह तत्रैव—

"विवाहादौ स्मृतः सौरो, यज्ञादौ सावनो मतः ।
शेषे कर्म्मणि चान्द्रः स्यादेष मासविधिः स्मृतः" ॥ इति

त्रिंशद्भिर्दिवसैः सावनस्तथोक्तं प्राक् । स च सावनो मासोऽशौचशेषे श्राद्धादावुपयोगितामेति । अत्र मनुवचनमपि प्रमाणमायाति । तथा हि—

"शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन, द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन, शूद्रो मासेन शुद्ध्यति" ॥ इति

न च रात्रिमरणे सति कथं दशाहादिनिष्पत्तिरिति वाच्यम्, यस्याहस्तस्य शर्वरीति स्मृतेः । तथा च ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राणां चतुर्णां वर्णानां क्रमेण दशाह-द्वादशाह-पञ्चदशाह-मासैः शुद्धिरवगन्तव्या ।

न चात्र जननमरणयोरनिर्देशात् कुत्रेदं वचनं नेयमिति-संशय इति वाच्यम्, चातुर्वर्ण्यमृतकाशौचनियामकत्वेनास्य रुद्रधरोपाध्यायैर्लिखितत्वात् तथा पर्य्यवसानात् । न च जनने का गतिरिति शङ्कायामप्याह मनुः—जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ।

"सर्वेषां शावमाशौचं, मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
मातुर्वा सूतकं प्राहुरुपस्पृश्य पिता शुचिः" ॥ इति

अस्यार्थः जनने = जन्मन्यपि । एवमेव = मरणवदेव । अशौचं दशाहादिव्यापकं भवति । अत्रेदं बोध्यम्—जनने मरणवदस्पृश्यत्वं न सपिण्डानाम् । पिता तु कृतस्नानः शुचिः । अस्पृश्यत्वं मातुरेवेति ।

प्रकृतमनुसरामः । पक्षद्वयात्मकश्चान्द्रः । सोऽपि द्विधा । शुक्लादिः कृष्णादिश्च । तत्र शुक्लादिर्यथा—

"इन्द्राग्नी यत्र हूयेते, मासादिः स प्रकीर्तितः ॥
अग्नीसोमौ स्मृतौ मध्ये, समाप्तौ पितृसोमकौ ॥" इति

लघुहारीतवचनम् । अस्यार्थः । इन्द्राग्निदेवताको यागो यत्र स पक्षस्यादिः = शुक्लपक्षप्रतिपत् ॥ "प्रतिपदि दर्शः प्रवर्तते' इतिश्रुतेः । अग्नीसोमदेवताको यागो यत्र

स मास-मध्यः । पितृसोमदेवताको यागो यत्र स माससमाप्तिः । इति शुक्लादिश्चान्द्रः । एवञ्चान्द्रः कृष्णादिरपि । तदुक्तम् परिभाषायां देवीपुराणे—

"आश्विने चाथवा माघे, चैत्रे वा श्रावणेऽथवा ।
कृष्णादावथ-कर्तव्यं, व्रतं शुक्लावधि हरेः" ॥ इति

तथा । "अश्वयुक् कृष्णपक्षे तु श्राद्धं देयं दिने दिने" । इति ।

कदा आश्विनकृष्णपक्ष इत्याकांक्षायामाह-जातूकर्णः—

"आषाढी-मवधिं कृत्वा, यस्मात्पक्षस्तु पञ्चमः ।
अपरपक्षः स विज्ञेयः, कन्यां गच्छतु वा नवा ॥" इति

अनेन तदवधिक-पञ्चम-पक्षत्वेन आश्विनकृष्णपक्षस्य बोधः । स च कृष्णादिमासरीत्यैव निर्वहति । तत्र मानं ब्रह्मपुराणे—कृष्णपक्षकृत्यमभिधाय शुक्लपक्षकृत्यविधानम्, कृष्ण-पक्षादिरेव मास इति परिभाषालिखनञ्चेति । व्यवहारद्वैतनिर्णये जावालिरपि—

"आगते तु रवौ कन्यां, श्राद्धं कुर्वीत यत्नतः ।
आषाढ्याः पञ्चमः पक्षः, प्रशस्तः पितृकर्म्मसु ॥" इति

अत एवाश्विनापरपक्षः कृष्णादिरीत्यैवेति सिद्धम् । तथा च । शुक्लादिकृष्णादिमासयोर्द्वयो-रपि चान्द्रमासत्वं प्रमाणसिद्धमिति निष्कर्षः । इति शुद्धमासनिर्णयः समाप्तः ॥

[अथ मलमासनिर्णयः प्रारभ्यते]

शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तो यश्चान्द्रो मासः स यदि स्पष्टसूर्य्यगत्या संक्रान्तिविहीनश्चेत्तदा स एव मलमासः ॥ "चान्द्रोमासो ह्यसंक्रान्तो मलमासः प्रकीर्तित" इति ब्रह्मसिद्धा-न्तोक्तेः । स च षष्ठिदिनात्मकमासान्तर्गतः ।

"षष्ठ्या तद्दिवसैर्मासः, कथितो बादरायणैः ।
पूर्वमर्द्धं परित्यज्य, उत्तरार्द्धं प्रशस्यते ॥" इति

ज्योतिः शास्त्रान्तरे ॥ ज्योतिः पितामहोप्याह—

"षष्ठ्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः ।
पूर्वार्द्धं तु परित्यज्य कर्तव्या उत्तरे क्रिया: ॥" इति

अन्यत्रापि षष्टिदिनात्मकं मासं प्रकृत्योक्तम्—

"आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्रकृतः स्मृतः ॥" इति ॥

मलमास एवाधिमासः, अधिमास इत्यस्य अधिकमास इत्यर्थः। अधिकत्वं फलाधिक्यात्, तत एव मलत्वमपि ।

"मलं वदन्ति कालस्य मासं मासविदोऽधिकम् ॥"

नेहेत्तत्र विशेषेज्यामन्यत्रावश्यकाद्विधेरि" ति गृह्यपरिशिष्टोक्तेः । शुक्लादिमधिकृत्य हारीतोऽप्याह—

"तमतिक्रम्य तु रविर्यदा गच्छेत् कदाचन ।
आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो, द्वितीयः प्रकृतः स्मृतः ॥
तस्मिंस्तु प्रकृते मासि कुर्य्याच्छ्राद्धं यथाविधिः ।
तथैवाभ्युदयं काम्यं नित्यनैमित्तिकं सदा" ॥ इति

सोऽधिमासः कदा भवतीत्याह यमः—

"दिवसस्य हरत्यर्कः षष्टिभागमृतौ ततः ।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकञ्च चन्द्रमाः ॥
एवमर्द्धद्वितीयानामव्दानामधिमासकम्" । इति
प्रायस्त्वौत्सर्गिकमिदम् ॥

अधिमासस्य नपुंसकत्वञ्च ज्योतिश्शास्त्रेऽभिहितम् ॥

"असंक्रान्तो हि यो मासः कदाचित्तिथिवृद्धितः ।
कालान्तरात्समायाति स नपुंसक इष्यते ॥" इति

किञ्च पुरुषस्य सूर्यस्य तत्राभावान्नपुंसकत्वम्, तदपि तत्रैवोक्तम् —

"अरुणः सूर्य्यो भानुः तपनश्चन्द्रो रविर्गभस्तिश्च ।
अर्यमाहिरण्यरेता दिवाकरो मित्र-विष्णू च ॥
एते द्वादशसूर्य्या माघाद्येषूदयन्ति मासेषु ।
निः सूर्य्योऽधिकमासो, मलिम्लुचाख्यस्ततः पापः ॥

मासेषु द्वादशादित्यास्तपन्ते हि यथाक्रमम् ।
नपुंसकेऽधिके मासि मण्डलं तपते रवेः ॥" इति ।

मलिम्लुचत्वञ्च तस्य राक्षसैस्तस्करैराक्रान्तत्वात् तदाह शातातपः—

"वत्सरान्तर्गतः पापो यज्ञानां फलनाशकृत् ।
नैर्ऋतैर्यातुधानाद्यैः समाक्रान्तो विनाशकैः ॥
मलिम्लुचैः समाक्रान्तं सूर्य्यसंक्रान्तिवर्जितम् ।
मलिम्लुचं विजानीयात् सर्वकर्मविवर्जितम्" ॥

मेषादिसंक्रान्तयश्चैत्रादिसंज्ञानां प्रयोजिकाः । तथाच ज्योतिःशास्त्रेऽभिहितम्—

"मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्य्यते चान्द्रः ।
चैत्राद्यः स विज्ञेयः पूर्तिर्द्वित्वेऽधिमासोऽन्यः ॥" इति

यदि सवितर्य्येकराशिस्थे सति दर्शद्वयं पूर्य्यते तदानीमन्य उत्तरदर्शावसानको मासोऽधिमासः । न तत्पूर्वदर्शावसानक इत्यर्थः ।

किञ्च "सिनीवालीमतिक्रम्य, यदासंक्रमते रविः ।
रविणा लङ्घितो मासो, ह्यनर्हः सर्वकर्मसु ॥
मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत् ।
प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः ॥" इति

संक्रान्तिरहितयोर्योर्द्वयोर्मासयोर्मध्ये यो हि पूर्वोऽसंक्रान्तः स प्राकृतः कर्म्मार्ह इत्यर्थः । अस्त्वेवं संक्रान्तिरहितस्य मलमासस्योत्तरशेषत्वं द्विसंक्रान्तियुक्तस्य तु कथमिति चेदुच्यते—

प्रथमं तावत्स्वरूपं निरुप्यते—

"असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्यात् ।
द्विसंक्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचित् ॥
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यदा स्यात् ।
तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात् ॥"

अस्यायमर्थः—स्फुटमानेन योऽयमसंक्रान्तः स स्फुटोऽधिमासः। तेनैव मानेन योऽयं द्विसंक्रान्तियुक्तः स्यात् स क्षयसंज्ञको मासः। स च कातिकमार्गशीर्षपौषेष्वेव। त्रिष्वन्यतमे भवति नान्येषु माघादि नवसु। एवं क्षयमासयुते वर्षे क्षयमासात् पूर्वेषु त्रिषु मासेषु मध्ये कश्चिदधिकमासो भवति। क्षयाख्यमासादूर्ध्वमपि मासत्रयमध्ये परोऽधिमासो भवतीति। किञ्च इदमपि ज्योतिशास्त्रेऽभिहितम्—

"यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मम्।
तत्कातिकादित्रितये क्षयाख्यः॥
मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नात्।
विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु"॥

अत एव शिष्टोऽप्याह—

"आद्यन्तदर्शयोर्मध्ये, भान्वोरेव तयोर्यदा।
संक्रान्तिद्वितयं चेत् स्यात् क्षयमासः स उच्यते॥" इति।

अत्र क्षयमासो नाम = लुप्तमासः॥ एतत्पोषकवचनम् कृत्यसागरे ब्राह्मपादस्य यथा—

"तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वोऽपरस्मिन्न परस्तथा।
मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगावि" ति॥

किञ्च मुहूर्त चिन्तामणौ—

"स्पष्टार्कसंक्रान्तिविहीनचान्द्रो।
मासोऽधिमासः क्षयमासकस्तु॥
द्विसंक्रमस्तत्र विभागयोस्तु।
तिथेर्हि भागौ प्रथमान्त्यसंज्ञौ॥" इति

अस्यार्थः। स्पष्टार्कसंक्रान्तिविहीनो यश्चान्द्रो मासः सोऽधिमासः द्विसंक्रमो यो मासः स क्षयमासः। लुप्तमास इति चोच्यते। तथा च। क्षयमासे जातानां बर्द्धापने (नाडीच्छेदने) क्षयमासे मृतानां श्राद्धे च तिथेविभागयोः = पूर्वापरदलयोः सम्बन्धेन प्रथमान्त्यसंज्ञौ मासौ स्याताम्। तिथिपूर्वाद्धे जातानां मृतानां वा पूर्वमासे बर्द्धापनम्,

श्राद्धञ्च विधेयम्। तिथ्युत्तरार्द्धे जातानां मृतानां वा उत्तरमासे बर्द्धापनं श्राद्धञ्च विधेयम्। एवं लुप्तमासे पक्षे सर्वसामञ्जस्यमवधेयम्। वस्तुतस्तु क्षयमास इत्यस्य क्षयाख्यमास इत्येवार्थो न्यूनमास इति यावत्। अत एव व्यवहारद्वैतनिर्णये एकाधिमासमारभ्य तृतीयेऽब्दे मलमासो भवतीति नियतमेव।

यथा—

"मध्ये विषुवतो भानुर्बर्द्धयेद्यान्यहानि तु।
तैः सम्भूयाधिको मासः, पतत्येष त्रयोदश॥" इति

विषुवतो मध्ये = मेषसंक्रान्तिमारभ्य तुलाविषुवपर्य्यन्ते।

"माधवाद्येषु षट्केषु, मासे दर्शद्वयं यदा।
द्विराषाढः स विज्ञेयः, शेते च श्रावणेऽच्युत॥" इति

वचनात्। एवञ्चाधिमासादारभ्य तृतीयवर्षपर्य्यन्तेनैकमासस्य वृद्धौ एकेऽब्दे मासद्वय-लक्षणसत्त्वे उत्तरमासएवाधिमासः, अनर्हः सर्वकर्म्मसु। तथा हि—

"यत्रैकस्मिन्नब्दे, लक्ष्मैतद्भवति मासयोरुभयोः।
तत्रोत्तरोऽधिमासः, स्फुटगत्या भवति सूर्य्येन्द्वोः॥
त्रयोदशञ्च श्रुतिराह मासं, चतुर्दशः क्वापिन दृष्टपूर्वः।
एकत्र मासद्वितयं यदि स्यादब्देऽधिकं तत्र परोऽधिमासः।"

इति वाचस्पतिमिश्रमते तु अयं क्षयनामा कदाचित्कार्तिकादौ पतति। तत्रापि वर्षे मासा-न्तरमसंक्रान्तं भवत्येव स एव मलमासः। क्षयमासे मलमासे मलमासप्रयोगो भक्त्या। भक्तिबीजं विकृतमासत्वं स च क्षयः कर्म्मार्ह एव, अपवादकाभावात्।

केचित्तु अयमपि कर्म्मानर्ह एव।

"यस्मिन् मासेन संक्रान्तिः, संक्रान्तिद्वयमेव वा।
संसर्पाहस्पतीमासावधिमासश्च निन्दितौ॥" इति वचनादित्याहुः॥

ननु चैत्रादिषट्के आश्विनादिषट्के च यथोक्तलक्षणपाते चैत्रादिषट्काभ्यन्तर एव मल-मासो भवति न त्वाश्विनादिषट्के तदुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—

"चैत्रादर्वाग् नाधिमासः, परतस्त्वधिको भवेदि" ति तथा—

"घटकन्यागते सूर्य्ये, वृश्चिके वाथ धन्विनि ।
मकरे वाथ कुम्भे वा नाधिमासो विधीयते ।।" इति

घटः = तुला । तथा च कन्यादिषट्के यथोक्तलक्षणमतिव्यापकमिति, तन्न, अपवाद-विनाकृतस्य हारीतवाक्यार्थस्य लक्षणत्वात् । कन्यादिषट्के च अपवादस्य दर्शितत्वात् । अत एव चैत्रादिषट्के अनेकेषां यदुक्तलक्षणं तत्र पूर्वमलमासत्वं नास्ति, किन्तु चरमस्यैव यथोक्तलक्षणवतः । तदुक्तं भोजराजेन भीमपराक्रमे—

"यत्रैकस्मिन्नब्द" इत्यादि । त्रयोदशन्तु श्रुतिराहेत्यादि च । श्रुतिश्च द्वादशमासाः सम्वँत्सरः, क्वचित्त्रयोदशमासाः सम्वँत्सर इत्येकरूपाः । हेमाद्रिरपि—
"मासद्वयेऽब्दमध्ये तु, संक्रान्तिर्न्न यदा भवेदित्यादि ।

तदयं संक्षेपः । शुक्लप्रतिपदादिरमावास्यान्ते रविणालङ्घितो मासो मलमासः । स च माधवादावुत्सर्गतः । कदाचित्कार्तिकादावपि ।

तदुक्तं ज्योतिषे—

"यदा वक्रातिचाराभ्यां, सूर्य्यसंक्रमणं भवेत् ।
क्षत्रियाणामसृग् धारां, तदा पिवति मेदिनी" ।। इति

षट्कयोरपि तल्लक्षणयोगे माधवादावेकत्रैव षट्के । अनेकत्र तल्लक्षणयोगे च उत्तर एव मलमास इति प्राहुः । एवमेव द्वैतपरिशिष्टे केशवमिश्राः आहुः ।
एवमेव वर्द्धमानोपाध्याया अपि द्वैतविवेके । अत्र स्मृतिः—"एकत्र मासद्वितयं यदि स्यादि"त्यादि । तथा—

"दर्शद्वये यदैकस्मिन् सौरे संसर्पको भवेत् ।
अहर्पतिर्यदैकस्मिन्नब्दे संक्रमते यदा ।।
संसर्पोऽहर्पतिश्चेति द्विविधावधिमासकौ ।
मासौ पूर्वापरौ दृष्टौ परपूर्वौ शुभावहौ ।।" इति

इह यत्र शुक्लप्रतिपदाद्यमावास्यान्ते चान्द्रे मासि संक्रमणद्वयं भवति स क्षयमासः। अत्रापि मलमासवदेव काम्यादिकर्म्मवर्जनमिति रूपनारायणादयोऽप्याहुः॥

एवं मासमीमांसायां गोकुलनाथोपाध्यायाः—

"अधिमासद्वयं स्यादिति संभावना, सा च संशययोग्यतेति-भानुलंघितत्वं नाधिमासत्वव्याप्यमतिप्रसक्तेः। एवं पौषत्वं न धनुरर्कारब्धमासत्वम् अतिप्रसङ्गात्। किन्तु धनुरर्कारब्धशुक्लप्रतिपत्कत्वम्। एवं माघत्वमपि मकरार्कारब्धशुक्लप्रतिपत्कत्वमित्यादि निर्वाच्यम्। एवं पुष्ययुक्ता = पौषीत्यपि न नियमः। नक्षत्रान्तरेऽपि पौर्णमास्याः सम्भवात्। एकस्मिन् सव्वँत्सरे अधिमासद्वयपातसम्भवे चैत्रादिषट्काद्यन्तर एव कर्मानर्हत्वप्रयोजकोऽधिमासको भवति न त्वाश्विनादिषट्काभ्यन्तर इति। क्षयमासः = क्षयाख्यमास एव न तु लुप्तमास" इत्येवमुरीचक्रुः। अत्र क्षयाख्यपक्ष एव क्षोदक्षम इति मत्कृतक्षयमासग्रन्थे द्रष्टव्यः ग्रन्थगौरवभयान्नालेखि अत्रेति ध्येयम्॥

अथ पक्षः

स च शब्दः पक्षपरिग्रहधातोर्न्निष्पन्नः। देवकार्य्यार्थं पितृकार्य्यार्थं वा। पक्ष्यते = परिगृह्यते यः कालविशेषः स पक्षः। अथ वा चन्द्रस्य पञ्चदशानां कलानामापूरणं क्षयो वा यत्र कालविशेषे परिगृह्यते स पक्षः। तथा च, वाजसनेयिनश्चन्द्ररूपस्य सव्वँत्सरनिर्वाहकस्य प्रजापतेः कलापूरणावपक्षयावामनन्ति। स एष सव्वँत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः तस्य रात्रय एव पञ्चदश-कलाः ध्रुवैवास्य षोडशी कला स रात्रिभिरेव पूर्य्यते अपक्षीयते इति। तथा त एव पञ्चाग्निविद्यायां दक्षिणोत्तरमार्गयोः कृष्णशुक्लपक्षावपक्षयपूरणात्मकौ इष्टापूर्तादिकारिभिरुपासकैश्च प्राप्येते—इति पठन्ति। "अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकं जयन्ति ते धूममभिसम्भवन्ति, धूमाद्रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमिति ते य एवमेतद्विदुः। य इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तान्युपासते तेऽर्चिरभिसम्भवन्ति अर्चिषोऽहरहः आपूर्य्यमाणपक्षम्" इति च। तैत्तिरीयाश्च सावित्रचयने पूर्वोत्तरपक्षौ प्रत्येकम् पञ्चदशाहोरात्रकावामनन्ति। "संज्ञानं विज्ञानं दर्शादृष्टेति। एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि, प्रस्तुतं विष्टुतं सुता सुन्वतीत्येतावनुवाकावुत्तरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि" इति।

अयमर्थः—संज्ञानं विज्ञानमित्येकोऽनुवाको मन्त्रकाण्डे पठितः। तस्मिन्ननुवाके शुक्लपक्षस्याह्नो नामधेयानि पञ्चदशनपुंसकलिङ्गानि पठ्यन्ते। दर्शादृष्टेत्यपरोऽनुवाकः

तत्र शुक्लपक्षस्य रात्रीणां नामधेयानि पञ्चदशस्त्रीलिङ्गानि पठितानि। तथा प्रस्तुतं विष्टुतमित्येको ऽनुवाकः, सुता सुन्वतीत्यपरो ऽनुवाकस्तावुभौ कृष्णपक्षविषयौ पूर्ववद्योजनीयाविति। ते चानुवाकाः एवं श्रूयन्ते।––"संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं ज्ञानमभिज्ञानम्। संकल्प्यमानं प्रकल्प्यमानमुपकल्प्यमानमुपक्लृप्तं क्लृप्तं श्रेयो वसीयः आयन्त्यं सम्भूतं भूतं प्रभूतम्। दर्शा दृष्टा दर्शना। विश्वरूपा सुदर्शना आप्यायमाना प्यायमाना प्याया सूनृता इरा आपूर्य्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासी। प्रस्तुतं विष्टुतं संष्टुतं कल्याणं विश्वरूपं शुक्रममृतम्। तेजस्वितेजः समिद्धम् अरुणं भानुमन्मरीचिमदभितपत्तपस्वत्। सुता सुन्वती प्रसूता सूयमाना अभिपूयमाना [प्रस्तुता स्तूयमाना] पीती प्रयासम्पा तृप्तिस्तर्पयन्ती कान्ता काम्या। कामजाता ऽऽयुष्मती कामदुघा" इति॥

रूढो वाऽयं पक्षशब्दः। स च द्वेधाविभक्तस्य मासस्यैकैकमर्धं ब्रूते। पञ्चदशस्तोमनामकेन सामसमूहेन मध्ये छिन्नस्य त्रिवृत् स्तोमनामकस्य सामसमूहस्य पूर्वोत्तरभागाभ्यामुत्पन्नत्वात्तयोः पूर्वापरपक्षत्वम्।

तौ च द्वौ पक्षावनु देवानामसुराणाञ्च क्रमेण सृष्टत्वात् तयोः पक्षयोः प्रशस्तत्वाऽप्रशस्तत्वे। तदेतत्सर्वं होतृब्राह्मणे तैत्तिरीयाः पठन्ति। "प्रजापतिरकामयत, प्रजायेयेति। स तपो ऽतप्यत स त्रिवृतं स्तोममसृजत तं पञ्चदशस्तोमो मध्यतः उदतृणत् तौ पूर्वपक्षश्चापरपक्षश्चाभवताम्। पूर्वपक्षं देवा अन्वसृज्यन्त अपरपक्षमसुराः। ततो देवा अभवन् असुराश्च यं कामयेत वसीयान् स्यादिति तं पूर्वपक्षे याजयेत् वसीयानेव भवति, यं कामयेत् पापीयान् स्यादिति तमपरपक्षे याजयेत् पापीयानेव भवति, तस्मात् पूर्वपक्षोऽपरपक्षात्कारुण्यत्तरः।" इति। वसीयान् = वसुमत्तरः, पापीयान् = द्रव्यहीनः। कर्तॄणां शुभफलप्रापकत्वेन करुणामतिशयेनार्हतीति कारुण्यतरः।

अथ तिथियः

तत्र तिथिशब्दस्तनोतेर्धातोर्निष्पन्नः। तनोति विस्तारयति वर्द्धमानां क्षीयमाणां वा चन्द्रकलामेकां यः कालविशेषः सा तिथिः। सिद्धान्तशिरोमणौ—

"तन्यते कलया यस्मात् तस्मात्ताः तिथयः स्मृताः" इति॥

स्कान्देऽपि––

"अमाषोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला।
संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी॥

अमादिपौर्णमास्यन्ता या एव शशिनः कलाः ।
तिथयस्ताः समाख्याताः षोडशैव वरानने ॥" इति

अत्र षट्त्रिंशन्मतम् ।

"तत्र पक्षावुभौ मासौ शुक्लकृष्णौ क्रमेण तु ।
चन्द्रवृद्धिकरः शुक्लः कृष्णः चन्द्रक्षयात्मकः ॥३॥
पक्षत्याद्यास्तु तिथयः क्रमात् पञ्चदशस्मृताः ।
दर्शान्ताः कृष्णपक्षे ताः पूर्णिमान्ताश्च शुक्लके ॥" इति

तिथयस्तु पञ्चदशकृष्णपक्षे प्रतिपदादिदर्शान्ताः । शुक्लपक्षे प्रतिपदादिपौर्णमास्यन्ताः । तत्राखण्डतिथौ निर्विवादं कर्म्मानुष्ठानं सम्भवति । सखण्डतिथौ तु उभयदिने कर्म्मयोग्यप्रशस्तकालव्यापिनी ग्राह्या । यथा याज्ञवल्क्य आह—

"कर्म्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः ।
तया कर्म्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्" ॥ इति

स्कन्दपुराणे—

"यस्मिन् काले तु यत्कर्म्म तत्कालव्यापिनी तिथिः ।
तया कर्म्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्" ॥ इति

गार्ग्योऽपि—

"यो यस्य विहितः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः ।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्" ॥ इति

कर्म्मकालश्च दानव्रतयोर्दैवत्वेन पूर्वाह्णोऽवगन्तव्यः । "पूर्वाह्णो वै देवानाम्" इति शास्त्रात् । एकभक्तनक्तयोर्दैवत्वेऽपि प्रतिपदोक्तकालविशेषशास्त्रेण सामान्यरूपं पूर्वाह्णशास्त्रं बाध्यते । "मध्याह्नो मनुष्याणामपराह्णः पितॄणाम्" इति वचनबलात् । क्रमेण च तत्कालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्याः ।

किञ्च—

"मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः ।
नक्तादिव्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते" ॥ इति

स्नानादावाह देवलः—

"यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु" ॥ इति

व्यासोऽपि—

उदयन्नेव सविता यां तिथिं प्रतिपद्यते ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्म्मसु" ॥ इति

भविष्योत्तरपुराणेऽपि—

"व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत् ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णकी" ॥ इति

पद्मपुराणेऽपि—

"व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत् ।
उदये सा तिथिस्तत्र विपरीता तु पैतृके" ॥ इति

स्कन्दपुराणेऽपि—

"व्रतोपवासदानादौ घटिकैका यदा भवेत् ।
उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके" ॥ इति

विष्णुधर्म्मोत्तरेऽपि—

"व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत् ।
उदये सा तिथिर्ग्राह्या श्राद्धादावस्तगामिनी" ॥ इति

बौधायनोऽपि—

"आदित्योदयवेलायां याऽल्पापि च तिथिर्भवेत् ।
पूर्णा इत्येव मन्तव्या प्रभूता नोदयं विना" ॥ इति

किञ्च—

"ययास्तमितो याति पितरस्तामुपासते ।
तिथिन्तेभ्योऽपराह्णो हि स्वयं दत्तः स्वयंभुवा" ॥ इति

बृहन्मनुरपि—

"यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्तामुपासते ।
तिथिन्तेभ्यो यतो दत्तो ह्यपराह्णः स्वयंभुवा" ॥ इति

आपराह्णिके सपिण्डीकरणादौ शुक्लकृष्णपक्षाभ्यां न व्यवस्था किन्तु रवेरस्तसमयसम्बन्धेन गृह्यपरिशिष्टवचने हेतु सन्निगदस्वरसात् । यथा—"ययास्तमि" त्यादि । एकोद्दिष्टादीनां मध्याह्नकालेषु विहितत्वेन कर्म्मकालव्यापिन्यास्तिथेः तत्र गृहीतत्वात् ।

ते च कालाः हारीतेन दर्शिताः—

"आमश्राद्धन्तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टन्तु मध्यतः ।
पार्वणश्चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्" ॥ इति

मनुरपि—

"पूर्वाह्णे दैविकं श्राद्धमपराह्णे तु पार्वणम् ।
एकोद्दिष्टन्तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्" ॥ इति

विश्वामित्रोऽपि—

"देवानुद्दिश्य क्रियते यत्तद्दैविकमुच्यते ।
तन्नित्यश्राद्धवत्कुर्य्यात् द्वादश्यादिषु यत्नतः ॥" इति

कालविशेषज्ञाने मत्स्यपुराणम्—

"प्रातः कालो मुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्यादपराह्णस्ततः परम् ॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।
रक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्म्मसु" ॥ इति

अरुणोदयसमयमाह ब्रह्मवैवर्तः—

"चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते ।
यतीनां स्नानकालोऽयं गङ्गाम्भःसदृशस्मृतः ॥
त्रियामां रजनीं प्राहुः त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम् ।
नाडीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते" ॥ इति

सन्ध्याकालश्च दक्षेणोक्तो यथा—

"ह्रासवृद्धी च सततं दिवारात्र्योर्यथाक्रमम् ।
सन्ध्यामुहूर्तविख्याता ह्रासवृद्धौ समा स्मृता" ॥ इति

यथाक्रमम्, उत्तरायणदक्षिणायनक्रमेणेत्यर्थः । उपवासादौ युग्मव्यवस्थामाह—गृह्यपरिशिष्टे निगमे च । यथा—

"युग्माग्नियुगभूतानां षड्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ।
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा ॥
प्रतिपद्यप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् ।
एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ इति

युग्मम् = द्वितीया । अग्निः = तृतीया । युगम् = चतुर्थी । भूतम् = पञ्चमी । षट् = षष्ठी । मुनिः = सप्तमी । वसुः = अष्टमी । रन्ध्रं = नवमी । रुद्रः = एकादशी । तिथ्योर्युग्मम् = तिथ्योर्मिलनम् । एतद्व्यस्तम् = एतद्विपरीतम् । तथा च । द्वितीयातृतीययोः । चतुर्थीपञ्चम्योः । षष्ठीसप्तम्योः । अष्टमीनवम्योः । एकादशीद्वादश्योः । चतुर्दशीपौर्णमास्योः । प्रतिपदमावास्ययोश्च मिलने पूर्वतिथिरुत्तरविद्धा ग्राह्या । उत्तरा तु पूर्वविद्धेति सिद्धम् ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

"एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका ।
उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः" ॥ इति

अन्यत्रापि—

"षष्ठ्यष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।
एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुताः" ॥ इति

शिवशङ्करगीतायाम्—

"एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्थिका ।
चतुर्द्दश्यप्यमावास्या उपोष्याः स्युः परान्विताः" ॥

एतस्यैव पक्षस्यानुग्राहकः उत्तरविद्धायाः निषेधः वृहद्वशिष्ठ आह—

"द्वितीयापञ्चमीवेधात् दशमी च त्रयोदशी ।
चतुर्द्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी" ॥ इति

द्वितीयादयस्तिथयः स्ववेधे पूर्वामुत्तराञ्च तिथिं हन्युरित्यर्थः । तिथिर्हि रविभागैश्चान्द्र-क्रियोपलक्षितः षष्टिदण्डात्मकः कालविशेषः । त्रिंशांशकस्तथा राशेर्भोग इत्यभिधीयते ।

"आदित्याद्विप्रकृष्टश्च भागं द्वादशकं यथा ।
चन्द्रमा स्यात्तदारामतिथिरित्यभिधीयते" ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरवचनम् । अंशस्तु लग्नात्मकः । तेन द्वादशभिर्लग्नैर्होरात्मकः काल इति प्रसिद्धम् ।

तिथिस्तावद्द्वेधा–शुद्धा विद्धा च । तत्राद्या सूर्य्यसिद्धान्ते—

"अदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्टिनाडिका ।
या तिथिः सा हि शुद्धा स्यात् सर्वतिथ्या ह्ययं विधिः" ॥ इति

सा हि शुद्धा = सैव शुद्धा । सति तात्पर्य्ये सर्वं हि वाक्यं सावधारणमिति न्यायात् । यथा-पञ्च पञ्चनखाः भक्ष्या इति । तेन अन्या अशुद्धेति सिद्धम् ।

अत्रोशनाः—

"खर्वो दर्पस्तथा हिंस्रः त्रिविधं तिथिलक्षणम् ।
खर्वदर्पौ परौ कार्य्यौ हिंस्रः पूर्वत्र पूज्यते" ॥ इति

भविष्योत्तरेऽपि—

"खर्वो दर्पस्तथा हिंस्रस्त्रिविधं तिथिलक्षणम् ।
खर्वदर्पौ परौ कार्य्यौ हिंस्रः स्यात् पूर्वकालिकः ॥" इति ॥

पितामहोऽपि—

"खर्वो दर्पस्तथा हिंस्रस्त्रिविधं तिथिलक्षणम् ।
खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ हिंस्रः स्यात् पूर्वकालिकः" ॥ इति

खर्वः साम्यम् । अल्पक्षयो वा । तथा च । समतिथिः पूर्वदिने युग्ममध्याह्नव्यापिनी । अन्याप्यन्यस्मिन्दिने तथैवेति । साम्यमल्पक्षयोऽपीति माधवाचार्य्याः । दर्पो = वृद्धिः । यथैकतिथिः पूर्वदिवसे मध्यादधिका अन्याप्यन्यस्मिन् दिने तथैव पूर्वतिथेरधिकेति । हिंस्रः अधिकक्षयः । यथैका तिथिः पूर्वदिने मध्याह्नान्न्यूना अन्याप्यन्यस्मिन् दिने तथैवेति । एतैः खर्वादिवाक्यैः सह यस्मिन् विषये युग्मादिवाक्यस्य विरोधः प्राप्नोति तत्र दैवपित्र्यभेदेन पूर्वोक्तव्यासादिवाक्यैर्व्यवस्थोन्नेया ।

पैठीनसिरपि वेधमाह—

"पक्षद्वयेऽपि तिथयः तिथिं पूर्वां तथोत्तराम् ।
त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥" इति

अयं त्रिमुहूर्तात्मको वेधः सामान्यः = अनेकतिथिसाधारणः । तथैव लक्ष्यं विनिर्दिशति—

"चतुर्द्दशी पञ्चमी च तथा च दशमी तिथिः ।
पूर्वां तिथिं दूषयति त्रिभिरेव मुहूर्तकैः" ॥ इति

तिथित्रयं प्रत्येकमुहूर्तत्रयेण स्व-स्वपूर्वतिथिभिर्विद्धा तिथिः नोपवासादियोग्येति भावः । आसामुत्तरवेधानप्याविःकरोति—

"नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा ।
भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ॥" इति

अयञ्च त्रिमुहूर्तादिवेधः, उदयात् पूर्वतिथ्या अस्तमयात् प्राक् तिथ्या च अवसेयः ।

यत्तु— "उदये पूर्वया तिथ्या विध्यते त्रिमुहूर्तकैः ।
सायं तूत्तरया तद्वन्न्यूनया तु न विध्यते ॥" इति

विद्धापि त्रिमुहूर्तैर्वेधमर्हतीति सकलसाधारणो वेध इति तन्न मनोरमम्, यत्रैव त्रिमुहूर्तवेधस्य दूषकत्वं तत्रैव ततो न्यूनवेधस्यादूषकत्वम् अनुक्तापरिमितवेधतिथौ

त्रिमुहूर्तन्यूनवेधस्यापि दूषकत्वं भवत्येव। अन्यथा तादृशस्थले न्यूने अधिके वा सत्यपि वेधे, अविद्धत्वव्यवहारापत्तेः।

न च मुहूर्तत्रयात्मको वेधः सकलसाधारणः। "चतुर्द्दशी पञ्चमी" त्यादिवचनन्तु तिथि-मात्रोपलक्षकमिति वाच्यम्—

"लववेधेऽपि राजेन्द्र दशम्यैकादशीं त्यजेत्।
सुरायाः बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भो दूषितम्भवेत्"॥

इति नारदीयस्य—

"कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी यदि।
एकादश्यां न कुर्वीत व्रतं राजन् कदाचन"॥

इति स्कान्दस्य—

"कलार्द्धेनापि विद्धा स्याद्दशम्यैकाकादशी यदि।
तदाप्येकादशीं हित्वा द्वादशीं समुपोषयेत्"॥

इत्यस्य च दशावेधनियामकस्य च अन्यस्यापि—

"कला काष्ठा मुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः।
नवम्यां सैव कार्य्या स्यात् सप्तमी संयुता नहि"॥ इति

कृष्णजन्माष्टम्यां सप्तमीयोगरूपवेधनियामकवचनस्यापि सर्वतिथिसाधारणत्वापत्तेः। तस्मात्तिथिवेधनियामकानां वचनानामन्यत्राप्रसक्तौ कथं तद्वचनं तदनुक्तवेधतिथौ प्रसज्येत। तथा च अनुक्तवेधतिथिस्थले अन्यतिथियोग एव अल्पो वा वेध इति मन्तव्यम्।

क्षयवृद्धयोर्विषये कालमाधवः—

"परत्रैव तथाल्पा चेत् पूर्वा ग्राह्या तिथिक्षये।
तिथेः साम्ये च वृद्धौ च गृह्यतां तिथिरुत्तरा॥
एकदेशे समन्याप्तौ क्षये पूर्वाऽन्यथोत्तरा।
साम्ये तूद्धर्वतिथिर्ग्राह्या परा वृद्धौ च वृद्धिवत्॥" इति

अथैतावता प्रबन्धेन सामान्यविशेषवचनैरुपवासव्रत-दान-स्नान-जपादिकं यथाक्रमेणादरणीयम् ।

अथ व्रतसामान्यधर्म्माः—

तत्र देवलः—

"अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाऽचम्य समाहितः ।
सूर्य्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥" इति

तथा चैकभुक्ताग्रिमदिने कृतस्नान आचान्तः सूर्य्याय देवताभ्यश्च निवेदयेत् । यथा—भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवताः अद्यामुकव्रतमहमाचरिष्यामीति । एवं निवेद्य संकल्पं कुर्य्यात् ।

तत्र महाभारते—

"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
उपवासं तु गृह्णीयात् यद्वा संकल्पयेद्बुधः" ॥ इति

औदुम्बरं पात्रं = ताम्रभाजनम् । यद्वेति । ताम्रपात्राद्यभावेऽपि संकल्पं कुर्य्यादिवेत्यर्थः । "प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा संकल्पं बुध आचरेत्" इतिसमयप्रदीपधृतवचनात् ।

संकल्पाकरणे दोषमाह भविष्यपुराणे—

"संकल्पेन विना राजन् यत्किञ्चित् कुरुते नरः ।
फलं चाल्पाल्पकं तस्य धर्म्मस्यार्द्धक्षयो भवेत्" ॥ इति

किञ्च "सूक्तिशंखामहस्तैश्च कांस्यरुक्मादिभिस्तथा ।
संकल्पो नैव कर्तव्यो मृण्मयेन कदाचन ॥
गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णं गुणान्वितम् ।
जलाशयारामकूपे संकल्पे पूर्वदिङ्मुखः ॥
साधारणे चोत्तरस्यामैशान्यां निःक्षिपेत्पयः ॥" इति

वाराहे—

"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
उपवासं तु गृह्णीयात् यद्वार्य्यैरवधार्य्यते ॥"

ब्रह्मपुराणे—आशाम्य च शुभं कर्म उद्दिश्य च मनोगतम् ।" आशाम्येति मनसा उद्दिश्य, वाचा अभिलप्य कर्म्मणा चोपपाद्यमिति ॥

हारीतो यथा—"मानसा संकल्पयति, वाचा अभिलपति, कर्मणा चोपपादयति" ॥

अथ संकल्पे मासपक्षादेरुल्लेखोऽपि विधेयः ।

"मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्वशः ॥
उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग् भवेदिति" ।

ब्रह्मपुराणात् ।

व्रतारम्भानन्तरमशौचमपि न प्रतिबन्धकम् ।

यथा ब्रह्मपुराणे—

"व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे, होमार्चने, जपे ।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥" इति

आरम्भविचारे हारीतः—

"आरम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतजापयोः ।
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥" इति

व्रतसामान्यधर्म्ममाह भविष्ये—

"क्षमासत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाग्निहवनं संतोषस्तेयवर्जनम् ॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्म्मः सामान्यो दशधा स्मृतः" ॥ इति ॥

उपवासपदार्थमाह तत्रैव—

"उपावृत्तस्य दोषेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः" । इति

उपावृत्तस्य = निवृत्तस्य । दोषेभ्यो = रोगादिभ्यः । गुणैः = क्षमासत्यादिभिः ।
सहवासो = अवस्थानं जनस्य उपवास इत्यर्थः ।

भोग्यविशेषे शातातपः—

"गन्धालङ्कारवस्त्राणि पुष्पमाल्यानुलेपनम् ।
उपवासेन दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥" इति

तथा च एतद्भोगविशेषे दोषाभावः । दन्तधावनमप्यत्र तृणादिना काष्ठस्य निषेधात् । यथा—

"उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद्दन्तधावनम् ।
दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासमं कुलम्" ॥ इति

देवलः—

"उपवासः प्रणश्येत्तु दिवास्वप्नाक्षमैथुनैः ।
अत्यये चाम्बुपाने च उपवासः प्रणश्यति ॥" इति

मत्स्यपुराणे—

"तस्मात्कृतोपवासेन स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप ॥" इति

वृद्धशातातपः—

"उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम् ।
कारयेत्तेन सगुणः उपवासो हि जायते ॥" इति

सगुणः = प्रकृष्टफला इत्यर्थः । द्विज इति व्रतकर्तृमात्रोपलक्षणम् । विशेषानभिधाने व्रतमात्रे सर्वेषामधिकारः । अत्र तु तथैव प्रतिपादनात् । नित्यमपि व्रतं स्त्रिया पतिपार्थक्येन न कर्तव्यम् । तथा हि विष्णुः—

"पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ।
आयुः स हरते पत्युः नरकञ्चैव गच्छति ॥" इति

पत्यनुज्ञया व्रतकरणे दोषाभावः । कामं भर्तुरनुज्ञाताया व्रतोपवासनियमेष्वभ्यास इति शंखलिखितवाक्यात् ।

मार्कण्डेयोऽप्याह—

"या नारीत्वननुज्ञाता भर्त्रा पित्रा सुतेन वा ।
निष्फलं तद्भवेत्तस्याः यत्करोति व्रतादिकम्" ॥ इति

गृहीतव्रताकरणे दोषमाह छागलेयः—

"पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो नाचरेत्काममोहितः ।
जीवन् भवति चाण्डालो मृतः श्वा चैव जायते ॥" इति

व्रतच्युतिप्रयुक्तपापक्षयकामो गोदानरूपं प्रायश्चित्तं कुर्यात् । यथा—

"समारब्धे व्रते पश्चात् व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।
गोदानञ्च ततः कृत्वा पुनर्व्रतमथाचरेत्" ॥ इति

प्रमादादिना व्रतपरित्यागे दोषाभावमाह देवलः—

"सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् ।
अव्रतघ्नानि कीर्त्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः ॥ इति

सर्वभूतभयं = व्याघ्रादिजन्तुभ्यो भयम् । व्याधिः = व्रतप्रतिबन्धकक्षयः । प्रमादो = विस्मरणम् । गुरुशासनम् = गुरोराज्ञा । सकृदित्यभिधानात्, एतैरपि एकदा परित्यागे दोषाभावः । पुनःपुनः परित्यागे तु दोष एवेत्युन्नीयते व्रतकरणे शुक्लमेव वस्त्रं प्रशस्तम् । तथा हि हरिवंशे—

"शुक्लमेव सदा वासः प्रशस्तं चन्द्रसम्भवे ।
अन्तर्वासोऽपरञ्चैव उपवासे व्रते तथा" ॥ इति

उपवासाग्रिमदिने पूर्वाह्ण एव पारणं कुर्य्यात् तथा हि देवलः—

"उपवासेषु सर्वेषु पूर्वाह्णे पारणं भवेत् ।
अन्यथा च फलस्यार्द्धं धर्म्ममेवोपसर्पति" ॥ इति

यत्र पारणायाः सूक्ष्मकालस्तत्र पारणाकरणे सन्ध्यादिकं न स्यात्, अकरणे प्रत्यवाय इति किं कार्य्यमत्राह कात्यायनः—

"सन्ध्यादिकं भवेन्नित्यं पारणं तु निमित्ततः ।
अद्भिस्तु पारणं कुर्य्यात् नैतिकान्ते शुजिक्रियाम् ॥" इति

एतावतोपवासव्रतकरणानन्तरं पारणस्यावश्यकत्वमभिहितम् । सांयोगिकव्रतपारणाविषये नारदीयम्—

"संयोगिके व्रते प्राप्ते यद्येकोऽपि वियुज्यते ।
तदैव पारणं कुर्य्यादिवं वेदविदो विदुः" ॥
तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत् ।
पारणं तत्र कर्तव्यं यावदेकस्य संक्षयः ॥" इति

उपवासदिनादग्रिमदिन एव पारणं कुर्य्यात् ॥ पारणं त्वपरेऽह्ननीति वचनात् । संयोगिकव्रते ऋक्षान्ते पारणं कुर्य्यादित्यत्र विशेषमाह विष्णुधर्म्मे——

"याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्याः नक्षत्रयोगतः ।
ऋक्षान्ते पारणं कुर्य्यात् विना श्रवणरोहिणीम्" ॥ इति

तिथिमात्रान्तेऽपि पारणं कर्तव्यम् "यावन्नैकस्य संक्षय" इति नारदवचनस्वरसात् । स्मार्तैरप्यनुमोदितमेतत् । तिथिनक्षत्रोभययोगे पारणनिषेधमाह—ब्रह्मवैवर्तः—

"तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम् ।
तस्मात् प्रयत्नतः कुर्य्यात् तिथिभान्ते च पारणम्" ॥ इति

अथ स्वस्य प्रतिबन्धकवशादुपवासासामर्थ्ये प्रातिनिध्येन व्रतं संपाद्यम् किन्तत्र मानमित्याह—स्कन्दपुराणम्—

"अस्वास्थ्यञ्चेच्छरीरस्य व्रते च समुपस्थिते ।
कारयेद्धर्म्मपत्नी वा पुत्रं वा विनयान्वितम् ।
भ्रातरं भगिनीं शिष्यम् ब्राह्मणं दक्षिणादिभिः ॥" इति

एतदर्थ एव कात्यायनोऽप्याह—

"पितृमातृभ्रातृपतिपुत्रार्थे च विशेषतः
उपवासं प्रकुर्वाणाः पुण्यं शतगुणं भवेत् ॥" इति

किञ्च स्मृतिः—

"भार्य्या भर्तृव्रतं कुर्य्याद्भार्य्यायाश्च पतिस्तथा ।
असामर्थ्ये तयोरेवं व्रतभङ्गो न जायते ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियस्यार्थे एकादश्यामुपोषितः ।
पुरोधाः क्षत्रियस्यार्थे फलमाप्नोति निश्चितम् ॥

उपवासफलं ताभ्यां सममेव क्षत्रियेति छान्दसः । अथ नार्य्याः व्रतकरणे रजोयोगे का गतिरत्राह भृगुः---

"एकादश्यां न भुञ्जीत नारीदृष्टे रजस्यपि ॥" इति

एकादश्यामित्युपलक्षनम् । तस्य व्रते आरब्धे इत्यर्थे तात्पर्य्यम् । तथा हि वृद्धगर्गः---

"सम्प्रवृत्तेऽपि रजसि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ॥" इति

द्वादशीव्रतमित्यस्य आरब्धव्रतमित्यर्थः ।

मनुरपि---

"प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ।
न तत्रापि व्रतस्यास्य अवरोधः कदाचन ॥" इति

व्रतस्यास्येति । आरब्धस्य व्रतस्येत्यर्थः । मात्स्ये---

"अन्तरा तु रजो-योगे पूजामन्येन कारयेत् ।
उपवासं स्वयं कुर्य्यान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥" इति

"आरम्भे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्" इत्यादिपूर्वलिखितोऽपि पर्य्यवसानमित्यलं बहुना ।

अथोपवासिनां नियमाः

विष्णुधर्मोत्तरे यथा---

"शुद्धोपवासदिवसे कृत्वा दण्डस्य धारणम् ।
गायत्र्या शतशः पूतमम्बु प्राश्य विशुद्ध्यति ॥
तेन हिंसकयोः सख्यं कृत्वा स्तेनश्च हिंसनम् ।
प्रायश्चित्तं व्रती कुर्य्यात् जपेन्नाम शतद्वयम् ॥"

नाम-विष्णोः । कात्यायनः---

"मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोऽम्बुनिषेवणे ।
मन्त्रमष्टाक्षरं जप्त्वा शतमष्टोत्तरं शुचिः ।" इति

मन्त्रस्तु "ॐ नमो नारायणाय" इति। उपवासदिने मैथुनविचारे स एवाह— "रेतः सेकमेकम्भोगमृतेऽन्यत्र क्षयः स्मृतः ॥" इति। अस्यार्थः। रेतः सेकः ऋतुकाले गर्भाधाननिमित्तकं तदात्मकं भोगं वर्जयित्वाऽन्यत्र भोगे क्षयः = व्रतक्षयः। ऋतुकालः षोडशनिशां यावत्।

अथैकस्मिन्नेव दिवसे पितृश्राद्धमुपवासो भार्या ऋ तुमती च तत्र किं कार्य्यमिति संशये सरोजकलिकायामाह—

"एकादशीव्रतं प्राप्य पितुः सांवत्सरं दिनम्।
भार्य्या ऋतुमती चैव कथं धर्म्मः प्रवर्तते ॥
श्राद्धं कृत्वा व्रतं कुर्य्यादाघ्राय पितृसेवितम्।
रात्रेश्चतुर्थभागे तु ऋतुदानं प्रवर्त्तते" ॥ इति

पितुरित्युपलक्षणम्। मात्रादेरपि बोध्यम्। ऋतुमतीम्भार्य्यां न गच्छेत्तदा को दोष इत्यत्राप्याह यमः—

"ऋतुस्नाताञ्च यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां पतत्यत्र न संशयः ॥
भार्य्यामृतुसुखे यस्तु सन्निधौ नोपगच्छति।
पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन् रजसि शेरते ॥ इति

अथ नक्तनिर्णयः

तत्स्वरूपञ्च दिवाभोजनरहितत्वे सति रात्रिभोजनम्। वराहपुराणे यथा—

मार्गशीर्षे सिते पक्षे प्रतिपद्या तिथिर्भवेत्।
तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ विष्णुञ्च पूजयेत् ॥" इति

अत्र नक्तशब्दो न कालपरः। नहि कालः केनचित् कर्तुं शक्यते। तस्मान्नक्तशब्दोऽत्र भोजनपरः। इति

किञ्च भविष्यपुराणे—

मुहूर्तोनं दिनं नक्तं प्रवद[illegible] मनीषिणः।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमह[illegible]न्ये नराधिप ॥ इति

अत्राधिकारिभेदेन व्यवस्थामाह देवलः—

"नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थस्य बुधैः स्मृतम् ।
यतेर्दिनाष्टमे भागे तस्य रात्रौ निषिध्यते ॥" इति

स्मृत्यन्तरेऽपि—

"नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः ।
पतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तत् सदिवाकरम् ॥
सदिवाकरन्तु तत्प्रोक्तमन्तिमे घटिकाद्वये ।
निशानक्तं तु विज्ञेयं यामार्द्धे प्रथमे पदे ॥" इति

रात्रिनक्तभोजने व्यासः—

"त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्यात् भानावस्तं गते सति ।
नक्तं तु तत्र कुर्वीत इति शास्त्रस्य निश्चयः "॥ इति

तदेवं नक्तकालौ व्यवस्थितौ । तत्र नक्तं प्रदोषव्यापिन्यां तिथौ कार्य्यम् । तदाह वत्सः—

"प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ।
एकादशीं विना सर्वा शुक्ले कृष्णे सदा स्मृता ॥" इति

स्कन्दपुराणे—

"प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या सदा नक्तव्रते तिथिः ।
उदयस्था सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः ॥" इति

अत्रेदं पर्य्यवसितम् । एकादश्यां यन्नक्तं तत्रोदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । शैवे तु प्रदोषव्यापिनी । इति । गौडमते तु—"प्रदोषोऽस्तमयादूर्द्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यति इत्युक्त्वा अत्र घटिका दण्डरूपद्वयेति बोध्यम् । दण्डत्रयपर्य्यन्तं सन्ध्यैव ज्ञेया । यथा स्कन्दपुराणे—

"सायं सन्ध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः" ॥ इति

अत्र मार्कण्डेयः—

"चत्वारीमानि कर्माणि सन्ध्यायां परिवर्जयेत् ।
आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायन्च चतुर्थकम् ॥ इति

केचित्तु—

"दिवारात्रिव्रतं यच्च एकमेव तिथौ स्मृतम् ।
तस्यामुभयव्यापिन्यां कुर्य्यादिवं व्रतं व्रती" ॥ इति स्कन्दपुराणीयम् ।

कूर्मपुराणेऽपि—

"प्रदोषव्यापिनी यत्र त्रिमुहूर्ता दिवा यदि ।
तदा नक्तं व्रतं कुर्य्यात् स्वाध्यायस्य निषेधवद्" ॥ इति

जावालिरपि—

"अतः स्युस्तिथयः पुण्याः....दिवा ।
नक्तव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगः प्रशस्यते ॥
यदि स्यादुभयोरह्नोः प्रदोषव्यापिनी तिथिः ।
तत्रोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रापि सा यतः ॥
उदयात्प्राक्तनी सन्ध्या घटिकात्रयमिष्यते ।
सायं सन्ध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः" ॥ इत्याह ।

अत्र रुद्रधरोपाध्याया :—

"नक्षत्रदर्शनान्नक्तं केचिदिच्छन्ति मानवाः ।
मुहूर्तोनं दिनं केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
नक्षत्रदर्शनाच्चाहमिति मन्ये नराधिप ।"

अत्र नक्षत्रदर्शनान्नक्तं सामान्यनक्तव्रतविषयम् । मुहूर्तोनं दिनं सौरव्रते। मुहूर्तोनं दिनस्य पञ्चदशो भागः । तथा च नरसिंहपुराणे—

"आत्मद्विगुणछायायां यदा संतिष्ठते रविः ।
सौरं नक्तं विजानीयात् न नक्तं निशि भोजनम् ॥"

अत्र पूर्वैकवाक्यतया आत्मद्विगुणच्छाया = सायाह्नभवा न प्रातःकालीना गृह्यते । आत्मद्विगुणच्छाया पूर्वावधिः । तेन तदनन्तरदिनशेषे भोजनमित्यर्थ इत्याह ।

सौरनक्ते तु सुमन्तुरपि—

"तस्यां सौरम्भवेन्नक्तमहन्येव तु भोजनम्" । इति

भविष्यपुराणे--

"ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्नक्तं कुर्वन्ति मानवाः ।
दिनान्ते तेऽपि भुञ्जीरन् निषेधाद्रात्रिभोजने ॥" इति

अस्मिंश्च दिवाभोजने उत्तमोऽन्तिममुहूर्त एव । सौरनक्तव्रते दिनस्य पञ्चदशभाग एवोक्तत्वात् । शैवनक्तव्रतन्तु कृष्णचतुर्दश्यामधिकं प्रशस्तम् । तत्र त्रयोदशीयुक्ता चतुर्दशी ग्राह्या । "कामविद्धो हरः पूज्य" इति वचनात् । अस्यार्थः कामस्त्रयोदशी हरः = चतुर्दशी । तेन कृष्णत्रयोदशीमिश्रा कृष्णचतुर्दशी ग्राह्येति बहुसम्मतम् । यत्र पूर्वदिने प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी न प्राप्ता तत्राग्रिमदिन एव । प्रदोषव्यापिन्यामेव नक्तविधानात् । प्रदोषोऽपि द्विविधः । सूर्य्यास्तमयादूर्द्ध्वं दण्डद्वयरूपो मुहूर्तत्रयरूपश्च । यत्र प्रथमदिने किञ्चिद्दिनभागमारभ्य दण्डद्वयरूपप्रदोषव्यापिनी, अग्रिमदिने मुहूर्तत्रयरूपप्रदोषव्यापिनी च तत्र कपालाधिकरणन्यायेन कामवेधप्राशस्त्येनापि पूर्वदिन एव । यदा दण्डद्वयप्रदोषमतिक्रम्य मुहूर्तत्रयव्यापिनो अग्रिमदिने तदा तस्यामेव नक्तम् । यदा दिनमानमतिक्रम्य प्रथमदिने प्रदोषव्यापिनी, अग्रिमदिने तु दिनसम्बद्धा सती प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशी तदाप्यग्रिमदिन एव नक्तव्रतम् ।

"दिवा रात्रौ व्रतं यच्च एकमेव तिथौ स्मृतम् ।
तस्यामुभयगामिन्यामाचरेद्व्द्व्रतं व्रती" ति वचनात् अत्र केचित् अहोरात्रसाध्यव्रते तु अहोरात्रव्यापिन्यामेव कार्य्यमिति । यदाऽऽद्यदिने अस्तमयसम्बन्धोऽग्रिमदिने उभयसम्बन्धस्तदोभयसम्बन्धप्राशस्त्यादुभयसम्बन्धव्यापिन्येव ग्राह्येति प्राहुः ।

वस्तुतस्तु उभयदिनप्रदोषव्याप्तावपि अग्रिमदिने दिनरात्रिसम्बन्धाधिक्येनाग्रिमदिन एव नक्तव्रतम् ।

न च "कामविद्धो हरः पूज्य" इत्यस्माद्विरोध इति वाच्यम्, एतद्वचनस्य, चतुर्दश्युपवासप्राशस्त्यनियामकत्वेनाप्युपपत्तेः तिथिनिषेधस्य । दिवा तु न तिथिद्वैधे प्रवृत्तिः, न तु दिवारात्रिसाध्यव्रते एवमेव रुद्रधरोपाध्यायादिनिजमतम् ।

"यदि स्यादुभयोरह्नोः प्रदोषव्यापिनी तिथिः ।
तत्रोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रापि सा यतः" । इति

जावालिवचनमप्येतत्पक्ष एव विक्षोदमिति ।

कालमाधवीये--

उभयत्र व्याप्त्यभावे परैव । तदाह जावालिः—

"अतथात्वे परैव स्यादस्तादर्वाग्यतो हि सा" इति । प्रदोषे तदभावेऽपि अस्तमयादर्वाक् यतः सा विद्यते ततो ग्राह्येत्यर्थ इति । अत्राऽन्यान्यपि विरुद्धान्यपि वाक्यानि एवं परत्वेन समाधेयानीति किं बहुना । अत्र नक्तव्रतस्येतिकर्तव्यता भविष्यपुराणे यथा—

"हविष्यभोजनं स्नानं सतामाहारलाघवम् ।
अग्निकार्यमधः शय्यां नक्तभोजी सदा चरेत्" ॥ इति

अग्निकार्य्यम् = होमः । अधशय्यामित्यनेन खट्वानिवृत्तिमाह न तु भूमावेव शयनमनौचित्यात् ।

अथ हविष्याणि :—

"हविष्येषु यवाः शस्ताः तदनुव्रीहयः स्मृताः ।
माषको द्रवगौरादीन् सर्वलाभेऽपि वर्जयेत् ॥"

वर्षप्रदीपे—हविष्येषु प्रथमं यवाः तदलाभे व्रीहयः । तदलाभे माषको द्रवचणकसर्षपमसूरतिलककुलत्थवर्जमन्यदन्नम् । सैन्धवं मानसम्भवं लवणम् । साम्भवीति प्रसिद्धम् । तथा—

हैमन्तिकम् सितास्विन्नम् धान्यं मुद्गयवास्तिलाः ।
कलायकं च नीवाराः वास्तुकं हिलमोचिका ॥
षाष्ठिका कालशाकञ्च मूलकं कञ्चुकेतरत् ।
कन्दं सैन्धवसामुद्रे लवणे दधिसर्पिषी ॥
पयोऽनुद्धतमाषञ्च पनसाम्रहरीतक (णी) की ।
पिप्पल्ली जीरकञ्चैव नागरङ्गानि तिन्तिली ॥
कदली-लवली-धात्रीगुडमैक्षुरम् ।
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते ॥

नीवारः = ओइरीति प्रसिद्धः । हिलमोचिका = सरहँचीति प्रसिद्धः शाकविशेषः । केचुकम् = केञ्जुआ इति प्रसिद्धकन्दविशेषः । तस्मादन्यत् सर्वं हवि-

ष्यम् । सामुद्रम् = सामुद्रेतिप्रसिद्धं लवणम् । लवली = हरफा इति प्रसिद्धः फलविशेषः । धात्री = आमलकी ।

प्रतिपत्तदीयकृत्यञ्च, कथयामि विशेषतः ।
नत्वा गजास्यचरणौ, ग्रन्थेऽस्मिन् कृत्यसागरे ॥

शुक्लप्रतिपत्पूर्वविद्धोपोष्या । कृष्णप्रतिपदुत्तरविद्धा । एकभुक्तनक्तयोः सर्वासु तिथिषु मध्याह्नप्रदोषव्याप्त्या निर्णयः । अयाचितस्य प्रातिस्विककालविशेषविध्यभावात् उपवासवच्छुक्लकृष्णप्रतिपदौ पूर्वोत्तरविद्धे गृहीतव्ये इत्येतावद्व्यवस्थितमिति कालमाधवः । शुक्लप्रतिपदोऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा ग्राह्या युग्मवाक्यात् प्रतिपत्संमुखी कार्य्या या भवेदापराह्णकी ।

स्कन्द आह ।

"शुक्लः स्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमतः, चेद्यापराह्णे भवेत्" । इति दीपिकायाम् ।

कृष्णात्वपरा ग्राह्येति हेमाद्रिः ।

भविष्योत्तरपुराणे दानमपठ्यते—

"प्रतिपदि द्विजम्पूज्य पूजयित्वा प्रजापतिम् ।
सौवर्णमरविन्दञ्च कारयित्वाऽष्टपत्रकम् ॥
कृत्वात्वौदुम्बरे पत्रे सुगन्धिघृतपूरिते ।
पुष्पैर्धूपैः पूजयित्वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥" इति

ब्रह्मपुराणे मण्डलव्रतं यथा—

"मासि भाद्रपदे शुक्ले, पक्षे च प्रतिपत्तिथौ ।
नैवेद्यन्तु पचेन्मौनी, षोडशत्रिगुणानि च ।
फलानि पिष्टपकानि, दद्याद्विप्राय षोडश ॥
देवाय षोडशैतानि, दातव्यानि प्रयत्नतः ।
भुज्यन्ते षोडश तथा, व्रतस्य नियमाशयः ॥"

एवमन्यान्यपि दानव्रतानि उत्तरविद्धायां प्रतिपदि कर्तव्यानि ।

यदाह वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

"पौर्वाह्णिकास्तु तिथयो, दैवे कार्य्ये फलप्रदाः ॥" इति

चैत्रशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भे प्रतिपद्द्वितीया युता ग्राह्या ।

"अमायुता न कर्तव्या, प्रतिपत् चण्डिकार्चने ।

मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयासंयुता बुधैः" ॥ इति देवीपुराणात् ।

दाक्षिणात्याः——आश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भे प्रतिपत्परविद्धा ग्राह्या ।

"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला, भवेत्प्रतिपदाश्विने ।

नवरात्रं व्रतं तस्यां, न कार्य्यं शुभमिच्छता ॥

देशभङ्गो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चैव जायते ।

नन्दायां दर्शयुक्तायां, यत्र स्यान्मम पूजनम्" ॥ इति मार्कण्डेयदेवीपुराणयोर्वचनात् ।

"न दर्शकलया युक्ता, प्रतिपत् चण्डिकार्चने ।

उदये द्विमुहूर्तापि, ग्राह्या सोदयगामिनी ॥" इति देवीपुराणवचनाच्च ।

यदा पूर्वदिने शुद्धा भूत्वा परदिने बर्द्धते । तदा पूर्वैव सम्पूर्णत्वादमायोगाभावाच्च । यानि तु द्वितीयायोगनिषेधपराणि वचनानि तानि शुद्धाधिकारपराण्येव । परदिने प्रतिपदसत्वे तु अमायुक्ता प्रकर्तव्येति नृसिंहप्रसादोदाहृतवचनान्यपि तद्विषयाण्येव । अत्र वैधृतिं चित्रां चातिक्रम्य नवरात्रारम्भस्तु तदसम्भवे । तयोरंशत्रयं पादद्वयं वा त्याज्यम् । तथा च भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे——

"त्वाष्ट्रवैधृतियुक्ता चेत, प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।

तयोरन्ते विधातव्यं, कलसारोपणं गुह ॥" इति

दुर्गोत्सवे कात्यायनः—

"प्रतिपद्या विपुले मासि, भवेच्चित्रा च वैधृतिः ।

तयोः प[]त्यज्य पादो, प्रारभेन्नवरात्रकम् ॥" इति

भविष्ये--

"चित्रा वैधृतिसंयुक्ता प्रतिपद्या भवेन्नृप ।
त्याज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्या, तुरीयांशे तु पूजनम् ॥"

कलशस्थापनं रात्रौ न कार्य्यम् ।

"न रात्रौ स्थापनं कार्य्यं, न च कुम्भाभिषेचनमि" ति मात्स्योक्तेश्च ।

भास्करोदयमारभ्य, यावत्तु दशनाडिकाः ।
प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु ।

इति विष्णुधर्म्मोक्तेश्च ।

"आद्या षोडशनाडिस्तु, त्यक्त्वा यः कुरुते नरः ।
कलशस्थापनं तत्र, त्वरिष्टं जायते ध्रुवम ॥" इति

भार्गवदीपिकायां देवीपुराणडामरुतन्त्रवचनोदाहरणवचनाच्चेत्याहुः । अधिकन्तु नवरात्र-पूजाप्रकरणे वक्ष्यामः । कार्तिकशुक्लप्रतिपदि द्यूतं कर्तव्यम ।

"तस्मिन् द्यूते जयो यस्य, तस्य संवत्सरः शुभः ।

तथैवाचारात् वृषभाणां भोजनप्रक्षेपणं कुर्वन्ति । इति रुद्रधरोपाध्यायाः
दाक्षिणात्यास्तु कार्तिकशुक्लप्रतिपत् पूर्वा ग्राह्या—

"श्रावणी दौर्गनवमी, दुर्गा चैव हुताशिनी ।
पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या, शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ॥" इति बृहद्यमोक्तेः ।

अत्र तैलाभ्यङ्गो नित्यः । तत्र वृहद्वशिष्ठः--

"वत्सरादौ वसन्तादौ, बलिराज्ये तथैव च ।
तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो, नरकं प्रतिपद्यते" ॥ इति

भविष्यपुराणे---

"लोकस्यपि गृहस्यान्तः, शय्यायां शुक्लतण्डुलैः ।
संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैः समर्चयेत्" ॥ इति

गोपूजनादावपि प्रतिपत्पूर्वविद्धैव ग्राह्या ।

"प्रतिपद्दर्शसंयोगे, गवां तु क्रीडनं स्मृतम् ।
परविद्धासु करणात्, पुत्र-दार-धनक्षयः" ॥ इति देवलवचनात ।

हेमाद्रौ (स्कन्दे)—

प्रातर्गोवर्द्धनः पूज्यो द्यूतञ्चापि समाचरेत् ।
पूजनीयास्तदा गावः त्याज्ये दोहनवाहने ॥

गोवर्द्धनपूजने मन्त्रोऽपि—

"गोवर्द्धनधराधार, गोकुलत्राणकारक ।
विष्णुवाहुकृतच्छाया गवां कोटिप्रदो भव ॥ इति ।

ब्राह्मे—

"तस्माद्द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः ।
तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥
पराजयो विरुद्धस्य, लाभनाशकरो भवेत् ।
दयिताभिर्युतैर्मर्त्यैर्नेया सापि भवेन्निशा ॥ इति प्राहुः ।

अत्र गोवर्द्धनपूजोक्ता स्कन्दपुराणे—यथा ।

प्रातर्गोवर्द्धनः पूज्यो द्यूतञ्चापि समाचरेदिति ।

गोमयेन गोवर्द्धनमूर्तिः पूजनीया पीतपुष्पाक्षतादिभिरिति ठक्कुराः । ग्रन्थान्तरे-

पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्वलेर्दिनम् ।

इति । वलेर्दिनम् = कार्तिकशुक्लप्रतिपत् ।

या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप ।
पूजनात्त्रीणि बर्द्धन्ते, पुत्राः गावो महीपतिः ॥

इति वचनेऽपि या प्रतिपत्कुहूमिश्रेति विपरीतान्वयस्यैव विवक्षा । गोपूजनस्य प्रतिपत्कृत्यत्वात् । गोपूजनानिकं द्वितीयादौ न कार्य्यम् ।

नन्दायाः दर्शने रक्षा, वलिदानं दशासु च ।
भद्रायां गोकुलक्रीडा, स देशो वै विनश्यति ॥ इति वचनात् ।
प्रतिपद्यग्निकरणं, द्वितीयायां गवार्चनम् ।
छत्रच्छेदं करिष्येत, वित्तनाशं कुलक्षयम् ॥

इति वचनाच्च, अथ बाणसमुच्चये—

गवां क्रीडादिने यत्र, रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ।
सोमो राजा पशून् हन्ति, सुरभीपूजकांस्तथा ॥ इति
बर्द्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्द्धत्रियामिका ।
द्वितीया वृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्रबोध्यत ॥

इत्यपि तत्रैव । चन्द्रदर्शनसम्भवनायामन्वाधानविषये वृद्धशातातपः—

द्वितीया त्रिमुहूर्ताचे, प्रतिपद्या पराह्निका ।
अन्वाधानं चतुर्दश्यां, परतः सोमदर्शनात् ॥ इति ।

अपराह्णश्च पञ्चधाविभक्तस्याह्नश्चतुर्थो भागः । अतश्च यत्र प्रतिपदि षणमुहूर्तव्यापिनी द्वितीया तत्र चन्द्रदर्शनसंभवात् तत्र गोक्रीडनं न कार्य्यम् । चन्द्रदर्शने तु द्वितीयायुतैव कार्य्या, तिथिवृद्धिगामित्वात् । प्रतिपदः सार्द्धत्रियामव्यापित्वेन द्वितीयाबेधोऽपि न संभवति ।

पक्षद्वयेऽपि तिथयः, तिथिपूर्वां तथोत्तराम् ।
त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति, सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥

इति पैठिनसि वचनात् त्रिमुहूर्तन्यूनवेधस्याप्रयोजकत्वादेव चन्द्रदर्शनसंभावनायां पूर्वाह्णे क्रीडने गवामिति पूर्वैव कर्म्मकालव्यापित्वात् । तिथिवृद्धौ परैव । प्रतिपत् पूजादौ ग्राह्येति सिद्धान्त इति शौभङ्करी रीतिः ।

राजमार्तण्डे—

पापाहे च विशाखायां, न कुर्य्यात्पूजनं गवां ।
यदि कुर्य्यात्तदा गावो, नश्यन्ति पूजकास्तदा । इति ।

भाषायाम्—

स्वातीदीआ वो नरे, द्वितीया खेले गाय ।
तव आवश नरवरजूझे, अन्नमहग होजाय ॥

किञ्च ज्योतिषे—

निषिद्धे नित्ययोगेऽपि, द्विदैवर्क्षेऽपि सर्वदा ।
भौमार्कार्किदिनं त्यक्त्वा, पूजनं च गवां शुभं ॥

द्विदैवर्क्षे = विशाखायाम् । भविष्ये—

रोहिणी प्रतिपद्युक्ता, मार्गे मासि सिते परा ।
गङ्गायां यदि लभ्येत, शतसूर्य्यग्रहैः समा ॥ इति ।

वामनपुराणे—कार्तिकशुक्लप्रतिपदमधिकृत्य वालं प्रति भगवद्वाक्यम्—

वीर प्रतिपदानाम, तव भावी महोत्सवः ।
अत्र त्वां नरशार्दूल, हृष्टाः पुष्टाः स्वलङ्कृताः ॥
पुष्पदीपप्रदानेन, अर्चयिष्यन्ति मानवाः ।
वलिराज नमस्तुभ्यं, विरोचनसुतप्रभो ।
भविष्येन्द्रसुराराते, पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।

ब्रह्मपुराणे—

शङ्करश्च पुरा द्यूतं, ससर्ज सुमनोहरम् ।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु, प्रभातेऽहनि भूपते ॥
जितश्च शङ्करस्तत्र, जयं लेभे च पार्वती ।
ततोऽत्र शङ्करो दुःखी, रोगी नित्यं सुयोषिता ॥
तस्माद्यूतं सप्रभाते, कर्त्तव्यं तत्र माधवे ।
तस्मिन् द्यूते जयो यस्य, तस्य संवसरः शुभः ॥
पराजयो विरुद्धस्तु लब्धनाशकरो भवेत् ॥

द्यूतञ्चाप्राणिभिः क्रीडनं यथा आह मनुः—

"अप्राणिभिर्यत् क्रीड्यते, तल्लोके द्यूतमुच्यते" ।

तत्तिथिमधिकृत्य भविष्योत्तरे—

"यो यो यादृशभावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ।
हर्षदैन्यादिना तेन, तस्य हर्षं प्रयाति हि" ॥

तथा

"महापुण्या तिथिरियं, वलिराज्यप्रवर्द्धिनी ।
स्नानं दानं शतगुणं, कार्तिकेऽस्यां तिथौ भवेत् ॥

वामनपुराणे—

"नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेच्च, क्षौरञ्च रिक्तासु जयासु मासं ।
पूर्णासु योषित् परिवर्जनीया, भद्रा सु सर्वासु समाचरेच्च,, ॥

स्मृतिः—

"कुष्माण्डैश्चार्थहानिः स्यात्, बृहत्या न स्मरद्धेरिम् ।
बहुशत्रुः पटोले स्यात्, धनहानिस्तु मूलके ॥
कलङ्की जायते विल्वे, तिर्य्यग्योनिस्तु निम्बके ।
ताले शरीरनाशः स्यात्, नारिकेले च मूर्खता ॥
तुम्बी गोमांसतुल्या स्यात्, कलम्बी गोबधात्मिका ।
शिम्बी पापकरी प्रोक्ता, पूतिका ब्रह्मघातिका ॥
वार्ताके सुतहानिः स्यात्, चिररोगी च माषके ।
महापापकरं मांसं, प्रतिपदादिषु वर्जयेत्,, ॥

अत्र तालनिषेधः सप्तम्यामेव अन्यत्र तालभक्षणं प्राप्तम् अतस्तालञ्चेत्ताञ्च वार्ताकीं न खादेद्वैष्णावो जनः । इत्यनेन श्वेततालं निषिद्धम् । साहचर्य्येण श्वेतानुषङ्गात् । एवम् "अलावुं वर्तुलाकारां, वार्ताकुं कुन्दसन्निभाम्,, । इति । तथा च वर्तुलाकाराम् अलावुं शुक्लां वार्ताकीं न खादेदित्यर्थः । यदपि

"कुसुम्भं नालिकाशाकं, वृन्ताकं पोतिकं तथा ।
भक्षयन् पतितस्तु स्यादपि वेदान्तगो द्विजः" ॥

इत्युशनसा सामान्यतोऽभिहितम् । नालिका श्वेतकलम्वातितरुः । पूजिका द्वादश्याम-धिकदोषाय शूद्रविषयिका । वार्तावार्ताकीवर्तुलाकारेतिसमुद्रकारभाष्यम् । अत्रेदमस्वरस-बीजम् वर्तुलाकारामित्यस्यापवादमाह सुमन्तुः—

लसुनं पलाण्डुकुम्भी श्राद्धमृत्तिका भोज्यान्नमधुमांससूतरकोऽमेध्याऽभक्ष्यभक्षणेऽगायत्र्यस-हस्रेण मूर्द्धिन सपातानवनयेत् ।

[अथोपवासः]

एतान्यपि व्याधितस्य भिषक्क्रियायामप्रतिषिद्धानि भवन्ति । कल्पतरौ—"चित्रासुहस्त-श्रवणेषु तैलं क्षोरं विशाखा-प्रतिपत्सु वर्ज्यम् । मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं योषिन्मघा-कृत्तिकसोत्तरासु ।

स्मृतिः—

"घृतञ्च सार्षपं तैलं, यत्तैलं पुष्पवासितम् ।
अदुष्टं पक्वतैलञ्च स्नानाभ्यङ्गे च नित्यशः ॥ इति ।

प्रचेताः—

"तैलाभ्यङ्गनिषेधे च, तिलतैलं निषिध्यते ।

वारे प्रतिप्रसवमाह—स्मृतिः—

"रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां, भूमिजे भूमिजं तथा ।
भार्गवे गोमयं दद्यात्, तैलदोषोपशान्तये ॥

तिलतैल एव तैलशब्दस्य शक्तिरन्यत्र लक्षणैव ।

अथ चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः । तत्र प्रतिपत् उदयकालीना ग्राह्या । दिन-द्वये तथात्वे तु पूर्वैव "प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ" । इति ।

"वत्सरादौ वसन्तादौ, वलिराज्ये तथैव च ।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या, प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥

इतिवृद्धवसिष्ठोक्तवचनादिति महेशठक्कुराः ।

[अथ द्वितीया]

अथ द्वितीया तत्कृत्यमिह ग्रन्थे प्रदर्श्यते ।
यथाशक्तिविचारेण, द्रष्टव्यं तच्च सूरिभिः ॥

द्वितीया कृष्णा पूर्वयुक्ता ग्राह्या । "प्रतिपत्सद्वितीया स्यात् द्वितीया प्रतिपद्युता' । इति आपस्तम्ववचनात् । तत्रोक्तयुक्तेः प्रतिपत्कृष्णा तत्साहचर्य्यात् द्वितीयापि तथेति । शुक्ला तु परयुता । युग्मानीति निगमीययुग्मवाक्यात् । एवमुपवासविधायकयोर्वचनयोर्व्यवस्था उन्नेया ।

यथा नारदः—

"तृतीयैकादशी षष्ठी तथैवं चाष्टमी तिथिः ।
वेधादधस्ताद्धन्युस्ताः उपवासे तिथिस्त्विमाः ॥ इति ।

अत्र द्वितीया तृतीयायुता नोपोष्येत्यर्थः ।

विष्णुरहस्ये—

"एकादश्यष्टमो षष्ठी, द्वितीया च चतुर्दशी ।
त्रयोदश्यप्यमावास्या, उपोष्याः स्युः परान्विताः ॥ इति

तस्मात् पूर्ववचनं कृष्णपक्षविषयकम् । परवचनन्तु शुक्लपक्षविषयमिति रघुनन्दनभट्टाचार्य्याः । कृष्णाद्वितीया पूर्वा सिता परतश्चेति दीपिकायाम्—

पूर्वेद्युरसती प्रातः, परेद्युस्त्रिमुहूर्तया ।
सा द्वितीया परोपोष्या, पूर्वविद्धा ततोऽन्यथा ॥

इति ठक्कुराः, माधवाचार्य्यमते—अत्र द्वितीया नवधा भिद्यते । पूर्वेद्युरुदयमारभ्य प्रवृत्ता । उदयं परित्यज्य प्रवृत्ता, पूर्वाह्णं सर्वं परित्यज्य प्रवृत्तेति त्रयो भेदाः । तेष्वेकस्य परेद्युस्त्रिमुहूर्तत्वतन्न्यूनत्वशून्यत्वैस्त्रैविध्ये सति मिलितन्नवविधत्वं संपद्यते । अत्र पूर्वेद्युरुदयमारभ्य प्रवृत्तायाः संपूर्णत्वेन परेद्युर्मुहूर्तत्रयत्व-तन्न्यूनत्व-शून्यत्वेषु त्रिष्वपि विवादाविषयत्वात् पूर्वत्रैवोपवासो युक्तः । उदयं परित्यज्य कियत्पूर्वाह्णभागम्प्रक्रम्य प्रवृत्तायाः परेद्युस्त्रिमुहूर्तायां सत्यां परत्रैते । परासम्भवे ताम्प्रपरित्यज्य पौर्वाह्णिकवचनेन पूर्वेद्युरेवोपवासो विधीयते । परेद्युस्त्रिमुहूर्तान्न्यूनत्वशून्यत्वे च वेधकारिण्यास्तृतीयायाः सत्यपि वेधसामर्थ्ये वेध्यायाः द्वितीयायाः त्रिमुहूर्तत्वाभावेन वेधयोग्यत्वाभावात् तत्रोपवासो न प्रसक्तोऽतः परिशेषात् पूर्वाह्णवाक्याच्च पूर्वत्रैवोपवासः । पूर्वेद्युः पूर्वाह्णं सर्वं परित्यज्य प्रवृत्तायाः परेद्युस्त्रिमुहूर्तत्वयोभयत्र तिथिसत्त्वात् कुत्रोपवास इति सन्देहे सति व्यासेनोत्तर विधानात् पूर्वदिननिषेधाच्चोत्तरत्रोपवासः ।

न चात्र शुक्लकृष्णव्यवस्थाशङ्कनीया, युग्मवाक्ये शुक्लकृष्णपक्षसाधारण्येन परदिनविधानात्। कृष्णपक्षेऽपि तत्प्रवृत्तौ बाधाभावाच्च। अन्त्ययोस्तु पक्षयोः पूर्ववद्द्वेधानर्हत्वेन पूर्वेद्युः। पूर्वाह्णिकत्वाभावेऽपि परिशेषादापस्तम्बोक्तयुग्मवाक्याच्च पूर्वत उपवास इति स्थितम्। एकभुक्तादिपार्वणश्राद्धान्तेषु कर्म्मसु द्वितीयाप्रयुक्तस्य विशेषस्य क्वचिदप्यस्मरणात् पूर्वोक्तन्यायो योजनीयश्चेति। स्कन्दपुराणे—

आषाढस्य सिते पक्षे, द्वितीया पुष्यसंयुता।
तस्यां रथे समारोप्य, रामं मां भद्रया सह॥
यात्रोत्सवं प्रकृत्याथ, प्रीणयेच्च द्विजान् बहून्।

तथा—ऋक्षाभावे तिथौ कार्य्या, सदासा प्रीतये मम। सा = यात्रा मां = जगन्नाथम्।

मनोरथद्वितीयायां तु दिवा वासुदेवार्चनं रात्रौ चन्द्रोदयेऽर्घदानं नक्तञ्च भोजनादिकम्।

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

देवमभ्यर्च्य पुष्पैस्तु, धूपदीपानुलेपनम्।
उद्गच्छतश्च बालेन्दोर्दद्यादर्घं समाहितः॥
नक्तं भुञ्जीत च नरो, यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः।
अस्तं गतेन भुञ्जीत, व्रतभङ्गभयान्नरः॥ इति।

अस्तं गते = चन्द्रे॥ विष्णुपुराणे—

दिवारात्रौ व्रतं यच्च, एवमेव तिथौ स्मृतम्।
तस्यामुभयगामिन्यामाचरेत्तद्व्रतं व्रती॥

एवमेव तिथौ दिवारात्रिसम्बन्धिन्यां तिथावेव।

स्मृतं मुनिभिरिति शेषः।

कार्तिकशुक्लद्वितीया = यमद्वितीया।

सा शुद्धा विद्धा च द्विधा। तत्र प्रतिपद्युता ग्राह्येति तत्त्वनिर्णयामृते। मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा तिथिनिर्णयप्रदीपे। अपराह्णव्यापिनी ग्राह्येति विशेषः स्कन्दपुराणे। यथा—

ऊर्जशुक्लद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम्।
स्नानं कृत्वा भानुजायां, यमलोकं न पश्यति॥ इति।

लिङ्गपुराणे—

कार्तिके तु द्वितीयायां, शुक्लायां भ्रातृपूजनम् ।
या न कुर्य्याद्विनश्यन्ति, भ्रातरः सप्तजन्मगाः ॥
कार्तिके शुक्लपक्षस्य, द्वितीयायां युधिष्ठिरः ।
यमो यमुनया पूर्वं, भोजितस्तु गृहे स्वयम् ॥
तस्यां निजगृहे पार्थ, न भोक्तव्यं यतो बुधैः ।
यत्नेन भगिनीहस्तात्, भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥
दानानि च प्रदेयानि, भगिनीभ्यो विशेषतः ।
यमञ्च चित्रगुप्तं च, यमदूतांश्च पूजयेत् ॥
अर्घश्चात्र प्रदातव्यो, यमाय सहजद्वयैः ॥"

सहजद्वयैः = भगिनीभ्रातृभिः । अर्घमन्त्रो यथा—

ॐ एह्येहि मार्तण्डजपाशहस्त, यमान्तकालोकधरामरेश ।
भ्रातृद्वितायाकृतदेवपूजां, गृहाण चार्घं भगवन्नमस्ते ।

प्रणाममन्त्रास्तु —

धर्मराज नमस्तुभ्यं, नमस्ते यमुनाग्रज ।
पाहि मां किंकरैः सार्द्धं, सूर्य्यपुत्र नमोऽस्तु ते ॥" इति

यमुनानमस्कारमन्त्रो यथा—

यमस्वसर्नमस्तेऽस्तु, यमुने लोकपूजिते ।
वरदा भव मे नित्यं, सूर्य्यपुत्रि नमोऽस्तु ते ॥" इति

ब्रह्माण्डपुराणे—

या तु भोजयते नारी, भ्रातरं युग्मके तिथौ ।
अर्चयेच्चापि ताम्बूलैः, न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥
भ्रातुरायुः क्षयो राजन्, न भवेत्तत्र कर्हिचित् ।

भ्रात्रेऽन्नं दत्त्वा पठेत्—

भ्रातस्तवानुजाताहं, भुंक्ष्व भुक्तमिदं शुभम् ।
प्रीतये यमराजस्य यमुनायाः विशेषतः ॥ इति

ज्येष्ठा चेदग्रजाताहमिति पठेत् । अत्र मैथिलमते युग्मवाक्यात्तृतीयायुता स्वल्पापि द्वितीया ग्राह्या । दाक्षिणात्यमते अपराह्णव्यापिनी । गौडमते तु अत्र भगिनीहस्तेन भोक्तव्यमित्युक्त्या भोजनस्य मुख्यतया भोजनमुख्यकालव्यापिन्येव द्वितीयाऽऽदरणीया । भोजनकालस्तु अष्टधाविभक्तदिनपञ्चमांश एव । तथाऽऽह दक्षः—

पञ्चमे च तथा भागे संविभागो यथार्हतः ।
पितृदेवमनुष्याणां कीटानाञ्चोपदृश्यते ॥
संविभागं ततः कृत्वा, गृहस्थः शेषभुग् भवेत् ।
इतिहासपुराणाद्यैः, षष्ठं च सप्तमं नयेत् ॥" इति

पञ्चमांशलाभे तु—

न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् ।
नातिप्राग्नातिसायम् ॥"
इति मनुपर्य्युदस्तसूर्य्योदयास्तेतरकालोऽपि ग्राह्यः ।

सौहित्यं = तृप्तिः । भोजनविषये कात्यायनोऽप्याह—

मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं; विप्राणां मर्त्यवासिनाम् ।
अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धं प्रथमयामान्तः ॥" इति

द्वितीयाविशेषेष्वनध्यायोऽपि द्रष्टव्यः । यथा गुणिसर्वस्वे—

"मार्गे च फाल्गुने चैव, अषाढे कार्तिके तथा ।
पक्षयोर्मधुमासस्य, द्वितीयां परिवर्जयेत् "॥ इति

तथा "कृष्णपक्षे द्वितीयायां, भास्करे मृगकुम्भगे ।
सप्तम्यां च नवम्यां च गतासुर्व्रतबन्धनात्" ॥

राजमार्तण्डे—

"प्रेकोचेचिद्वितीया सा, प्रेतपक्षे गते तु या ।
या च कोजागरे जाते, चैत्रावश्याः परे तु या ॥
चातुर्मास्यनिवृत्तौ तु, द्वितीया या भवेत्तथा
सर्वास्वेतास्वनध्यायः, पुराणे परिकीर्तितः" ॥ इति

ज्योतिर्निबन्धे—

"कार्तिकस्याश्विनस्यापि, फाल्गुनाषाढयोरपि ।
कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्यायं विदुर्बुधाः" ॥ इति ।

मनुः—

"चातुर्मास्यद्वितीयायां, मन्वादिषु युगादिषु ।
अष्टकासु च संक्रान्तौ, शयने बोधने हरेः ॥
अनध्यायं प्रकुर्वीत, तथा सोपपदासु च" ॥ इति

चातुर्मास्यद्वितीया गर्गेणोक्ताः—

"आषाढे फाल्गुने चोर्जे, द्वितीया च विधुक्षये ।
चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः, प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
सिताज्येष्ठे द्वितीया च, आषाढे दशमी सिता ।
चतुर्थी द्वादशी माघे, एताः सोपपदाः स्मृताः" ॥ इति ।

किञ्चवशिष्ठः—

"या चैत्रवैशाखसितातृतीया, माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य ।
कृष्णे द्वितीयोपनयेच्च शस्ता, प्रोक्ता भरद्वाजवशिष्ठमुख्यैः" ॥

यमद्वितीयायां यात्रा न विधेया । तथोक्तं ज्योतिषे—

"यमद्वितीया यात्रायां मरणं संभवेत्" । इति

श्रावणशुक्लद्वितीयायामशून्यशयनव्रतमिति दैवज्ञबान्धवः ॥

विशेषतो विचारो भविष्यपुराणे—

"अशून्यशयनं नाम द्वितीयां शृणु भारत ।
यामुपोष्य न वैधव्यं, स्त्री प्रयाति कथञ्चन ॥
पत्नीवियुक्तस्तु नरो, न कदापि प्रजायते ।
शेते जगत्पतिः कृष्णः, श्रिया सार्द्धं नराधिप ॥
अशून्यशयनं नाम, तदा कार्य्या हि सा तिथिः ।

कृष्णपक्षे द्वितीयायां, श्रावणे मासि भारत ॥
इदमुच्चारयेत् प्रातः, प्रणम्य जगतः पतिम् ।
श्रीवत्सधारिणं श्रीशं, भक्त्या भाव्यं श्रिया सह ॥
श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त, श्रीवास, श्रीपतेऽव्यय ।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे, यातु धर्मार्थकामद ॥
अग्नयो मा प्रणश्यन्तु, मा प्रणश्यन्तु निर्जराः ।
पितरो मा प्रणश्यन्तु, मत्तो दाम्पत्यभेदतः ॥
लक्ष्म्या वियुज्यते देवो, न कदाचिद्यथा भवान् ।
तथा कलत्रसम्बन्धो, देव माऽसौ वियुज्यताम् ॥
लक्ष्म्या न शून्यं वरद, यथा ते शयनं सदा ।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु, तथा तु मधुसूदन ॥
एवं प्रसाद्य पूजान्तु, कृत्वा लक्ष्म्यास्तथा हरेः ।
फलानि दद्याच्छय्यायामभीष्टानि जगत्पते ॥
नक्तं प्रणम्यायतने, हविर्भुञ्जीत वाग्यतः ।
ब्राह्मणाय द्वितीयेऽह्नि, शय्यां दद्यात् सदक्षिणाम् ॥

शतानिक उवाच—

कानि तान्यप्यभीष्टानि, केशवस्य फलानि तु ।
योज्यानि शयने विप्र, देवदेवस्य कथ्यताम् ॥
किञ्च दानं द्वितीयेऽह्नि दातव्यं ब्राह्मणाय च ।
भक्त्या नरैर्द्विजश्रेष्ठ, देवदेवस्य शक्तितः ॥

सुमन्तुरुवाच—

"यानि तत्र महाबाहो, काले काले फलानि च ।
मधुराणि न तीव्राणि, न चापि कटुकानि च ॥
दातव्यानि नृपश्रेष्ठ, सुशय्याशयने नृप ।
मधुराणि च दत्वा तु, मनोवल्लभतां व्रजेत् ॥

योषिच्च कुरु शार्दूल, भर्तुर्वल्लभतामियात् ।
तस्मात् कटुकतीव्राणि, स्त्रीलिङ्गानि च वर्जयेत् ॥
खर्जुरं मातुलुङ्गानि, स्थितेन शिरसा सह ॥
फलानि शयने राजन्, यज्ञभागहरस्य च ॥
एतान्येव तु विप्रस्य, गाङ्गेयसहितानि च ।
द्वितीयेऽह्नि प्रदेयानि, भक्त्या शक्त्या च भारत ॥
वासो दानं तथा चान्यत्, दानं चात्र प्रशस्यते ।
एवं करोति यो भक्त्या, नरो मासचतुष्टयम् ॥
तस्य जन्मत्रयं वीर, गृहभङ्गो न जायते ।
अशून्यशयनश्च स्याद्धर्मकामार्थसाधकः
भवत्यव्याहतैश्वर्य्यः, पुरुषो नात्र संशयः ।
नारी वा राजधर्म्मज्ञ, व्रतमेतद्यथा विधिः ॥
या करोति न शोच्या सा, बन्धुवर्गस्य जायते ।
वैधव्यं दुर्लभत्वञ्च, भर्तृत्यागञ्च सत्तम ॥
न प्राप्नोति जन्मत्रितये, तत्कृत्वा तु महाव्रतम् ।
इत्येषा कथिता राजन्, द्वितीया तिथिरुत्तमा ॥
यामुपोष्य नरो राजन्, वृद्धिमृद्धिं श्रियं लभेत् ।" इति

भक्त्या श्रिया सह प्रणम्येत्यन्वयः । उपोष्येत्यत्र उपवसनमुपावसनमिति । अग्रे नक्तं भुञ्जीतेत्यभिधानात् । शुचयोऽग्नयः । याम्यगाः पितरः । स्थितेन शिरसा विद्यमानेन वृतेनेत्यर्थः । यज्ञभाग् = हरो-विष्णुः । गाङ्गेयं = सुवर्णम् । मासचतुष्टयम् = तत्तत्कृष्णनलचतुष्टयमित्यर्थः । स्त्रीकर्तृकपक्षे कलत्रसम्बन्धो देव मासौ वियुज्यतामित्यत्र कलत्रपदस्थाने पतिपदोहः पूर्ववदेव । फलानि दद्यात् शय्यायामिति । अत्र शय्यायां धारणमात्रम् । अग्रे दानाभिधानात् । नक्तं प्रणश्येत्यादौ नक्तं भुञ्जीतेत्यन्वयः, इत्येषा कथिता राजन् इत्यादिना कर्म्मान्तरं फलान्तरार्थम् आषाढ्यनन्तरं समाचरेदिति ॥ इत्यशून्यशयनद्वितीयाव्रतनिर्णयः समाप्तः ।

पक्षान्तरञ्च मत्स्यपुराणे—मीभगवानुवाच ।

"श्रावणस्य द्वितीयायां, कृष्णायां मधुसूदनः ।
क्षीरान्तरे सलक्ष्मीकः, सदा वसति केशवः ॥
तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्वान् कामान् समश्नुते ।
यो भूहिरण्यदानानि, सप्तकल्पशतानुगम् ॥
अशून्यशयनं नाम, द्वितीया सा प्रकीर्तिता ।
तस्यां सम्पूजयेद्विष्णुम् त्रिभिर्मन्त्रैर्विशेषतः ॥
श्रीत्वसधारिन् श्रीकान्त, श्रीवास श्रीपतेऽव्यय ।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे, यातु धर्मार्थकामद ।
अग्नयो मा प्रणश्यन्तु, देवताः पुरुषोत्तम ॥
पितरो मा प्रणश्यन्तु, मत्तो दाम्पत्यभेदतः ।
लक्ष्म्या न शून्यं वरद, यथा ते शयनं सदा ॥
शय्या ममाप्यशून्यास्तु, तथैव मधुसूदन ।
गीतवादित्रनिर्घोषं, देवदेवस्य कारयेत् ॥
घण्टा भवेदशक्तस्य, सर्ववाद्यमयी यतः ।
एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात्तैलवर्जितम् ॥
नक्तमक्षारलवणं, यावत्तस्य चतुष्टयम् ।
ततः प्रभाते सञ्जाते, लक्ष्मीं पतिसमन्विताम् ।
दीपान्नभाजनैर्युक्ताम्, शय्यां दद्याद्विलक्षणाम् ।
पादुकोपानहच्छत्रचामरासन-संयुताम् ॥
अभीष्टोपस्करैर्युक्ताम्, शुक्लपुष्पाम्बरावृताम् ।
सोपधानकविश्रामां, फलैर्नानाविधैर्युताम् ॥
तथाभरणमाल्यैश्च, यथाभक्त्या समन्विताम् ।
अव्यङ्गाय च विप्राय, वैष्णवाय कुटुम्बिने ॥
दातव्या वेदविदुषे, न च कुप्येत कस्यचित् ।

तत्रोपविश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः ॥
पत्न्यास्तु भाजनं दद्यात्, भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ।
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम् ॥
प्रतिमां देवदेवस्य, सोदकां विनिवेदयेत् ।
एवं यस्तु पुमान् कुर्य्यादशून्यशयनं हरेः ॥
वित्तशाठ्येन रहितो, नारायणपरायणः ।
न तस्य पत्न्या विरहः, कदाचिदपि जायते ॥
नारी वा विधवा ब्रह्मन्, यावच्चन्द्रार्कतारकम् ।
न विरूपं न शोकार्तम्, दाम्पत्यं जायते क्वचित् ।
न पुत्रपशुरत्नानि, क्षयं यान्ति पितामह ॥
सप्तकल्पसहस्राणि, सप्तकल्पशतानि च ।
कुर्वन्नशून्यशयनं, विष्णुलोके महीयते ॥

विष्णुं संपूजयेदिति । सलक्ष्मीकं विष्णुं संपूजयेदित्यर्थः । उपक्रमे तथा कीर्त्तनात् । स्त्रियाप्येतत् क्रियमाणे कलत्रपतिपदोहो न कर्त्तव्यः । पुरुषस्य स्त्रिया चेति प्रतिक्रमात् । युगपद्विधौ प्रकृतिविकृतिभावाभावेनोहासंभवात् ।

न च समवेततार्थता, संबन्धस्योभयघटिततया पतिमत्त्वस्याशंसार्थकत्वात् । यावत्तस्याश्चतुष्टयम् यावत्कृष्णद्वितीयाचतुष्टयं स्यादित्यर्थः । एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात्तैलवर्जितमिति । पूजानन्तरमतैलाशनप्रतिपादनात् । यत्रैव दिने पूजा तत्रैव दिने अतैलाशनम् । पूजा च कृष्णद्वितीयायामेव । तस्यां पूजयेद्विष्णुमिति कीर्तनात् । यावत्तुरीया द्वितीया भवति तावत् कृष्णं प्रति द्वतीयाभतिथि, गोविन्दपूजनम् । नक्तमतैलाक्षारलवणं भोजनमित्यर्थः । ततः प्रभाते इति । चतुर्थकृष्णद्वितीयानन्तरप्रभाते शय्यादानमित्यर्थः । लक्ष्मीपतिसमन्वितामिति । लक्ष्मीप्रतिमा यत्र आराधिता तां = तदुपलक्षितां शय्यां दद्यादित्यर्थः । न तु तत्प्रतिमाविशिष्टाम् । प्रतिमायाः अप्रदानकथनात् । इति द्वितीयातिथिनिर्णयः ।

अथ तृतीया तत्कृत्यञ्च वक्ष्ये संक्षेपतोऽधुना ।
गजाननपदद्वन्द्वं नत्वा विघ्नौघनाशनम् ॥

अथ तृतीया । सा च रम्भाव्रते द्वितीयायुता ग्राह्या युग्माग्नीति निगमवचनात् । किञ्च स्कन्दपुराणे—

वृहत्तपा तथा रम्भा, सावित्रीवटपैतृकी ।
कृष्णाष्टमी तृतीया च, कर्तव्या संमुखी तिथिः ॥ इति ।
"द्वितीयया च विद्धा तु, तृतीया न कदाचन ।
कर्तव्या व्रतिभिः पुण्या, सर्वकामार्थतत्परैः ॥"
विहायैकाञ्च रम्भाञ्च, तृतीयां पुण्यवर्द्धिनीमिति ।

ब्रह्मवैवर्तेऽपि—

"रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां मुनिपुङ्गव ।
अन्येषु सर्वकार्य्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते" ॥ इति

गणो गणनाथस्तत्तिथिः चतुर्थी तद्युक्तेत्यर्थः । रम्भाव्रतन्तु भविष्ये दर्शितम्—

"भद्रे कुरु प्रयत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् ।
ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा ॥" इत्यादि

रम्भया कृतम् रम्भाख्यम् । तत्रैव—

"सौभाग्यार्थं पुरा चीर्णं, रम्भया राजसत्तम ।
तेन रम्भातृतीयेयं, परं सौभाग्यदायिनी"ति ॥

तथा च रम्भाव्रतातिरिक्ता तृतीया चतुर्थीयुतैव कार्य्या, न तु द्वितीयायुतेति सिद्धान्तः ।

यथाऽऽपस्तम्बः—

"तृतीया तु न कर्तव्या, द्वितीयोपहिता विभो ।
द्वितीयया युतां तां तु, यः करोति नराधमः ।
संवत्सरकृतेनेह, स तु धर्म्मेण मुच्यते ॥
द्वितीया शेषसँय्युक्तां, तृतीयां कुरुते नरः
स याति नरकं घोरं, कालसूत्रभयङ्करम् ॥

द्वितीयाशेषसंयुक्तां, या करोति विमोहिता ।
सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः" ॥ इति

स्कन्दपुराणे—

"तृतीया तु न कर्तव्या, द्वितीयासंयुता तिथिः ।
या करोति विमूढा स्त्री, पुरुषो वा शिखिध्वज ॥
द्वितीयासंयुतां तां तु सर्वधर्म्माद्विमुच्यते ।
विधवात्वं दुर्भगत्वं, भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥
कलाकाष्ठापि वा तत्र, द्वितीया सम्प्रदृश्यते ।
सा तृतीया न कर्तव्या, कर्तव्या गणसंयुता ।
यदिच्छेत्परमं पुण्यं व्रतकर्ता शिखिध्वज" ॥

इति निषेधसन्दोहाविकलः सिद्धान्तः । किञ्च वृहस्पतिः—

"एकादश्यष्टमी षष्ठी, पौर्णमासी चतुर्दशी ।
अमावस्या तृतीया च, उपोष्याः स्युः परान्विताः ॥ इति

आपस्तम्वोऽपि—

"चतुर्थीसंयुता या च, सा तृतीया फलप्रदा ।
अवैधव्यकरी स्त्रीणां पुत्रसौभाग्यवर्द्धिनी ।" इति

यत्तु वशिष्ठवचनम्—

"एकादशी तृतीया च, षष्ठी चैव त्रयोदशी ।
पूर्वविद्धा तु कर्तव्या, यदि न स्यात् परेऽहनि" । इति

परेद्युरत्यन्तासत्व एव जागरुकमिति मन्तव्यम् । अत्यन्तासत्त्व इत्यस्य घटिकापर्य्यन्तासत्त्व इत्यर्थः । अत एव घटिकोनतिथौ अपराजितापूजाविसर्जनविचारे कर्मानर्हत्वं रघुनन्दन-भट्टाचार्य्याः तिथितत्त्वग्रन्थे जगदुः ।

घटिकैका त्वमावास्या, प्रतिपत्तु न चेत्तदेति ।

जाबालिवचनमपि प्रमाणमनन्तचतुर्दशीविचारे वक्ष्यामः । न च

"पलं पलार्द्धं पलमष्टभागम्, यदा तृतीया गणसंयुता स्यात् ।
स्त्रियः प्रकुर्य्युश्च व्रतं तदा सा, ददाति पुत्रान् सुभगा भवन्ति ।।"

इति वचनात् कथं घटिकोनकालस्य कर्म्मानर्हत्वमिति वाच्यम्, एतद्वचनस्य प्रशंसापरत्वेनाप्युपपत्तेः । वस्तुतस्तु यथाव्यवहारमादरणीयम् । शिष्टाश्च मुहूर्तमात्रसद्भावमाश्रित्य गौरीव्रतं परेद्युरनुतिष्ठन्ति । अतो गौरीव्रतं परेद्युरेव अनुष्ठेयमिति माधवाचार्य्याः—

"मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि, दिने गौरीव्रतं परे ।
शुद्धाधिकायामप्येवं, गणयोगप्रशंसनात्" ।। इति

तिथितत्त्वे भविष्यपुराणे यथा—

"या शुक्ला कुरु शार्दूल, वैशाखे मासि वै तिथिः ।
तृतीया साऽक्षया लोके, गीर्वाणैरभिनन्दिता ।।
योऽस्यां ददाति करकान्, वा विधाय समन्वितान् ।
स पाति पुरुषो वीर, लोकान्वै हेममालिनः ।।"

करकान् = कुम्भान्, हेममालिनः—सूर्य्यस्य । ब्रह्मपुराणे—

"यः पश्यति तृतीयायां, कृष्णं चन्दनचर्चितम् ।
वैशाखस्य सिते पक्षे, स यात्यच्युतमन्दिरम्" ।।

स्कन्दपुराणे—

"वैशाखस्य सिते पक्षे, तृतीयाऽक्षयसंहिता ।
तत्र मां लेपयेद् गन्धलेपनैरतिशोभनैः ।।"

ब्रह्मपुराणे—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु, तृतीयायां जनार्दनः ।
यवानुत्पादयामास, युगञ्चाद्यञ्च वैकृतम् ।।
ब्रह्मलोकत्रिपथगाम् पृथिव्यामवतारयेत् ।
तस्यां कार्य्यो यवैर्होमैः यवैर्विष्णुं समर्चयेत ।।

यवान् दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान् ।
पूजयेच्छङ्करं गङ्गां, कैलासञ्च हिमालयम् ॥
भागीरथीञ्च नृपतिं, सगराणां सुखावहम् ।
स्नानं दानं तपः श्राद्धम्, जपहोमादिकञ्च यत् ॥
श्रद्धया क्रियते तत्र, तदानन्त्यायकल्पते ।

स्मृतिः—

वैशाखे मासि राजेन्द्र, शुक्लपक्षे तृतीयका ।
अक्षया सा तिथिः प्रोक्ता, कृत्तिका रोहिणीयुता ॥
तस्यां दानादिकं पुण्यम् , अक्षयं समुदाहृतम् ।

अथ रुद्रधरोपाध्यायाः—अथाक्षयतृतीया—तत्र विष्णुः—वैशाखशुक्लतृतीयायामुपोषितोऽक्षतैर्वासुदेवमभ्यर्च्य अक्षतैर्हुत्वा च पूतो भवति । यच्च तस्मिन्नहनि प्रयच्छति तदक्षयमाप्नोति । तत्र द्वितीयायामुपोष्य तृतीयायां पूर्वाह्णे कृतस्नानादिराचान्तः कुशादीन्यादाय ॐ अद्य सर्वपापक्षयकामोऽक्षतैर्वासुदेवपूजनमक्षतहोमञ्चाहं करिष्ये इति संकल्प्य, वासुदेवपूजा अक्षतेनैव कर्तव्या अक्षतेनैव वासुदेवमुद्दिश्य होमः कर्तव्यः यवदाने विष्णुधर्म्मोत्तरे—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु, तृतीयायां द्विजोत्तम ।
यद्ददाति नरश्रेष्ठ तदक्षयमश्नुते ॥
वैशाखेन तथा दानमक्षतानां महाफलम् ।

अक्षतानाम् = यवानाम् । तत्र कृतस्नानादिः पूर्वाह्णे यवान् सम्पूज्य, ॐ अद्य वैशाखशुक्लतृतीयायामतिशयिताऽक्षययवदानफलप्राप्तिकामनया एतान् यवान् विष्णुदेवतान् यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृज्ये । द्रव्यान्तरदाने—ॐ अद्य वैशाखशुक्लतृतीयायामक्षयितद्रव्यदानफलप्राप्तिकामनया इदं द्रव्यं विष्णुदैवतमित्यादि । धर्मघटदाने देवीपुराणे—

तृतीयायां तु वैशाखे, रोहिण्यर्थे प्रपूजयेत् ।
उदकुम्भप्रदानेन, ब्रह्मलोके महीयते" ॥

रोहिणीसंयोगे देवीं तत्र प्रपूजयेत् । घटदानेन ब्रह्मलोकः । तत्र वाक्यम् । अत्र

वैशाखशुक्लतृतीयायां रोहिणीयुक्तायां ब्रह्मलोकमहीयस्त्वकामनया इदमुदकुम्भं विष्णुदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृज्ये। यदा तु रोहिणी न भवति तदा स्वर्गप्राप्तिकामनया यवप्रकारेण दद्यात्। तथा–

वारिदानं प्रशस्तञ्च, मोदकानां तथैव च।
वैशाखे मासि राजेन्द्र, तृतीया चन्दनस्य च॥
वारिणा तुष्यते देवी, मोदकैर्भव एव च।
दानं हि चन्दनस्येह कञ्जजो नात्र संशयः॥

... पुस्तकालय ... 8564

तृतीया तृतीयायाम्। कञ्जजो ब्रह्मा। तत्राद्यवैशाखशुक्लतृतीयायाम् गौरी प्रीतिकामनया इदं वारि वरुणदैवतम् यथानामगोत्रायेत्यादिवाक्यम्। भवप्रीतिकामनया एतानि मोदकानि ब्रह्मप्रीतिकामनया इदं चन्दनमित्यादिप्रकारः। तथा :—

योऽस्यां ददाति करकान् वारिधान्यसमन्वितान्॥
स याति पुरुषो वीर लोकं वै हेमकालिनः।

करकान् = कमण्डलून्। वारिपूर्णान् = उपरिनिहितधान्यपूर्णभाजनान्। हेममाली सूर्य्यः। तत्र वाक्यम्। ॐ अद्य वैशाखशुक्लतृतीयायां हेमिमालिलोकप्राप्तिकामनया इमान् करकान् वारिधान्यसमन्वितान् यथानामगोत्रायेत्यादि। वैशाखशुक्लतृतीया युगादिरपि। तस्यां श्राद्धं पूर्वाह्णे कर्तव्यम्। अत्र शुक्लपक्षयुगादिश्राद्धम् पूर्वाह्णे कर्तव्यमिति शूलपाण्युक्तेः। किञ्च मार्कण्डेयोऽप्याह—

शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे, श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः।
कृष्णपक्षाऽपराह्णे तु. रोहिणं न तु लङ्घयेत्"॥ इति

अत्र रोहिणम् = पञ्चधाविभक्तदिनस्य नवमो भागः। इयञ्च तृतीया = परशुरामजयन्ती, सा च प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या।

वैशाखस्य सिते पक्षे, तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥
सोच्चगैः खड्ग हैर्युक्ते, मिथुने राहुसंस्थिते।
रेणुकायां तयोर्गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्"॥

इति स्कान्दभविष्योर्वचनात्। दिनद्वये तद्व्याप्तौ चांशतः समव्याप्तौ च परा।

अन्यथा पूर्वैव । कृत्यमहार्णवे—भविष्योत्तरे—

वैशाखस्य तृतीयायां, श्रीसमेतं जगद्गुरुम् ।
नारायणं पूजयेत्तु, पुष्पधूपविलेपनैः ॥
वस्त्रालङ्कारसंभारैः, नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।
ततस्तस्याग्रतो धेनुः, लवणस्याढके न तु ॥
कार्य्या कुरुकुलश्रेष्ठ, चतुर्भागः सवत्सकः ।
रुरुचर्म्मोपरिस्थाप्य, कल्पयित्वा विधानतः ॥
शास्त्रोक्तक्रमयोगेन, ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमान् ; श्रीशः संप्रीयतामिति ।
अनेन विधिना दत्त्वा, धेनुं विप्राय भारत ॥
गोसहस्रशतगुणम्, प्राप्नोतीह न संशयः ।

अत्र श्राद्धमप्यक्षयम्—

युगाद्यन्तेषु श्राद्धमक्षयमुच्यते ।

इति ब्रह्मपुराणवचनात् । अत्र चोदयगामिन्यां स्नानदानादिदैवं कर्म्म पूर्वाह्णे कर्तव्यम् । सन्देहे बीजाभावात् । उभयतिथिभेदे तृतीयायाः उभयतत्काललाभे उत्तरदिने—

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च, सप्तमी पार्वतीप्रिया ।
सूर्य्योदयमपेक्षन्ते, न तत्र तिथियुग्मते" ॥

इति देवीपुराणवचनात् । युगाद्या इति पुण्यकालत्वेनैव पौर्णमास्यादेरप्युपलक्षणम् । वर्षवृद्धिः = जन्मदिनम् । पार्वतीप्रिया = पत्रिकाप्रवेशसप्तमी । श्राद्धे तु तत्कालव्यापिनी तृतीया ग्राह्या । दिनद्वयेऽपि मध्याह्ने तल्लाभे तल्लाभे पूर्वदिन एव कपालाधिकरणन्यायात् । 'न च रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु गणयुक्ता प्रशस्यत' इति देवीपुराणब्रह्मवैवर्तवचनात् अत्रापि चतुर्थीविद्धा ग्राह्या, तस्य वेधप्रकरणाम्नातत्वेन अखण्डतिथ्यविषयत्वात् । अत्र ज्यैष्ठशुक्लतृतीयायां पञ्चाग्निव्रतमिति दैवज्ञबान्धवे । भाद्रकृष्णतृतीया = कज्जलतृतीया । सा परयुता ग्राह्या तिथिद्वयवेधे सति । शुद्धा चेद्विवादाभावः दिवोदासवाक्यात् । भाद्रशुक्लतृतीयायां हरितालीव्रतमिति ज्योतिर्लिखनम् ' हरितालीव्रते तृतीया परयुता ग्राह्या '

मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे

शुद्धाधिकायामप्येवम्, गणयोगप्रशंसनात् ॥

इति कालमाधवीये । दिवोदास आह--

आद्या मधुश्रावणिका, कज्जली हरितालिका

चतुर्थीमिश्रिता स्त्रीभिर्दिवा नक्तं विधीयते ॥

तृतीया न तु सा शुक्ला, मधुश्रावणिका मता ।

भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका ॥ इति । अनेन विधि-

ना श्रावणशुक्लतृतीयायां, मधुश्रावणीव्रतस्यापि निर्णय इति बोध्यम् ।

इति तृतीयानिर्णयः

अथ चतुर्थी

चतुर्थी तदीयकृत्यं, यथाशक्तिप्रमाणतः ।

कथयामि मतङ्गास्यचरणौ हृदि भावयन् ॥

चतुर्थी परयुता ग्राह्या ऋतुभूतानीति युग्मवचनात् ।

एकादशी तथा षष्ठी, अमावास्या चतुर्थिका ।

उपोष्याः परसंयुक्ताः, पराः पूर्वेण सँय्युताः ॥ इति वृद्धवशिष्ठवचनाच्च ।

विनायकचतुर्थी तृतीयायुतैव कार्य्या ।

चतुर्थीगणनाथस्य, मातृविद्धा प्रशस्यते । इति वचनात् ।

माता तृतीया तया विद्धेत्यर्थः ।

"चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा ॥

कर्तव्या व्रतिभिर्वत्स, गणनाथसुतोषिणी" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनाच्च । किञ्चात्र प्रमाणम् ।

"कृष्णाष्टमी चतुर्थी च, सावित्री वटपैतृकी ।

शुक्लत्रयोदशी रम्भा-नोपोष यापरसँय्युता" ॥ इति

भाद्रशुक्लचतुर्थी गणेशचतुर्थी । एवं माघशुक्लचतुर्थी, गौरीकुण्डलचतुर्थी तृतीया-युतैवोपोष्या ।

गौरी चतुर्थी वटधेनुपूजा, दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिका च ।
वत्सस्य पूजा शिवरात्रिरेताः, परा विनिघ्नन्ति नृपस्य राज्यम् ॥

इति पुराणसमुच्चयवचनात् । वत्सद्वादशीविहितधेनुपूजा । पराः = परयुताः । विनायकव्रते कालमाधवीये तु मध्यह्नव्यापिनी मुख्या यथा वृहस्पति—

चतुर्थी गणनाथस्य, मातृविद्धा प्रशस्यते ।
मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्, परतश्चेत् परेऽहनि ॥ इति

प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा, मध्याह्ने पूजयेन्नृप "इतिवाक्यान्तरात् परदिने तत्त्वे परा अन्यथा पूर्वैव ।

त्र ब्रह्मवैवर्तवचनमपि—

चतुर्थीसँय्युता कार्य्या तृतीया च चतुर्थिका ।
तृतीयया युता नैव पञ्चम्या कारयेत्क्वचित् ।

तृतीयान्वितानिषेधकत्वे क्वचिदित्यनुपपत्तेः । भविष्ये—

अमा वै सोमवारेण, रविवारेण सप्तमी ।
चतुर्थी भौमवारेण, अक्षयादपि चाक्षया ॥

अनेन भौमवारेण सँय्युतायाश्चतुर्थ्याः अतिप्राशस्त्यं सूचितम् । भाद्र शुक्लचतुर्थी = संकटचतुर्थी । सा च मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या सा च द्विधा शुद्धा विद्धा च । तत्र तिथिद्वयवेधसम्भवे व्यवस्थामाह वृहस्पतिः—"चतुर्थी गणनाथस्येत्यादि ।"

मातृविद्धा प्रशस्ता स्यात्, चतुर्थी गणनायके।
मध्याह्ने मातृतश्चेत्स्यात्, नागविद्धा प्रशस्यत ॥

इति माधवीये स्मृत्यन्तरञ्च । इयं रविभौमयोरतिप्रशस्ता । परदिन एव अंशेन साकल्येन वा मध्याह्नव्याप्त्यभावे सर्वेषु पक्षेषु पूर्वयुता ग्राह्येत्यर्थे गुरुवाक्यं यथा—

भाद्रशुक्लचतुर्थी या, भौमेनार्केण वा युता ।
महती चात्र विघ्नेशादिष्टत्वं लभते नरः ॥

इति भविष्यपुराणे युधिष्ठिरं प्रति कृष्णवाक्यम् ।

अथ कथा—

युधिष्ठिर उवाच—

देवदेव जगन्नाथ, प्रणतार्तिविनाशन ।
यद्वर्तते मे हृदये, त्वाम्पृच्छामि वद प्रभो ॥
आपत्सु वर्तमानानां नृणां व्याकुलचेतसाम् ।
चिन्तया ग्रस्तमनसां, वियोगात् सुहृदान्तथा ॥
दुर्लभं प्राप्तये नित्यं, कार्य्यसिद्धिः कथम्भवेत् ।
अर्थसिद्धिः नृणां पुत्रपौत्रसौभाग्यसम्पदः ॥
सर्वसंकटनाशाय, किं कार्य्यम् मानवैः प्रभो ।

श्रीकृष्ण उवाच—

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि, विधानं सर्वकामदम् ॥
गणेशं पूजयेद्भक्त्या, मन्त्रैरागमसम्भवैः ।
कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां वै, निशि चन्द्रोदये नृप ॥
ओषधीभिः कृष्णतिलैः, दिवा स्नायात् प्रसन्नधीः ।
कार्य्यं सञ्चिन्त्य मनसा, ध्यात्वा देवं गजाननम् ।
नित्यकार्य्यं समाप्यादौ, निशि चन्द्रोदये नृप ॥
तत्र पीठं गणेशस्य, पूजयेत्कुंकुमाक्षतैः ।
स्वयं नो वेत्ति गणकान्, कारयेच्च यथाविधि ।
स्थापयेत्तत्र देवेशमागमोक्तविधानतः ॥
पाद्यार्घाचमनस्नानैः, पृथक् पञ्चामृतादिभिः ।
उपचारैः षोडशभिः, मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥

मन्त्रो यथा—ओँ नमो हेरम्बाय, लम्बोदराय मम सर्वसंकटनिवारणाय स्वाहा ।

इन्द्रादिलोकपालांश्च मन्त्रैरभ्यर्चयेत् सुधीः ।
ततो दूर्वाङ्कुरानेकविंशत्येव च भक्तितः ॥

एभिर्नामपदैर्देवमर्चयेत्सुसमाहितः ।
गणाधिप नमस्तुभ्यम्, उमापुत्राघनाशन ।।
एकदन्तेभवक्त्रेति, तथा मूषकवाहन ।
विनायकेशपुत्रेति, सर्वसिद्धिप्रदायक ।।
कुमारगुरवे तुभ्यम्, सर्वसंकटनाशन ।
प्रार्थयेच्च ततो देवम्, भक्तिनम्रः प्रसन्नधीः ।
विघ्नराज नमस्तुभ्यम्, उमापुत्राघनाशन ।।
यदुद्दिश्य व्रतं तेऽद्य, यथाशक्तिप्रपूजनम् ।
तेन तृप्तिं समासाद्य, हृत्स्थान् कामान् प्रपूरय ।
विघ्नान् नाशय मे सर्वान्, नाशयोपस्थितान् विभो ।।
त्वत्प्रसादेन कार्य्याणि, सर्वाणीह करोम्यहम् ।
शत्रूणां बुद्धिनाशञ्च, मित्राणामुदयं कुरु ।।
इति विज्ञाप्य देवेशम्, प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
ततो होमं प्रकुर्वीत, शतमष्टोत्तरं नृप ।
पायसाज्यतिलैर्दूर्वाहोमं कृत्वा यथाविधि ।।
मोदकैर्वायनं कार्य्यम्, व्रतसम्पूर्त्तिहेतवे ।
लड्डुकैर्वटकाद्यैर्वा, सप्तभिः फलसंयुतैः ।।

वायनमन्त्रः विशेषो यथा—

मोदकान् सप्तसंख्याकान्, घृताक्तान् फलसँय्युतान् ।
गृहाण त्वं सुरश्रेष्ठ, व्रतस्य परिपूर्तये ।
गणेशप्रीणनार्थाय, आचार्य्याय निवेदयेत् ।
कथां श्रुत्वा ततः पुण्यां, दद्यादर्घं समाहितः ।
चन्द्रोदयेऽथ सञ्जाते, मन्त्रेणानेन पार्थिव ।
क्षीरोदार्णवसम्भूत, लक्ष्मीभ्रातर्निशाकर ।
गृहाणार्घं मया दत्तं, रोहिण्याः सहितप्रभो ।।

ततश्च भोजयेद्विप्रान्, एकविंशतिसंख्यकान् ।
स्वयं भुञ्जीत तच्छेषं, यच्छेषं ब्राह्मणार्पितम् ॥
सप्तग्रामानसौ शक्तो, ह्यशक्तश्च यथासुखम् ।
व्रतं कुर्य्यात्तु मासेषु, चतुर्ष्वपि विधानतः ॥
उद्यापनं पञ्चमे च, कुर्य्याद्धीमान् प्रसन्नधीः ।
एकाविंशतिविप्रांश्च वरयेत् भोजयेत्ततः ॥
सौवर्णं वक्रतुण्डञ्च, रौप्यं कृत्वा विधानतः ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन, वरयेद्भोजयेत्ततः ।
चन्दनेन सुगन्धेन, पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ॥
नारिकेलफलैश्चैव, दद्यादर्घं समाहितः ।
भक्ष्यं भोज्यञ्च नैवेद्यं, नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥
फलैरन्यैश्च विविधैः, तोषयेद्गणनायकम् ॥
तेनैव भोजयेद्विप्रान्, विघ्नेशः प्रीयतामिति ॥
ततो भक्तिमते दद्यात्, वायनं फलसँय्युतम् ।
मुपायनेन सम्पूर्णम्, रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् ॥
सौवर्णं वक्रतुण्डञ्च, दद्याच्चैव समाहितः ।
ततः क्षमापयेद्विप्रान्, विघ्नेशः प्रीयतामिति ॥
इत्थं सोद्यापनं कुर्य्यात्, अश्वमेधफलं लभेत् ।
सर्वकार्य्याणि सिद्ध्यन्ति, मनसा वाञ्छितान्यपि ॥
पुरा स्कन्दे गते राजन्, पार्वत्या च कृतं किल ।
चतुर्ष्वेव तु मासेषु, हरवाक्येन पार्थिव ॥
पञ्चमे मासि दृष्टस्तु, कार्तिकेयो ह्यपर्णया ।
समुद्रपानवेलायामगस्त्येन तथाकृतम् ॥
त्रिषु मासेषु विघ्नेशप्रसादात् पीतवान् द्विजः ।
षड् मासानधिराजेन्द्र, दमयन्त्या कृतं त्विदम् ॥

नलमन्वेषयन्त्या च, ततो दृष्टो नलोऽभवत् ।
नीतोऽनिरुद्धो वाणस्य, नगरीं चित्रलेखया ॥
क्व गतः केन नीतोऽसौ, यादवान् व्याकुला गता ॥
प्रद्युम्नं पुत्रशोकार्ता, रुक्मिणी प्रत्यभाषत ।
शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि, यद्वृत्तं मामके गृहे ॥
सस्वरेण पुरा नीते, बालके त्वयि यद्दिने ।
त्वद्वियोगेन दुःखेन, हृदयं मे व्यदीर्यत ॥
इति चिन्ताकुलायाः मे, गतान्यब्दानि भूरिशः ॥
ततोऽथ दैवयोगेन, लोमशो मुनिरागतः ॥
तेन दिष्टं हि विधिवत्, सर्वचिन्ताहरं व्रतम् ।
चतुर्थ्यां हि चतुर्वारं, मया व्रतमिदं कृतम् ॥
तत्पश्चात्तु समायातो, हत्वा शम्बरमाहवे ।
त्वमेवन्तत् प्रकुर्वन्तु, ततो ज्ञास्यसि वै व्रतम् ॥
प्रद्युम्नेन कृतं राजन्, गणनाथस्य तोषणम् ।
श्रुत्वा बाणासुरपुरेऽनिरुद्धो नारदात्ततः ॥
आनीतो ह्यूपया सार्द्धमनिरुद्धो नृपोत्तम ।
प्राग् वै देवासुरनरैः, कृतं विघ्नोपशान्तये ॥
ऋषिभिश्चैव देवैश्च, यक्षराक्षसकिन्नरैः ।
आपद्यपि च कष्टायां, रोगाणां शान्तये नृप ॥
इति श्रुत्वा कथां राजन्, स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।
जानुमध्ये करं कृत्वा, गणेशं हृदि चिन्तयेत् ॥
शेषञ्च द्विजदेवानां, भोक्तव्यं सह बान्धवैः ।
कार्य्यं बहुषु मासेषु, प्रेक्ष्य कार्य्यस्य सारताम् ।
बहुना च किमुक्तेन, कार्य्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।
नोपदेश्यस्त्वभक्ताय, नास्तिकाय शठाय च ॥

देयं शिष्याय पुत्राय, श्रद्धायुक्ताय साधवे ।
मम प्रियोऽसि राजेन्द्र, धर्म्मतः पाण्डुनन्दन ॥
तस्मात् सर्वेषु कालेषु, कर्तव्यं हितमिच्छता ।
सिद्धिदं सर्वलोकानां, नान्यथा कथितं मया ॥
यदा यदा पश्यति कार्य्यमुद्भटं, नारी नरो वा विदधातु तद्व्रतम् ।
सिद्ध्यन्ति कार्य्याणि यथेप्सितानि किं दुर्लभं विघ्नहरे प्रसन्ने ॥

इति श्रीभविष्यपुराणे कृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे संकटनाशनचतुर्थीकथा समाप्ता ।

तथा च तृतीयादिवसे प्रहररात्रिमध्ये गदाचतुर्थी तदेव विनायकव्रतं शस्तम् । निशिचन्द्रोदये नृपेत्यभिधानेन पूजाविधानात् । यदा तु पूर्वदिने चन्द्रोदय-व्यापिनी प्रथमयामे चतुर्थी न प्राप्ता तदाग्रिमदिन एव विनायकव्रतमिति बोध्यम् । तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु माघकृष्णचतुर्थी = गणेशचतुर्थी । अत्र गणेश आविरभूत् ।

सर्वदेवमयं साक्षात्, सर्वमङ्गलकारकः ।
माघकृष्णचतुर्थ्यान्तु, प्रादुर्भूतो गणाधिपः ॥

इति शिवधर्म्मोक्तेः । सा च तृतीयायुता ग्राह्या । अत्रैव विनायकव्रतं कृत्वा श्रीगणेश-मूर्तिं निर्माय रात्रौ जागरणं पञ्चोपचारिकां पूजां कृत्वा तत्प्रीत्यर्थम् ब्राह्मणान् भोजयेत् । लड्डुकादिकञ्च दद्यात् । धनधान्यादिसमृद्धिश्च फलमिति बहुपुराणागमादौ रूढः पन्थाः । ब्रह्मवैवर्तेऽपि यथा——

चतुर्थी सँय्युता कार्य्या, तृतीया च चतुर्थिका ।
तृतीयया युता नैव, पञ्चम्या कारयेत् क्वचित् ॥ इति

पञ्चमीयुताऽपि चतुर्थी कापि गणेशोद्भवा तिथिर्न पूज्या । अतो मासि गणेशदे-वताका चतुर्थी तिथिर्निबन्धमात्रेऽपि सिद्धा तत्र विशेषवचनं यथा——

गणेशगौरीबहुला, व्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः ।
चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धाः देवतान्तरयोगतः ॥

इति वचने यत्र च चन्द्रो देवः पूज्यः तत्र पञ्चमीवेध एव न्याय्यः। तेन भाद्रशुक्ल-चतुर्थ्यां तथैव ग्राह्यमिति मैथिलसम्प्रदायः।

गुरुरप्याह—परदिननवांशने साकल्येन वा मध्याह्नव्याप्त्यभावेन सर्वेषु पक्षेषु पूर्वा ग्राह्या।

चतुर्थी गणनाथस्य, मातृविद्धा प्रशस्यते।
मध्याह्नव्यापिनी चेत् स्यात्, परतश्च परेऽहनि॥ इति

तथा—

मतृविद्धा प्रशस्ता स्यात्, चतुर्थी गणनायके।
मध्याह्ने परतश्चेत्स्यात्, नागविद्धा प्रशस्यते॥ इति

माधवीये स्मृतिवचनाभ्याम् तथा लाभात्। इति मैथिलस्मार्ताः। स्मृतिः—

"त्रयोदश्याश्चतुर्थ्याश्च, सप्तम्याः द्वादशीतिथेः।
प्रदोषेऽध्ययनं धीमान्न कुर्वीत यथाक्रमम्॥" इति

प्रदोषोऽत्र प्रथमप्रहर इति हेमाद्रिः। रात्रिपर इति निर्णयामृतः। किञ्च ज्योतिषे—

"अर्कतर्कात्रितिथिषु, प्रदोषः स्यात्तदग्रिमैः।
रात्र्यर्द्धसार्द्धप्रहरयाममध्यस्थितैः क्रमात्॥" इति

अत्रापि चतुर्थ्याः रात्रिप्रथमप्रहर एव प्रदोषपदवाच्यः। यद्यपि नानाविधिविधायकानि बहूनि वचनानि सन्ति तत्कुत एकतरनिश्चयः स्यात्। तथापि स्थलबाहुल्येन यथाव्यव-हारमादरणीयानि इति। किञ्च भविष्यपुराणे—

"शिवा शान्ता शुभा राजन्, चतुर्थी विविधा स्मृता।
मासि भाद्रपदे पुण्या, शिबा लोकेषु पूजिता॥
तस्यां स्नानं तथा दानमुपवासो जपस्तथा।
क्रियमाणं शतगुणं, प्रसादात्, दन्तिनो नृप॥
गुडलवणघृतानां, दानं शुभकरं स्मृतम्।
गुडापूपैस्तथावीर, पुण्यं ब्राह्मणभोजनम्॥
यास्तस्मान्नर शार्दूल, पूजयन्ति सदा स्त्रियः।
गुडलवणादिपूपैश्च, श्वश्रूं श्वशुरमेव च॥

ताः सर्वा शुभगा वै स्युः, विघ्नेशस्यानुमोदनात् ।

कन्यका तु विशेषेण, विधिनाऽनेन पूजयेत् ॥" इति

दन्तिनो = गणपतेः । कन्यकातु गुडादिना गणपतिमेव पूजयेत् । तस्यैव एतद्व्रतदेवतात्वात् । श्वश्रूश्वशुरयोः बाधात् ।

स्मृतिः—

"भाद्रशुक्लचतुर्थ्यान्तु, पूजयेत् पार्वतीं शुभाम् ।

तस्यां वै पूजितायां तु, सौभाग्यं न विहन्यते ॥

तिथितत्त्वप्रदीपे तु —चतुर्थी सा च शुक्ला पञ्चमीयुता । भौमवारयुताक्षया । विनायकव्रते तु तृतीयायुता । ज्यष्ठशुक्ला उमाचतुर्थी । सिंहार्के शुक्ला = हरिताली । माघशुक्ला = वरदाचतुर्थी इति । भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनं निषिद्धम् । तदाह—मार्कण्डेयः—

"सिंहादित्ये शुक्लपक्षे, चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् ।

मिथ्याभिदूषणं कुर्य्यात्, तस्मात् पश्येन्न तं सदा" ॥ इति ।

अत्र चतुर्थ्यां चन्द्रं न पश्येदित्यनेन चतुर्थ्यामेव चन्द्रस्य दर्शने निषेधः । पञ्चम्यां तु दोषाभावः इत्युन्नीयते । परासरोऽप्याह—

"कन्यादित्ये चतुर्थ्यान्तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् ।

मिथ्याभिदूषणं कुर्य्यात् , तस्मात् पश्येन्न तं सदा" ॥ इति ।

सिंहार्काधिकारे ब्रह्मपुराणे—

"नारायणाभिशस्तस्तु, सुधाकरमरीचिषु ।

स्थितश्चतुर्थ्यामद्यापि, मनुष्याणां पतिश्च सः ॥

अभिशस्तः, परीवादविषयो जातः । विष्णुपुराणे—

"अतः चतुर्थ्यां चन्द्रं तु, प्रमादाद्वीक्ष्य मानवः ।

पठेद्धागेयिकावाक्यम् , प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥

धागेयिकावाक्यं तु तत्रैव—

"सिंहःप्रसेनमवधीत् , सिंहो जाम्बवता हतः ।

सुकुमारकमारोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः ॥ इति ।

तिथितत्त्वे तु अनेनाभिमन्त्रितं जलं पेयमाचरेत्, स्यमन्तकोपाख्यानञ्च श्रोतव्यम् । मैथिलास्तु महेशठक्कुराचाराचरणाः विविधकामनावन्तः सन्तोऽपि कृतनक्ताः हरिभक्ताः भूरिभक्ष्यदधिफलादिकानि चन्द्रमसे दिशन्ति । शरणमत्र शिष्टाचारतैव ।

"यद्यपि स्यात् स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्याकर्षणक्षमः ।
तथापि दैशिकाचारं, मनसापि न लङ्घयेत् ॥ इति ।
"एको द्वौ बहवो वापि, यद् ब्रूयाद्धर्मपाठकाः ।
स धर्म इति बोद्धव्यो, नेतरेषां सहस्रशः" ॥

इत्यादिकं प्रमाणमेवेति हृदयम् । तिथितत्त्वप्रदीपे तु भाद्रोभयपक्षयोः चतुर्थ्याश्चन्द्रदर्शनं निषिद्धमित्याह ।

इति चतुर्थी निर्णयः

अथ पञ्चमी

पञ्चमी तत्कृत्यञ्च, वक्ष्ये संक्षेपतोऽधुना ।
एकदन्तपदद्वन्द्वाऽऽनतो धीधनतुष्टये ॥

सा चोपवासादिषु बाधकमन्तरेण चतुर्थीयुतैव कार्य्या । ऋतुभूतानीति युग्मवाक्यात् ।

प्रतिपत्पञ्चमीभूतसावित्री वटपूर्णिमा ।
नवमी दशमी चैव, नोपोष्याः परसंयुताः ॥

इति वचनाच्च । किञ्च हारीतोऽप्याह—

"चतुर्थीसंयुता कार्य्या, पञ्चमी परया न तु ।
दैवे कर्म्मणि पित्र्ये च, शुक्लपक्षे तथाऽसिते" ॥ इति
"पञ्चमी सप्तमी चैव, दशमी च त्रयोदशी ।
प्रतिपन्नवमी चैव, कर्तव्या संमुखी तिथिः" ॥

इत्यपि वचनमसति बाधके पूर्वविधायकम् । श्रावणकृष्णपञ्चमीमौनाख्या सा नागपूजायामपि पूर्वविद्धैव कार्य्येत्यर्थस्य बहुमतसाधारण्यमायाति । तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु

श्रावणकृष्णपञ्चम्यपि नागपञ्चमी शुद्धा अहोरात्रव्यापिनी ग्राह्या। विद्धा तु पञ्चमी षष्ठी-युता ग्राह्या।

"पूर्वाह्णे कृष्णपक्षे तु, नागतोषकरी तिथिः।
पञ्चमो तु प्रकर्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनात्। एतेन श्रावणकृष्णापि पञ्चमी नागपूजायां षष्ठीयुतैव कार्य्येति सिद्धम्। चमत्कारचिन्तामणौ तु—

"पञ्चमी नागपूजायां, कार्य्या षष्ठीसमन्विता।
तस्यां तु तुषिता नागाः, इतरा सचतुर्थिका ॥ इति।

तेन नागपूजायां पक्षयोरुभयोरपि परयुतैव कार्य्येति तथैव मैथिलस्मार्तसिद्धान्तः। न च श्रावणशुक्लपक्षस्य पञ्चमी नागपञ्चमीति वचनात् कथं कृष्णपक्षस्य पञ्चम्याः नागपञ्चमीत्वमिति वाच्यम्, नागपञ्चमीत्यस्य नागपूजाप्रधानकपञ्चमीत्यर्थकरणाददोषात्। किञ्च तिथितत्त्वे देवीपुराणे—

सुप्ते जनार्दने कृष्णे पञ्चम्यां भवनाङ्गणे।
पूजयेत् मनसा देवीं, स्नुहीविटपसंस्थिताम् ॥
पद्मनाभे गते शय्यां, देवैः सर्वैरनन्तरम्।
पञ्चम्यामसिते पक्षे, समुत्तिष्ठति पञ्चमी ॥
देवीं सम्पूज्य नत्वा च, न सर्पभयमाप्नुयात्।
पञ्चम्यां पूजयेन्नागान्, अनन्ताद्यान्महोरगान् ॥
क्षीरसार्पिस्तु नैवेद्यं, देयं सर्पविषापहम्" ॥

मनसादेवी = विषहरा। स्नुही = बीजवृक्षः। नामान्याह—

अनन्तं वासुकिं शंखं, पद्मं कम्बलमेव च।
तथा कर्कोटकं नागं, धृतराष्ट्रञ्च शंखकम् ॥
कालियं तक्षकं चैव, पिङ्गलं मासि मासि च।
यजेत्तानसितान् नागान्, दंष्ट्रमुक्तो दिवं व्रजेत् ॥

दंष्ट्रमुक्तः = दंशेन मुक्तः ।

शेषः पद्मा महापद्मः, कुलिकः शंखपालकः ।
वासुकिः तक्षकश्चैव, कालियो मणिभद्रकः ॥
ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटक-धनञ्जयौ ।

अत्र च :

यो मामनन्तरूपेण, ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
पुष्पवद्धारयेन्मूर्द्धिन्, तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

अनेन मात्स्यपुराणोक्तेनानन्तं पूजयेत् ।

रत्नाकरे—

पिचुमर्दनस्य पत्रांश्च, स्थापयेद् भवनोदरे ।
स्वयं चार्पितमश्नीयात्, ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥

कृत्यमहार्णवे—नागपञ्चमीकृत्यम् । भविष्यपुराणे—

श्रावणे मासि पञ्चम्यां, शुक्लपक्षे नराधिप ।
द्वारस्योभयतो लेख्याः, गोमयेन विषोल्बणाः ॥
पूजयेद्विधिवद्वीर, दधि-दूर्वाङ्करैः कुशैः ।
गन्धपुष्पोपहारैश्च, ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः ॥
ये त्वस्यां पूजयन्तीह, नागान् भक्तिपुरस्सराः ।
न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित् ॥

इयं च शुक्ला पञ्चमी माण्डरब्राह्मणैः शूद्रैश्च पूज्याः ज्ञेयाः ।

नागास्तु वासुकी-तक्षक-कालिय-मणिभद्र-ऐरावत-धृतराष्ट्र-कर्कोटक-धनञ्जयाः । व्रतपद्धतौ श्रावणे मासि कृष्णपञ्चम्यां स्नुहीवृक्षे विषहरापूजा । तिक्त-कषाय-मधुराणां भक्षणं कर्तव्यमिति तिथितत्त्वप्रदीपे—

पञ्चमी माघशुक्ला सीरपञ्चमीति । पुराणसमुच्चये—

माघे मासि सुरश्रेष्ठ, शुक्लायां पञ्चमीतिथौ ।
रतिकामौ तु सम्पूज्य, कर्तव्यस्तु महोत्सवः ॥

इति भविष्योत्तरे—माघशुक्लपक्षमधिकृत्य,

चतुर्थी वरदानाम, तस्यां गौरी सुपूजिता ।
सौभाग्यमतुलं कुर्य्यात्, पञ्चमी श्रीरपि श्रियः ॥

संवत्सरप्रदीपे—

पञ्चम्यां पूजयेल्लक्ष्मीं पुष्पधूपान्नवारिभिः ।
मस्याधारं लेखनीञ्च पूजयेन्न लिखेत्ततः ॥
माघे मासि सिते पक्षे, पञ्चमी या श्रियः प्रिया ।
तस्याः पूर्वाह्ण एवात्र, कार्य्यः सारस्वतोत्सवः ॥ इति

अत्र सारस्वतोत्सव इत्युपादानात्, श्रियः = सरस्वत्याः । तथा च व्याडिः—

लक्ष्मीःसरस्वती धात्री, त्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु ।
उपकरणवेशरचनाविविधासु श्रीरिति प्रथिता ॥

मत्स्यसूक्ते—बन्धुजीवञ्च द्रोणञ्च सरस्वत्यै (न दापयेदिति)। भाद्रशुक्ल-पञ्चमी = ऋषिपञ्चमी । सा परा ग्राह्येति हेमाद्रिरप्याह—

सिता तु परयुता स्यात्, पञ्चमी तिथिदीपिका ।

कालमाधवाचार्य्यमते सर्वत्र पञ्चमी पूर्वेत्युक्तेः ।

पूर्वविद्धा प्रशस्ता तु, सर्वत्र ऋषिपञ्चमी षष्ठीयुतैवेति दिवोदासः ।

भुजबलभीमे—

मार्गे च फाल्गुनाषाढकार्तिकेषु सितेतरे ।
माघस्य पञ्चमी शुक्ला, निषिद्धा व्रतबन्धने ॥ इति

तिथितत्त्वचिन्तामणौ—मार्गशुक्लपञ्चम्यां नागपूजा प्रोक्ता ।

स्कन्दे—

शुक्ला मार्गशिरे पुण्या, श्रावणे या च पञ्चमी ।
स्नानदानैर्बहुफला, नागलोकप्रदायिनी ॥

इयमपि पञ्चमी नागपूजायां षष्ठीयुतैव कार्य्या, पञ्चमी नागपूजायामित्याद्युक्तमधस्तात् ।

इति। कृत्यमहार्णवे--श्रावणपञ्चमी हस्तसंयुक्ता वाजसनेयिनामनुकल्पकालः। तथा च गार्ग्यः--

यदि स्यात् श्रावणं पर्व, हस्तसंक्रान्तिदूषितम्।
तस्मादुपाकरणं शुक्लपञ्चम्यां श्रावणस्य तु।
संक्रान्तिग्रहणं वापि, यदि पर्वणि जायते॥
उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां, कार्य्या वाजसनेयिभिः।। इति

अग्निपुराणे चैत्रकृत्यमधिकृत्य--

"समुपोष्यार्चयेल्लक्ष्मीं, पञ्चम्यां वत्सरे गते।
चैत्रस्य कमलं दद्यात्, तिलधेनुसमन्वितम्॥
हैमं पुरं स वै याति, कल्पादेति पुनर्महीम्।
राजराजो भवेच्छ्रीमान्, भवेज्जन्मनि जन्मनि॥
एतल्लक्ष्मीव्रतं नाम, दुःखशोकविनाशनम्।

चतुर्थ्यामुपोष्य चैत्रशुक्लपञ्चम्यां लक्ष्मीपुण्यव्रतं वत्सरान्ते। तिलधेनुसमन्वितहेमकस्य ब्राह्मणाय दानमुत्तराङ्गम्। विष्णुपुरगमनकल्पानन्तरपुनर्महीसमागमनतदधिकरणकराजराजत्वभवनदुःखशोकविनाशप्रतिजन्मभवनफलम्। ब्रह्मपुराणे--

शुक्लायामथ पञ्चम्यां, चैत्रे मासि शुभानने।
श्रीर्धर्मलोकान्मानुष्यं, संप्राप्ता केशवाज्ञया॥
तस्मात्तं पूजयेत्तत्र, यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति।
एषा श्रीपञ्चमी कार्य्या, विष्णुलोकगतिप्रदा॥ इति।

माघशुक्लपञ्चमी श्रीपञ्चमी। तदुक्तं वाराहे--

माघशुक्लचतुर्थ्यान्तु, वरमाराध्य च श्रियः।
पञ्चम्यां कुसुमैः पूजां, श्रियः कुर्य्यात्समृद्धये॥ इति।

माधवाचार्य्यमते पूर्वयुता ग्राह्या। माघशुक्लापञ्चमी पूर्वविद्धा प्रशस्यत इति दिवोदासवाक्यात्। मैथिलैर्गौडैश्चेयमादृता। हेमाद्रिमते तु परविद्धा ग्राह्या। दाक्षिणात्यैस्तु सैवादरणीया भवतीत्यास्ताम्। पुराणसमुच्चये--

माघे मासि सुरश्रेष्ठ, शुक्लायां पञ्चमीतिथौ ।
रतिकामौ तु सम्पूज्य कर्तव्यस्तु महोत्सवः ॥ इति ।

तिथितत्त्वप्रदीपधृतवचनम् । इति पञ्चमीनिर्णयः समाप्तः ।

अथ षष्ठीनिर्णयः ।

षष्ठी तदीयकृत्यञ्च, स्मार्तलेखप्रमाणतः ।
वक्ष्ये गणेशचरणौ····विपद्धरौ ॥

षष्ठीतिथिरुपवासादिषु बाधकं विना सप्तमीयुतैव ग्राह्या । षण्मुन्योरितियुग्मवाक्यात् ।

षष्ठ्यष्टमी अमावास्या, कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।
एताः परयुताः कार्य्याः, पराः पूर्वेण सँय्युताः ॥

इति पुराणसमुच्चयवचनाच्च ।

एकादश्यष्टमी षष्ठी, पौर्णमासी चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च, ताः उपोष्याः परान्विताः ॥

इति वृहस्पतिनापि तथाभिधानात् किञ्च पूर्वविद्धायाः षष्ठ्याः निषेधोऽपि दृश्यते।

"नागविद्धा तु या षष्ठी, भानुविद्धो महेश्वरः ।
चतुर्दशी कामविद्धा, तिस्रस्ताः मलिनाः स्मृताः ॥ इति
नागविद्धा तु या षष्ठी, शिवविद्धा तु सप्तमी ।
दशम्येकादशीविद्धा, नोपोष्याः स्युः कदाचन ॥ इति
नहि षष्ठी नागविद्धा, कर्तव्या तु कदाचन" ॥ इत्यपि ।

स्कन्दषष्ठी पञ्चमीयुतैव कार्य्या ।

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी, शिवरात्रिचतुर्दशी ।
एताः पूर्वयुताः कार्य्याः, तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् । चैत्रकृष्णषष्ठीमधिकृत्य—

"षष्ठ्यां स्कन्दस्य कर्तव्या, पूजा पञ्चोपचारिका ।
इहैव सुखसौभाग्यमन्ते विष्णुपुरं व्रजेत्" ॥ इति

राजमार्तण्डे—

ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे, षष्ठी चावल्यसंज्ञका ।
व्यञ्जनैककरा ह्यस्यामटन्ति विपिने स्त्रियः ॥
तां विन्ध्यवासिनीं देवीं, स्कन्दमाराधयन्ति च ।
स्कन्दमूलफलाहारी, लभते सन्ततिं शुभाम् ॥ इति

कन्दम् = सूरणादि ।

सेयं मार्गे शिवे मासि, षष्ठी भवति सत्तम ।
पुण्या पापहरा धन्या, शिवा शान्ता गृहप्रिया ॥ इति ।

इयमपि स्कन्दषष्ठी द्राविडसम्प्रदाये प्रसिद्धा । इयं तु षष्ठी केषांचिन्मये परयुता ग्राह्या युग्मवाक्यात् । केषांचिन्मये योगवशेन पूर्वा परा वा कार्य्या इति । चम्पाषष्ठी सप्तमी युतैव कार्य्येति दिवोदासः । ब्रह्मपुराणे—

अमावास्यायां समुद्भूतः, स्कन्दः पूर्वं हुताशनात् ।
यातः पर्वणि षष्ठ्यान्तु, शुक्लायां चैत्रनामके ॥
सैनापत्येऽभिषिक्तस्तु, देवानां ब्रह्मणा स्वयम् ।
जितवान् तारकं दैत्यम्, क्रौञ्चशक्त्या बिभेद च ॥
तस्मान्न्यासे तत्र विधिना, स्कन्दो माल्यैः सुगन्धिभिः ।
दीपालङ्कारवस्त्रान्नकुक्कुटैः पूज्य एव हि ।
अजैः क्रीडनकैः रम्यैर्घण्टाचामरदर्पणैः ॥
सर्वासु शुक्लषष्ठीषु, पूज्यो वै सर्वदानवैः ।
आरोग्यकामैश्च जनैः, पुत्रवद्धिर्विशेषतः" ॥

दाक्षिणात्यनिबन्धे— मार्गशुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठी—

"मार्गे भाद्रपदे शुक्ला, षष्ठी वैधृतिसँय्युता ।
रविवारेण सँय्युक्ता, सा चम्पेतीह कीर्तिता ॥

तिथितत्त्वप्रदीपे—षष्ठी सा च सप्तमीयुता ग्राह्या । ज्यैष्ठशुक्लाऽरण्यषष्ठी,

भाद्रे शुक्लाऽक्षया । आश्विनशुक्लायां सन्ध्याकाले दुर्गाबोधनम् । मार्गशीर्षे शुक्ला = गुह-षष्ठी । चैत्रे कृष्णषष्ठी पूर्वविद्धैव ग्राह्या । एषैव स्कन्दषष्ठी । आश्विनकृष्णपक्षे चन्द्रषष्ठी । सा च विधूदयव्यापिनी ग्राह्या । उभयत्र तथात्वे पूर्वा ग्राह्या—यथा हि भविष्ये—

"तद्वद्भाद्रपदे मासि, षष्ठी पक्षे सितेतरे ।
चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्य्यात्, पूर्वचन्द्रोदये यदा ॥

षष्ठी पूर्वाह्णे यदा परेऽहनीति । तथा "चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः । इति तत्त्वचिन्तामणिः । इति षष्ठीनिर्णयः ।

अथ सप्तमीनिर्णयः

सप्तमी तत्कृत्यञ्च, कथयामि विशेषतः ।
लम्बोदरपदाम्भोजयुग्मं हृदि निधाय च ॥

सप्तमीतिथिरुपवासादिषु षष्ठीयुतैव ग्राह्या । षण्मुन्योरिति युग्मवाक्यात् ।

"नागविद्धा तु या षष्ठी, रुद्रविद्धो दिवाकरः ।
कामविद्धो भवेद्विष्णुः, न ग्राह्यास्ते सुरासुरैः ॥

नागः = पञ्चमी । रुद्रः = षष्ठी । दिवाकरः = सप्तमी । कामः = त्रयोदशी । किंच ।

सप्तमी नाष्टमीयुक्ता, न सप्तम्या युताष्टमी ।
सप्तमी परविद्धा तु, नोपोष्यैव कदाचन ॥ इति

आभ्यां परविद्धायाः निषेधाच्च । किञ्च—

"पञ्चमी सप्तमी चैव, दशमी च त्रयोदशी ।
प्रतिपन्नवमी चैव, कर्तव्या सम्मुखी तिथिः" ॥ इति ।

साम्मुख्यं यथा स्कन्दे—

"साम्मुख्यं नाम सायाह्नव्यापिनी दृश्यते यदा" । इति

अत एव त्रिसन्ध्याव्यापित्वेऽपि षष्ठीयुतसप्तम्यामुपवासमाह—भविष्यपुराणम्—

"षष्ठीसमेता कर्तव्या, सप्तमी नाष्टमीयुता ।
पतङ्गोपासनायेह षष्ठ्यामाहुरुपोषणम्" ॥ इति

यथोपोषणे तथा कर्मान्तरेऽपि षष्ठ्या युतैव सप्तमी प्रकर्तव्या । तथा च स्कन्दपुराणे--

"षष्ठी च सप्तमी यत्र, तत्र सन्निहितो हरिः" इति ।

माघशुक्लसप्तमीमधिकृत्य तिथितत्त्वचिन्तामणौ यथा माघशुक्लसप्तमी = रथसप्तमी साचारुणोदयव्यापिनी ग्राह्या –

"सूर्य्यग्रहणतुल्या तु, शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
अरुणोदयवेलायां, तस्यां स्नानं महाफलम् ॥ इति विष्णूक्तेः ।

तथा—

"अरुणोदयवेलायां, शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
प्रयागे यदि लभ्येत, कोटिसूर्य्यग्रहैः समा" ॥ इति ।

चेक्षुदण्डेन जलं चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि सप्तबदरीपत्राणि च शिरसि निधाय यथोदितमन्त्रैः स्नानं कर्तव्यम् । तत्र मन्त्रो यथा–काशीखण्डे—

यद्यज्जन्मकृतं पापं, मया सप्तसु जन्मसु ।
तन्मे रोगञ्च शोकञ्च, माकरी हन्तु सप्तमी ॥
एतज्जन्मकृतं पापं, यच्च जन्मान्तरार्जितम ।
मनोवाक्कायजं यच्च, ज्ञाताज्ञातञ्च यत्पुनः ॥
इति सप्तविधं पापं, स्नानान्मे सप्तसप्तिके ।
सप्तव्याधिसमायुक्तम् , हर माकरि सप्तमि ॥
एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा, स्नात्वा पादोदके नरः ।
केशवादित्यभक्त्या तु, क्षणान्निष्कल्मषो भवेत् ॥ इति ।

तिलपिष्टमयापूपैर्हेमं सूर्य्यं सम्पूज्य विप्राय दद्यात् । तत्रार्घन्त्रो यथा—

"सप्तसप्तिरहप्रीति- सप्तलोक-प्रदीपन ।
सप्तमीसहितो देव, गृहाणार्घं दिवाकर" ॥

ततः--

"जननी सर्वलोकानां, सप्तमी सप्तसप्तिके ।
सप्तव्याहृतिके देवि, नमस्ते सूर्य्यमण्डले" ॥ इति प्रार्थयेत ।

सौरागमे तु—

"अर्कपत्रैः सबदरैः, दूर्वाक्षतसचन्दनैः ।
अष्टाङ्गविधिनाचार्य्यं, दद्यादादित्यतुष्टये ॥

इयञ्च मन्वादिरपि । शुक्लपक्षस्थत्वात् पौर्वाह्निकी ग्राह्या । यदा तु माघ एव मलिम्लुचः पतति तदा मासद्वयेऽपि मन्वादिश्राद्धं कुर्य्यादिति द्राविडादयः । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्य्यान्मासद्वयेऽपि चेति स्मृतिचन्द्रिकायाम् । किं च तिथितत्त्वभविष्यपुराणे :—

सूर्य्यग्रहणतुल्या हि, शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
अरुणोदयवेलायां, तस्यां स्नानं महाफलम् ॥
माघे मासि सिते पक्षे, सप्तमी कोटिभास्करा ।
दद्यात् स्नानार्घदानाभ्यामायुरारोग्यसम्पदः ॥
अरुणोदयवेलायां, शुक्ला माघस्य सप्तमी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत, सूर्य्यग्रहशतैः समा ॥

कोटिभास्करा = कोटिसप्तमीतुल्या । सूर्य्यग्रहणजम् फलम् । पूर्वापरदिनयोर्यत्र अरुणोदयकाले सप्तमी तत्र पूर्व एव तत्काले स्नानम् ।

"चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयसञ्ज्ञिकाः ।
यतीनां स्नानकालोऽयं, गङ्गाम्भःसदृशं फलम् ॥
त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम् ।
नाडीनां तदुभे सन्ध्ये, दिवसाद्यान्तसंज्ञिके ॥

इति ब्रह्मवैवर्तीयेन पूर्वस्य तत्कालस्य पूर्वतिथिसम्बन्धिदिनकर्माङ्गत्वेन इतरस्य चेतराङ्गत्वेनाभिधानात् । अत एव दक्षेण तत्कालमारभ्याह्निकमुक्तम् । अत्रारुणोदयकाले मुहूर्तान्यूनतिथिलाभ एव स्नानम् ।

"व्रतोपवासस्नानादौ, घटिकैका यदा भवेत् ।
उभये सा तिथिर्ग्राह्या, श्राद्धादावस्तगामिनी" ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे । अत्र घटिका मुहूर्तमिति श्राद्धयोग्यका ब्रह्मवैवर्त्तवचने घटिका दण्डरूपा, परवचनेन नाडीनामित्येकवाक्यत्वात् । अत्र माघमासनिमित्तक-माघसितसप्तमीनिमित्तकस्नानयोः प्रातर्विधानात् । नैमित्तकत्वे सकृदनुष्ठानम् । प्रायश्चित्तवत् ।

प्राधानस्य क्रियायान्तु, साङ्गन्तत्क्रियते पुनः ।

तदङ्गस्य क्रियायान्तु, नावृत्तिर्न च तत्क्रिया ॥ इति

कात्यायनवचनात् ।

"न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा, नातुरो न महानिशि ।

न वासोभिः सहाजस्रं, नाविज्ञाते जलाशये ॥"

इति मनुना एकदाऽजस्रस्नाननिषेधाच्च । अत एव नान्दीमुखप्रकरणे शेषे एवञ्च प्रधानानामपि काम्यानां तत्र देशकालविहितानां तन्त्रेणैव सिद्धिरिति श्राद्धचिन्तामणिः । अत्र स्नानपरिपाटीमाह-विष्णुः—सप्तबदरपत्राणि सप्तार्कपत्राणि च शिरसि निधाय-

ओँ यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु ।

तन्मे रोकञ्च शोकञ्च, माकरी हन्तु सप्तमी ॥

इत्युच्चार्य्य स्नायादिति शेषः । रोकम् = छिद्रम् । तिथिकृत्यत्वेन पौर्णमास्यन्त-मासाङ्गकत्वात् माकरीपदं मकरार्कारब्धचान्द्रमासीयतिथिपरम् ।

तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च ।

विवाहादौ च सौरां मासकृत्ये विनिर्दिशेदिति ॥

ब्रह्मपुराणान्मन्वादित्वेन तथा युक्तत्वाच्च । यथा मात्स्ये—

"यस्मान्मन्वन्तरादौ तु, रथमश्वैर्दिवाकरः ।

माघमासस्य सप्तम्यां, तस्मात्सा रथसप्तमी ॥

अरुणोदयवेलायां, तस्यां स्नानं महाफलम् ।

अत एव नारसिंहे रथाख्यायामित्युक्तम् । यथा—

महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि ।

तथाक्षयतृतीयायां, शिष्यान्नाध्यापयेद्बुधः ॥

माघमासे तु सप्तम्यां, रथाख्यायान्तु वर्जयेत् ।

द्वादश्यां = शयनोत्थानद्वादश्यां, भरण्याम् = शक्रपातभरण्यामिति कल्पतरुः । अत्र महानवम्यादिसाहचर्य्यात् चान्द्रत्वं प्रतीयते । अत एव चतुर्दशमन्वन्तरादि-गणे क्वापि न राश्युल्लेखः । तथा च भविष्यमात्स्ययोः—

"अश्वयुक्शुक्लनवमी, द्वादशी कार्त्तिकी तथा ।
तृतीया चैव मासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥
फाल्गुनस्याप्यमावास्या, पौषस्यैकादशी तथा ।
आषाढस्यापि दशमी, तथा माघस्य सप्तमी ॥
मन्वन्तरादधस्त्वेताः दत्तस्याक्षयकारिका" । इति ।

सौरागमेऽपि—

"अर्कपत्रैः सवदरैः, दूर्वाक्षतसचन्दनैः ।
अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं, दद्यादादित्यतुष्टये ॥
माघेऽथ फाल्गुने वापि, भवेद्वै माघसप्तमी ।
माकरीति च यत्प्रोक्तं, तत्प्रायो वृत्तिदर्शनात् ॥
योऽष्टाङ्गमर्घ्यमापूर्य्य, भानोर्मूर्द्धिन निवेदयेत् ।
ताम्रपात्रार्घदानेन, पुण्यं शतगुणं स्मृतम्" ॥ इति भविष्य-

पुराणीयम् । अर्घमन्त्रस्तु—जननी सर्वदेवानामित्युक्तमेव ॥

भविष्ये—

"शालितण्डुलप्रस्थस्य, कुर्य्यादन्नं सुसंस्कृतम् ।
सूर्य्याय च चरुं दत्त्वा, सप्तम्यां च विशेषतः ॥
यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्, नैवेद्यपरिसंख्यया ।
तावद्वर्षसहस्राणि, स्वर्गलोके महीयते" ॥ इति ।

वराहपुराणे—

"अथापरं महाराज, व्रतमारोग्यसंज्ञकम् ।
कथयामि परं पुण्यं, सर्वपापप्रणाशनम् ।

तस्यैव माघमासस्य, सप्तम्यां समुपोषितः ।
पूजयेद्भास्करं देवं, विष्णुरूपं सनातनम् ॥
प्रभाकरेति सम्पूज्य, देवः सर्वेश्वरो हरिः ।
षष्ठ्यां चैव कृताहारः, सप्तम्यां समुपोषितः ॥
अष्टम्यामेव भुञ्जीत, एष एव विधिः स्मृतः ।
अनेन वत्सरं पूर्णं, विधिना योऽर्चयेद्धरिम् ॥
तस्यारोग्यं धनं धान्यमिह जन्मनि जायते ।
परत्र च शुभस्थानं, यद्गत्वा न निवर्तते" ॥ इति ।

सप्तम्यामुपोषित इत्यादिकर्मणि यः तेन सँव्वत्सरमुपवासमारब्धवान् इत्यर्थः । ततश्च सप्तम्यामेवोपवासः, रविश्च पूजाकाले विष्णुरूपतया ध्येयः । अभिलापे तु तिथावित्युक्त्वा आरभ्येति ऐहिकारोग्यधनधान्यपारलौकिकशुभस्थानकामः सँव्वत्सरं यावदारोग्यमिति शेषः । ततः प्रभृति सप्तम्यामुपवासं कुर्वन्—

आदित्य भास्कर रवे, भानो सूर्य्य दिवाकर ।
प्रभाकर नमस्तुभ्यम्, इति मन्त्रेण पूजयेत् ॥ इति ।

कालिकापुराणे—भुक्तं प्रतिसूर्य्यवचनम्—

अदृष्ट्वा मां न भुञ्जीत, विण्मूत्रं नैव दर्शयेत् ।
मदर्चाधृतनिर्माल्यं, शरीरे न तु धारयेत् ॥ इति ।

कृत्यचिन्तामणौ—

अर्काग्रं शुचि गोमयं च सुचिरं तोयं फलं चाश्नुते ।
मूलं नक्तमुपोषणञ्च विधिवत्, कृत्वैकभुक्तं नरः ॥
क्षीरं वाय्वशनम् घृताशनमिति प्रोक्तान्यमूनि क्रमात् ।
कृत्वा द्वादशसप्तमीदिनकृतः प्राप्नोत्यभीष्टं फलम् ॥

अत्र च अर्कादितरभोजननिवृत्तिरवसीयते तपस्त्वात् । मात्स्ये—

तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं हि तपस्यतः ।
दुर्भगत्वं वृथा लोको वहते साधने सति ॥ इति

तपसः क्लेशकारित्वम् तत्रैवोक्तं यथा—

उमेति चपला देवि, न क्षमं तावकं वपुः ।
सोढुं क्लेशस्वभावस्य, तपसः सौम्यदर्शने ॥ इति

व्यक्तमुक्तं यथा—

अर्कपत्राङ्कुरमात्रमन्तरिक्षगृहीतकम् ।
कपिलाविड्वरणमात्रम्, मज्जलं मरिचं जलम् ॥
कदलीफलमध्यन्तु, कलामात्रमपक्वकम् ।
कुशमूलं यवमात्रम्, स्वच्छाया द्विगुणे क्षणे ॥
भक्ष्यं मितौदनं नक्तम्, शुद्धोपवसनन्तथा ।
एकभुक्तं मयूरान्तप्रमाणं भोजनं मतम् ॥
अर्द्धप्रसृतिमात्रन्तु, कपिलादुग्धभक्षणम् ।
स्नात्वा सम्पूज्यमार्तण्डम्, प्राङ्मुखो वाग्माशयेत् ।
घृतं स्वल्पं पौषमासे, माघादब्दं समाचरेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या, गुडक्षीरं निरामिषम् ॥
विप्राय दक्षिणा देया, विभवस्यानुरूपतः ।
अष्टम्यां पारणं कुर्य्यात्, कट्वम्लरहितेन च ॥
मुद्गमाषतिलादीनि, घृतं चैव विवर्जयेत् ।
एकसिद्धं भुक्तमर्कतन्त्रानुसारतः ॥ इति ।

एतद्व्रतं माघादिविशेषरहितकर्मत्वे मलमासेतरकर्तव्यमाह—

प्रारब्धे तु व्रते पश्चात्, सम्प्राप्ते त्वधिमासके ।
पूर्वमानेन तु त्यक्त्वा कार्य्यं द्वादशमाब्दिकम् ॥ इति ।

पूर्वमानेन = मलिम्लुचशून्याब्दमानेन । तं = मलमासे द्वादशमाब्दिकम् । द्वादशमासेष्वेव कार्य्यं न मलमासे इत्यर्थः । विष्णुरहस्यवचनं तु—

"मासे मलिम्लुचेऽप्येवम्, यजेद्देवीं सशङ्कराम् ।
किन्तु नोद्यापनं कार्य्यमित्याह भगवाञ्छिवः ॥ इति ।

पूर्वनक्तस्योक्तत्वात् तत्कालमाह—सुमन्तुः—

त्रिमुहूर्तस्पृशा चाह्नि, निशा चैतावती तिथिः ।
तस्यां सौरं भवेन्नक्तमहन्येव च भोजनम् ॥ अत्र सायं व्याप्ते-

र्मुख्यकालत्वात् प्रथमतो निर्देशः । एकभुक्तकालमाह--पद्मपुराणम्—

"मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या, एकभुक्ते सदा तिथिः" ॥ इति ।

देवलः—

दिनार्द्धसमयेऽतीते, भुज्यते नियमेन यत ।
एकभुक्तमिदं प्रोक्तम्, न्यूनं ॥

अस्य द्वात्रिंशद्गृहस्थस्येति पद्मपुराणोक्तग्रासानां ग्रास एव न्यूनता ।

ग्रासपरिमाणमाह—गौतमः—ग्रासप्रमाणमास्याधिकारेणेति । कुक्कुटीव्रतत्वेन यत्ख्यातन्तदुक्तं भविष्ये—

भाद्रे मासि सिते पक्षे, सप्तम्यां नियमेन या ।
स्नात्वा शिवं लेखयित्वा, ऽप्राप्यं नैव विद्यते ॥ इति ।

अथ सप्तमीव्रतं व्रतपद्धतौ यथा—अदित्य उवाच—

सप्तम्यामथ वा षष्ठ्यां, पक्षयोरुभयोरपि ।
योऽब्दमेकं नक्तभोजी, नियतात्मा जितेन्द्रियः ॥
यत्पुण्यं परमं प्रोक्तम्, सततं सत्रयाजिनाम् ।
सत्यवादिषु यत्पुण्यं, यत्पुण्यं ऋतुगामिनाम् ॥
तत्फलं सकलं प्राप्य, मम लोकमुपैति सः ।

तत्र माघमासीयसप्तम्यां प्रातःकाले कृतस्नानः पूर्ववत्ताम्रपात्रमादाय "ॐ भगवन् सूर्य भगवत्यो देवता आद्यादिवर्षं यावदुभयपक्षीयसप्तम्यां नक्तेतरकालभोजननिवृत्तिव्रतमहमा-

चरिष्यामीति निवेद्य 'ॐ सततसत्रयाजिपरमपुण्यसत्यवादिपुण्यप्राप्तिपूर्वकादित्यालोकगमनकामोऽद्यादिवर्षं यावदुभयपक्षीयसप्तम्यां नक्तेतरकालभोजननिवृत्तिमहङ्करिष्ये। एवमुभयपक्षीयषष्ठ्योरपि नक्तव्रते तद्वाक्ये षष्ठीपदनिवेश इति विशेषः। मत्स्यपुराणे—

"सप्तम्यां नक्तभुग् दद्यात् मासान्ते गां पयस्विनीम्।
सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम्"॥

माघमासीयसप्तम्यां प्रातःकाले पूर्ववत् पूर्वमङ्गं कृत्वा, ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता अद्यादिवर्षं यावत् सप्तम्यां नक्तकालेतरकाले भोजननिवृत्तिव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, ॐ सूर्य्यलोकप्राप्तिकामो अद्यादिवर्षं यावत् सप्तम्यां नक्तेतरकालभोजननिवृत्तिव्रतमहङ्करिष्ये। वर्षान्ते ब्राह्मणाय गोदानम्। तत्र देयब्राह्मणपूजादिकम् कृत्वा वाक्यम्—ॐ अद्य वर्षावच्छिन्नकृतसप्तमीनक्तव्रतान्ते इमां गां रुद्रदैवताम् अमुकगोत्राय अमुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे। दक्षिणा च—ॐ अद्य कृतैतद्गोदानप्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यमग्निदैवताम् अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे। ॐ स्वस्तीत्युभयत्र प्रतिवचनम्।

अथारोग्यसप्तमी

वराहपुराणे—"अथापरं महाराज, व्रतमारोग्यसंज्ञकम् इत्यादिकं पूर्वं लिखितमेव। अत्र च सप्तम्यामेवोपवासः। तत्र माघीयसप्तम्यां प्रातःकाले पूर्ववत् ताम्रपात्रादिकमादाय, ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता अद्यादिवर्षं यावत् सप्तम्यामुपवासकृद्रविपूजनव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, ॐ ऐहिकारोग्यधनधान्यपारलौकिकशुभस्थानकामोऽद्यादि वर्षं यावत् सप्तम्यामुपवासकृद्रविपूजनव्रतमहं करिष्ये इति संकल्पः पूजायाम्—"ॐ आदित्य भास्कर रवे भानो सूर्य्य दिवाकर तुभ्यं नम इति प्रकारः। रविश्च विष्णुरूपतया पूजाकाले ध्येयः।

अथ पुत्रफलकसप्तमी

भविष्यपुराणे—आदित्य उवाच—

माघे मासे तु सप्तम्यां शुक्लायां समुपोषितः।

यः पूजयेन्मां भक्त्या, तस्याहं पुत्रतां व्रजे ॥

एवञ्चोभयसप्तम्यां, मासि मासि सुरोत्तम ।
यस्तु मां पूजयेद्भक्त्या, स्वमेकम् एकमादरात् ॥
प्रयच्छामि सुतं तस्मादात्मनो ह्यंशसम्भवम् ।
वित्तं यशस्तथा पुत्रमारोग्यं परमं तथा ॥
माघे मासे तु यो ब्रह्मन्, शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः ।
उपोष्य विधिवत्षष्ठ्यां श्वेतमाल्यविलेपनैः ॥
पूजयित्वा तु मां भक्त्या, निशि भूमौ स्वपेद् बुधः ।
पुनरुत्थाय सप्तम्यां, कृत्वा स्नानादिकां क्रियाम् ॥
पूजयित्वा तु मां ब्रह्मन्, वीर होमं समाचरेत् ।
प्रीणयित्वा हरिं भक्त्या, हविषा पद्मलोचनम् ॥
दध्योदनेन पयसा, पायसेन द्विजांस्तथा ।
तस्यैव कृष्णपक्षस्य, षष्ठ्यां सम्यगुपोषितः ॥
रक्तोत्पलैः सुगन्धाढ्यैः, रक्तपुष्पैश्च पूजयेत् ।
एवं यः पूजयेद्भक्त्या, नरो मां विधिवत्सदा ।
उभयोरपि देवेन्द्र, स पुत्रं लभते वरम् ॥

एतदकमेव व्रतं सम्वँत्सरसाध्यम् विध्यनुवादाभ्यां प्रतिपादनमिति समयप्रदीपः । तस्याहं पुत्रतां व्रजे, इत्यन्तवाक्यबोधितम् एकं व्रतम्, एकमाघशुक्लसप्तम्यां कृत्यमेकाहसाध्यम् । अपरञ्च, एवञ्चोभयसप्तम्यामित्याद्यारोग्यपरमं तथेत्यन्तप्रतिपाद्यमुभयसप्तमीकृत्यम् वर्षसाध्यम् । अपरञ्चोभयसप्तमीकृत्यं यावज्जीवं माघे मासे त्वित्यादिप्रतिपाद्यमतो व्रतत्रयमेवेति रत्नाकरः । तदनयोर्विधिफलयोः प्रत्येकं नैरपेक्ष्यश्रवणात् व्रतत्रयमेवेति प्रतिभाति । तत्र प्रथमव्रते माघशुक्लसप्तम्यां पूर्ववत्ताम्रपात्रमादाय, ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवताः अद्य माघशुक्लसप्तम्यामुपवासकृदादित्यपूजनव्रतमहमाचरिष्यामीति

निवेद्य, ॐ आदित्यसमपुत्रप्राप्तिकामोऽद्य माघशुक्लसप्तम्यामुपवासकृदादित्यपूजनव्रतमहं करिष्ये। द्वितीयव्रते तस्यामेव तिथौ पूर्ववत्सर्वं कृत्वा, ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवताः अद्यादिवर्षं यावत् उभयपक्षसप्तम्यामुपवासकृदादित्यपूजनव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, ॐ आदित्यांशसम्भवपुत्रवित्तयशःपरमारोग्यप्राप्तिकामनयाऽद्यादिवर्षं यावदुभयपक्षसप्तम्यामुपवासकृदादित्यपूजनव्रतमहं करिष्ये। तृतीयव्रते तु ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवताः अद्यादियावज्जीवम् सप्तम्यामुपवासकृदादित्यपूजनव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, ॐ वरपुत्रप्राप्तिकामोऽद्यादियावज्जीवम् उपवासकृदादित्यपूजनव्रतमहं करिष्ये। अस्मिन् व्रते श्वेतमाल्यविलेपनैः पूजा, अधः शयनम्, सूर्य्यपूजानन्तरमग्नौ होमः। दधिभक्तदुग्धादिना पायसेन च द्विजतर्पणं कृष्णपक्षसप्तम्यां रक्तोत्पलैः पूजा। समयप्रदीपमते तु एकमेव व्रतं वर्षव्यापि, अत एव संकल्पः, अङ्गजातश्च तदुक्तस्यैव। अत्र षष्ठ्यां समुपोषित इति षष्ठ्यां सप्तमीमिश्रायामित्यर्थः। तेन सप्तम्युपवासप्रतिपादनविरोधो न भवति। अथ तिथितत्त्वप्रदीपे सप्तमी सा च षष्ठीयुता। परदिनत्रिसन्ध्यव्यापित्वेन उपवासः। रविवारयुता शुक्ला विजया, अक्षया च। वैशाखे शुक्ला तत्र पूर्वदिवसे नक्षत्रयुक्तायां सायं प्राप्तायामपि षष्ठ्यां त्यजेत्। यदि तत्परदिने षष्ठी पत्रीप्रवेशो न भवति। कृष्णनवम्यां कृतबोधन आमन्त्रणाधिवासनमात्रम्।

सप्तमी भाद्रे शुक्ला ललिता। तत्र युग्मादिव्यवस्था। शङ्करपूजायाः प्राधान्यादिति कश्चिदुदयगामिन्यामेवाभिधानात् इत्याचार्य्यः। आश्विनशुक्लायामुदयगामिन्यां, तुलाऽन्यतरलग्ने पत्रीप्रवेशः। मार्गशीर्षे शुक्ला मित्रसप्तमी। माघशुक्ला = माकरी। तत्रोभयदिनेऽरुणोदयकाले मुहूर्ताऽन्यूनसप्तमीलाभे पूर्वदिनाऽरुणोदयकाल एव स्नानम्। आरोग्यव्रते त्वष्टमीयुता मन्वादिः। इति सप्तमीनिर्णयः।

अथ अष्टमीनिर्णयः

अष्टमी तदधिकृत्य संरटामि पटुबुद्धितुष्टये ;
इष्टपादयुगलं निधाय शिष्टघृष्टप्रथमाश्रितो नमः ॥

अष्टमी शुक्ला नवमीयुतैव ग्राह्या । वसुरन्ध्रयोरिति युग्मवाक्यात् ।

एकादश्यष्टमी षष्ठी, पौर्णमासी चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च, ता उपोष्याः परान्विताः ॥

इति वृहस्पतिवचनाच्च । किन्तु स्मृत्यन्तरे—

शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव, शुक्लपक्षे चतुर्द्दशी ।
पूर्वविद्धा न कर्तव्या, कर्तव्या परसय्युँता ॥ इति

ब्रह्मवैवर्तेऽपि—

"नवम्या सह कार्य्या स्यादष्टमी सर्वदा बुधैः ।"

कृष्णाष्टमी तु सामान्यतः सप्तमीयुतैव ग्राह्या ।

कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव, कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या; परविद्धा न कुत्रचित् ।
उपवासादिकार्य्येषु, एष धर्म्मः सनातनः ॥

इति तिथितत्त्वधृतवचनात् । "कृष्णपक्षे सदा कार्य्या सप्तम्या सहिताष्टमी" ति शुभङ्करधृत-वचनाच्च । शुक्लाष्टम्याः परविद्धाया एव ग्राह्यत्वमित्यर्थे वचनान्तराण्यपि दृश्यन्ते । यथा स्कन्दपुराणे—

अष्टमी नवमीमिश्रा, कर्तव्या भूतिमिच्छता ।
सप्तम्या चाष्टमी चैव, न कर्तव्या शिखिध्वज ॥

इति । अत्रैव पुनः—

"नागविद्धा तु या षष्ठी, सप्तम्या तु यदाष्टमी ।
भूतविद्धाप्यमावास्या, न ग्राह्या मुनिपुंगवैः" ॥ इति ।

किञ्च पद्मपुराणे—

नाष्टमी सप्तमीयुक्ता, न सप्तम्या युताष्टमी ।
नवम्या सह कार्य्या स्यादष्टमी नात्र संशयः ॥ इति

पुनर्ब्रह्मवैवर्ते—

सप्तमी चाष्टमीयुक्ता, न सप्तम्या युताष्टमी ।
सर्वेषु व्रतकल्पेषु, अष्टमी परतः शुभा ॥

इति । किञ्च शङ्करगीतायाम्—

"एकादश्यष्टमी षष्ठी, शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
पूज्याः परेण संयुक्ताः, पराः पूर्वेण संयुताः" ॥ इति
"अष्टमी नवमी युग्मे, महोत्साह्ये महोत्सवः" । इत्यपि ।

तथा च द्विविधोऽस्त्यत्र निर्णयो व्रतसामान्यविषयो व्रतविशेषविषयश्चेति । तत्रापि व्रतसामान्ये शुक्लकृष्णपक्षभेदो व्यवतिष्ठते । एवञ्च एकवाक्यतया परवेधनियामकवचनैः सामान्यतः कृष्णाष्टम्यां व्रतव्यवस्थेति सर्वसाधारणसिद्धान्तः ।

अथ धर्मशास्त्रोक्तनिर्णयस्थः कृष्णजन्माष्टमीव्रतनिर्णयो लिख्यते—

कृष्णजन्माष्टमी । सा च नित्या अकरणे निन्दा श्रवणात् । यथा भविष्योत्तरे—

"श्रावणे बहुले पक्षे, कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
न करोति नरो यस्तु, स भवेत्क्रूरराक्षसः ॥ इति ।

तथा—

"वर्षे वर्षे तु या नारी, कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
न करोति महाक्रूरा, व्याली भवति कानने । इति

फलश्रुतेः काम्यञ्च । यथा ब्रह्मवैवर्ते—

"मन्वादिदिवसे प्राप्ते, यत्फलं स्नानमण्डलैः ।
फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां, भवेत्कोटिगुणं द्विज ॥
अस्यां तिथौ वारिमात्रं, पितॄणां यः प्रयच्छति ।
गयाश्राद्धं कृतं तेन, शताब्दं नात्र संशयः" ॥ इति ।

अत्राकरणे प्रत्यवायजनकतासम्बन्धेन नित्यता । करणे फलजनकतासम्बन्धेन काम्यतेत्येकस्योभयकर्मवत्त्वम् सम्बन्धभेदेनाविरुद्धमिति सुधीभिर्विभाव्यताम् ।

गौणचान्द्रभेदमाह—विष्णुपुराणम् —

"अथ भाद्रपदे मासि, कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे ।
अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः ॥ इति ।

वाक्यन्तु गौणचान्द्रत्वेनैव, तदर्थमेव भाद्रपदप्रयोगात् । इति ।

स्कन्दपुराणे —

"जयं पुण्यञ्च कुरुते, जयन्तीमिति तां विदुः ।
रोहिणीसहिता कृष्णा, मासे च श्रावणेऽष्टमी ॥
अर्द्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वं कलयाऽपि यदा भवेत् ।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता, सर्वपापप्रणाशिनी" ॥ इति ।

अन्यत्रापि----

"अर्द्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वमेकार्द्धघटिकान्वितम् ।
रोहिणी चाष्टमी ग्राह्या, उपवासव्रतादिषु" ॥ इति ।

अर्द्धघटिकान्विता चेत्यर्थः । किञ्च वशिष्ठसंहितायाम् —

"श्रावणे वा नभस्ये वा, रोहिणीसहिताष्टमी ।
यदा कृष्णेन वै लुब्धा, सा जयन्तीति कीर्तिता" ॥ इति ।

कृष्णे = कृष्णपक्षे । अत्र वक्ष्यमाणवचनान्मध्यरात्रप्राप्तावेव जयन्तीत्वं, न रोहिणी अष्टमीयोगमात्रे ।

"सिंहार्के रोहिणीयुक्ता; न वा कृष्णाष्टमी यदि ।
रात्र्यर्द्धपूर्वापरगा, जयन्ती कलयापि वा" ।

इति वराहसंहितादर्शनात् । एतेन द्वादशमासे कृष्णाष्टमीष्वपि रोहिणीयोगपुरस्कारेण जयन्तीव्रतमिति द्वैतनिर्णयोक्तं निरस्तम् । उक्तवचनविरोधात् । भविष्ये —

सप्तमीसार्द्धयामञ्चेत, रोहिणीं वा न संस्पृशेत् ।
व्रतं संकल्पयेत्तत्र, न च रात्रौ कदाचन ॥ इति ।

तत्र सप्तम्यां तद्दिने प्रातर्लभात् तदानीं संकल्पमाह—वृहस्पतिः——

प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा संकल्पं बुध आचरेत् । इति ।

पूजा च मध्यरात्रे ।

कृष्णाष्टम्यां च रोहिण्यां, मध्यरात्रेऽर्चनं भवेत् । गारुडात् ।

किञ्च भविष्ये —

त्रिकालं पूजयेद्देवं, दिवारात्रौ विशेषतः ।
अर्द्धरात्रावपि तथा, पुष्पैर्नानाविधैरपि । इति ।
भविष्योत्तराभ्यां संक्षिप्य, पूजाविधिर्विधीयते ।
भाद्रे तद्दिवसे प्राप्ते, दन्तधावनपूर्वकम् ।।
उपवासनियमं तत्र, गृह्णीयाद्भक्तिभावतः ।
वासुदेवं समुद्दिश्य, सर्वपापप्रशान्तये ॥
उपवासं करिष्यामि, कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम् ।
अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं, नभश्चन्द्रसरोहिणीम् ॥
अर्चयित्वोपवासेन, मोक्ष्येऽहमपरेऽहनि ।
एतेन मोक्षकामोऽस्मि, यद्गोविन्द त्रियोनिजम् ॥
तन्मे मुञ्चतु मां त्राहि, पतितं शोकसागरे ।
आजन्ममरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥
तत्प्रणाशय गोविन्द, प्रसीद पुरुषोत्तम" । इति ।

एतन्मन्त्रचतुष्टयं संवत्सरप्रदीपधृतम् । यथा—

"एकेनैवोपवासेन, कृतेन कुरुनन्दन ।
सप्तजन्मकृतात् पापात्, मुच्यते नात्र संशयः" ॥

गृहमुपकल्प्य तथा—

"तन्मध्ये प्रतिमां स्थाप्य, काञ्चनादिविनिर्मितां ।
प्रतप्तकाञ्चनाभासां, देवीञ्चापि तपस्विनीम् ।
गां चापि बालकं सुप्तं, प्रसूतं नीरदच्छविम् ॥
वसुदेवोऽपि तत्रैव, खड्गचर्मधरः स्थितः ।
यशोदा चापि तत्रैव, प्रसूतावरकन्यकाम् ॥
बलभद्रस्तथा नन्दो, दक्षो गर्गश्चतुर्मुखः ।
एवं सम्पूजयेद्भक्त्या, गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः" ॥

तथा—

स्थण्डिले स्थापयेद्देवीं, सचन्द्रां रोहिणीं तथा ।
देवकीं वसुदेवञ्च, यशोदां नन्दमेव च ॥
चण्डिकां बलदेवञ्च, पूज्य पापैः प्रमुच्यते ।
अर्द्धरात्रे वसोर्धाराम्, पातयेद् गुडसर्पिषा ॥
ततो वर्द्धापनं षष्ठीं, नामादेः करणं मम ।
कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ, प्रभाते नवमीदिने ॥
यथा मम तथा कार्य्यो, भगवत्या महोत्सवः ।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या, तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥
सुवर्णं काञ्चनं गाश्च, वासांसि कुसुमानि च ।
यद्यदिष्टतमं लोके, कृष्णो मे प्रीयतामिति ।
यद्येवं देवकी देवी, वसुदेवादजीजनत् ॥
भौमस्य ब्राह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।
स्वब्रह्मवासुदेवाय, गोब्राह्मणहिताय च ।
शान्तिरस्ते शिवं चास्ते, इत्युक्त्वा तान्विसर्जयेत् ॥
एवं यः कुरुते देव्याः, देवक्याः सुमहोत्सवम् ।
वर्षे वर्षे भगवतो, मद्भक्त्या धर्म्मनन्दन ॥
नरो वा यदि वा नारी, यथोक्तं फलमाप्नुयात् ।
पुत्रसन्तानमारोग्यम्, धनधान्यर्द्धिमद्गृहम् ॥

तथा—

सम्पर्केणापि यः कश्चित् कुर्य्याद् जन्माष्टमीव्रतम् ।
विष्णुलोकमवाप्नोति, सोऽपि नास्त्यत्र संशयः ॥
जयन्त्यामुपवासश्च, महापातकनाशनः ।
सर्वकार्य्यो महाभक्त्या, पूजनीयश्च केशवः ॥
तुष्ट्यर्थं देवकीसूनोर्जयन्तीसंज्ञकं व्रतम् ।

कर्तव्यं चिन्त्यमानेन, भक्त्या भक्तजनैरिह ॥

अकुर्वन्निरयं याति, यावदिन्द्राश्चतुर्दश" । इति ।

बर्द्धापनं = नाडीच्छेदनम् । सुवर्णोऽत्र असीति रक्तिकापरिमितः । हेमकाञ्चनं ततो न्यूनम् । काञ्चनमित्यत्र मेदिनीमिति क्वचित् पाठः । कृष्णो मे प्रीयतामित्युक्त्वा दद्यादित्यन्वयः । भक्तजनैः तैः सहेत्यर्थः । अत्र पूजोपवासयोः प्रधानत्वेन आकांक्षाविरहात् । अन्वये अन्यतरस्य गुणत्वमवश्यं वाच्यम् । एवञ्च पूजेवाङ्गमुपवासस्य, नियम इत्युपक्रमे श्रवणात् । अत्रैव विध्यन्वयात् । अङ्गस्य तु प्रधानविधिविधेयत्वेन पूजाविध्यन्तरानपेक्षणात् । अत एवोपसंहारेऽपि जयन्त्यामित्याद्युपवासमभिधाय, पूजनीयाश्चेत्यभिहितमित्यवधेयम् । अथात्र व्यवस्थानिर्णयः । यत्र दिने जयन्तीलाभः तत्रैवोपवासः ।

"अर्द्धरात्रे तु रोहिण्यां, यदा कृष्णाष्टमी भवेत् ।
तस्यामभ्यर्चनं शौरेः, हन्ति पापं त्रिजन्मजम् ॥
सोपवासो हरेः पूजां, कृत्वा तत्र न सीदति" ।

इति विष्णुधर्मोत्तरीयात् ।

"अष्टमी नवमीयुक्ता, निश्यर्द्धं दृश्यते यदि ।
मुख्यकालः स विज्ञेयः तत्र जातो हरिः स्वयम्" ॥

इति शिष्टेन मुख्यकालाभिधानाच्च । उभयदिने जयन्तीलाभे परदिने ।

"उदये तूपवासस्य नक्तस्यास्तमये तिथिः ।
मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या, एकभुक्ते सदा तिथिः ॥

इति बौधायनेन उपवासस्योदयगामितिथौ विधानात् ।

"उपोषितव्यं नक्षत्रं, येनास्तं याति भास्करः ॥
यत्र वा पूज्यते रामः निशीथे शशिना सह ।

इति विष्णुधर्मोत्तरीयेण नक्षत्रस्यास्तनिशीथसम्बन्धेन बलवत्वप्रतिपादनात् । तिथेस्त्रिसन्ध्याव्यापित्वाच्च । जयन्त्याः लाभे रोहिणीयुताष्टम्यामुपवासः ।

"वासरे वा निशायां वा, यदा युक्ता तु रोहिणी ।
विशेषेण नभोमासि, सैवोपोष्या सदा तिथिः" ॥ इति

वशिष्ठवचने एवकारश्रुतेः । उभयदिने रोहिणीयुताष्टमीलाभे परदिने ।

"सप्तमीसहिताष्टम्यां, भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम ।
प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि, मुहूर्ताऽर्द्धं भवेद्यदि ॥
तदाऽष्टयामिकं प्रोक्तं, ज्ञेयं व्यासादिभिः पुरा ।
मुहूर्तेनापि सँय्युक्ता यामं पूर्णाष्टमी स्मृता ॥
किं पुनर्नवमी युक्ता, कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा" ।

इति ब्रह्मवैवर्तीयात् । उभयदिने रोहिण्यलाभे निशीथसम्बन्धिन्यामष्टम्यां यथा––

"दिवा वा यदि वा रात्रौ, नास्ति चेद्रोहिणीकला ।
रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत, विशेषेणेन्दुना युता" ।

इति माधवाचार्य्यधृतवचनात् ।

उपोष्य जन्मचिह्नानि, कुर्य्याज्जागरणं तु यः ।
अर्द्धरात्रे युताष्टम्यां, सोऽश्वमेधफलं लभेत्" ॥

इति नारदीयात् । उभयदिने निशीथसम्बन्धे तदसम्बन्धे वा परदिन एवोपवासः । उदये तूपवासस्येत्युक्तबौधायनवचनात् अस्तगामित्वात् ।

"बिना ऋक्षं तु कर्तव्या, नवमी सँय्युताष्टमी"त्यादिपद्मपुराणाच्च ।

अत्राचार्य्यचूडामणिः––सूर्य्योदये स्वल्पाप्यष्टमी रोहिणीयुता, अनन्तरं सम्पूर्णा नवमी सोमवासरेण बुधवासरेण वा युता स्यात्तदा परैवोपोष्या ।

"उदये याष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि ।
भवेत्तु बुधसँय्युक्ता, प्राजापत्यर्क्षसँय्युता ॥
अपि वर्षशतेनापि, लभ्यते वा न वा विभो" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् । विष्णुधर्मोत्तरे ––

"अष्टमी बुधवारे तु, रोहिणी सकला यदि ।
भवेत्तु बुधश्रेष्ठ निशार्दूल, किं व्रतैः शतकोटिभिः" ॥ इति ।

पद्मपुराणे––

"प्रेतयोनिगतानां तु, प्रेतत्वं नाशितञ्च तैः ।
यैः कृता श्रावणे मासि, अष्टमी रोहिणीयुता ॥

किं पुनर्बुधवारेण, सोमेन च विशेषतः ।
किं पुनर्नवमी युक्ता, कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा" ॥

इत्यनेन व्यवस्थामाह—सा च स्मार्तदूषणैः पराहता । यथा स्मार्ताः—

"न करोति यदा विष्णोः, जयन्तीसंज्ञकं व्रतम् ।
यमस्य वशमापन्नः, सहते नारकीं व्यथाम्" ॥

इत्यनेन प्रत्यवायश्रुतेः । बुधसोमयोगो बुधफलाय गुणफलानुरोधेन जयन्त्याख्यमुख्यकालबाधायोगात् । किन्त्वयं योगो जयन्त्याख्यलाभ एव बोध्य इत्याहुः । साम्प्रदायिकास्तु—नवमीदिने यद्यष्टमीलाभस्तदैव व्रतम् ।

"पूर्वा विद्धाष्टमी या तु, उदये नवमीदिने ।
मुहूर्तेनापि संयुक्ता, सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ॥

कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ।
नवम्यां सैव कार्य्या स्यात्, सप्तमीसंय्युता नहि ॥

इति पद्मपुराणात्—

"उदये तूपवासस्य, नक्तस्यास्तमये तिथिः ।
मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभुक्ते सदा तिथिः" ॥

इति बौधायनवचनाच्च—

"विना ऋक्षं तु कर्तव्या, नवमी संयुताष्टमी" ।

इत्यादिपद्मपुराणवचनादृक्षसत्त्वे सप्तमीविद्धाष्टम्यामपि व्रतमायाति, परन्तु सप्तमीसंयुता नहीतिनिषेधात् तदर्थस्याकिञ्चित्करत्वात् । विधिनिषेधयोः सतोः निषेधस्यैव जागरुकत्वादित्याहुः व्रतपद्धतौ रुद्रधरोपाध्यायाः ।

ब्रह्मपुराणे—

"अथ भाद्रपदे मासि, कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे ।
अष्टाविंशतिमे जातः, कृष्णोऽसौ देवकीसुतः ॥

भारावतरणार्थाय, दानवानां बधाय च ।
तस्मात् स तत्र सम्पूज्यो, यशोदा देवकी तथा ॥
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैः, यवगोधूमसम्भवैः ।
सगोरसैः भक्ष्यभोज्यैः, फलैश्च विविधैरपि ॥
रात्रौ प्रजागरः कार्य्यो, नृत्यगीतसमाकुलः ।
अरुणोदयवेलायां, नवम्याञ्च ततस्त्रियः ॥
एकवस्त्रावृताः सर्वाः, पुष्पमाल्यैरलङ्कृताः ।
नयन्ति प्रति ह्येषां, नानाविभवसम्भवाः ॥
नदीतीरं शुभं रम्यं, विविक्तं वा महोत्सवः ।
ततः स्नानं प्रकुर्वन्ति, स्थापयन्ति च तास्ततः ॥
ततः प्रविश्य च गृहम् यवान्नं भुञ्जते च ताः ॥
युक्तमिक्षुविकारैश्च, मध्वाज्यमरिचेन च" ॥ इति

इदं व्रतं स्त्रीपुंसो ःसाधारण्यमिति समयप्रदीपः । नित्यतया चात्र संकल्पो नास्ति । तत्र पूर्वाह्णे भगवन् कृष्ण इहागच्छ, इह तिष्ठ । एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः । एवं गन्धपुष्पधूपदीपताम्बुलनैवेद्ययथासम्भवयज्ञोपवीतवस्त्रादिभिः कृष्णयशोदादेवकीः प्रपूजयेत् । आचारात् दुर्गापूजापि । अरुणोदयवेलायाम् ॐ भगवन् कृष्ण क्षमस्वेत्यादिना विसृज्य स्त्रीद्वारा प्रतिमा जलाशये प्रक्षे ्प्या । स्त्रीभिश्च स्नात्वा गृहमागत्य, ऐक्षव-मधु-घृत-मरीच-सहितयवान्नेन पारणा कर्तव्या । इदं व्रतं यस्मिन् दिने उदयगामिनी अष्टमी प्राप्यते तस्मिन् दिने कर्तव्यम् । अष्टम्यां यस्मिन् दिने रोहिणीयोगः तस्मिन् दिने कृष्णपूजा शिवपूजा वा कर्तव्या ।

भविष्यपुराणे—

रोहिणी तु यदा कृष्ण पक्षे ऽष्टम्यां द्विजोत्तम ।
जयन्तीनाम सा प्रोक्ता, महापापहरा तिथिः ॥

यद्बाल्ये यच्च कौमारे, यौवने बार्द्धकेऽपि च।
सप्तजन्मकृतं पापं, स्वल्पं वा यदि वा वहु॥
तत्क्षालयति भूतेशं, तस्यामभ्यर्च्य भक्तितः।
तत्प्राप्नोति न सन्देहो, यच्चान्यं मनसेप्सितम्॥
होमजप्यादिकं नाना फलं शतसम्मतम्।
उपवासस्तु तत्रोक्तो, महापातकनाशनः"॥

अयञ्च रोहिण्यष्टमीयोगः, प्रायसो भाद्रकृष्णपक्षे भवति। अन्यदापि यदि लभ्यते तदैतदेव फलम्। विष्णुधर्म्मोत्तरे—तस्यामभ्यर्च्य भूतेशमित्यत्र गोविन्द-मिति पठितव्यम्। अथ प्रयोगः—कृतस्नानादिः प्रातःकाले भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता अद्य रोहिण्यष्टम्यां भूतेशपूजनोपवासव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, ॐ अद्य सप्तजन्मावच्छिन्नबाल्यबार्द्धककृतपापक्षयमानसेप्सितलाभमहापातकनाशकामनया भूतेशपूजनोपवासावहं करिष्ये, गोविन्दपूजनोपवासावहं करिष्ये इति वा संकल्पः। तत्र ॐ भगवन् भूतेश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एवं प्रकारो बोध्यः। गौडनिब-न्धे तु अर्द्धरात्रिकरोहिण्यष्टमीयोगे विष्णुपूजनमिति प्रशस्तं तृतीयमेव व्रतमित्याहुः। तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु अथ जन्माष्टमी। सा च कृष्णादिमासपक्षे भाद्रकृष्णाष्टमी, सा च द्विधा = कृष्णाष्टमी–जयन्ती च। तत्र अद्या शुद्धा सैव च रोहिणीयुक्ता जय-न्तीत्यभिधीयते।

"कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र, कलैका रोहिणी यदि।
जयन्तीनाम सा प्रोक्ता, उपोष्या च प्रयत्नतः"॥

इति ब्रह्मपुराणाभिधानात्। तथा—

"अष्टमी कृष्णपक्षस्य, रोहिणी सह सँय्युता।
भवेत्प्रपोष्ठपदे मासि, जयन्तीनाम सा स्मृता"॥

इति विष्णुधर्मोत्तरेऽभिधानात्। सा च सोमबुधयोरतिप्रशस्ता। अन्या

मध्या च । अकरणे प्रत्यवायश्रुतेरतो नित्या । नवमीविद्धा जयन्ती ततोऽन्या । प्रवर्तकवाक्यानि च—

"श्रावणे बहुले पक्षे, कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
न करोति नरो यस्तु, स भवेत्क्रूरराक्षसः ॥

इति भविष्ये रोहिणीयोगश्च अहोरात्रं मुख्यः, निशीथमात्रे मध्यमः ।

"अहोरात्रे तयोर्योगो, ह्यसम्पूर्णो भवेद्यदि ।
मुहूर्तमप्यहोरात्रे, योगे त्वेतामुपोषयेत्" ॥

इति वशिष्ठसंहितोक्तेः । तथा—

वर्षे वर्षे च या नारी, कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
न करोति महाप्राज्ञ, व्याली भवति कानने ॥

इति स्कन्दश्रुतेरित्यलं पल्लवितेन । पूर्वेद्युः परेद्युर्वा रोहिणीयोग तज्जन्माष्टमी जयन्त्यामन्तर्भूता ज्ञेया । यदुक्तं माधवेन—

"यस्मिन् वर्षे जयन्त्या....योगो जन्माष्टमी यदा ।
अन्तर्भूता जयन्त्यां स्याद्दक्षयोगप्रशक्तितः" ॥

इति मैथिलगोडादिमतमेतत् । यत्र वर्षे जयन्तीयोगाभावस्तत्र जयन्तीलोपे प्राप्ते अष्टमीमात्रेऽपि जयन्तीव्रतं कार्य्यमित्याशयपरमिदम् । यदाह—

"दिवा वा यदि वा रात्रौ, नास्ति चेद्रोहिणीकला ।
रात्रियुक्ता प्रकुर्वीत, विशेषेणेन्दुसँय्युताम्" ।

इति स्दन्कपुराणीयवचनं तु

"उदये चाष्टमी किञ्चित्, नवमी सकला यदि
जायते बुधसंयुक्ता, प्राजापत्यर्क्षसँय्युता ।
अपि वर्षशतेनापि, लभ्यते वा न वा विभो ।

इति पूर्वेद्युरेवोपवासः। जयन्तीव्रतवत्तूपवासद्वयं कार्य्यमिति प्रतीमः। नित्यकाम्यमिति बहवः, फलश्रवणात्। अत्र निशीथबेध एव ग्राह्यः। "कर्मणो यस्य यः कालः" इति स्वरसात्।

"अष्टमी शिवरात्रिश्च, अर्धरात्रादधो यदि।
दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्तिता"।

इति माधवीये पुराणान्तरवाक्यम्--

"अर्धरात्रे तु रोहिण्या, यदा कृष्णाष्टमी भवेत्।
तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्"॥

इति भविष्ये--तथा--

"अष्टमी रोहिणीयुक्ता, निशार्द्धे दृश्यते यदि।
मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम्"॥

इति वाशिष्ठे। अष्टमी द्विधा = रोहिणीसहिता, तद्रहिता च। तत्र रोहिणीसहिता अष्टमी पूर्वेद्युरेव। निशीथयोगिनी परेद्युरेव। उभयेद्युरनुभयेद्युश्चेत। तत्राद्ययोर-संशयः। एककर्म्मकालस्य मुख्यत्वात्।

"जन्माष्टमो रोहिणी च, शिवरात्रिस्तथैव च।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या, तिथिभान्ते च पारणम्"॥

इति भृगुवाक्यात्।

"वर्जनीया प्रयत्नेन, सप्तमी सँय्युताष्टमी"।

इति ब्रह्मवैवर्तवचनाच्च। अन्त्ययोः परैव ग्राह्या। प्रातः संकल्पकालस्य मुख्यत्वात्। रोहिणीयुतापि चतुर्द्धा पूर्वेद्युरेव। निशीथे रोहिणीयुता परेद्युरेव, उभयेद्युरनुभये-द्युश्चेति अत्राद्ययोरसंशयः। यथाह—

"कार्य्या विद्धापि सप्तम्या, रोहिणी सहिताष्टमी"।

इति पद्मपुराणोक्तेः। गारुडे तु—

"जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्"। इति

वशिष्ठपुराणे तु—

"सप्तमीसँय्युताष्टम्यां, निशीथे रोहिणी यदि ।

भविता साष्टमी पुण्या, यावच्चन्द्रदिवाकरौ" । इति

तृतीयपक्षे परैव वर्जनीया । प्रयत्नेनेति ब्रह्मवैवर्तात । चतुर्द्धापि नेधा । पूर्वेद्युर्निशीथेऽष्टमी । परे अह्नि रोहिणी पराह्णाष्टमी । पूर्वेऽह्नि रोहिणी उभयेद्युरुभयस्य निशीथासम्बन्धो । आद्ये परेद्युर्जयन्तीयोगस्य मुख्यत्वात् सैव ग्राह्येति माधवादयः । तत्तु "यस्मिन् वर्षे जयन्त्याख्यः" इत्यादिना । कूर्मपुराणे—

"पूर्वविद्धाष्टमी या तु, उदये नवमीदिने ।

मुहूर्तमपि सँय्युक्ता, सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ॥

कलाकाष्ठा मुहूर्तापि, यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ।

नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्, सप्तमीसँय्युता नहि" ॥

इति पद्मपुराणाभिधानम् । एवमेव मिश्राद्वैतनिर्णये, रुद्रधरवर्षकृत्ये, श्रीधर-तिथितत्त्वे च गौडदाक्षिणात्यग्रन्थे बहुव्यवस्था बोध्या इति ।

अथ पारणाविचारः ।

"तिथिरष्टगुणं हन्ति, नक्षत्रन्तु चतुर्गुणम् ।

तस्मात्प्रयत्नतः कुर्य्यात्, तिथिभान्ते च पारणम्" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनेन तिथिनक्षत्रवियोगे पारणमायाति ।

"तिथ्यर्क्षयोर्यदा चान्तर्नक्षत्रान्तमथापि वा ॥

अर्द्धरात्रेऽथ वा कुर्य्यात्, पारणं तु परेऽहनि' ।

इति हेमाद्रिवचनेन अर्द्धरात्रेऽपि उभयान्ते, अन्यतरान्ते वा पारणं कुर्य्यादिति मुख्यः पक्ष इति स्मार्ताः ।

"सर्वत्रैवोपवासेषु, दिवापारणमिष्यते" ।

इत्यादिब्रह्मवैवर्तवाक्यम् तुल्यविषयकं बोध्यम् । दिने मुख्यकाललाभे अन्यतरान्ते वा तज्ज्ञेयम् । नक्तव्रतेऽतिरिक्ते चैकादशीव्रतपरम् । गौडरघुनन्दन-गोपालप्रभृतयस्तु— अथ पारणाकालनियमाः । यद्यत्र सार्द्धप्रहरनिशाभ्यन्तरे तिथिनक्षत्रयोर्वियोगः तदैव पारणम् । "तिथिरष्टगुणं हन्ति," इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् । यदा महानिशायाः पूर्वमेवास्यावसानम्, अन्यतरस्य महानिशायां तदन्ते वा तदा तदेकतरस्यावसाने पारणम् ।

"तिथिनक्षत्रसंयोगे, उपवासो यदा भवेत् ।
पारणं तु न कर्तव्यं, यावन्नैकस्य संक्षयः" ॥ इति ब्रह्मवैवर्तीयात् ।

"संयोगिकं व्रते प्राप्ते, यद्येकोऽपि वियुज्यते ।
तत्रैव पारणं कुर्य्यात्, देवं वेदविदो विदुः" ॥ इति नारदीयाच्च ।

यदा तु महानिशायामुभयस्थितिः अवियोगेऽपि तदा उत्सवान्ते प्रातः पारणम् । अस्य मूलं मृग्यम् । मिश्र एव प्रष्टव्यस्तदा अस्यापि आपस्तम्वे प्रसिद्धवचनं यथा —

"जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् ।
तिथ्यन्ते चोत्सवान्ते च, सम्प्रकुर्वीत पारणम्" ॥

इति प्रदर्शितम् । तत्तु पारणदिनान्ते रात्रिपर्य्यन्तम् यत्र रोहिणीस्थितिः, पश्चाद्धानिः, तत्र तिथिभान्ते च पारणमिति वचनात् इति सूक्ष्मदृग्भिः सुधीभिराकलनीयम् । कृत्यमहार्णवे—अत्र पाराणादिने रात्रेः सार्द्धप्रहराभ्यन्तरेति भान्तलाभस्तदा दिवसे रात्रावपि तत्काले पारणम् कर्तव्यम् ।

"मुनिभिर्द्धिरसनं प्रोक्तं, विप्राणां मर्त्यवासिनाम् ।
आद्यमहस्तमस्विन्यां, सार्द्धप्रहरयामतः" ॥

इति निरपवादककात्यायनवचनादित्येके । अत्रानन्तभट्टाः—

"अन्यतिथ्यागमो रात्रौ, तामसस्तेजसोऽपि वा ।

तामसे पारणं कुर्वंस्तामसीं गतिगाप्नुयात्" ॥

गारुडेन—रात्रौ तिथिवेधे विशिष्य पारणनिषेधात् तदापि दिवस एव पारणं कर्तव्यम् इत्याहुः । अत्र तिथिस्त्रयोदशं हन्तीति वचनानुसारान्न दिवापारणं किन्तु तत्रापि रात्रावेवेति हेमाद्रिस्वरसः । तथा तल्लिखितवचनम्—

"तिथ्यक्षयोर्यदा छेदो, नक्षत्रान्तमवाप्य वा ।

अर्द्धरात्रेऽथ वा कुर्य्यात्, पारणं न परेऽहनि" ॥ इति

अस्यार्थः । अत्यन्ताशक्तौ तिथ्यभ्यन्तरेऽपि नक्षत्रान्तमवाप्य पारणं कर्तव्यम् । शक्तेन तिथ्यन्तपर्य्यन्तमपेक्ष्यार्द्धरात्रेऽपि पारणं कर्तव्यमिति । साम्प्रदायिकास्तु—तिथ्यभ्यन्तरे पारणनिषेधपरवचननिषेधः तथा महानिशायां कात्यायनेन भोजननिषेधादेतद्वचनस्य तदानीं भोजनविधायकत्वासम्भवे प्रतिप्रसवासम्भवात् परं तृतीयदिवसे पारणमत्र वदन्तीति । इति जन्माष्टमी तत्कृत्यं समाप्तम् ।

भाद्रशुक्लाष्टमी = गोपाष्टमीति दैवज्ञबान्धवः । अस्यां महालक्ष्मीव्रतारम्भ आचारात् । तदग्रिमाष्टम्यां तत्पूर्त्तिरिति कृत्यमहार्णवे । आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम । तत्राष्टमीचन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । यदा परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्तव्यापिनी तदा परैव अन्यथा पूर्वा । पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या । चन्द्रोदये सदा त्रिमुहूर्तापि सा पूज्या । परतश्चोर्द्धगामिनीति स्मृतेः ।

"अर्द्धरात्रिमतिक्रम्य, वर्तते याऽन्तरा तिथिः ।

तदा तस्यां तिथौ कार्य्यम्, महालक्ष्मीव्रतं सदा"

इत्यपि बोध्यम् । किञ्च, "लक्ष्मीव्रतञ्चाभ्युदिते शशाङ्के यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे" इति निर्णयसिन्धुधृतवचनाद्धमपि प्रमाणम् । यत्तु—

"सप्तम्यामुदिते सूर्य्ये, परतो याऽष्टमी भवेत् ।

तत्र व्रतोत्सवं कुर्य्यात्, न कुर्य्यादपरेऽहनि" ॥

इति विश्वनिबन्धवचनं लक्ष्मीव्रतपरमुपेक्ष्य, जीमूतवाहनपूजापरतया क्षिपति, तदयुक्तम्, तत्पूजाविधायकानां वचनानां पृथगेव जागरुकत्वादिति पुरस्ताद्वक्ष्यते । इति महालक्ष्मी-

व्रतनिर्णयः ।

आश्विनकृष्णाष्टम्यामेव जीमूतवाहनपूजा । तत्र भविष्यपुराणम्—

"इषे मास्यसिते पक्षे, अष्मी या तिथिर्भवेत् ।
पुत्रसौभाग्यदा स्त्रीणां, ख्याता सा जीवपुत्रिका" ॥
शालिवाहनराजस्य, पुत्रो जीमूतवाहनः ।
तस्यां पूज्यः स नारीभिः पुत्रसौभाग्यलिप्सया ॥
प्रदोषसमये स्त्रीभिः, पूज्यो जीमूतवाहनः ।
पुष्करणीं विधायाथ, प्राङ्गणे चतुरस्रिकाम्" ॥ इति

अत्रार्थे विष्णुधर्म्मोत्तरे—

"पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा, प्रदोषे यत्र चाष्टमी ।
तत्र पूज्यः सदा स्त्रीभिः, राजा जीमूतवाहनः" ॥ इति

तथा च प्रदोषव्यापिन्यामष्टम्यां पूजनं कर्तव्यमित्यवगन्तव्यम् ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ कस्मिन् दिने कर्तव्यमिति संशये त्वयं विचारः—यद्दिने सूर्य्योदयमारभ्य प्रदोषव्यापिनी तिथिर्न भवेत् तदा सूर्य्योदयव्यापिन्यामेव पूजनं कार्य्यम् ।

"लक्ष्मीव्रतञ्चाभ्युदिते शशांके, यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे ।
तत्रोदयं वै कुरुते दिनेशस्तदा भवेत् जिवितपुत्रिका च" ॥

इति निर्णयसिन्धुघृतवचनात् । अस्यां तिथौ स्त्रीभिरुपोषणं विधेयम् ।

"आश्विनस्य सिताष्टम्यां, याः स्त्रियोऽन्नं हि भुञ्जते ।
मृतवत्सा भवेयुस्ता, वैधव्यञ्च भवेद् ध्रुवम्" ॥

इति भविष्यपुराणघृतवचनात् ॥ इति जीमूतवाहनपूजाविचारः ॥

अथाश्विनाष्टमी = महाष्टमी ।

"तत्राष्टम्यां भद्रकाली, दक्षयज्ञविनाशिनी ।
प्रादुर्भूता महाघोरा, योगिनीकोटिभिर्वृता" ॥ इति

उपवासादिष्वष्टमी बाधकमन्तरेण नवमीयुतैव ग्राह्या, वसुरन्ध्रयोरिति युग्मवाक्यात् ।

"अष्टमी नवमीयुक्ता, नवमी चाष्टमीयुता" ॥ इति पाद्मोक्तेः ।

"शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव, शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
पूर्वविद्धा न कर्तव्या, कर्तव्या परसँय्युता" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवाक्याच्च । विष्णुधर्म्मोत्तरेऽपि—

"अष्टम्या नवमीयुक्ता, नवम्या चाष्टमीयुता ।
अर्द्धनारीश्वरप्राया, उमामाहेश्वरी तिथिः ॥

इति तत्रैव—

एकादश्यष्टमी षष्ठी, द्वितीया च चतुर्दशी ।
चतुर्थी चाप्यमावास्या, उपोष्याः स्युः परान्विताः" ॥ इति

किञ्च—

"सप्तम्या चाष्टमीयुक्ता, नवम्या चाष्टमीयुता ।
सर्वेषु व्रतबन्धेषु, अष्टमी परतः शुभा" ॥ इति

न च—

"महाष्टम्याश्विने मासि, शुक्ला कल्याणकारिणी ।
सप्तम्या सँय्युता कार्य्या, मूले न तु विशेषतः ।
महाष्टम्यां भगवती, भद्रायामपि पूजिता ॥
ददाति चायुरारोग्यं, यतो भद्रा स्वरूपिणी ।
कुलं पुत्रं धनं धान्यं राज्यमायुस्तथैव च ॥
प्रथमा चाष्टमी पूज्या, यः कांक्षति सदा शुभम् ।
आश्वयुज्याष्टमी यत्र, पूज्या नवमीमिश्रिता ॥
दुर्भिक्षं तत्र जानीयाद्दशवर्षाणि पञ्च च ।
देवी निवेश्यते यत्र, नवम्यां तु नराधिप ॥
राज्यपीडा भवेत्तत्र, कुलप्राणापहारिणी" ॥

इत्यादिवचनैः नवमीविद्धायामष्टम्यामुपवासादिनिषेधात्कथं परविद्धा ग्राह्येति वाच्यम्, नवमीयुताया अष्टम्याः प्रामाणिकभूरिवचनैः ग्राह्यत्वात्, सप्तमीविद्धाया

अष्टम्याः निषेधसन्दोहसत्त्वेन तथा पर्य्यवसानात् । तत्र विधिवाक्यानि दर्शितान्येव । अथ निषेधवाक्यानि प्रदर्श्यन्ते । यथा स्मृतिसंग्रहे––

"शरन्महाष्टमी पूज्या, नवमीसँय्युता यदा ।
सप्तमी सँय्युता नित्यं, शोकसन्तापकारिणी ॥
जम्भेन सप्तमीविद्धा, पूजिता तु महाष्टमी ।
इन्द्रेण निहतो जम्भो, यस्माद्दानेरपुङ्गवः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, सप्तमोमिश्रिताष्टमी ॥
वर्जनीया प्रयत्नेन, मनुजैः शुभकांक्षिभिः ॥ इति ।

किञ्च––

"सप्तमीं शल्यसँय्युक्तां, मोहादज्ञानतोऽपि वा ।
महाष्टमीं प्रकुर्वाणो, नरकं प्रतिपद्यते ॥

तथा––

सप्तमीकलया यत्र, परतश्चाष्टमी भवेत् ।
तेन शल्यमिदं प्रोक्तं, पुत्रपौत्रक्षयप्रदम् ॥

पुनश्च––

पुत्रान् हन्ति पशून् हन्ति, हन्ति राष्ट्रं सराजकम् ।
हन्ति जातानजातांश्च, सप्तमीसहिताष्टमी" ॥ इति

देवीपुराणे––

"सप्तमीवेधसंयुक्ता, यैः कृता तु महाष्टमी ।
पुत्रदारधनैर्हीना, भ्रमन्तीह पिशाचवत् ॥ इति
सप्तमी स्वल्पसंयुक्ता, वर्जनीया सदाष्टमी ।
स्तोकापि सा तिथिः पुण्या, यस्यां सूर्य्योदयो भवेत्" ॥ इति

यत्र च नवमीयुक्तायाः अलाभः तत्र सप्तमीयुतापि कार्य्या, सप्तम्यामुदिते सूर्य्ये इति वचनात् । शुद्धायां तु विवादाभाव एव । दाक्षिणात्यनिबन्धे––केवलाष्टम्यामुपवासः पुत्रवतो निषिद्धः ।

"उपवासो महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत्" ।

इति कालिकापुराणात् । अत्र त्रिमुहूर्तवेधोऽपि नास्ति तदा घटिकामात्राप्यौदयिकी ग्राह्या ।

"व्रतोपवासस्नानादौ, घटिकैका यदा भवेत् ।
तामेव तिथिमाश्रित्य, कुर्य्यात्कर्माण्यतन्द्रितः" ॥

इति वचनात् ।

माघशुक्लाष्टमी = भीष्माष्टमी । तत्र भीष्मतर्पणे कृते सँव्वत्सरकृतपापक्षयो भवति । अकरणे सँव्वत्सरकृतपुण्यक्षयो भवति । इति भीष्मतर्पणं नित्यं काम्यञ्च ।

"शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य, दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।
सँव्वत्सरकृतं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति" ।

इति भविष्योत्तरवचनात् । जलदानं तु तर्पणरीत्या । तदाह धवलधृतस्मृतिः—

"वैयाघ्रपदगोत्राय, त्वां कृत्तिप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतत्, सलिलं भीष्मतर्पणे ॥
भीष्मः शान्तनवो वीरः, सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
आभिरद्भिरवाप्नोति पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥

इत्युशनसामन्त्रः । पुत्रपौत्रोचितां क्रियामित्यभिधानात् पितृकर्मरीत्या—ब्राह्मणादिः पितृतर्प्पणानन्तरं, क्षत्रियादिः तत्पूर्वं तर्प्पयेदिति सँव्वत्सरप्रदीपादयः । अत्र बीजं वर्णज्यैष्ठ्यम् ।

इति भीष्माष्टमी तत्कृत्यनिर्णयः ।

अथ चैत्र शुक्लाष्टमी = अशोकाष्टमी ।

स्कान्दे—

"मीने मधौ शुक्लपक्षे, अशोकाख्यां तथाष्टमीम् ॥
पिबेदशोककलिकां, न ततः शोकमाप्नुयात्" ।

अशोकाख्यामित्युपादानात्तिथिमात्रेऽपि तत्पानम् । फलन्तु मन्त्रलिङ्गाच्छोकराहित्यं बोध्यम् । पुनर्वसुनक्षत्रयोगे च फलाधिक्यमाह—लिङ्गपुराणम्—

"अशोककलिकाश्चाष्टौ, ये पिबन्ति पुनर्वसौ ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां, न ते शोकमवाप्नुयुः ॥

पानसमये मन्त्रोऽपि पठनीयः । स यथा —

"त्वामशोक सदाभीष्ट-मधुमास-समुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो, मामशोकं सदा कुरु" ॥

अथ ब्रह्मपुत्रस्नाने कालिकापुराणम् —

"चैत्रे मासि सिताष्टम्यां, यो नरो नियतेन्द्रियः ।
स्नायाल्लौहित्यतोयेषु, स याति ब्रह्मणः पदम् ॥
चैत्रे तु सकलं मासं, शुचिप्रयतमानसः ।
लौहित्यतोयैर्यः स्नायात्, स कैवल्यमवाप्नुयात्" ॥

लौहित्यो — ब्रह्मपुत्राख्यनदः । स्रोतोमात्रे यथा—विष्णुधर्म्मोत्तरे —

"पुनर्वसुबुधोपेतां, चैत्रे मासि सिताष्टमीम् ।
स्रोतसि विधिवत्स्नात्वा, वाजपेयफलं लभेत्" ॥

इत्यशोकाष्टमीनिर्णयः ।

आश्विनकृष्णाष्टम्यां स्नानदानादिशिवप्रीतये कर्तव्यमिति कृत्यमहार्णवे भविष्यपुराणे—

"कन्यागते सवितरि कृष्णपक्षेऽष्टमी च या ।
सा च पुण्या पापहरा, शिवस्यानन्दवर्द्धनी ॥
स्नानं दानं जपो होमः, पितृदेवाभिपूजनम् ।
सर्वप्रीतिकरं स्याच्च, प्रीते तस्मिंस्त्रिलोचने" ॥ इति

अष्टकाश्राद्धमप्यत्र कार्य्यम् । अष्टकासु द्रव्यविशेषमाह वायुपुराणम् —

"कृष्णपक्षविशिष्टासु, पूर्वा चैन्द्री विभाव्यते ।
प्राजापत्या द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदेवकी ॥
आद्याऽपूपैः सदा कार्य्या, क्षीरैरन्या भवेत्तथा ।
शाकैः कार्य्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः" ॥

तथा च——आश्विनकृष्णाष्टमी, तत्र श्राद्धमपूपैः कार्य्यम् ।

यत्तु – ऐन्द्र्यां तु प्रथमायां वै, शाकैः सन्तर्पयेत् पितॄन्" । इत्युक्तम्,

तच्छाखान्तरविषयकम् । आश्विनाष्टकापि नित्यगणैर्ग्राह्या यथाह—

शातातपः –

"नवोदके नवान्ने च, गृहप्रच्छादनेऽपि च ।

पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥

तस्माद्दद्यात्सदोद्युक्तो, विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च" । इति

उद्युक्तो = यत्नवान् । ब्राह्मणेष्वित्यस्य प्राप्तेष्विति शेषः । तथा हारीतः——

"तथा च ब्राह्मणं प्राप्य सद्यः श्राद्धं विधीयते" ॥ इति ।

नवोदकश्राद्धादेश्च नित्यत्वं सदेति श्रवणात् । श्राद्धमिति वचनात् इदञ्चाष्टकाश्राद्धमपरपक्षश्राद्धेन तन्त्रेणैव कर्तव्यमन्येन तु स्वातन्त्र्येणेति द्रष्टव्यम् । अन्वष्टकाश्राद्धञ्चाष्टकाश्राद्धोत्तरदिने । तत्र च न नवमीनियमः । "स्वोऽन्वष्टकम्" इति विष्णूक्तेः । अत्र च द्रव्यमष्टकोक्तम् । अन्वष्टकासु अष्टकावदिति कात्यायनवचनात् ।

इति अष्टमीनिर्णयः

कृष्णपक्षस्य ।

अथ शुक्लपक्षस्याष्टमीनिर्णयः ।

तत्र भाद्रशुक्लाष्टमी = दूर्वाष्टमी । सा पूर्वा ग्राह्या ।

"शुक्लाष्टमी तिथिर्य्या तु, मासि भाद्रपदे भवेत् ।

दूर्वाष्टमी तु सा ज्ञेया, नोत्तरा सा विधीयते" ॥

इति पुराणसमुच्चयोक्तेः । यत्तु—

"मुहूर्तो रोहिण्यष्टम्याः, पूर्वा वा यदि वा परा ।

दूर्वाष्टमी तु सा कार्य्या, ज्येष्ठा मूलञ्च वर्जयेत्" ॥

इति ज्येष्ठाया अग्राह्यत्ववचनम्, तत्पूर्वदिने ज्येष्ठादियोगे द्रष्टव्यम् ।

"दूर्वाष्टमी सदा त्याज्या, ज्येष्ठामूलर्क्षसँय्युता ।

तथा—

"ऐन्द्रर्क्षे पूजिता दूर्वा, हन्ति पापानि नान्यथा ॥
भर्तुरायुर्हरा मूले, तस्मात्तं परिवर्जयेत्" ॥

इति तन्निषेधादिति हेमाद्रौ स्थितम् । इदञ्च व्रतम् अगस्त्योदये कन्यार्के न कार्य्यम् ।

"शुक्लभाद्रपदे मासि, दूर्वासंज्ञा तु याऽष्टमी ।
सिंहस्थे सोत्तमा सूर्य्येऽनुदिते मुनिसत्तम" ।

इति मदनरत्नोक्तेः स्कान्दोक्तेः ।

"अगस्त्योदिते तात, पूजयेदमृतोद्भवाम् ।
वैधव्यं पुत्रशोकञ्च, दशवर्षाणि पञ्च च" ॥

इति तत्रैव दोषोक्तेश्च । इदञ्च व्रतं स्त्रीणां नित्यम् ।

"या न पूजयते दूर्वा मोहादिह यथाविधि ।
त्रीणि जन्मानि वैधव्यं, लभते नात्र संशयः" ॥

इति पुराणसमुच्चयात् । यदा ज्येष्ठादिकं विनाष्टमी लभ्यते तदा तत्रैवोक्तम् ।

"कर्तव्या चैकभुक्तेन, ज्येष्ठामूलं यदा भवेत् ।
दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या, न वन्ध्या दिवसं शयेत्" ॥

अत्र विधिर्मदनरत्ने—भविष्ये—

"शुचौ देशे प्रजातायां, दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम ।
स्थाप्य लिङ्गं ततो गन्धैः, पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ।
दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ, अर्घ्यं दद्यात् त्रिलोचने ॥
दूर्वाशमीभ्यां विधिवत्, पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः" ।

मन्त्रस्तु—

"त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि, वन्दितासि सुरासुरैः ॥
सौभाग्यं सन्ततिं देहि, सर्वकार्य्यकरी भव ॥

यथा यथा हि शाखाभिः, विस्तृतासि महीतले ।
तथा ममापि सन्तानं, देहि त्वमजरामरे ॥

अत्रानग्निपक्वं भक्षयेत् ।

"अनग्निपक्वमश्नीयात्, अन्नं दधि-फलं तथा ।
अक्षार-लवणं ब्रह्मन्, अश्नीयादिति तत्र वै" ॥

इति तत्रैव भविष्योक्तेः, अत्रैव ज्येष्ठा पूजोक्ता—माधवीयस्कन्दे—

"मासि भाद्रपदे शुक्ले, पक्षे ज्येष्ठार्क्षसँय्युते ।
यस्मिन् कस्मिन् दिने कुर्य्यात्, ज्येष्ठायां परिपूजनम्" ॥ इति

इयं ज्येष्ठा योगविशेषेण पूर्वा परा वा ग्राह्या । दिनद्वये तद्योगे परा । पूर्वाह्ले रात्रियोगे पूर्वैव ।

"नवम्या सह कार्य्या स्यादष्टमी नात्र संशयः ।
मासि भाद्रपदे शुक्ले, पक्षे ज्येष्ठार्क्षसंयुता ॥
रात्रिर्यस्मिन् दिने तत्र, ज्येष्ठायाः परिपूजनम्" ॥ इति तत्रैवोक्तेः ।

अस्यापवादः—

"यस्मिन् दिने भवेज्ज्येष्ठा, मध्याह्नादूर्द्ध्वमप्यनु ।
तस्मिन् हविष्यं पूजा च, न्यूना चेत् पूर्ववासरे ॥ इति

इदञ्च व्रतम् केवलतिथौ केवलनक्षत्रे चोक्तं मात्स्ये—

"प्रत्याब्दिकतिथावुक्तं, तज्ज्येष्ठा दैवतं व्रतम् ।
प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च, विहितं केवले शुभे ॥
तिथावेवाचरेदाद्यं, द्वितीयं केवलर्क्षके" ॥ इति

दाक्षिणात्यास्तु—ऋक्षे प्रथमं कुर्वन्ति । तथा—

"मैत्रेणावाहयेद्देवीं, ज्येष्ठायां तु प्रपूजयेत् ।
मूले विसर्जयेद्देवीं, त्रिदिनं व्रतमुत्तमम्" इति

मन्त्रस्तु—

"ज्येष्ठायै च नमस्तुभ्यं, ज्येष्ठायै ते नमो नमः ।
सर्वायै च नमस्तुभ्यं, शाङ्कर्य्यै ते नमो नमः" ॥ इति

भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कुर्यात् ।

इति दूर्वाष्टमीनिर्णयः ।

अथ नवमीनिर्णयः

नवमी तदीयकृत्यं निर्णीतं परितो वदामि सुकरम् ।
नत्वा गजास्यचरणे, शरणे विपदं बुधौ सततम् ॥

नवमी सा च द्विधा । शुद्धा विद्धा च शुद्धायां विवादाभाव एव विद्धा तु अष्टमीयुता ग्राह्या वसुरन्ध्रयोरिति युग्मवाक्यात् ।

"अष्टम्या नवमीयुक्ता, नवम्या चाष्टमीयुते" ति स्मृतेश्च।

"प्रतिपन्नवमी चैव कर्तव्या संमुखी तिथिः" इत्यप्यसति वाधके साधकम् । किञ्च, "नवमी दशमी चैव नोपोष्या परसंयुता" इति परविद्धायाः निषेधादर्थात्पूर्वविद्धैव कर्तव्येति सिद्धम् । रामनवम्यां तु विशेषः । अथ केयं रामनवमीत्याह—अगस्ति-संहितायाम्—

"चैत्रशुक्ला तु नवमी, सा तिथिः सर्वकामदा ।
श्रीरामनवमी प्रोक्ता, कोटिसूर्य्यग्रहाधिका" ॥ इति

अत्र चैत्रपदश्चान्द्रपरमेव । तत्रैव यथा

"मेषे पूषणि सम्प्राप्ते, लग्ने कर्कटकाह्वये ।
आविरासीत्सकलया, कौशल्यायां परः पुमान् ॥ इति

मेषस्थादित्वेन माधवपरिग्रहात् चैत्रश्चान्द्र इति सिद्धम् । अथ कीदृश्युपोप्येत्याह—आपस्तम्बः—

"चैत्रशुक्ला तु नवमी, पुनर्वसुयुता यदि ।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥ इति

किञ्चागस्त्यसंहितायाम्—

"चैत्रशुक्लनवम्यां तु, जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्वस्वृक्षसंयोगः, स्वल्पोऽपि यदि लभ्यते ।
चैत्रशुक्लनवम्यां वै, सा तिथिः सर्वकामदा ।
तस्मिन् दिने महापुण्ये, राममुद्दिश्य भक्तितः ॥
यत्किञ्चित्क्रियते कर्म, तदक्षयकारकम् ।
उपोषणं जागरणम्, पितृमुद्दिश्य तर्प्पणम् ॥
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं, ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः" । इति

तथा च दिनद्वये नवमीव्याप्तौ मध्याह्नव्याप्तपुनर्वस्वृक्षसंयुक्तैव नवम्युपोष्येति सिद्धम् । अथ तादृश्यष्टमीयुक्ताप्युपोष्या स्यादिति तु नाशङ्कनीयम् ।

"नवमी वसु-संयुक्ता, नोपोष्या द्विजसत्तम ।
महापापकरी प्रोक्ता, नक्षत्रसहिताऽपि च" ॥

इति निषेधात् अथाष्टमीविद्धा निषिद्धा चेदेकादश्यामपि यत्र पारणालाभः तादृश्यपि नवम्युपोष्या स्यादित्यपि नोद्देश्यं ।

"नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां वै, दशम्यामेव पारणम्" ॥ इत्येवकारश्रुतेः ।

दशम्यतिरिक्तकालस्य पारणानर्हत्वादिति । वस्तुतस्तु दशमीपारणलाभे सर्वैरष्टमी विद्धा नोपोष्या विष्णुपरायणैरिति विष्णुपरायणेन भवितव्यमित्युपदेशपरम्, न तु कर्तृविशेषणम् अगस्त्येनावैष्णवस्य विद्धोपासनानुपदेशात् । कर्तृभेदे विधिद्वयकल्पनापत्तेः । अत एव माधवाचार्य्येण सामान्त एव अष्टमीविद्धा निषिद्धेत्युक्तमिति रघुनन्दनभट्टाचार्य्याः । व्रतस्यास्य नित्यत्वमप्याहागस्त्यः—

"प्राप्ते वा रामनवमी, दिने मर्त्यो विमूढधीः ।
उपोषणं न कुरुते, कुम्भीपाकेषु पच्यते ॥
यस्तु रामनवम्यां वै, भुङ्क्ते मोहविमूढधीः ।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु, पच्यते नात्र संशयः ।

अत्र मर्त्य इत्युपादानान्नरमात्राधिकारः। एवञ्च

"कुर्य्याद्रामनवम्यां तु, उपोषणमतन्द्रितः।
मातुर्गर्भमवाप्नोति नैव, रामो भवेत्स्वयम्॥
तस्मात्सर्वात्मना सर्वः, कुर्वीत नवमीव्रतम्॥
मुच्यते पातकैः सर्वैर्याति ब्रह्म सनातनम्"॥

इति फलकीर्तनन्तु संयोगपृथक्त्वन्यायात्सिद्धम्। यदा तु पूर्वदिने अष्टमी परदिने नवमी दशमीयुक्ता, तदग्रिमदिने दशमी पारणयोग्या न लभ्यते, तदा नक्षत्रयोगायोगे-ऽप्यष्टमीविद्धैव ग्राह्या परदिने दशम्यामेव पारणमित्येवकारश्रुतेः तस्माद्यत्र द्वित्रिपलादि-परिमिताष्टमीविद्धा नवमी, अग्रिमदिने नवमी दशमीयुता तदग्रिमदिने पारणयोग्या दशमी लभ्यते तत्राष्टमीविद्धा न ग्राह्येति निर्गलितं मतम्।

न च त्रिमुहूर्तोनीभूतस्य पलादिवेधस्याकिञ्चित्करत्वात् कथं तादृशाष्टमीवेधेन नवम्यामनुपोष्यत्वमिति वाच्यम्, अनुक्तपरिमितवेधस्थलेऽन्यतिथियोग एव वेधः। स च पलादावपि सम्भवत्येव। बहुतरविचारोऽस्मत्कृतरामनवम्युपोषणग्रन्थे द्रष्टव्यः। अगस्त्यसंहितायाम्—

"शालग्रामशिलायां तु, तुलसीदलकल्पिता।
पूजा श्रीरामचन्द्रस्य, कोटिकोटिगुणाधिका"॥ इति

पूजेयं कृतोपवासैस्तदन्यैरपि जनैः यथासम्भवोपचारैः कर्तव्या। कृतोपवासिनान्तु निवेदनमत्राह—तत्रैव—

"उपोष्य नवमीन्त्वद्य, यामेष्वष्टसु राघवे।
तेन प्रीतो भव त्वं भो, संसारात्त्राहि मां प्रभो"॥

इति निवेद्यैवं ध्यायेत्—

"कोमलाङ्गं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम्।
दक्षिणांशे दशरथं, पुत्रावेष्टनतत्परम्॥
पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं, सच्छत्रं कनकप्रभम्।

पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ, तालवृन्तकरावुभौ ॥

अग्रे व्यग्रं हनूमन्तं, रामानुग्रहकांक्षिणम् । इति ध्यात्वा पूजयेत् ॥

ओँ भगवन् श्रीरामचन्द्र इहागच्छ, इहतिष्ठेत्यावाह्य स्थापयित्वा, इदं पाद्यम् ओँ भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः ।

"ओँ इन्द्राग्निश्च यमश्चैव, नैर्ऋतो वरुणोऽनिलः ।

कुवेर ईश्वरो ब्रह्मा, दिक्पालाः स्नापयन्तु ते" ॥

इदं मन्त्रं पठित्वा इदं स्नानीयम् ओँ भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः इति दद्यात् । आचमनीयं दत्त्वा अर्घं दद्यात् ।

"फलपुष्पाम्बुसम्पूर्णम्, गृहीत्वा शंखमुत्तमम् ।

अशोकरत्नकुङ्कुमैः, युक्तञ्च तुलसीदलैः" ॥ एवमर्घकल्पनम् ।

"ओँ दशाननबधार्थाय, धर्म्मसंस्थापनाय च ।

दानवानां विनाशाय, दैत्यानां निधनाय च ॥

परित्राणाय साधूनां, रामो जातः स्वयं हरिः ।

गृहाणार्घं मया दत्तं, भ्रातृभिः सहितोऽनघ" ॥

इदमर्घ्यं सभ्रातृकाय ओँ भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः । इदमाचनीयम् । ततस्तन्मन्त्रैः वस्त्रयज्ञोपवीतालङ्करणगन्धचन्दनतिलयव–पुष्पदूर्वा-तुलसीदल-धूपदीपषड्रसोपेतनैवेद्याच--मनीयताम्बूलादि दद्यात् । व्रतरात्रिम् पूजाजागरणपुराणादिश्रवण-गीतवाद्य-हरिकीर्तनादिभिर्नयेत् ।

यथा—

"पुष्पाञ्जलिं पुनर्दत्त्वा, यामे यामेष्वतन्द्रितः ।

पूजयेद्विधिवद्भक्त्या, दिवारात्रिं नयेद् बुधः" ॥ इति

पुष्पाञ्जलिमन्त्रस्त्वग्रे वक्ष्यते--

अथ कार्तिकशुक्ला नवमी अक्षया तत्र सोपकरणकुष्माण्डदानमतिप्रशस्तम् । तद्विधिः दर्श्यते—प्रथमं गणेशविष्णुगौरीः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य तदग्रे—ओँ सोपकरणपञ्चरत्नयुतसहिरण्यवस्त्राच्छादितकुष्माण्डाय नमः ३ । ओँ ब्राह्मणाय नमः ३ ।

कुशोपरिब्राह्मणं पूजयेत् । ततो देयस्य सेकः ।

ओँ ब्रह्महत्यादिपापघ्नं, ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।

कुष्माण्डं बहुबीजाढ्यं स तु शान्ति प्रयच्छ मे ॥ इति पठित्वा कुशतिल-जलान्यादाय ओँ अद्येत्यादिसूर्य्यग्रहकालिककुरुक्षेत्राधिकरणकतुलादानजन्यफलसम-फल-शशिग्रहकालिकरेवाधिकरणकब्रह्माण्डदानजन्यफलसमफलगयागमनोत्तरपिण्डकोशला-दानजन्यफलसमफल-दशवर्षावच्छिन्न-प्रयाग-माधवकाशीकाञ्ची अवन्ती-कौशाम्बीमाया-यमुना-नर्मदाकेदारपुष्करशूकर-सरयु-शंखोद्धार -दराहयात्रागमनतुल्यफलगोपुरशतदान-जन्य फलसमफल-महापातकोपपातकक्षयपूर्वक-विशुद्धात्मकत्व -यमलोकगमनाभावपूर्वक-सर्वलोक-पर्यटन-नानाभोग-बलप्राप्तिकामनया इदं कर्पूर-लवङ्ग-जीरकमरीच-दाडिमीफल-निम्बूफल-हरिद्रा-तिन्तिणी-युत-पञ्चरत्नयुत - सहिरण्य-वस्त्राच्छादितकुष्माण्ड वनस्पतिदैवतं यथानामगोत्राय ब्रह्मणायाहं ददे ॥ दक्षिणा---तद्वाक्यम्-ओँ अद्यकृतैतत्कर्पूर-लवङ्ग-जीरक-नागर-कृष्णजीरक-मरीच-दाडिमीफल-निम्बूफल-हरिद्रा-तिन्तिणीयुत-पञ्चरत्नयुत- सहिरण्यपीतवस्त्राच्छादितकुष्माडदानप्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्रह्मणाय दक्षिणामहं ददे ॥ प्रतिपत्तिः, स्वाच्छन्द्यञ्च ।

"पर्वतेन्द्रसुते देवि, नमस्ते हरवल्लभे ॥
एतत्कुष्माण्डदानेन, सुप्रीता वरदा भव" ॥

इति पठित्वा गौरीं विसर्जयेत् । इति कुष्माण्डदानविधिः ॥

कार्तिकशुक्लनवमी त्रेतायुगादिः, सा च पौर्वाह्निकी ग्राह्या शुक्लपदस्थत्वात् पद्मपुराणे चात्रैव विष्णुत्रिरात्रिमुक्तम्—

"कार्तिकशुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः ।
हरिं विधाय सौवर्णं, तुलस्या सहितं विभुम् ॥
पूजयेद्विधिवद्भक्त्वा,ऽच्युतं तत्र दिनत्रयम् ।
एवं यथोक्तविधिना, कुर्य्याद्वैवाहिकं बिधिम्" ॥ इति

ज्योतिषे—

"अयने विषुवे चैव, षडशीतिमुखे तथा ।
मासैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यम्, विधिना पूज्य चण्डिकाम् ॥

तत्फलं लभते वीर, अवश्यं कार्तिकस्य तु।
युगाद्येषु युगान्तेषु, श्राद्धमक्षयमुच्यते ॥

इत्यधिकृत्य, ब्रह्मपुराणे--

"कार्तिके शुक्लपक्षे तु, त्रेता तु नवमे दिने।
वर्जिता प्राणिनां हिंसा, पिशाचैर्दिनपञ्चकम्" ॥

इयं नवमी त्वक्षयापि।

"अत्र यद्दीयते विष्णुप्रीत्यै, भक्त्या द्विजोत्तम।
नरैस्तदक्षयमाप्नोति, दातारो मोक्षमाप्नुयुः" ॥

अपरपक्षप्रकरणे तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

नवम्यामष्टकाश्राद्धं तत्र कात्यायनः- -

"अष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम्।
पित्रादिमातृमध्यञ्च, ततो मातामहान्तकम्" ॥ इति

यथा च ब्रह्मपुराणे--

पितॄणां प्रथमं दद्यात्, मातॄणां तदनन्तरम्।
ततो मातामहानाञ्च, अन्वष्टक इति क्रमः" ॥

तथा—

"सर्वासामेव मातॄणां, श्राद्धं कन्यागते रवौ।
नवम्यां हि प्रदातव्यं, ब्रह्मलब्धवरा यतः" ॥ इति

भूतोक्तेर्मातृसन्तोषाय पिण्डाद्यन्नदानमावश्यकम्। इति। तत्रापस्तम्बः

शाङ्खश्चाह--

"अन्वष्टकं तथा मातृश्राद्धं चैव मृताहनि।
एकोद्दिष्टं तथा युक्तं, त्रिषु नान्यत् पृथग्भवेत्" ॥

विष्णु :--

"अष्टकासु चेयं शाकमांसापूपैः श्राद्धं कृत्वाऽन्वष्टकासु अष्टकावद्धुत्वाऽग्नौ देवपूर्वमेव मात्रे-पितामह्यै पूर्वगद्ब्राह्मणान् भोजयित्वा दक्षिणाभिः सम्पूज्य विसर्जयेत्। तत्र च यः कुर्य्यान्मूले च शाश्वद्वह्निसमाधानमेकैकस्मिन् कर्ममूले कुर्य्यादित्याह–कात्यायनः—

"अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च ।

विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो, नरकं प्रतिपद्यते" ॥ इति

ऋग्विधाने चाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तम्। आश्विनकृष्णानवमी = अन्वष्टका सैव मातृनवमीति व्यवह्रियते। तथा च—अष्टका-अष्टमी। अन्वष्टका = नवमी ते प्रोक्तरूपे। उभे शाकप्रधाने बोद्धव्ये। तयोः श्राद्धकालः सङ्गवरूपो ग्राह्यः। स च प्रातः-कालिकमुहूर्तत्रयातिरिक्तमुहूर्तत्रयात्मकः।

"प्रातः कालो मुहूर्तांस्त्रीन्, सङ्गवस्तावदेव तु"।

इति वचनात्। मातृकाश्राद्धं तु पूर्वाह्ण एव विधेयम्।

"पूर्वाह्णे मातृकाश्राद्धम्, अपराह्णे तु पैतृकम्" ॥

इति वचनात् एतयोर्विशेषेण विचारस्तु श्राद्धकालविचारे प्रागेव द्रष्टव्य इत्यास्तां विस्तरः। कालमाधवीये–अथ नवमी निर्णीयते—

सा च विधिनिषेधरूपाभ्यामन्वयव्यतिरेकाभ्यां पूर्वविद्धैव ग्राह्या। तद्विधिश्च युग्मादि-शास्त्रे—"वसुरन्ध्रयोरि" ति कथ्यते। पद्मपुराणेऽपि—

"अष्टका नवमीविद्धा, नवम्या चाष्टमीयुता।

अर्द्धनारीश्वरप्राया, उमामाहेश्वरी तिथिः" ॥ इति।

भविष्यपुराणे–द्वादशीकल्पेऽपि--

"नवम्या सह कार्य्या स्यादष्टमी, नवतया"। इति

निषेधस्तु पद्मपुराणेऽभिहितः—

"न कार्य्या नवमी तात, दशम्या तु कदाचन'। ॥ इति

विधिनिषेधावुभावपि ब्रह्मवैवर्ते दर्शितौ--

"अष्टम्या नवमीविद्धा, कर्तव्या फलकांक्षिभिः ।
न कुर्य्यान्नवमी तात, दशम्या तु कदाचने" ॥ ति

सेयं नवमी दुर्गाव्रतादो द्रष्टव्या ।

ननु कृष्णनवम्याः पूर्वविद्धत्वेऽपि शुक्लनवमो परविद्धास्तु ।

"शुक्लपक्षे तिथिः ग्राह्या, यस्यामभ्युदितो रविः" ॥

इति वचनादिति चेन्नैवम् । पूर्वोक्तेषु वचनेषु दशमीविद्धायाः साक्षान्निषेधात् । ननु तस्य निषेधस्य सामान्यरूपत्वात् कृष्णपक्षे संकोचहेतोर्भवदुदाहृतस्यपि सामान्यरूपत्वात् । तस्मात्पक्षयोरुभयोरपि पूर्वविद्धेव ग्राह्या ।

रामनवमी तु चैत्रशुक्ला नवमी । पुनर्वसुयुता यदि सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् । नवमी चाष्टमीविद्धा, त्यज्या विष्णुपरायणैः" उपोषणं नवम्यां वै दशम्यां पारणं भवेदिति वचनात् । अष्टमीविद्धा सनक्षत्रापि नोपोष्या । इति नवमीनिर्णयः ॥

अथ दशमोनिर्णयः ।

दशमी तदीयकृत्यं, धीधनमोदकरं परञ्च कलये ।
एकदन्तपदयुग्मं मनसि निधाय शङ्करं जगति ॥

दशमी = सा शुद्धा विद्धा च, तत्र शुद्धायां विवादाभाव एव । विद्धापि नवमीयुतैव ग्राह्या--

अष्टमी नवमीविद्धा, कर्तव्या फलकांक्षिभिः ।
दशमी तु प्रकर्तव्या, सदुर्गा द्विजसत्तम" ॥

इत्यापस्तम्बीयात् । सदुर्गा = नवमीसहिता ।

पञ्चमी सप्तमी चैव, नवमो च त्रयोदशी ।
प्रतिपद्दशमी चैव, कर्तव्या संमुखी तिथिः" ॥

इत्यपि साधकम् । हेमाद्रिमते तु--

"सम्पूर्णा दशमी कार्य्या, परया पूर्वयाऽथ बा ।
युक्ता न दूषिता यस्मात्, अतः सा सर्वतोमुखी" ॥ इति

माधवाचार्य्यमते तु—

"कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला, दशम्येवं व्यवस्थिता"। इति

अथ ज्यैष्ठशुक्ला दशमी। सा च स्नानादौ सूर्य्योदयव्यापिनी ग्राह्या—

"व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत्"।

इति वचनात्। अथ गङ्गामधिकृत्य ब्राह्मे—

"शुक्लपक्षस्य दशमी, ज्यैष्ठे मासि द्विजोत्तम।
हरते दशपापानि, तस्माद्दशहरा स्मृता"॥ इति

यमः—

ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे, दशम्यां हस्तसंयुते।
दशजन्माघहा गङ्गा, दशपापहरा स्मृता॥ इति

अत्र शङ्खः—

ज्यैष्ठे मासि क्षितिसुतदिने, शुक्लपक्षे दशम्यां।
हस्ते शैलान्निरगमदियं, जाह्नवी मर्त्यलोके॥
पापान्यस्यां हरति हि तिथौ, सा दशेत्याहुरार्य्याः।
पुष्पं दद्यादपि शतगुणं, वाजिमेधायुतस्य॥ इति

क्रमेण च व्यवस्था—

तत्र केवलदशम्यां गङ्गायां दशविधपापक्षयफलम्। हस्तयुक्तायां दशजन्मकृतदशविधपापनाशः फलम्। भौमहस्तयुक्तायां दशजन्मकृतदशविधपापक्षयपूर्वकशतगुणवाजिमेधायुतजन्यपुण्यं फलमिति। दशपापानि तु परिभाषितानि भविष्यपुराणे—

अदत्तानामुपादानं, हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च, कायिकं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असंबद्धप्रलापश्च, वाचिकं स्याच्चतुर्विधम्॥

परद्रव्येष्वभिध्यानं, मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च, त्रिविधं कर्ममानसम्" ॥ इति
"धर्मद्रवीति विख्याते, पापं मे हर जाह्नवि ।
स्नातस्य मम ते देवि, जले विष्णुपदोद्भवे ॥
विष्णुपादार्घ्यसम्भूते, गङ्गे त्रिपथगामिनि ।
धर्म्मद्रवीति विख्याते, पापं मे हर जाह्नवि" ॥

ओँकारपूर्वाण्येतानि संकल्पतीर्थावाहनमृद्ग्रहणानन्तरं मज्जनस्यादौ पाठ्यानि । संकल्पो यथा— अद्येत्यादि अदत्तोपादानावैधहिंसा- परदारोपसेवनपारुष्यानृतपैशुन्या-सम्बद्धप्रलापद्रव्याभिध्यानमनोनिष्ठाचिन्तनवितथाऽभिनिवेशानामेषां दशाविधपापानां क्षय-कामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये ।

हस्तनक्षत्रयुक्तायामेषां दशजन्मकृतदशविधपापानां क्षयपूर्वकशतगुणवाजिमेधा-युतजन्यपुण्यसमफलप्राप्तिकाम इति विशेषः ।

अतः उभयदिने पूर्वाह्णे परदिन एव स्नानं कर्तव्यं शुक्लपक्षत्वात । भौमवारयुता चेत् पूर्वदिनेऽपि वारस्योभयत्रालाभात् तत्र पूर्वदिने तथाविधस्नानं कृत्वा परदिने केवलदशम्यामपि दशविधपापक्षयकामनया स्नातव्यमिति स्मार्ताः । कृत्यमहार्णवे— ब्रह्मपुराणे—

"ज्यैष्ठशुक्लस्य दशमी, सँव्वत्सरमुखी स्मृता ।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वन्ति, दानं चैव विशेषतः ॥
यां काञ्चित्सरितं प्राप्य, दद्याद्दर्भतिलोदकम् ।
मुच्यते दशभिः पापैः, महापातकसंज्ञितैः" ॥ इति

सर्वत्र तर्पणे तिलयोगस्त्वधिकफलार्थमपेक्षितः । नदीमात्रे तु स्नाने दश-विधपापनाशः फलमिति विशेषः । तथा—

"ज्यैष्ठशुक्लदशम्यां तु, भवेद्भौमदिनं यदि ।
ज्ञेया हस्तर्क्षसंयुक्ता, सर्वपापहरा तिथिः" ॥

अत्र भौमयोगोऽधिकः। फलमपि दशाधिकस्यापि पापस्य नाश इति गुरुतरं शेषं पूर्ववदिति। अथाश्विनशुक्ला दशमी = विजयदशमी। अत्र दाक्षिणात्याः—सा दशमी पूजामात्रादौ नक्षत्रोदयव्यापिनी ग्राह्या, तदुक्तं रत्नप्रकाशे—

"ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः; किञ्चिदुद्भिन्नतारकः।
विजयो नामकालोऽयं; सर्वकार्य्यार्थसाधकः" ॥ इति।

दिनद्वये तद्व्याप्तौ पूर्वैव—

"या पूर्णा नवमीयुक्ता, तस्यां पूज्याऽपराजिता।
मोक्षार्थं विजयार्थञ्च, पूर्वोक्तविधिना नरैः ॥

नवमीशेषसंयुक्तायां, दशम्यामपराजिता पूजा।

"ददाति विजयं देवी, पूजिता जयवर्द्धिनी।
एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितामिति स्कन्दोक्तेः।
दशमीं यः समुलङ्घ्य, प्रस्थानं कुरुते नरः।
तस्य सम्वँत्सरं राज्ये, न कोऽपि विजयो भवेत्" ॥ इति।

दिनद्वये तारकोदयकालाभावे परदिन एकादशे मुहूर्ते यात्रादिकं कार्य्यम्।

"आश्विनस्य सिते पक्षे, दशम्यां सर्वराशिषु।
सायंकाले शुभा यात्रा, दिवा वा विजयक्षणे ॥
एकादशो मुहूर्तोऽपि विजयः परिकीर्तितः ॥
तस्मिन् सर्वैर्विधातव्या, यात्रा विजयकांक्षिभिः ॥

इति भृगूक्तेः। परदिने एकादशमुहूर्तव्याप्त्यभावेऽपि श्रवणयोगश्चेत्तदैव यात्रा कार्य्या।

"उदये दशमी किञ्चित् सम्पूर्णैकादशी यदि।
श्रवणर्क्षे तदा कार्य्या, सा तिथिर्विजयाऽभिधा ॥

इति कश्यपवचनात्। अत्र कृत्यम्भविष्ये—

"शमीं सुलक्षणोपेतामीशानाशाप्रतिष्ठिताम्।
सम्प्रार्थ्यताञ्च सम्पूज्या त्वां शमीसमुखो भवेत् ॥
शमी शमयते पापं, शमी लोहितकण्टका।

धारयित्र्यर्जुनास्त्राणां, रामस्य प्रियवादिनी ॥
करिष्यमाणयात्रायां, यथाकालं सुखं मम ।
तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं, भव श्रीरामपूजिते ॥
गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां, शमीमूलगतां मृदम् ।
गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति ॥
ततो भूषणवस्त्रादि, धारयेत्स्वजनैः सह । इति ।

अथ कृत्यमहार्णवे—अथ शिष्टाचारपरिप्राप्ता दशम्यामपराजितापूजा—ॐ अपराजितायै नमः । ॐ क्रियाशक्त्यै नमः । ॐ उमायै नमः । इति प्रतिष्ठामन्त्राः ।

'चतुर्भुजां पीतवस्त्रां, सर्वाभरणभूषिताम् ।
खड्ग-चर्म-वरदाभयहस्तां, त्रिनेत्रामीषत्प्रहसितवदनाम् ॥

इति ध्यात्वा, ॐ अपराजितायै नमः । ॐ ह्रीं अपराजिताहृदयाय नमः । ॐ ह्रीं अस्त्राय फट् । ततो दक्षिणे-ॐ ह्रीं जयायै नमः इति पूजयेत् । वामे ॐविजयायै नमः इति पूजयित्वा, हरिद्रापीतवस्त्रेण दूर्वासिद्धार्थकं वद्ध्वा, देव्याः हृदि अभिलषितकामनया स्वाङ्गे च धारयेत् । ततः प्रयाणकं कुर्य्यात् । ततं ॐकारमुच्चरन् प्रदक्षिणं कृत्वा प्रसाद्य, अनेन मन्त्रेण विसर्जयेत् ।

"इमां पूजां मया देवि, यथा शक्त्या निवेदिताम् ।
रक्षार्थं त्वं समादाय, व्रज सुस्थानमुत्तमम्" ॥

इत्यपराजितापूजा । शिवरहस्ये ईश्वरवाक्यम्—

"आश्विने शुक्लपक्षस्य दशम्यां पूजयेत्ततः ॥
एकादश्यां न कुर्वीत, पूजनं चापराजिताम् ॥
सीमालङ्घं प्रकुर्वीत, दशम्यां सर्वदा बुधैः ।
अपराह्णे प्रकुर्वीत, ऐशानीं दिशमाश्रितः ॥
शाद्वले च विविक्ते च, कृत्वा मूर्तिम्महीमयीम् ।
द्वे मूर्ती अपि कर्तव्ये, तथा खड्गधनुर्धरे ॥

चत्वारः पर्वताः कार्य्याश्चतुर्दिक्षु समन्ततः ।
हारेण तु विचित्रेण, भास्वत्कनकमेखला ॥
अपराजिता रुद्ररता, करोतु विजयं मम ।
अपराजिते जगन्मातः कुण्डलोद्योतितानने ॥
शरीरारोग्यमैश्वर्य्यं, सुखस्थानं प्रयच्छ मे" ।

एवञ्चोमयत्र विहितकाले दशमोलाभे पूर्वविद्धायामेवापराजितापूजा देवीविसर्जनमपि तत्पूर्वक्कृत्यम् । तदेव तदन्ताप्रकर्षन्यायात्सीमालङ्घनमिति । तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु—"दशम्यामपराजितापूजा कार्य्या देवीपूजाविसर्जनञ्च । इयमेव विजयदशमी सा च द्वितीयदिने श्रवणाभावे पूर्वा ग्राह्या । यदा पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः परदिने चाल्पापि तद्योगिनी तदा परा ग्राह्या । व्रतकार्णवे काश्यपो यथा—

उदये दशमी किञ्चित्, सम्पूर्णैकादशी यदि ।
श्रवणर्क्षे यदा काले, सा तिथिर्विजयाऽभिधा ॥
श्रवणर्क्षे तु पूर्वायां, काकुस्थः प्रस्थितो यतः ।
उल्लङ्घयेयुः सीमानं, तद्दिनर्क्षे ततो नराः ॥ इति

अत्र काले = पराह्णे । परदिने पराह्णश्रवणाभावे तु सर्वपक्षेऽपि पूर्वैव ग्राह्येति । ज्योतिर्निबन्धे—रत्नकोषे नारदोऽप्याह—

ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः कियत्कालदशमीलाभे परदिने एवापराजितापूजा । देवीविसर्जनमपि तदैव । एकादश्यां पूजानिषेधात् । एवमेव रघुनन्दनभट्टाचार्य्योऽप्याह —तिथितत्त्वे । अयमेव मैथिलसिद्धान्तः ।

"इषस्य दशमीं शुक्लां, पूर्वविद्धां न कारयेत् ।
श्रवणेनापि संयुक्तां, राजभट्टाभिषेचने ॥
सूर्य्योदये यदा राजन्, दृश्यते दशमी तिथिः ।
आश्विने मासि शुक्ले तु, विजयां तां विदुर्बुधाः ॥

भार्गवार्चनदीपिकायां—भविष्यपुराणे—

"शमीयुक्तं जगन्नाथं, भक्तानामभयप्रदम् ।
अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः" ॥

शमीमन्त्रस्तु—गोपथब्राह्मणे—

"अमङ्गलानां शमनीं, शमनीं दुष्कृतस्य च ।
दुःस्वप्नानां शमीं पुण्यां, प्रपद्ये ऽहं शमीं शुभाम्" ॥

इत्यन्तं पूर्ववज्ज्ञेयम् । इति दशमीनिर्णयः ।

अथैकादशीनिर्णयः

एकादशी तदीयकृत्यं, स्मार्तमतोदितं वक्ष्ये ।
एकद्विजाङ्घ्रियुगलं, सकलसुखं मानसे धृत्वा ॥

एकादश्युपवासो नित्यः यथा भविष्यपुराणे—

"नित्मेतद्व्रतन्नाम, कर्त्तव्यं सार्ववर्णिकम् ।
सर्वाश्रमाणां सामान्यं, सर्ववर्णेष्वनुत्तमम्" ॥ इति

ब्रह्मवैवर्ते—

"इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् ।
विशेषनियमाशक्तो ऽहोरात्रं भुक्तिवर्जितम्" ॥ इति

किञ्च भविष्ये—

"यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति, सम्प्राप्ते हरिवासरे" ॥ इति

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

"प्रतिग्रासं स भुङ्क्ते किल्विषं श्वानविट्समम् ।
एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ, यो भुंक्ते ऽन्नं द्विजो मनाक्" ॥

स्मृतिः—

"अष्टाब्दादधिको मर्त्यो, यः पूर्णो ऽसीतिवत्सरः ।
भुंक्ते यो मानवो मोहादेकादश्यां स पापकृत्" ॥

कात्यायनः—

"विधवा या भवेन्नारी, भुञ्जीतैकादशीदिने ।
तस्यास्तु सुकृतं नश्येद् ब्रह्महत्या दिने दिने" ॥ इति

आनुषङ्गिकफलमाह—नारदः—

"अश्वमेधसहस्राणि, वाजपेयशतानि च ।
एकादश्युपवासस्य, फलं नार्हन्ति षोडशीम् ॥
एकादशीसमं किञ्चित्, पापत्राणं न विद्यते ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा, राज्य-पुत्रप्रदायिनी" ॥

इति तत्त्वसागरे—

"यथा शुक्ला तथा कृष्णा तथेतरा ।
तुल्यतां मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते" ॥

इति ब्रह्मपुराणे--

एकादश्यां न भुञ्जीत, पक्षयोरुभयोरपि ।
सूतके मृतके वापि, अन्यस्मिन् वाप्यशौचके ॥
सर्वथा न परित्याज्या, इच्छता श्रेय आत्मनः" ॥ इति

एतावता प्रबन्धेन एकादश्युपवासस्य नित्यत्कर्वाम्यत्वञ्च सिद्धम् । एवञ्च कृष्णाप्येकादशी पुत्रवता गृहस्थेनोपोष्या भवत्विति न देश्यम् ।

"आदित्येऽहनि संक्रान्त्यामशितैकादशीदिने ।
व्यतोपाते कृते श्राद्धे, पुत्री नोपवसेद् गृही" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् । अथैवं निषेधेन सर्वापि कृष्णैकादशी गृहस्थेन नोपोष्येत्यपि न ।

"शयनी-बोधनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।
सैवोपोष्या गृहस्थेन, नान्या कृष्णा कदाचन" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तेन विशिष्य निर्देशादन्या कृष्णा नोपोष्येति सिद्धम् वैष्णवस्यैकादश्यां कृष्णायां विशेषमाह—नारदः—

"नित्यं भक्तिसमायुक्तैः, नरैर्विष्णुपरायणैः ।
पक्षे पक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥
सपुत्रश्च सभार्य्यश्च, स्वजनैर्भक्तिसंयुतः ।
एकादशीमुपवसेत्, पक्षयोरुभयोरपि" ॥

रविवारादावेकादश्यां पुत्रवता नोपोषणं कर्तव्यमित्याह—ब्रह्मपुराणे—

"रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यां, भृगुभौमदिने तथा ।
पारणञ्चोपवासश्च, न कुर्य्यात्पुत्रवान् गृही" ॥ इति

वस्तुतस्तु यदा रविवारादावेकादशीव्रतं तदा तद्दिने रविव्रतं किम्वैकादशीव्रतं कर्तव्यमिति संशये चैकादशीव्रतमेव विधेयम्, न तु रविव्रतम्, अस्यैव निषेधकं ब्रह्मपुराणवचनं रविवारादिदिने एकादशीव्रते गुणफलकत्वश्रुतेरिति बोध्यम् ।

अत एव विष्णुधर्म्मोत्तरेऽप्याह—

"भृगुभानुगुणोपेता, रविसंक्रान्तिसंयुता ।
एकादशी सदोपोष्या, पुत्रपौत्रप्रवर्द्धिनी" ॥ इति

यथा जैमिनिः—

"तन्निमित्तोपवासस्य, निषेधेऽयमुदाहृतः ।
नानुषङ्गकृतो ग्राह्यो, यतो नित्यमुपोषणम्" ॥

इति एकादशीव्रतस्य नित्यत्वात् भृगुवारादिनिमित्तकोपवासस्यैव निषेध उदाहृतः ।

एकादशीव्रतकरणे दिनविचारोऽपि न कर्तव्य इत्याह—सम्वर्तः—

"सप्तवारानुपोष्यैव, सप्तधा विजितेन्द्रियः ।
सप्तजन्मकृतं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति" ॥ इति

उपवासासामर्थ्ये सति किं विधेयमित्यत्र वायुपुराणम्—

"नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा, तिलाः फलं क्षीरमथाम्बु चाज्यम् ।
पेयञ्च गव्यं यदि वाथ वायुः, प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च" ॥ इति

किञ्च ब्रह्मवैवर्तः—

"उपवासासमर्थस्तु, विप्रमेकन्तु भोजयेत् ।
तावद्धनानि वा दद्यात, यद्भुक्ताद्‌द्विगुणं भवेत्" ॥ इति

अन्नकल्पेऽपि द्वादश्यां विष्णूपासनं पारणञ्च कर्तव्यम् तदाह—मार्कण्डेय-पुराणम्—

"एकभुक्तेन नक्तेन, तथैवायाचितेन च ।
उपवासेन दानेन नैवाद्वादशिको भवेत्" ॥ इति

एकादशीविशेषे अन्नकल्पोऽपि न कार्य्यं इत्यर्थे भगवद्वाक्यम्—

"मच्छयने च मदुत्थाने, मत्पार्श्वपरिवर्तने ।
पयोमूलफलाहारी, हृदि शल्यं ममार्प्यते" ॥ इति

उपोषणं किं पूर्वदिने निषिद्धम् इत्याह—स्मृतिः—

"शाकं मांसं मसूरञ्च, पुनर्भोजनमैथुने ।
द्यूतमत्यम्बुपानञ्च, दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत्" ॥ इति

उपवासपूर्वपरदिने किं त्याज्यमित्याह—सूर्य्यसिद्धान्तः—

"कांस्यं मांसं मसूरञ्च, चणकं-कोद्रवं तथा ।
शाकं मधु परान्नञ्च, त्यजेदुपवसन् स्त्रियम्" ॥

चणकं = छोल इति ख्यातम् । अथ कृत्यमहार्णवे । तत्र भविष्योत्तरे—युधिष्ठिर उवाच—

"एकादशीव्रतं देव, नित्यं वा काम्यमेव वा ।
कथं वा क्रियते देव, नियमो वात्र कीदृशः ॥
कृत्वा वा किं फलं जन्तुः, प्राप्नोति पुरुषोत्तम ।
अकृत्वा वा किमाप्नोति, पापं वा मधुसूदन ॥
एतत्सर्वं समासेन, प्रसादाद्वक्तुमर्हसि" ॥

श्रीकृष्ण उवाच —

अहं ते कथयिष्यामि, श्रृणु पाण्डुकुलोद्भव ।
नित्यमेतद्व्रतं राजन्, कर्तव्यं सार्ववर्णिकम् ॥
सर्वाश्रमाणां सामान्यं, सर्वधर्म्मेष्वनुत्तमम् ।
एकादशीव्रतान्नास्ति, परं पुण्यतमं भुवि ॥
मातेव सर्वभूतानां, निर्मितैकादशी भुवि ।
अपि पापसहस्राणि, कुर्वन्नपि सदा नरः ॥
एकादशीतिथिं, सम्यगुपोष्य स सुखी भवेत् ।
चरन्तीह पुराणानि, श्रुतयः स्मृतिभिः सह ॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे ।
दुर्गमार्गं हि ये दुर्गं, जिगीषन्तीह तैर्नरैः ।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं, सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥
एकादश्यां न भोक्तव्यं, पक्षयोरुभयोरपि ।
भुञ्जन् गोमांसभक्षस्य, पापमाप्नोति मानवः ॥
शुक्ला वा यदि वा कृष्णा, समुपोष्य सुखी भवेत् ।
भुञ्जन् सुरापानसमं, पापमाप्नोति मानवः ॥
यथा शुक्ला तथा कृष्णा, यथा कृष्णा तथेतरा ।
विभेदमनयोः कुर्वन्, विष्ठायां जायते कृमिः ॥
यथा गो-तिल-विप्राणां, कृष्णत्वं नैव दूषणम् ।
तथैवैकादशी राजन्, उपोष्या पक्षयोर्द्वयोः ॥
उभयोः पक्षयोः राजन्, वैकादश्यां द्विजन्मवान् ।
यो भुङ्क्ते नीरुजः सोऽथ, प्रत्यहं चाण्डालतां व्रजेत् ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा, वाणप्रस्थोऽथ वा यतिः ।
एकादश्यां तु भुञ्जानो, भुङ्क्ते गोमांसमेव हि ॥

ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य, स्तेयिनो गुरुतल्पिनः ।
निष्कृतिर्धर्मशास्त्रोक्तान्, एकादश्यन्नभोजिनः ॥

विष्णुरहस्ये —

"यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यम् , श्रियं सम्पत्तिमात्मनः ।
एकादश्यां न भुञ्जीत, पक्षयोरुभयोरपि ॥
यानि कानि च पापानि, ब्रह्महत्यासमानि च ।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति, सम्प्राप्ते, हरिवासरे ॥
तानि पापान्युपश्नाति, भुञ्जानो हरिवासरे ।
नेदृशं पावनं लोके, नराणामिह विद्यते ॥
यादृशं पद्मनाभस्य, दिनं पातकहानिदम् ।
तावत्पापानि तिष्ठन्ति, देहेऽस्मिन् मनुजाधिप ॥
यावन्नोपवसेज्जन्तुः, पद्मनाभदिनं शुभम् ॥
अश्वमेधसहस्राणि, वाजपेयशतानि च ।
एकादश्युपवासस्य, कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
एकादशेन्द्रियैः पापं, यत्कृतं भवति क्वचित् ।
एकादश्युपवासेन, तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥
एकादशीसमं किञ्चित्, पापत्राणं न विद्यते ॥
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा, राजन् पुत्रप्रदायिनी ।
सुकलत्रप्रदा ह्येषा, शरीरारोग्यदायिनी ॥
न गङ्गा न गया भूप, न काशी न च पुष्करम् ।
न चापि कौरवं क्षेत्रं, न रेवा न च दैविका ॥
यमुना चन्द्रभागा च, तुल्यं हरिदिनेन तु ।
अनायासेन राजेन्द्र, प्राप्यते वैष्णवं पदम् ॥
चिन्तामणिसमा ह्येषा, अक्षयस्य निधेः समा ॥
कल्पपादपतुल्याथ, वेद वेदोपमाऽथ वा ।

नारदीये मान्धातारम्प्रति वशिष्ठवाक्यम्—

एकादशीसमुत्थेन, वह्निना पातकेन्धनम् ।
भस्मतां याति राजेन्द्र, प्राप्यते हरिमन्दिरम् ॥

तत्रैव ब्राह्मणं प्रति यमवचनम्—

"एकयापि हि राजोरु, एकादश्यामुचीर्णया ।
हत्यायुतं विनश्येत, सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥

अत्रैकादश्यां न भुञ्जीतेति विधिश्रवणात् एकादशीमुपवसेदिति विधिवलाच्च एकादश्यामुपवासो विधीयते स चाहोरात्रव्यापी भोजनाभावो दोषाभावो वशिष्ठः । स च "उपावृतस्य दोषेभ्य" इत्यादिना परिभाषितः । तस्य चाकरणे फलश्रवणाच्च । जीविफलकामोऽधिकारः तत्र च ।

"संक्रान्त्यामुपवासञ्च, कृष्णैकादशीवासरे ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव, न कुर्य्यात् पुत्रवान् गृही ॥
इन्द्रक्षयेऽर्कसंक्रान्त्यामेकादश्यां सितेतरे ।
उपवासं न कुर्वीत, यदीच्छेत्सन्ततिं ध्रुवाम् ।
संक्रान्त्यामुपवासेन, पारणेन युधिष्ठिर ।
एकादश्यां तु कृष्णायां, ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति ॥

इत्यादिस्मृत्या पुत्रवतां कृष्णैकादश्यामुपवासो निषिध्यते । तथा—

"शयनीबोधनीमध्ये, या कृष्णैकादशी भवेत् ।
सैवोपोष्या गृहस्थेन, नान्या कृष्णा कदाचन" ॥

इत्यादि भविष्योत्तरवचनादन्यकृष्णैकादशीनां गृहस्थमात्रं प्रति निषिद्धे सिद्धे हरिशयनालिङ्गितानामपि चतसृणां कृष्णानां पुत्रवत्सु गृहस्थेषु हरिशयनाङ्कितकृष्णायामधिका इति निर्गलितोऽर्थः अत एव—

"एकादश्यां न भुञ्जीत, पक्षयोरुभयोरपि ।
वनस्थयतिधर्म्मोऽयं शुक्लामेव सदा गृही" ॥

इत्यादिविष्णुधर्म्मोत्तरवाक्याच्छुक्लैव गृहस्थानां नित्या । तत्रैव

'यानि कानि च पापानि, ब्रह्महत्यासमानि च' ।

इत्यादयो निन्दार्थवादाः । काम्यानि एकादशीव्रतानि नरसिंहपुराणे –

एकादश्यां नरश्रेष्ठ, उपवासो विधीयते ।
नरसिंहं समभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥

नरसिंहं समभ्यर्च्य उपवासो विधीयत इत्यन्वयः । सर्वपापैः प्रमुच्येत इत्यर्थान्मुक्तिः ।
श्रीभगवद्वाक्यम् –

"मच्छयने च मदुत्थाने, मत्पार्श्वपरिवर्तने ।
पयोमूलफलाहारी; हृदि शल्यं ममार्पति" ।

तस्मादत्रोपोषणमवश्यं विधातव्यमिति वाक्यार्थः । ब्रह्मपुराणे –

एकादश्यामुभे पक्षे, निराहारः समाहितः ।
स्नात्वा सम्यग्विधानेन, धौतवासा जितेन्द्रियः ॥
सम्पूज्य विधिना विष्णुम्, श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
पुष्पैर्धूपैस्तथा गन्धैः, दीपैर्नैवेद्यकैर्वरैः ॥
उपचारैश्च बहुभिः, जपैर्होमसमन्वितैः ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैः, गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च, जयशब्दैस्तथोत्तमैः ।
एवं सम्पूज्य विधिवद्रात्रौ, कुर्य्यात्प्रजागरम् ।
कथया गीतकान् विष्णोर्गायन्तो गीततत्पराः ॥
यान्ति विष्णोः परं स्थानम्, नरो नास्त्यत्र संशयः" ॥ इति

नारदीये –

रात्रौ जागरणं कृत्वा, समुपोष्य हरेर्दिनम् ।
दशैव मातृके पक्षे, दशराजंश्च पैतृके ॥
प्रियायाः दशपक्षे च, पुरुषानुद्धरेन्नरैः ।
आत्मना सह राजेन्द्र, वैष्णवं नयते पदम् ॥

ते द्वन्द्ववाहनो नित्यं, नागारिकृतवाहनाः ।
स्रग्विनः पीतवस्त्राश्च, प्रयान्ति हरिमन्दिरम्" ॥ इति

वाराहपुराणे —

"एकादश्यां निराहारो, यो भुङ्क्ते द्वादशीदिने ।
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे, तद्व्रतं वैष्णवं महत् ॥
एतद्विद्वन् सुघोराणि, हन्ति पापानि पार्थिव ॥

अत्र द्वादशीदिने भोजनश्रवणात् द्वादशीपारणापर्य्यन्तमिदं व्रतम् । अत्रैव

भविष्यपुराणे —

"पारणं तु त्रयोदश्यां, यः करोति नराधमः ।
द्वादशद्वादशीं हन्ति, नात्र कार्य्या विचारणा' ॥

स्कन्दपुराणे —

"यदा भवति चाल्पापि, द्वादशी पारणादिने ।
प्रातरेव तदा कुर्य्यात, कर्ममाध्याह्निकन्तु यत्" ॥

देवलोऽपि —

"संकटे विषमे प्राप्ते, पारणं तु कथं भवेत् ।
अद्भिस्तु पारणं कुर्य्यात् , पुनर्भुक्तं न दोषकृत्" ॥

पारणायोग्यद्वादश्याः अलाभे वायुपुराणे —

"कलाप्येकादशी यत्र, परतो द्वादशी भवेत् ।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं, त्रयोदश्यां तु पारणे ॥

ब्रह्माण्डपुराणे —

"कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रलोभं विततभाषणम् ।
व्यायामञ्च प्रयासञ्च, दिवास्वप्नमथाञ्जनम् ।
शिलापिष्टं मसूरञ्च, द्वादशैतानि वैष्णवः ॥
द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
पुनर्भोजनमध्वानं, भावमायासमैथुने ॥

उपवासफलं हन्ति, दिवानिद्रा च पञ्चमी" ॥

बृहस्पतिः —

"दिवानिद्रां परान्नञ्च, पुनर्भोजनमैथुने ।

क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं, द्वादश्यामष्ट वर्जयेत्" ॥

एकादश्यां श्राद्धे यन्मते शेषप्रतिपत्तिरङ्गं तन्मतेऽपि तदाहारं विनैव श्राद्धमिवानन्यकत्वात् । स्पर्श्यारिलष्टे यामावाहनराघवदिति सम्प्रदायः । अन्ये तु शेषान्नाघ्राणमात्रं तदा कर्तव्यम् ।

"उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्य्यादाघ्राय पितृसेवितम्" ॥ इति

वाराहपुराणवचनात् "तन्नैव प्राशितं भवति नैवाप्राशितं भवती" ति कालदर्शलिखितस्मृतेश्चेत्याहुः ।

"एकभुक्तेन नक्तेन, तथैवायाचितेन च ।

उपवासेन भैक्षेण, नैवाद्वादशिको भवेत् ॥

अत्रापि अशक्तौ प्रतिनिधिः । तथा च स्मृतिः—

"असामर्थ्ये शरीरस्य, व्रते च समुपस्थिते

कारयेद्धर्मपत्नीं वे" त्यादिकन्तु सामान्यव्रतविधाने लिखितमिति ।

अथात्रोपवासव्यवस्थानिर्णयो लिख्यते—

यत्र पूर्वदिने सम्पूर्णैकादशी यदि किञ्चित्परदिनेऽपि लभ्यते तत्परदिने द्वादशी पारणायोग्या तिष्ठेत् तदा सर्वैरेव सम्पूर्णां विहाय परा खण्डैकादशी उपोष्या ।

"सम्पूर्णैकादशी यत्र, प्रभाते पुनरेव सा ।

तत्रोपोष्या द्वितीया तु, परतो द्वादशी यदि" ॥ इति भृगुवचनात् ।

अत्रैव विषये यदि परदिने द्वादशी न लभ्यते तदा गृहस्थादिभिः पूर्वा, यतिभिः परैवोपोष्या ।

"एकादशी प्रवृद्धा चेत, शुक्ले कृष्णे विशेषतः ।

उत्तरां तु यतिः कुर्य्यात् पूर्वामुपवसेत् गृही" ॥

इति कूर्मपुराणात्। गारुडे—

"पुनः प्रभातसमये, घटिकैका यदा भवेत्।

तत्रोपवासो विहितो, वनस्थस्य यतेस्तथा"॥

विधवापरश्च तथा। परतो द्वादशी न चेदिति कौर्मात्। एकादश्येव प्रवृद्धा न द्वदशीत्यर्थः। तत्रैव = उत्तरायामेव। यदा पूर्वदिने दशमीविद्धा, परदिने द्वादशी-विद्धा, तत्परदिने द्वादश्यलाभे लाभे वा सर्वै रेव परोपोष्या न पूर्वा। तत्करणे दोषमाह--स्मृतिः—

"मुहूर्तेनापि संयुक्ता, दशम्यैकादशी यदि।

तामुपोष्य नरो राजन्, सुखाद्धर्माच्च हीयते"॥ इति

परामुपोष्याह भविष्ये—

"एकादशी दशाविद्धा, परतोऽपि च वर्द्धते।

गृहिभिर्यतिभिश्चैव, सैवोपोष्या सदा तिथिः" ॥ इति

अपिर्भिन्नक्रमे—न वर्द्धते द्वादशीत्यर्थः। एतद्द्विस्पृशि त्रिस्पृशि च संभवत्यविशेषश्च। अत्रैव द्वादश्यां पारणमाह—

एकादशी द्वादशी च, रात्रिशेषे त्रयोदशी।

तत्र क्रतुशतं पुण्यं, त्रयोदश्यां तु पारणम्॥

यत्तु—

"एकादश्यामुपोष्यैव, द्वादश्यां पारणं स्मृतम्।

त्रयोदश्यां न तत्कुर्य्यात्, द्वादशद्वादशीक्षयात्" ॥

इति ब्रह्मपुराणम्। तदुपवासे परदिने द्वादशीलाभे तां विहाय पारणं बोध्यम्। यदा तु सूर्योदयानन्तरं दशमीयुतैकादशी परदिने न निस्सरति तदा तां विहाय पर-दिने द्वादशीमुपवसेत्—

"एकादशीमुपवसेत्, द्वादशीमथ वा पुनः।

विमिश्रां वा कुर्वीत, न दशम्या युतां क्वचित्॥

ये कारयन्ति कुर्वन्ति, दशम्यैकादशीयुताम् ।
आलोक्य तन्मुखं ब्रह्मन्, सूर्य्यदर्शनमाचरेत्" ॥ इति

स्कान्दे निन्दाश्रवणात्—

अथ दशमीयुतैकादशी = द्विविधा परिभाषिता ।

यथा—सूर्य्योदयात्पूर्वमरुणोदयकाले दशमीयुतैकादशी = संयुक्ता । सूर्य्योदयात्परम् दशमीयुतैकादशी = प्रवेशिनी ।

यथा—कूर्मपुराणे—

"कुर्य्यादलाभे संयुक्तामलाभेऽपि प्रवेशिनीम्" ।

अस्यार्थः—अलाभे = द्वादश्यामेकादश्यलाभे । संयुक्तां = सूर्य्योदयपूर्वारुणोदयकालीनदशमीयुतैकादशीम् । कुर्य्यात् न तु प्रवेशिनीं कुर्य्यादित्यर्थः ।

"उदयात् प्रवेशस्तु, शेषसंयोग इष्यते ।
उपरिष्टात्प्रवेशस्तु, तन्मात्रां परिवर्जयेत्" ॥

उपरिष्टात् = सूर्य्योदयात्परत इत्यर्थः । तत्र प्रवेशिनी सर्वैर्नोपोष्यैव । किञ्चित् द्वादश्युपोष्या ।

"उदयोपरिविद्धा तु, दशम्यैकादशी यदि ।
दैत्येभ्यः प्राणनाशार्थं, दत्तवान् पाकशासनः" ॥

इति विद्याकरधृतवचने निन्दाश्रवणात् । चतुर्द्धा व्यवस्था संयुक्तायाः । संयुक्ता यदैकादशी मिश्रा न भवति तदा सैवोपोष्या ।

"एकादशी दशा विद्धा, परतो न च वर्द्धते ।
गृहिभिर्यतिभिश्चैव, सैवोपोष्या सदा तिथिः" ॥

इति भविष्यपुराणात् । यदा तु संयुक्ता परदिने द्वादशीमिश्रा भवति, त्रयोदशीदिने द्वादशी पारणायोग्या न तदा अवैष्णवैः संयुक्तोपोष्या ।

"मुहूर्त्तं द्वादशी न स्यात्, त्रयोदश्यां यदा मुने ।
उपोष्या द्वादशीविद्धा, सर्वैरेकादशी तदा" ॥ इति कौर्मात् ।

एकादशीं दशाविद्धां, वर्द्धमाने विवर्जयेत् ।

पक्षहानौ स्थिते सूर्य्ये, लङ्घयेद्दशमीयुताम्" ॥

इति भविष्यपुराणाच्च एवं विधा वैष्णवैस्तु शुक्लपक्षे द्वादशीमिश्रैवोपोष्या ।

"दशमीशेषसंयुक्तो, यदि स्यादरुणोदयः ।

नैवोपोष्यं वैष्णवेन, तद्दिनैकादशीव्रतम्" ॥ इति गारुडात् ।

एवं विधा यदि त्रयोदशीदिने यदि पारणयोग्या द्वादशी लभ्यते तदाऽर्थात् सैवोपोष्येति । एतद्विषये ब्रह्मपुराणेऽपि –

"षष्टिदण्डात्मिकायास्तु, तिथेर्निष्क्रमणे परे ।

अकर्मण्यं तिथिमलं, विद्यादेकादशीं विना" ॥ इति संगच्छते ।

दशमीयुतैकादश्यां मैथिलमते त्वयं विशेषः यदि सूर्योदयानन्तरं दशमीविद्धैकादशी परदिने द्वादशीमिश्रा न भवति तदा सकामैः गृहिभिः दशमीविद्धैवोपोष्या । मोक्षकामैस्तु परा द्वादशी । यथा स्मृतिः –

"दशमीमिश्रिता-पूर्वा, द्वादश्यां यदि लुप्यते ।

एकादशी तदा ब्रह्मन्, उपवासः कथं भवेत् ॥

शुद्धैव द्वादशी राजन्, उपोष्या मोक्षकांक्षिभिः ।

सकामैर्गृहिभिः पूर्वा, विद्धापीति सुनिश्चयः" ॥ इति

अरुणोदये दशमीविद्धैकाशी तत्परदिने द्वादशीमिश्रा न तदा शुक्ले कृष्णे वा पक्षे वैष्णवैः परैवोपोष्येति । शुभङ्करमते तु – एकादशीतिथिरुपवासादिषु द्वादशीयुतैव कार्य्या तदुक्तं

"रुद्रेण द्वादशीयुक्ता" इति ।

सा चैकादशी शुद्धा-विद्धा चेतिं द्विधा । विद्धाप्यधिकसामान्यभेदेन त्रिधा । त्रिधापि च सा द्वादश्यधिकसमानभेदेन त्रिधेत्यष्टादशभेदाः ॥ तत्र शुद्धा सूर्य्योदयमारभ्योत्तरोदयपर्य्यन्तमिति केचित् । तन्न, अरुणोदयात्प्राक् मुहूर्तद्वयसंसर्गेऽपि शुद्धत्वस्वीकारात् ।

गरुडपुराणे –

"उदयात्प्राग् यदा विप्र, मुहूर्तद्वयसंयुता ।

सम्पूर्णैकादशी चैव, तत्रैवोपवसेद् गृही" ॥ इति

भविष्ये —

"आदित्योदयवेलायां, प्राङ्मुहूर्तद्वयान्विता ।
एकादशीति सम्पूर्णा, विद्धाऽन्या परिकीर्तिता" ॥

अत्र शुद्धाऽधिका पक्षे सर्वेषामविवाद एव अन्यस्मिन् सति सैव व्यवस्थोच्यते — न्यूनत्वसाम्ययोराद्या कामिनां, परा तदितरेषाम् एतदेवाभिप्रेत्य भृगुः—

"सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।
तत्रोपोष्या द्वितीया तु, परतो द्वादशीं यदि" ॥

मत्स्ये—

"विद्धाऽप्येकादशी कार्य्या, परतो द्वादशी न चेत्" ॥

कौर्म्ये—

"मुहूर्ता द्वादशी न स्यात्, त्रयोदश्यां महामुने ।
उपोष्या दशमीमिश्रा, सदैवैकादशी तदा" ॥

अत्र केचित् एतेषु वचनेषु काम्यनित्यपदाश्रवणात् सर्वसाधारणत्वमेतेषाम् इति सर्वैराद्यैवोपवसनोयेत्याहुः ।

नौकाक्षिरपि—

"एकादशीं दशाविद्धां, वर्द्धमाने विवर्जयेत् ।
क्षयमार्गस्थिते सोमे, कुर्वीत दशमीयुताम्" ॥

किञ्च—

"एकादशी दशाविद्धा, परतो न च वर्द्धते ।
यतिभिर्गृहिभिश्चैव, सैवोपोष्या, सदा तिथिः" ॥

कूर्मपुराणे—

"सम्पूर्णैकादशी यत्र, प्रभाते पुनरेव सा ।
उत्तरान्तु यतिः कुर्य्यात्, पूर्वामेव सदा गृही" ॥

ऋष्यशृङ्गः—

"एकादशी न लभ्येत, सकला द्वादशी भवेत् ।

उपोष्या दशमीमिश्रा, यतिभिर्गृहिभिस्तथा" ॥

अतः सर्वैराद्यैवोपोष्येति तन्न—

"दशमीशेषसंयुक्तामुपोष्यैकादशीं नृप ।
सँव्वत्सरकृतेनेह, नरोऽधर्मेण मुच्यते ॥

किञ्च—

"दशमीशेषसँय्युक्ता, गान्धार्य्याः समुपोषिता ।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं, तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥
"निःकामस्तु गृही कुर्य्यात्, पूर्वां बौधायनोऽब्रवीत् ।

एवमाद्यश्रवणात् पूर्वोपोषणमाचक्षाणा उपेक्ष्याः । "यतिभिर्गृहिभिश्चैवेति च गृहिणां कामनायामधिकारात् व्रीह्यादिवत् साधारणलक्षणाघटित इति गृहिपदेन कामिन एव लक्ष्यन्ते । तेनैतानि वचनानि कामिपराणि । ततः कामिनामेव आद्या, न तदतिरिक्तानामिति सिद्धान्तः । एकादश्याधिक्ये सर्वैरपि परैवोपोष्या तथा च स्मृतिः—

"बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो यदि जायते ।
द्वादशी तु तदा कार्य्या, त्रयोदश्यां तु पारणम्" ॥

कूर्मपुराणे—

"दिनक्षये तु सम्प्राप्ते, उपोष्या द्वादशी भवेत् ।
दशमीशेषसंयुक्तां, न कुर्वीत कदाचन" ॥ इति

भविष्ये—

"दिनक्षये तु नोपोष्या, दशमीसँय्युता यदि ।
उपोष्या द्वादशीपुण्या, त्रयोदश्याञ्च पारणम्" ॥ इति

दशमीवेधोऽपि द्विविधः = अरुणोदयवेधः सूर्य्योदयवेधश्चेति । अरुणोदयवेधस्तु = "चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते । स चारुणोदयवेधस्त्रिविधः = वेधातिवेधमहावेधभेदात् । तत्र रविप्रभातदर्शनात् पूर्वं सार्द्धघटिकात्रये दशमीप्राप्तिर्वेधः ।

यदा सूर्य्यस्य दर्शनादर्शनसन्देहकालमेकादशी प्राप्नोति, ततः कृत्स्नोऽप्यरुणोदयकालो दशमीति तन्महावेधः ।

"अतिवेधे महावेधाः, ये वेधास्तिथिषु स्मृताः ।
सर्वे प्रभेदाः विज्ञेयाः, वेधः सूर्य्योदये सति ॥

दाक्षिणात्यनिबन्धे तु अरुणोदयवेलायां दशमीवेध एव निषेधविषय उक्तः । न तूदयादूर्द्ध्ववेधः । तथा च स्कान्दे –

"अरुणोदयवेधवेलायां दशमी यत्र दृश्यते ।
पापमूलं सदा ज्ञेया, एकादश्युपवासिनाम्" ॥ इति

नारदोऽपि –

अरुणोदयवेलायां, दशमी यत्र दृश्यते ।
न तत्रैकादशी कार्य्या, धर्मकामार्थनाशिनी" ॥ इति

कश्यपः –

"उदयोपरि विद्धा तु, दशम्येकादशी यदि ।
दानवेभ्यः पीडनार्थं, दत्तवान् पाकशासनः" ॥ इति

यत्तु गरुडपुराणे—

दशमीशेषसंयुक्तो, यदि स्यादरुणोदयः ।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन, तद्दिनैकादशीव्रतम्" ॥ इति

तद्वैष्णवानाम् प्राशस्त्यविधायकम् । यथा –

"मन्त्रवीर्य्यहरा मत्स्याः, पाठीनस्तु विशेषतः । इतिवत्

वैष्णवो वैष्णवोक्तदीक्षावान् । गृहस्थस्य यानि पूर्वोक्तविधायकानि वचनानि तानि कामिगृहस्थविषयाणि योज्यानि । द्वादश्याधिक्ये व्यासः –

"एकादशी यदा लुप्ता, परतो द्वादशी भवेत् ।
उपोष्या द्वादशी तत्र, यदीच्छेत्परमाङ्गतिम्" ॥ इति

एवमुक्तव्यवस्थानुसारेण तत्तत्पुराणेषु दृष्टानि वचनानि व्यवस्थाप्यानि ॥ अशक्तस्य अन्यैकादश्यकरणेऽपि भैम्येकादशीकरणे एकविंशैकादश्यकरणजन्यदोषाभाव-

मांह-मत्स्यपुराणम् –

"यद्यष्टम्याञ्चतुर्दश्यामेकादश्यान्तु भारत ।
अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तः समुपोषितुम् ॥
ततः पुण्यामिमां भीमतिथिं पापप्रणशिनीम् ।
उपोष्य विधिनाऽनेन, गच्छेद्विष्णोः परं पदम्' ॥ इति

माघशुक्लैकादशी = भैमीति प्रसिद्धा ।

"एकादश्यामर्कदिने, संक्रान्तिश्च यदा भवेत् ।
उपोष्य रजनीमेकाम्, ब्रह्महत्यां व्यपोहति" ॥

इति व्यासः । उपवासे कर्तव्ये किं वर्ज्यमित्याह–स एव ।

"प्रातः स्नाने पितुः श्राद्धे दशम्यां द्वादशीदिने ।

तस्मान्निर्जलमुपोषणं कृत्वा विप्रेभ्यो जलकुम्भान् दद्यादिति शिष्टाचार इति शिवम् ।

अथ द्वादश्यां पारणव्यवस्था ।

द्वादश्याम् आदिपादमतिक्रम्य पारणं कर्तव्यम् ।

"द्वादश्याः प्रथमः पादो, हरिवासरसंज्ञकः ।
तमतिक्रम्य कुर्वीत, पारणं विष्णुतत्परः" ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरवचनात् उपवासदिने कलार्द्धमात्रद्वादशीलाभे अरुणोदयकालेऽपकृष्टमध्याह्नावधिक्रियां कृत्वा परदिने द्वादशीक्षणे पारणं कर्तव्यमिति । यथा स्मृतिः—

"कलार्द्धा द्वादशी दृष्टा, निशीथादूर्द्ध्वमेव हि ।
समध्याह्नाः क्रियाः सर्वाः, कर्तव्याः शम्भुशासनात्" ॥

निशीथादूर्ध्वम् = रात्रेः सार्द्धप्रहरद्वयोपरि । अत्रासामर्थ्ये कात्यायन :—

"सन्ध्यादिकं भवेन्नित्यं, पारणं तु निमित्तकम् ।
अद्भिस्तु पारणं कृत्वा, नातिक्रान्ते भुजिक्रिया ॥ इति

उपवासपरदिने द्वादशीलाभे तामपहाय पारणे दोषमाह—ब्रह्मपुराणम्—

"एकादश्यामुपोष्यैव, द्वादश्यां पारणं स्मृतम् ।
त्रयोदश्यां न कुर्वीत, पारणं द्वादशीक्षयात् ॥
महाहानिकरी ह्येषा, लङ्घिता द्वादशी यदि" ॥

इति नारदीयाच्च । यत्र कलापि द्वादशी न लभ्यते तत्र त्रयोदश्यामपि पारणं कर्तव्यम्—

"कलाप्येकादशी यत्र, परतो द्वादशी न चेत् ।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तम्, त्रयोदश्यां तु पारणम्" ॥

इति वायुपुराणात् ।

"त्रयोदश्यां हि शुद्धायां, पारणं पृथिवीफलम् ।
शतयज्ञादिकं वापि, नरः प्राप्नोत्यसंशयम्" ॥

इति नारदीयाच्च, अत एव—

"पारणं तु न कर्तव्यमुपोष्यैकादशीमिह ।
त्रयोदश्यां नरैर्नित्यं, धर्मवृद्धिमभीप्सुभिः," ॥

इत्यपि वचनं पारणयोग्यद्वादशीलाभ एव निषेधकमिति । अधिकपारणाविचारस्तु प्रागेव अभिहित इति ध्येयम् ।

अथ पारणम्

"गोमूत्रेण च गोमयेन पयसा, दध्नाथ गव्यैर्घृतैः ।
सद्दर्भोदककार्तवीर्य्ययवजैश्चूर्णैस्तया दूर्वया ॥
कूष्माण्डेन गुडेन विल्वतुलसीपत्रेण वा पारणां ।
द्वादश्यां गदितं क्रमान्मुनिवरैः मार्गादिमासक्रमात्" ॥

तत्तद्वस्त्वलाभे तुलसीपत्रेण ज्ञेयम् । मार्ग-१-पौष-२-माघ-३-फाल्गुन-४-चैत्र-५-वैशाख-६-ज्यैष्ठ-७ आषाढ-८-श्रावण-९-भाद्र-१०-आश्विन-११-कार्तिक इति द्वादशमासः ।

अथ शयनादिक्रमाह —मत्स्यपुराणम्—

"शेते विष्णुः सदाऽऽषाढे, भाद्रे च परिवर्तते ।

कार्तिके प्रतिबुध्येत्तु, शुक्लपक्षे हरेर्दिने" ॥ इति

भविष्ये—

"निशि स्वापो, दिवोत्थानम्, सन्ध्यायां परिवर्तनम् ।

अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कारयेत् ॥

अन्यत्र पादयोगादर्शनात् । रात्रीतरकाले पादयोगेन, नक्षत्रस्येति शेषः ॥

नारदः—

"मैत्राद्यपादे स्वपितीति विष्णुर्वैष्णमध्ये परिवर्तते च ।

पौष्णावसाने च सुरारिहन्ता, प्रबुध्यते मासचतुष्टयेन ॥

द्वादश्यां मैत्रादिनक्षत्रमात्रलाभे रात्र्यादिनियमः । तदितरैकादश्यादिचतुर्षु मैत्रादिपादयोगेऽहोरात्रानियममाह—विष्णुधर्मोत्तरम्—

"विष्णुर्दिने स्वपिति, न च रात्रौ प्रबुध्यते ।

द्वादश्यामृक्षसंयोगे, पादयोगेन पारणम् ॥

अप्राप्य द्वादशीमृक्षे, बोधने शयने हरेः ।

पादयोगेन कर्तव्यं नाहोरात्रं विचिन्तयेत्" ॥ इति

एकादश्यादिपञ्चतिथिषु नक्षत्रासम्भवे द्वादश्यां सन्ध्यायामेव शयनादिकमाह—वराहपुराणम् ।

"द्वादश्यां सन्धिसमये, नक्षत्राणामसम्भवे ।

आभाकासितपक्षे तु, शयनावर्तनादिकम्" इति

दशमी-प्रतिपदो वर्जनमाह—भविष्यपुराणम्—

"किन्तेन मैत्रादिपादेन, दशम्यंशेन यो दिवा ।

पौष्णशेषेण किन्तेन, प्रतिपद्यथ यो निशि ॥

दशम्यंशेन = दशम्यंशो यत्र पादेन, तेन यः पादो दिवाप्रातः ते नराः किमित्यर्थः । तेन तदितरैकादश्यादिवच्च तिथिषु पादादियोगे द्वादशीं विनापि शयनादिकम् ।

द्वादश्यामृक्षपादे बोधने दिवातृतीयभागमाह—

"रेवत्यन्तो यदा रात्रौ, द्वादश्या च समायुतः ।
तदा विबुध्यते विष्णुः, दिनान्ते पदरेवती" ।

दिनान्ते = त्रिधाविभक्तदिनभागे । तृतीये देवोत्थानमिति । अत्रायं संक्षेपः । द्वादश्यां निशादौ नक्षत्रमात्रयोगाच्छयनादिकम् । बोधने दिनतृतीयभागे इति विशेषः । द्वादश्यामृक्षाभावे एकादश्यादिपञ्चतिथिषु निशासु नारदेन पादादिविशेष-योगाच्छयनादिकम् । तिथ्यन्तरे पादविशेषयोगाभावे द्वादश्यां सन्ध्यायामेव शयना-दिकमिति रघुनन्दनः ।

"एकादश्यां जगत्स्वामी शयनं परिकल्पते ।
शेषाहिभोगपर्य्यङ्कं, कृत्वा संपूज्य केशवम् ॥
अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च, द्वादश्याञ्च विशेषतः ।
पीताम्वरधरम्, देवं निद्रां समानयेत्" ॥

अज्ञनुाप्य, = अनुज्ञां लब्ध्वा एकादशीसमये शयनीयं कल्पयेत् ।

"चतुर्धापि हि तं चीर्णं, चातुर्मास्यव्रतं नरः ।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु, द्वदश्यां तत्समापयेत्" ॥

इत्येतदपि वचनमाह—इति ठक्कुरास्तु–तथा चोक्तं भविष्ये—

"आभाकासितपक्षे तु, मैत्रश्रवणरेवती-
सङ्गमे न हि भोक्तव्यम्, द्वादशद्वादशीं हरेत्" ॥ इति

अयं भावः । आषाढभाद्रकार्तिकशुक्लद्वादशीषु अनुराधा-श्रवण रेवतीयोगे पारणं न कुर्य्यादिति । अत्र यद्यपि सामान्यनिषेध उक्तः । तथापि अनुराधाप्रथमपाद एव निषिद्धो विष्णुधर्म्मे—

यदाह—

"मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः, पौष्णान्तपादे हि प्रबुध्यते च" । इति ।

अत्रैव हरिशयनोत्सव उक्तो वाराहो—

"एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः ।

भुजङ्गशयने शेते, क्षीरार्णवजले सदा" ॥ इति

यमोऽप्याह—

"क्षीराब्धौ शेषपर्य्यङ्कमाषाढ्यां संविशेद्धरिः ।

निद्रां त्यजति कार्तिक्याम्, तयोस्तां पूजयेत्सदा ॥

ब्रह्महत्यादिकं पापं, क्षिप्रमेव व्यपोहति ।

हिंसामेकैस्तु किन्तस्य, यज्ञैः कार्य्यं महात्मनः ।

प्रस्वापे च प्रबोधे च, पूजितो येन केशवः" ॥ इति

स्कान्दे—

"आषाढशुक्लैकादश्यां, कुरु राजन् महोत्सवम् " ॥ इति

द्वादश्यामप्ययमुक्तो वाराहे—

"द्वादश्यां सन्धिसमये, नक्षत्राणामसम्भवे ।

आभाकासितपक्षे तु, शयनाऽवर्तनादिकम्" ॥ इति

अत्रैकादशीद्वादश्योर्देशभेदेन व्यवस्था । अत्र चातुर्मास्यव्रतारम्भमप्याह भारते—

आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।

चातुर्मास्यव्रतं कुर्य्यात् यत्किञ्चिन्नियतो नरः" ॥ इति

नित्यमेतद् व्रतम् ।

"वार्षिक्यां चतुरो मासान्, वाहयेत्केनचिन्नरः ।

व्रतेन नो चेदाप्नोति, किल्विषं वत्सरोद्भवम् ॥ इति

"असम्भवे तुलार्केऽपि, कर्तव्यन्तु प्रयत्नतः" ।

मैथिलस्मार्तमते एकादश्यामेव हरिशयनोत्सवादिः । दाक्षिणात्यमते तु द्वादश्याम् । गौडास्तूभयोरेव वदन्तीत्याहुः ।

कार्तिकशुक्लैकादश्यां ब्रह्मपुराणे—

"एकादश्यां तु शुक्लायां, कार्तिके मासि केशवं ।

सुप्तं प्रबोधयेद्रात्रौ, शुद्धो भक्तिसमन्वितः" ॥ इति

अत्र "ब्रह्मेन्द्ररुद्रै रि"त्यादिश्लोकद्वयम् । वराहपुराणे द्वादशीपूजाप्रकरणे कथितमपि अत्र पठितव्यमिति समाचारः कल्पतरोरनुसारात् । तत्र प्रकारः—प्राङ्गणेऽलङ्कृतपीठाद्युपरि पञ्चोपचारैः सम्पूज्य इमं मन्त्रं पठेत्—

"ॐ ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमाना, भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।
प्राप्ता तवेयं किलकौमुदाख्या, जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥
ॐ मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्र, शारद्यपुष्पाणि मनोहराणि ।
अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द, त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्वया चोत्थीयमानेन, उत्थितं भुवनत्रयम्" ॥ इति

अत्र तृतीयः श्लोकः सम्प्रदायागतं ज्ञेयः ।

धूपदीप-बहुविधनैवेद्यादिबहुविधभक्ष्याणि नानाफलानि दाडिमादीनि कृष्णतुलसीमञ्जरीभिः जातीपुष्पैश्च पूजा । नृत्यगीतबहुविधवाद्यकथासूक्तैश्च प्रबोधनमिति परम्परागतमैथिलस्मार्तानुसारी पन्थाः ।

दाक्षिणात्यनिबन्धे नारदीये यथा—

"कार्तिके शुक्लपक्षस्य, कृत्वा ह्येकादशीं नरः ।
प्रातर्दत्वा शुभान् कुम्भान् स याति हरिमन्दिरम्" ॥ इति

इयमेवोत्तराभाद्रयोगे "अनन्त" इत्युच्यते—भविष्योत्तरे तथाऽभिहितमिति । अत्रैव देवोत्थानमुक्तं हेमाद्रौ । पाद्मे—

"एकादश्यां तु शुक्लायामित्यादि ।

भविष्योत्तरे—

"कार्तिके शुक्लपक्षस्य, एकादश्यां समाहितः ।
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र, देवमुत्थापयेद् द्विजः" ॥ इति

वाराहे—द्वादश्यां प्रबोध उक्तः, तथैव रामार्चनचन्द्रिकायामपि । तत्र मन्त्रो यथा—

"ॐ ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुवेरसूर्य्य- सोमादिभिर्वन्दितवन्दनीयः ।

बुध्यन्तु देवेश जगन्निवास, मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव" ॥

"इयं तु द्वादशी देव बोधनार्थं विनिर्मिता ।

त्वयैव सर्वलोकानां, हितार्थं शेषशायिना ॥

त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तं, भवेदिदम्, उत्थिते चेष्टते समुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।

त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तमुत्थिने चोत्थितं जगत इति ।

एवप्रबोध्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

तत्र मन्त्राः—

"गता मेघाः वियच्चैव, निर्मलं निर्मला दिशः ।

शारदानि च पुष्पाणि, गृहाण मम केशव" ॥ इति

पक्षान्तरं ज्ञेयम् ।

अथ द्वादशीनिर्णयः

द्वादशी तत्कृत्यञ्च, किञ्चिदत्र प्रदर्श्यते ।

करिवक्त्रपदाम्भोजं, शरणं कुर्वता मया ॥

तत्र द्वादशीतिथिरुपवासादिपु द्वादशोयुतैव ग्राह्या तदुक्तम्—

"रुद्रेण द्वादशोयुक्ते"ति । त्रयोदशीविद्धा तु निषिद्धा ।

यथा—

"नागविद्धा तु या षष्ठी, रुद्रविद्धो दिवाकरः ।

कामविद्धो यदा विष्णुर्न ग्राह्या ते सुरासुरैः" ॥ इति

अथ श्रवणद्वादशी सा च त्रिधा एकादश्युपवासपूर्वकं श्रवणयुक्तद्वादश्यामुपवासमाह

—ब्रह्मवैवर्तः—

"एकादश्यामुपोष्यैव, द्वादश्यां समुपोषयेत् ।

न चात्र तिथिलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः" ॥ इति

अत्र च

"असमाप्ते व्रते पूर्वे, नैव कुर्य्याद् व्रतान्तरम्" ॥

इति स्मृतेः पारणस्याकरणे पूर्वोपवाससमाप्तौ उपवासान्तरम् । तेन विधिलोपो न भव-

तींत्यर्थः । अत्र हेतुमाह—"उभयोरिति । उभयोपवासासामर्थ्ये श्रवणद्वादश्येवोपोष्या, नैकादशी यथा स्मृतिः––

"परमैकादशीं भुक्त्वा, द्वादशीं समुपोषयेत् ।
पूर्वोपवासजं पुण्यं सवं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
उपोष्य द्वादशीं पुण्यां, विष्णुऋक्षेण संयुताम् ।
एकादश्युद्भवं पुण्यं, नरः प्राप्नोत्यसंशयम्" ॥ इति ।

भविष्ये—

"द्वादशी श्रवणोपेता, सर्वपापहरा तिथिः ।
बुधवारसमायुक्ता, ततः शतगुणा भवेत् ॥
उपोष्य तामवाप्नोति, द्वादशद्वादशीफलम्" ॥ इति

यदा त्वेकादशीद्वादश्योरुभयत्र श्रवणा लभ्यते, द्वादशी न बुधवारसंयुता तदैकादश्युपवाससिद्धत्वात् न द्वादश्यामुपवासान्तरं यथा नारदः- -

"याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः ।
तास्वेव तद्व्रतं कुर्य्याच्छ्रवणद्वादशीं विना" ॥ इति

भविष्योत्तरे—

"एकादशी यदा तत्स्याच्छ्रवणेन समन्विता ।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता, भक्तानां विजयप्रदा ।
तिथिनक्षत्रसंयोगे, उपवासो यदा भवेत् ॥
तावदेव न भोक्तव्यम्, यावदेकस्य संक्षयः ।

कस्य क्षयेन भोक्तव्यमित्याह—

"विशेषेण महिपाल, श्रवणा वर्द्धते यदि ।
तिथिक्षयेन भोक्तव्यं, द्वादशीं नैव संशयेत् ॥

तिथिक्षयेन = एकादशीक्षयेन, भोक्तव्यम् = द्वादश्यां पारयेदित्यर्थः । द्वादशीं नैव

लङ्घयेदिति श्रवणयुक्तैकादश्यभिप्रायेण। यदात्र श्रवणेन स्पृष्टा एकादशी न भवति तदा द्वादशीतिथिक्षयेन भोक्तव्यमिति श्रवणद्वादशीविचारः।

"रोहिणीसंयुता चैव, विद्वद्भिः समुपोषिता।
वियोगे पारणं चक्रुः, मुनयो ब्रह्मवादिनः॥
यदि यामद्वयादर्वाक्, तिथिभान्ते च पारणम्।
आभाकासितपक्षे च, मैत्रश्रवणरेवती॥
सङ्गमे न हि भोक्तव्यम्, द्वादशैकादशीं हरेत्।
मैत्रञ्च पञ्चदण्डेषु, दशदण्डेषु रेवती
श्रवणे द्वादशे दण्डे, पारणञ्च विधीयते।
मैत्रश्रवणरेवत्यामिति दण्डविधिः स्मृता।
तिथ्यर्क्षयोर्यदाच्छेदो, नक्षत्रान्तमवाप्य च॥
अर्द्धरात्रेऽथ वा कुर्य्यात्, पारणामपरेऽहनि"।

व्यासः—

"सत्ये पुनर्वसू ज्ञेया, त्रेतायां मैत्रमेव च॥
द्वापरे रेवती ज्ञेया, कलौ श्रवण उच्यते"।

किञ्च स्मृतिः—

एकादश्यां विशेषेण कर्तव्यं भोजनद्वयम्॥
रात्रौ जागरणं कुर्य्यात्, दिवा च हरिकीर्तनम्"॥

इति सरोजसुन्दरग्रन्थीयमवधेयम्।

अथ पुष्ययुक्ता फाल्गुनशुक्लद्वादशी = गोविन्दद्वादशी। तस्यां गोविन्दपूजा कार्य्या। निरूपणमस्याः जगन्नाथमाहात्म्ये—

"फाल्गुनस्य सिते पक्षे, कुम्भस्थे च दिवाकरे।
जीवे धनुषि संयुक्ते, पुष्यर्क्षे रविवासरे॥
शोभनेऽस्तगते शुक्रे, विद्यमानेऽंशमालिनि।
द्वादशी या तिथिः सैव, गोविन्दद्वादशी स्मृता॥

गोविन्दद्वादशीं प्राप्य, यो गच्छेत्पुरुषोत्तमम् ।
अनायासेन राजेन्द्र, विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥
तीर्थराजे च गङ्गायां, नदीनदगते ह्रदे ।
स्नानदानादिके तत्र, कोटिसूर्य्यग्रहैः समा" ॥ इति

यत्र कुत्राऽपि वा स्थाने इत्याद्यप्यूह्यम् । योगाधिक्ये फलाधिक्यमवधेयम् । अथ कृत्यमहार्णवे विष्णुः—

मार्गशुक्लैकादश्यामुपोषितो द्वादश्यां भगवन्तं वासुदेवमर्चयेत्—पुष्पधूपानुलेपनदीपनैवेद्यैर्वह्निब्राह्मणतर्पणैश्च । व्रतमेतत् सम्वँत्सरं कृत्वा पापेभ्यः पूतो भवति । यावज्जीवं कृत्वा श्वेतद्वीपमवाप्नोति । उभयपक्षद्वादशीष्वेवं सम्वँत्सरं कृत्वा स्वर्गलोकमवाप्नोति । यावज्जीवं कृत्वा विष्णुलोकम् । अत्र यद्यपि एकादश्यामुपोषित इत्युक्तम्, तथापि द्वादशीपूजायाः प्राधान्यात् प्रधानस्यानुरोधात् यत्र द्वादशी त्रुटिता तत्र पूर्वदिने द्वादशीव्यतिरेकेणाप्युपवासः कर्तव्यः । पूजाहोमादि तु वासुदेवश्रुतिबलात् । इदन्तु प्रतिशुक्लाद्वादशीवत्सरान्तं यावज्जीवम्, अपरं प्रति उभयद्वादशी वत्सरान्तमेकमिति चतुष्टयम् काम्यञ्च, फलश्रुतेः । श्वेतद्वीपश्च वैष्णवोपभोग्यः क्षीराब्धितीररूपः । स च महाभारतीये नारायणीयोपाख्याने प्रपञ्चितः । पूजा च भगवते वासुदेवायेत्यनेन । होमस्त्वनेन स्वाहान्तेन कार्य्यः । होमे च वह्वयाहूतयः । ब्राह्मणा अपि बहवो भोज्याः । उभयत्र वह्नित्वान्वयात् ।

मत्स्यपुराणे—

"द्वादश द्वादशीर्यस्तु, समाप्योपोषणैः सह ।
गोवस्त्रकाञ्चनैर्विप्रान्, पूजयेद्भक्तितो नरः ॥
परमं पदमाप्नोति, विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् ।

द्वादशीः शुक्लाः समाप्य विष्णुपूजादिना उपोषणे चैकादश्युपवासपूर्वं, तथैव विष्वादौ दर्शनात् ।

देवीपुराणे—मार्गशीर्षादारभ्य केशव-नारायण-माधव-गोविन्द-विष्णु-मधुसूदन-

त्रिविक्रम-वामन-श्रीधर-हृषीकेश-पद्मनाभ-दामोदरान् पूजयेत् । धूपस्रग्दीपाद्यैरुपोष्य, सम्पूज्य, दक्षिणाभिश्च । एभिर्नामभिः अश्वमेध-राजसूय-वाजपेयातिरात्राग्निष्टोम-गोमेध-सौत्रामणि-पञ्चयज्ञ-होमसर्वमखाः प्राप्यन्ते । नित्यं स्मरणात्, अर्चनात्, तन्नामजपाच्चेति नामद्वादशीव्रतम् । अत्रैकादश्यामुपवासः । मार्गशीर्षादिद्वादशशुक्ल-द्वादशीषु यथाक्रमं केशवादिद्वादशनामभिः पूजाहोमजपस्मरणानि च । केशवादीनां प्रीतये दक्षिणादानम् । पूजा पूर्वदिनेऽपि पूजयेदित्युक्त्वा उपोष्य सम्पूज्येति पुनरभि-धानात् । इतिनामद्वादशीव्रतमिदमित्युपसंहाराद्द्वादशीव्रतमिदम् । ऋष्यन्तराच्च । अत एव निबन्धेषु तथा लिखितमिति । व्रतानि तु द्वादश, फलभेदेन अधिकारभेदात् । धरणीव्रतवत् । धरणीव्रतन्तु कृत्यमहार्णवे विष्णुव्रतप्रकरणे द्रष्टव्यम् ।

माघशुक्लैकादशी भीमोपाख्या । तत्रैव भीमोत्पत्तिः । सा च परयुता ग्राह्ये-त्युक्तमेव । माघशुक्लद्वादशी = भीमद्वादशी । इयं पूर्वयुता ग्राह्या, युग्मवाक्यात् । पाद्मे तु—

"त्वया कृतमिदं वीर, तव नाम्ना भविष्यति ।
सा भीमद्वादशी ह्येषा, सर्वपापहरा शुभा" ॥ इति

इति द्वादशीनिर्णयः ।

अथ त्रयोदशीनिर्णयः

त्रयोदश्याञ्च कृत्यस्य, विचारः क्रियते मया ॥
इभवक्त्रपदाम्भोजकृपया भवलीलया ॥

त्रयोदशी ।

"पञ्चमी सप्तमी चैव, दशमी च त्रयोदशी ।
प्रतिपन्नवमी चैव, कर्तव्या संमुखी तिथिः" ॥

अत्र त्रयोदशीशुक्ला । तथा च संवर्तः—

"कृष्णाष्टमी बृहत्तपा, सावित्री वटपैतृकी ।
शुक्ला त्रयोदशी रम्भा, उपोष्याः पूर्वसंयुताः" ॥

स्कन्दपुराणे—

"कृष्णाष्टमी चतुर्थी च, सावित्री वटपैतृकी ।
शुक्ला त्रयोदशी रम्भा, नोपोष्याः परसंयुताः" ॥ इति

किञ्च—

"त्रयोदशी प्रकर्तव्या, द्वादशीसहिता मुने ।
भूतविद्धा न कर्तव्या, दर्शा-पूर्णा कदाचन" ॥

कृष्णपक्षे आपस्तम्वः—

"षष्ठ्यष्टमी अमावास्या, कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।
एताः परयुताः कार्य्याः, पराः पूर्वेण संयुताः" ॥

किञ्च—

"एकादश्यष्टमी षष्ठी, द्वितीया च त्रयोदशी ।
चतुर्दशी अमावास्या, उपोष्याः स्युः परान्विताः ॥

अत्राष्टमी चतुर्दशी शुक्ला । त्रयोदशी कृष्णा । अमावास्या वटसावित्री व्यतिरिक्ता ।

किञ्च—

"षष्ठ्यष्टमी तथादर्शः, कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।
पुर्वविद्धा न कर्तव्या, यदि स्यादपरेऽहनि" ॥ इति

अथ चैत्रकृष्णा त्रयोदशी । सा च = वारुणी-महावारुणी-महामहावारुणी चेति त्रिप्रकारा भवति यथाकरणम् । वारुणनक्षत्रेण युता चेद्वारुणी । एवं भूता शनिवार-युता चेत् महावारुणी । वारुणनक्षत्रशुभयोगशनिवारयुता चेन्महामहावारुणी । वारु-णम् = वरुणनक्षत्रम् । स च शतभिषकः । फलं तु गङ्गायामेव । अन्यत्राश्रवणात् । तत्र मास-पक्ष-तिथीनामनुरोधेन संज्ञाविधेः सार्थकत्वानुरोधेन च मासाद्युल्लेखानन्तरं वारुण्यां बहुशतसूर्य्यग्रहकालीनगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकाम इति । महावारु-ण्याञ्च, बहुकोटिसूर्य्यग्रहकालीनगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकाम इति । महा-

महावारुण्याञ्च, बहुकोटिसूर्य्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिपूर्वकत्रिकोटिकुलोद्धरणकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये, इति वाक्यम्। तत्र महावारुण्याम् त्रिकोटिकुलोद्धरणकामेन स्नातव्यमिति स्मार्ताः । अत्र प्रमाणम् = स्कन्दपुराणम्—

वारुणेन समायुक्ता, मधौ कृष्णा त्रयोदशी ।
गङ्गायां यदि लभ्येत, शतसूर्य्यग्रहैः समा ॥
शनिवारसमायुक्ता, सा महावारुणी स्मृता ।
गङ्गायां यदि लभ्येत, कोटिसूर्य्यग्रहैः समा ॥
शुभयोगसमायुक्ता, शनौ शतभिषा यदि ।
महामहेति विख्याता, त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ इति

कुलं = पुरुषम् । तथा च—मेदिन्याम्—

"कुलं जनपदे गोत्र सजातीयगणेऽपि च ।
भवनेऽपि तनौ क्लीवम्, कण्डकार्य्यौषधौ कुलम् ॥

अत्र त्रयोदश्यां सम्पूर्णायां पूर्वदिने । पूर्वाह्णे तदितरतिथिनक्षत्रसत्त्वे परदिने, परदिने पूर्वाह्णे तिथिनक्षत्रसत्त्वेऽपि पूर्वदिन एव स्नानम् ।

"आदित्योदयवेलायामारभ्य षष्ठिनाडिका ।
या तिथिः सा हि भद्रा स्यात्, सर्वतिथ्योर्ह्ययं विधिः ॥

इति नारदीयेन पूर्वतिथेः भद्रत्वाभिमानेन परतिथेरभद्रत्वप्रतीतेः इति । अत्र रात्रावपि वारुण्यादिस्नानं कर्तव्यम् । राहुस्नानाप्रतिखरेतरसर्वकर्मणि पर्युदस्तत्वादित्याचार्यचूडामणिः । तत्र, महाफलश्रुतेरात्रावपि कर्तव्यम् ।

"दिवारात्रौ च, सन्ध्यायां गङ्गायाञ्च विशेषतः ।
स्नात्वाऽश्वमेधजं पुण्यं, गृहेऽप्युद्धृततज्जलैः" ॥ इति

मार्कण्डेयपुराणात् । किञ्च भविष्यपुराणे—

"सर्व एव शुभः कालः, सर्वो देशस्तथा शुभः ।
सर्वो जनस्तथा पात्रं, स्नानादौ जाह्नवीजले" ॥ इति

"महानिशा तु विज्ञेया, मध्यमं प्रहरद्वयम् ।
तस्यां स्नानं न कर्तव्यम्, काम्यं नैमित्तिकादृते" ॥

इति देवलवचनेन सामान्यतः प्रतिप्रसरादिति स्मार्ताः । अत्र—

"स्नानं कुर्वन्ति या नार्य्यः, चन्द्रे शतभिषां गते ।
सप्तजन्म भवेयुस्ताः, दुर्भगाः विधवाः ध्रुवम् ।
त्रयोदश्यां तृतीयायां, दशम्याञ्च विशेषतः" ॥
शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं, नाचरेयुः कदाचन ।

इति प्रचेतो-देवलवचने न स्त्रीशूद्रयोः वारुण्यादिस्नाननिषेधार्थके । किन्तु रागस्नाननिषेधके ।

"भोगाय क्रियते यत्तु, स्नानं यादृक्षिकं नरैः ।
तन्निषिद्धं दशम्यादौ, नित्यनैमित्तिके न तु ॥

इति हेमाद्रिधृतवचनान्न वारुण्यादिस्नाननिषेधके इति स्मार्ताः । अथ गजच्छायायोगात्तत्कृत्यविचारः तिथिनिर्णये—

"कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां, मघास्विन्दुकरे रविः ।
यदा तदा गजच्छाया, श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते" ॥ इति

ब्रह्मपुराणे —

योगो मघात्रयोदश्योः, कुञ्जरच्छायसंज्ञकः ।
भवेन्मघायां संस्थे च, शशिन्यर्के करे स्थिते ॥

अत्र मघात्रयोदश्योः प्रत्येकमेव नित्यत्वाच्छ्राद्धं तत एवावश्यकम् । कुञ्जरच्छाययोगे तु फलातिशयः । पुनस्तत्रैव—

अश्वयुज्यान्तु कृष्णायां, त्रयोदश्यां मघासु च ।
प्रावृडृतौ यमः प्रेतान् पितृंश्चैव निजालयात् ॥
विसर्जयति मानुष्ये, कृत्वा शून्यं स्वकं गृहम् ।
क्षुधार्ताः कीर्तयन्तश्च, दुःकृतञ्च स्वयं कृतम् ॥

कांक्षन्तः पुत्र-पौत्रेभ्यः, पायसं मधुसंयुतम् ॥
तस्मात्तां प्राप्य मनुना, तर्पयेत् पायसेन तु ।
मध्वाज्यतिलमिश्रेण, तथा शीतेन चाम्भसा ॥
श्राद्धं तेनापि कर्तव्यम्, तैस्तैर्द्रव्यैः सुसञ्चितैः ।
त्रयोदश्यां प्रयत्नेन, वर्षासु च मघासु च ॥
नास्मात्परतरः कालः, श्राद्धे ह्यन्यत्र विद्यते ।
यत्र साक्षाद्धि पितरो, गृह्णन्त्यमृतमक्षयम् ॥ इति
अपि जायेत सोऽस्माकं, कुले कश्चिन्नरोत्तमः ।
प्रावृट्कालेऽसिते पक्षे, त्रयोदश्यां समहितः ॥
मधुकेटमयः श्राद्धं, पायसेन समाचरेत् ।
कार्त्तिकं सकलं वापि,
प्राग्भूतायां कुञ्जरच्छायायाम् = अपराह्णे इति यावत् ।

मनुः—

"अपि नः स कुले जायात्, यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिभ्याम्, प्रच्छाये कुञ्जरस्य तु ॥

वशिष्ठः—

"पिता पितामहश्चैव, तथैव प्रपितामहः ।
उपासते सुतं जातं, शकुन्य इव पिप्पलम् ॥
मधुमांसैश्च शाकैश्च, पायसापायसेन च ।
एष नो दास्यति श्राद्धं, वर्षासु च मघासु च ॥
कुर्य्यात् सर्वेषु पर्वसु ।
श्राद्धं साधारणं नाम, अर्थकामफलप्रदम् ।
भार्य्याविरहितोऽप्येतत्, प्रवासस्थोऽपि नित्यशः ॥
शूद्रोऽप्यशूद्रवत्कुर्य्यादनेन विधिना नृप । इति

किञ्च—

"अविभक्ता विभक्ता वा, कुर्य्युः श्राद्धं सदैवकम् ।
मघासु च तथाऽन्यत्र, नाधिकारः पृथग् विना" ॥

अदैवकं प्रत्याब्दिकम् = एकोद्दिष्टरूपम् । अन्यत्र = कृष्णपक्षादौ । नाधिकारः = न नित्याधिकारः ।

"सपिण्डकरणान्तानि, यानि श्राद्धानि यादृशः ।
पृथग् नैव सताः कुर्य्युः पृथगद्रव्या अपि क्वचित्" ॥

इति निषेधात् । चिन्तामणौ—

"तत्रैव कारयेद्देवीं, पिण्डरूपां महोदयाम् ।
कन्यास्थे च रवौ जाते, पूजनीया यथाविधि ॥
भौजङ्गीं तिथिमासाद्य, पावच्चन्द्रार्कसङ्गमम् ।
तत्रापि महती पूजा, कर्तव्या पितृदेवता ॥
ऋक्षे पिण्डप्रदानं तु, ज्येष्ठपुत्रो विवर्जयेत् ॥ इति

अस्यायं भावः । मघानक्षत्रमात्रपुरस्कारेण श्राद्धप्रयकरणे ज्येष्ठपुत्रवता पिण्डाः न देयाः । तत्रापि तेन कथं श्राद्धमनुष्ठेयमित्याह—शातातपः—

"पिण्डनिर्वापरहितं, यत्तु श्राद्धं विधीयते ।
स्वधावाचनलोपोऽत्र, विकरस्तु न लुप्यते" ॥ इति

नरः ज्येष्ठपुत्रो विवर्जयेदिति सत्यपि निषेधे संकोचे मानाभाव इति देश्यम् । संकोचस्य सावकाशस्थल एव जागरुकत्वात् ।

"नन्दायां भार्गवदिने, त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।
श्राद्धमेषु न कर्तव्यं, पुत्रदारधनक्षयात् । इति

ज्योतिश्शास्त्रस्य सावकाशश्राद्धविषयतया कामधेनुकृता लिखितत्वादिति वाचस्पतिलिखनाच्च ।

किञ्च—

"स्नानं कुर्वन्ति याः नार्य्यः, चन्द्रे शतभिषां गते ।
सप्तजन्म भवेयुस्ता, दुर्भगा विधवा ध्रुवम् ॥
त्रयोदश्यां तृतीयायां, दशम्यां च विशेषतः ।
शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानमाचरेयुः कथञ्चन" ॥

इति प्रचेतोजावालिवचने, न स्त्रीशूद्राद्योर्वारुण्यादिस्नाननिषेधके । किन्तु रागप्राप्तस्नाननिषेधके । तथा हि —

"भोगाय क्रियते यत्तु, स्नानं यादृक्षिकं नरैः ।
तन्निषिद्धं दशम्यादौ, नित्यनैमित्तिके न तु" ॥ इति

हेमाद्रिधृतवचनात् । तथा च प्रत्येकपुरस्कारेण श्राद्धकरणे निषेधो, न तु विशिष्ट इति । अत्रेदं तत्त्वम् । यत्र पूर्वदिनस्यापराह्ले त्रयोदशी मघा च प्राप्यते उत्तरदिने च त्रयोदशीमघाहस्तार्काः, तत्र सकृत्करणेनैव शास्त्रार्थसिद्धेः । त्रयोदशी-मघयोः श्राद्धमेकतरत्रैव । तत्रापि कपालाधिकरणन्यायेन पूर्वदिन एव । तथा च पूर्वदिने श्राद्धे कृते उत्तरस्मिन्नहनि गजच्छाया श्राद्धं गजच्छायात्वपुरस्कारेण कार्य्यम् । विशिष्टस्य केवलादन्यत्वेन पृथक् निमित्तकत्वात् । विद्यमानज्येष्ठपुत्रकेण तु पूर्वदिने त्रयोदशीश्राद्धं कृतवता उत्तरदिने मघाप्रयुक्तं, गजच्छायाप्रयुक्तं वा श्राद्धम् अनारब्धपक्षश्राद्धेन पिण्डरहितमेव कार्य्यम् ।

"तत्रैव कारयेद्देवीं, पिण्डरूपां महोदयाम् ।
कन्यास्थे च रवौ वत्स, पूजनीया यथाविधि" ॥

इत्यादिनापि पिडदाननिषेधात् । आरब्धपक्षश्राद्धेन तु तेन त्रयोदश्याश्चतुष्टयलाभे प्रात्यहिकश्राद्धमपिण्डके क्रियमाणे त्रयोदशीश्राद्धं तन्त्रेणैव निर्वहति । मघा-गजच्छाया-श्राद्धे तु पिण्डरहिते प्रसङ्गेन सिद्ध्यतः । उत्तरदिने तु गजच्छायालाभे तथैवेति । यावद्गजच्छायायोगस्तावद्ब्राह्मणैर्न भोक्तव्यम् ।

"सूतके मृतके चैव, ग्रस्तयोः सूर्य्यचन्द्रयोः ।
छायायां कुञ्जरस्याथ, भुक्त्वा तु नरकं व्रजेत् ॥

प्रमादाद् ब्राह्मणो भुक्त्वा, तत्र चान्द्रायणं चरेत्" ॥

इति ब्रह्मपुराणवचनादिति । इति त्रयोदशीतत्कृत्यनिर्णयः ।

अथ चतुर्दशीनिर्णयः ।

चतुर्दशी तद्विहितञ्च कृत्यम्, प्रदर्श्यते स्मार्तमतप्रशस्तम् ।

गजेन्द्रवक्त्रांघ्रियुगं सरोजं निधाय चेतःसरसि प्रबोधम् ॥

अथ चतुर्दशी-सा च शुक्ला उपवासादिषु पूर्णिमायुतैव ग्राह्या । चतुर्दश्या पूर्णिमा चे' ति युग्मवाक्यात् किञ्च । वृहस्पतिरपि—

"एकादश्यष्टमी षष्ठी, पौर्णमासी चतुर्दशी ।

अमावास्या तृतीया च, ता उपोष्याः परान्विताः" ॥

तथा—

शुक्ल पक्षेऽष्टमी चैव, शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।

परविद्धा तु कर्तव्या, पूर्वविद्धा न कुत्रचित् ॥

अथ शिवरात्रिः—

तन्निर्णयो गोपालकृततिथिनिर्णयानुसारेण लिख्यते—

माघानन्तरा चतुर्दशी या सा शिवरात्रिः ।

तत्र नागरखण्डं यथा—

"माघमासस्य शेषे या, प्रथमे फाल्गुनस्य च ।

कृष्णा चतुर्दशी सा तु, शिवरात्रिः प्रकीर्तिता" ॥

अत्रैकस्य तिथेर्माघीयत्व-फाल्गुनीयत्वे मुख्य-गौणवृत्तिभ्यामविरोध इति ।

पाद्मे—

वर्षे वर्षे महादेवि, नरो नारी पतिव्रता ।

शिवरात्रौ महादेवं, कामं भक्त्या प्रपूजयेत्" ॥ इति

ईशानसंहितायाम्—

"शैवो वा ब्राह्मणो वापि, यो रागादन्यपूजकः ।

सर्वपूजा फलं हन्ति, शिवरात्रिबहिर्मुखः" ॥ इति

तथा च वीप्सानिन्दाभ्यामस्याः नित्यत्वमवगतम् । अत्र सर्वेषामधिकारः ।

"शिवरात्रिव्रतं नाम, सर्वपापप्रणाशनम् ।
आचाण्डालमनुष्याणां, भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्" ॥

इति ईशानसंहितावचनात् । अस्योपवसनस्य प्राधान्यमाह—शङ्करः—

"न स्नानेन न धूपेन, न वस्त्रेण न चार्चया ।
तुष्यामि न तथा पुष्पैः, यथा चात्रोपवासतः" । इति

व्रतपद्धतौ—

"अतीतायान्तु माघ्यां वै, या स्यात् कृष्णचतुर्दशी ।
शिवन्तु पूजयेत्तत्र, रात्रौ कुर्य्याच्च जागरम्" ॥
भूतेश्वरादिह परोऽस्ति न पूजनीयो, नैवाश्वमेधसदृशः क्रतुरस्ति लोके ।
गङ्गासमं हि भुवने नहि तीर्थमस्ति, नान्यव्रतं हि शिवरात्रिसमञ्च लोके ॥

तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु—व्रतमिदं संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यञ्च ।

स्कान्दे यथा—

"परात्परतरं नास्ति, शिवरात्रिः परात्परम् ।
न पूजयति भूतेशं, रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ॥
जन्तुर्जन्मसहस्रेषु, भ्रमते नात्र संशयः" ॥ इति

अनेनाकरणे प्रत्यवायश्रुतेः—

चलन्ते ते कदाचिद्वै निश्चलञ्च शिवव्रतम् ।

इति वचनात्, "वर्षे वर्षे महादेवीति" वीप्साश्रवणाच्च नित्यत्वम् । अत्रेयं व्यवस्था—

यद्दिने महानिशाव्याप्तचतुर्दशी तद्दिने व्रतम् ।

"पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा, महानिशि चतुर्दशी ।
व्याप्ता सा दृश्यते यस्यां, तस्यां कुर्य्याद् व्रतं नरः" ॥

इति संहितावचनात् । महानिशामाह—देवलः—

"महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः" ॥ इति

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 8565

अत्र घटिका दण्डरूपा

"अर्द्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी,
व्याप्ता सा दृश्यते यस्यां तत्र कुर्य्याद् व्रतं नरः" ॥

इतीश्वरवचनाच्च । यदि महानिशाव्यापिनी न भवति तदा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । यथा स्मृतिः—

"प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या, शिवरात्रिचतुर्दशी" ॥ इति

प्रदोषमाह व्यासः—

"प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं, घटिकाद्वयमिष्यते" । इति

यदा तूभयदिने प्रदोषव्यापिनी—तदा परेद्युर्व्रतम् । तथा हि—

"त्रयोदश्यस्तगे सूर्य्ये, चतसृष्वेव नाडीषु ।
भूतविद्धा तु या तत्र, शिवरात्रिव्रतं चरेत्" ॥

इति पद्मपुराणवचनात् । उभयव्याप्त्यनुरोधाच्च । यदा तु उभयनिशीथव्यापिनी तदा परेद्युर्व्रतम् । तथा च—

"शिवरात्रिव्रते भूतां, कामविद्धां परित्यजेत् ।
एकेनैवोपवासेन, ब्रह्महत्यां व्यपोहति" ॥

इति लिङ्गपुराणम् । उभयव्याप्त्यनुरुद्धतिथेस्त्रिसन्ध्यव्यापित्वाच्च । अत्रायं संक्षेपः । यद्दिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी भवति तद्दिने व्रतम् । यदा तु पूर्वनिशीथव्यापिनी, परदिने प्रदोषव्यापिनी तदा पूर्वदिने । यदा पूर्वदिने प्रदोषव्यापिनी, परदिने निशीथव्यापिनी तदा परदिने इति । अथात्र महेशठक्कुराः—

"फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतम्" ।

सा च प्रदोषव्यापिनी, निशाव्यापिनी चेति द्विधा । तत्र स्मृतिर्यथा—ईशान-संहितायम्—

"माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि ।
शिवो लिङ्गतयोद्भूतः, कोटिसूर्य्यसमप्रभः ॥

तत्कालव्यापिनी ग्राह्या, शिवरात्रिव्रते तिथिः ॥
अर्द्धरात्रादधश्चोर्ध्वं, युक्ता यत्र चतुर्दशी ।
तत्तिथावेव कुर्वीत, शिवरात्रिव्रतं व्रती ॥
नार्द्धरात्रादधश्चोर्ध्वं, युक्ता यत्र चतुर्दशी ।
नैव तत्र व्रतं कुर्य्यादायुरैश्वर्य्यहानितः ।

निशा तु द्वितीययामान्त्यघटिकेति मिलित्वा घटिकाद्वयमिति महासूक्ष्मकालः प्रतिभाति । एवं सति पूर्वेद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव ग्राह्या ।

"त्रयोदशी यदा देवि दिन-भुक्तिप्रमाणतः ।
जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी" ॥

इति स्कान्दे तत्र दिनभुक्तिरस्तमयकालः इति बोध्यः । प्रदोषव्यापिनीपक्षे तु—

"त्रयोदश्यस्तगे सूर्य्ये, चतसृष्वेव नाडीषु ।
भूतविद्धा तु या तत्र, शिवरात्रिव्रतञ्चरेत् ॥

तथा—

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या, शिवरात्रिचतुर्दशी ।
रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥

प्रदोषश्चात्र प्रसिद्धो घटिकाचतुष्टयरूप इति ।

'आदित्यास्तमये काले, अस्ति सा चेच्चतुर्दशी ।
तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्, सा भवेदुत्तमोत्तमा" ॥ इति

नारदसंहितायां यथा—

"अर्द्धरात्रियुता यत्र, फाल्गुनस्य चतुर्दशी ।
शिवरात्रिव्रतं तत्र, सोऽश्वमेधफलं लभेत्" ॥

स्मृत्यन्तरेऽपि तथा—

"भवेद्यत्र त्रयोदश्यां, भूतव्याप्ता महानिशा ।
शिवरात्रिव्रतं तत्र, कुर्य्याज्जागरणं तथा" ॥ इति

अन्यच्च—

"जयन्ती शिवरात्रिश्च, कार्य्ये भद्राजयान्विते"॥ इति स्कान्दे ।

दिनद्वये निशीथव्याप्तौ तु पूर्वविद्धैव ग्राह्या । कामविद्धो हरः पूज्य इति वचनात् ।

"कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव, कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या, शिवरात्रिः शिवप्रिया" ॥

इति पद्मपुराणोक्तेः । गौडदाक्षिणात्यास्तु—

परदिने प्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात् परैव ग्राह्या इत्याह—

महतामपि पापानां, दृष्टा वै निष्कृतिः पुरा ।
न दृष्टा कुर्वतां पुंसां, कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम् ॥ इति स्कान्दे

दर्शयोगस्य सर्वथा निन्दनाच्चेति । यदपि वदन्ति–पञ्चद्राविडमतानुयायिनः । परेद्युः प्रागुक्तार्द्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः । सम्पूर्णतद्व्याप्तौ च सत्यपि परेद्युः । प्रदोषनिशीथोभययोगात् पूर्वेद्युः । सम्पूर्णव्याप्तेः पूर्वैव ।

तथा व्याप्यार्द्धरात्रं तु वर्तते या चतुर्दशी ।
तस्यामेव व्रतं कार्य्यं, सत्प्रसादार्थिभिर्नरैः ॥
तदूर्ध्वाद्यान्विता भूता, सा कार्य्या व्रतिभिः सदा ॥

इतीशानसंहितोक्तेः । पूर्वेद्युर्निशीथस्य परेद्युः प्रदोषस्यैकैकव्याप्तौ तु पूर्वैव ग्राह्येति । एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे निशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्वैव । तेन दिनद्वये निशीथव्याप्तौ तु प्रदोषव्याप्त्या व्रतसिद्धान्तः । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ निशीथेन व्रतविवेकः । एकैकव्याप्तौ तु निशीथेन व्रतादिरिति । इयं हि रविसोमकुजवारेऽतिप्रसस्ता शिवयोगेऽपि तथा ।

अथ पारणाव्यवस्था ।

यथा स्कान्दे—

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी, शिवरात्रिचतुर्दशी ।
एताः पूर्वयुताः कार्य्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ इति

तथा—

"जन्माष्टमी रोहिणी च, शिवरात्रिस्तथैव च।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या, तिथिभान्ते च पारणम्" ॥

तिथिमध्ये न पारणं तथा हि—स्कान्दे—

"उपोषणं चतुर्दश्यां, चतुर्दश्यां तु पारणम्।
कृतैः सुकृतलक्षैश्च, लभ्यते वाथ वा न वा" ॥

तथा—

"ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु, यानि तीर्थानि सन्ति वै।
संस्नातानि भवन्तीह, भूतायां पारणे कृते ॥
तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु।
तिथ्यन्ते पारणं कुर्य्याद्विना शिवचतुर्दशीम्" ॥ इति

अर्द्धरात्रादर्वाक् चतुर्दशी समाप्तौ तदन्ते। तदूर्ध्वगामिन्यान्तु प्रातस्तिथिमध्य एव पारणमित्याहुः।

दाक्षिणात्यास्तु—

"तिथ्यन्ते तिथिभान्ते च, पारणं यत्र नोदिते।
यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां, प्रातरेव हि पारणम्" ॥

इति सामान्यवाक्यैरेव व्यवस्थासिद्धेरुभयविधवाक्यस्य वैयर्थ्यमेवेति शिष्टा इति प्राहुः।

अत्र पारणव्यवस्थायां गौडास्तु—

परदिने चतुर्दशीलाभे चतुर्दश्यां पारणं तदलाभे अमावास्यायाम्, "ब्रह्माण्डोदरमध्ये त्वि" ति स्कन्दपुराणात्।

"शिवयोगा तथा प्रेता, शिवरात्रिचतुर्दशी।
कुहूविद्धैव कर्तव्या, कुह्वामेव हि पारणम्" ॥ इति

पद्मपुराणाच्चेत्याहुः।

तिथिनिर्णयप्रदीपे—यथा स्कान्दे—

"माघस्य कृष्णपक्षे या तिथिश्चैव चतुर्दशी ।
शिवरात्रिस्तु सा ख्याता, सर्वपापप्रणाशिनी" ॥

इति नित्यत्वमुक्तम् ।

"शिवञ्च पूजयित्वा यो, जागर्ति च चतुर्दशीम् ।
मातुः पयोधररसं, न पिवेत्स कदाचन" ॥
मम भक्तस्तु यो देवि, शिवरात्रिमुपोषितः ।
गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम् ॥
सर्वान् भुक्त्वा महाभोगान्, मृते भूयो न जायते ।

इति काम्यत्वं चोक्तम् । अत्र चोपवासव्यवस्था दाक्षिणात्यसम्मता बोध्या। पारणापि तथैव । इति ।

अत्र पूजायां विशेषमाह—भट्टोजिभिस्तथा प्रदर्श्यते—

प्रथमप्रहरे—

"ॐ ह्रौं शिवाय नम इति दुग्धेन स्नपनम् ।
शिवरात्रिव्रतं देव, पूजाजपपरायणः ।
करोमि विधिवद्वृत्तं, गृहाणार्घ्यं महेश्वर" ॥

इत्यर्घदानम् । द्वितीयप्रहरे––

ॐ ह्रौं अघोराय नमः, इति दध्ना स्नपनम् ।
नमः शिवाय शान्ताय, सर्वपापहराय च ।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं, प्रसीद उमया सह,' ॥ इत्यर्घ्यदानम् ।

अथ तृतीयप्रहरे—

"ॐ ह्रौं वामदेवाय नमः" इति घृतेन स्नपनम् ।
"दुःखदारिद्र्यशोकेन, दग्धोऽहं पार्वतोपते ।
शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं, उमाकान्त गृहाण मे" ॥

इत्यर्घ्यदानम । चतुर्थप्रहरे—

"ॐ सद्योजाताय नमः" इति शर्करया स्नपनम् ।

"मया कृतान्यनेकानि, पापानि हर शङ्कर ।

शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं, सदाशिव गृहाण मे" ॥

इति पूजाप्रकारः दिनयोगे विशेषमाह—स्कन्दपुराणे—

"माघकृष्णचतुर्दश्यां, रविवारो यदा भवेत् ।

भौमो वापि भवेद्देवि, कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥

शिवयोगस्य योगो वै, तद्भवेदुत्तमोत्तमम्" ॥ इति

अथ कथाग्रन्थलिखितफलेन संकल्पवाक्यम्—व्रतपद्धतौ—
यथा—

फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां प्रातःकाले कृतस्नानादिराचान्तः पूर्ववत्ताम्रपात्रमादाय—ॐ भगवान् सूर्य भगवत्यो देवता अद्यादिचतुर्दशवर्षाणि यावत् प्रतिफाल्गुनकृष्ण-चतुर्दशीतिथौ शिवरात्रिव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य संकल्पं कुर्य्यात् । स यथा—

'अन्तकालिकशिवानुचरत्व—शिवलोकसहितत्व—देवसाहित्य—सुरालयभ्रमण—भूपाल-सार्वदिकशिवभक्तिरूपबुद्धिविवेकानाहताजत्व-लक्ष्मी-गोधन-पुत्रायुर्विद्या-यशोधनप्राप्तिपूर्वकशिवसायुज्यकामो अद्यादिचतुर्दशवर्षाणि यावत् शिवरात्रिव्रतमहं करिष्ये—

पूजादिप्रकारः, पूजादिग्रन्थ एव विशेषतो द्रष्टव्यः इति शिवरात्रिव्रतनिर्णयः—

अथ भाद्रशुक्लचतुर्दशी तत्कृत्यञ्च ।

तत्र च शुक्लपक्षीयत्वात् 'चतुर्दश्या च पूर्णिमा' इति युग्मशास्त्रेणेयमपि चतुर्दशी परविद्धा ग्राह्या । यथा व्यासोऽपि—

"शुक्ला चतुर्दशी ग्राह्या, परविद्धा सदा व्रते" ॥ इति

भविष्यपुराणे—

"सदा कार्य्या त्रयोदश्या न तु युक्ता चतुर्दशी ।

पौर्णमासी युता सा स्याच्चतुर्दश्या च पूर्णिमा" ॥

इति । नारदीयेऽपि —

"तृतीयैकादशी षष्ठी, शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
पूर्वविद्धा न कर्तव्या, कर्तव्या परसंयुता" ॥ इति

किञ्च प्रचेताः —

दशम्येकादशीविद्धा, त्रयोदश्याश्चतुर्दशी ।
भूतविद्धाप्यमावास्या, न ग्राह्या मुनिपुङ्गव" ॥ इति

प्रकृतविचारे माधवाचार्य्या यदाहुः — तद्वक्ष्यते ।

यत्तु भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतं भविष्योत्तरेऽभिहितम् तत्र पूर्वविद्धा परविद्धा वा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति केचिदाहुः । लिङ्गन्तत्र प्रमाणत्वेनोदाहरन्ति —

"मध्याह्ने भोज्यवेलायामि"त्यनेन मध्याह्नस्य कर्मकालत्वं प्रतीयते ।

"मध्याह्ने भोज्यवेलायां, समुत्तीर्य्य सरित्तटे ।
ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥
चतुर्दश्यामर्चयन्तम् भक्त्या देवं पृथक् पृथक्" ॥ इति

अतस्तद्व्यापिनी ग्राह्येति । नैतत्सारम् । यथा विनायकव्रते "मध्याह्ने पुजयेन्नृप" इति मध्याह्नः कर्मकालो विहितः नात्र तथा विधिरस्ति । उदाहृतन्तल्लिङ्गमर्थवादगतत्वान्न तन्त्रेण कस्यचिदर्थस्य प्रमापकम् । नचात्र प्रमाणान्तरं पश्यामः । अतो न मध्याह्नः कर्मकालः । तथा सति "दैवे ह्यौदयिकी ग्राह्ये"ति वचनेन, युग्मशास्त्रादिभिश्चोदयव्यापिनी ग्राह्या । सा च तिथ्यन्तरवत्त्रिमुहूर्त्तेति मुख्यः कल्पः । द्विमुहूर्तेत्यनुकल्पः एवं सति शिष्टाचारोऽप्यनुगृहीतो भवतीत्याहुः । अत्रेदं बोध्यम् । प्रोक्तयोर्मुख्यकल्पानुकल्पयोरपि न नियमः । ग्रन्थान्तरे मुहूर्तघटिका तदर्द्धव्यापिन्याः उदयकालिन्याः तिथेरपि क्रमेणादृतत्वादित्यग्रे वक्ष्यामः । अत एव

"मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या, ह्यनन्तस्य व्रते तिथिः ।
तत्रैव भोज्यवेला स्यात् कथाश्रवणपूर्विका" ॥

इति दिवोदासवचनमपि न प्रमापकम् ॥ न च त्रयोदशीयुक्ताया एव मध्याह्नव्यापिन्यास्तिथेरस्य विषयत्वमिति वाच्यम्—

"मासि भाद्रपदे प्रोक्तं, व्रतं विष्णोः प्रशस्यते ।
चतुर्दश्यां प्रकुर्वीत, शुक्लपक्षस्य वै तिथौ ॥
मुहूर्तमपि लभ्येत, पूर्णिमायां चतुर्दशी ।
सम्पूर्णां तां विदुः प्राज्ञाः, पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥
भूतायां शुक्लपक्षे तु, अनन्तं पूजयेद्धरिम् ।
पौर्णमासीयुता कार्या,. . . .सँय्युता ॥
मुहूर्तमपि या भूता, तस्यां संपूजयेद्धरिम् ।
अनन्तः पूर्णिमायुक्तः, कर्तव्यः फलकांक्षिभिः ॥
जयायोगेन यः कुर्य्याद्रिक्तायां हरिपूजनम् ।
वर्षपूजाफलं तस्य, वाष्कलेयाय गच्छति ॥
अतस्तु पूर्णिमायुक्ता, कर्तव्या फलकांक्षिभिः" ॥ इति

धर्म्माधर्म्मप्रबोधिनीग्रन्थलिखितचमत्कारचिन्तामणिवचनविरोधात् । नच तर्हि दिवोदासवचनमफलजनकमिति वाच्यम्, यत्र कुत्रचिद्वर्षे यद्दिने दैववशात्सूर्य्योदये किञ्चित् त्रयोदशी तद्दिन एव चतुर्दशीक्षयः तादृशस्थले अनन्यगत्या व्रताचरणे चारितार्थ्यात् । अन्यथा व्रतलोपापत्तेरिति । न च त्रयोदशीयुक्तचतुर्द्दश्यां व्रताचरणे प्रथमव्रतारम्भोऽपि तत्र स्यादिति न शङ्कनीयम् । संकल्पकालस्तु देवलेनाभिहितो यथा—

"अभुक्त्वा प्रातराहारम्, स्नात्वाऽचम्य समाहितः ।
सूर्य्याय देवताभ्यश्च, निवेद्य व्रतमाचरेत्" ॥ इति

तस्मात्तत्कालव्यापिन्यास्तिथेः पुरस्कार आवश्यकः । यथा याज्ञवल्क्य आह—

"कर्मणो यस्य यः कालः, तत्कालव्यापिनी तिथिः ।
तया कर्माणि कुर्वीत, ह्रासवृद्धी न कारणम्" ॥ इति

गार्ग्योऽपि—

"यो यस्य विहितः कालः, तत्कालव्यापिनी तिथिः।

तया कर्माणि कुर्वीत, ह्रासवृद्धी न कारणमिति ॥

स्कन्दपुराणेऽपि—

"यस्मिन् काले तु यत्कर्म, तत्कालव्यापिनी तिथिः"।

इत्यादीति किंबहुना।

न च संकल्पेन विनापि व्रतारम्भोऽस्त्विति वाच्यम्, "संकल्पेन विना राजन्" इत्यादिब्रह्मपुराणेन निषेधात्। ननु भवतु तावदेवं सूर्य्योदयकालीना चतुर्दशी व्रतारम्भादिनियामिका, परन्तु कियत्परिमिताऽवश्यकीति, निरवधिरेवेति चेन्न—

"अनन्तस्य व्रते राजन्, घटिकैका चतुर्दशी।

उदये घटिकार्द्धं वा सैव ग्राह्या महाफला ॥

चतुर्दश्युदये किञ्चित्, पूर्णिमा सकला यदि।

तत्र कुर्य्यादनन्तस्य, महाविष्णोः प्रपूजनम्" ॥

इति तिथिचन्द्रिकाधृतवचनेन, स्ववशेन चैकघटिकाव्याप्ततिथेः कर्म्मानुष्ठानप्रयोजकत्वावगमात्। ततो न्यूनव्याप्ततिथेः पूजनादिकर्मानर्हत्वमेवावगन्तव्यम्। न च प्रोक्तवचने यत्किञ्चित्त्वस्य दुर्वचत्वेन, घटिकार्द्धं व्याप्ततिथेर्महाफलत्वकथनेन च कथमेकघटिकाव्याप्ततिथेः प्रयोजकत्वम् तन्न्यूनव्याप्ततिथेरप्रयोजकत्वञ्चेति वाच्यम्, घटिकाव्याप्ततिथेः प्रयोजकत्वस्य भूयो दर्शनात्। यथा पद्मपुराणे—

"व्रतोपवासनियमे, घटिकैका यदा भवेत्।

उदये सात्र विहिता विपरीता तु पैतृके" ॥ इति

विष्णुधर्म्मोत्तरेऽपि—

"व्रतोपवासस्नानादौ, घटिकैका यदा भवेत्।

उदये सा तिथिर्ग्राह्या, श्राद्धादावस्तगामिनी" ॥ इति

किम्बहुना—घटिकोनव्याप्ततिथेः महाफलत्वाधिकफलत्वन्तु प्रशंसापरमेव ज्ञेयम्।

किञ्च तिथितत्त्वे दुर्गोत्सवप्रकरणे "पूजयेद्वरदां देवीम्" इति सर्वत्र घटिकाव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या ।

"व्रतोपवासस्नानादौ, घटिकैका यदा भवेत्
तामेव तिथिमाश्रित्य, कुर्य्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥

इति व्यासोत्तरार्द्धे नियमश्रुतेः । एवञ्च घटिकोनदशम्यामपराजितापूजानर्हत्वात् । यथा—

"घटिकैका त्वमावास्या, प्रतिपत्सु न चेत्तदा ।
सर्वन्तदासुरं दानं, दैवे कर्म्मणि चोदितम् ॥
मुहूर्तमप्यमावास्या, प्रतिपत्सु यदा भवेत् ।
तद्दानमुत्तमं दैवम्, शेषं पूर्वं हि पूर्ववत्" ॥ इति

राजमार्तण्डधृतजाबालिवचनमप्यनुकूलम्, अर्द्धघटिकामुहूर्तयोरेकार्थत्वात् । शेषं = तिथ्यन्तरः । पूर्वं = पूर्वोक्तं घटिकान्यूनम् । पूर्ववत् = आसुरम् । घटिकाधिकमुत्तममित्युक्तम् । तथा चायमत्र सिद्धान्तः—अनन्तपूजने क्षयतिथिं विना त्रयोदशीविद्धा न ग्राह्या । साऽपि सूर्य्योदयव्यापिनी दिनद्वये यदा तदा पूर्वदिने यदाह—निबन्धे—

"भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतमुत्तमम् ।
सोदयव्यापिनी ग्राह्या, पूर्वा तु स्याद्दिनद्वये" ॥ इति

युग्मव्यवस्था—घटिकामितापि चतुर्दशी पूर्णिमायुतैव ग्राह्या । ततोऽधिकाऽत्युत्तमा । तत्रापि वारुणनक्षत्रयुक्ता चाक्षयफला । सूर्य्योदयकालेनैवानन्तपूजने शस्तेति । सूर्य्योदयव्यापिनीं घटिकाव्यापिनीमपि चतुर्दशीं प्राप्य तत्र पूजारम्भं यथासम्भवं कुर्वन् पूर्णिमायामपि कथाश्रवणं ब्राह्मणभोजनादिकं भविष्यति । यतो नात्र नियमोऽयं चतुर्दश्यामेव पूजनादिसकलकर्मानुष्ठेयमिति । यतः, "स्वकाले तु समारब्धमकालेऽपि समापयेत्" इति स्मृतिः । अत एव घटिकैकमपि शुद्धसमयमवाप्य तत्र संकल्पं कृत्वाऽप्यशुद्धेऽग्रे साङ्गोद्वाहादिसकलकर्माचरणमुरीकुर्वन्ति शिष्टाः । एतदर्थं

प्रमाणं तु ग्रन्थान्तरमपि यथानुरूपं दर्शयामः । वर्षक्रियाकौमुद्यां यथा— आग्नेये—

"आराधिते महेन्द्रे च, ध्वजाकारासु यष्टिषु ।
ततः शुक्लचतुर्दश्यामनन्तं पूजयेद्धरिम् ॥
कृत्वा दर्भमयं देवं, वारिधानीसमन्वितम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्देवमनन्तं काममाप्नुयात् ॥
वारुणेन समायुक्ता स्यादनन्तचतुर्दशी ।
तदाऽक्षयफलँ प्रोक्तमनन्तार्चनसम्भवम्" ॥ इति

वारुणं = शतभिषकः । अक्षयं = कल्पान्तस्थायी इति पाश्चात्याः । इदञ्च गुणफलम् । ततो दिनद्वये पूर्वाह्णे व्रतयोग्यकाललाभे यत्र नक्षत्रलाभस्तत्रैव दिने व्रतम् । उदयदिने पूर्वाह्णे नक्षत्रलाभेऽलाभे वा युग्मादरेण व्यवस्था भविष्योत्तरे—

"अनन्तव्रतमस्त्यन्यत् सर्वपापहरं शुभम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां, स्त्रीणां चैव विशेषतः ॥
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां, मासि भाद्रपदे तथा ।
तस्यानुष्ठानमात्रेण, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

तत्र प्राचामनुसारतो भविष्यपुराणोक्तानन्तपूजाविधिः । तच्चाग्रे प्रदर्श्यते । तिथिचिन्तामणौ—निर्णयामृते—"घटिकामात्रमप्यौदयिकी चतुर्दशी ग्राह्ये"ति ।

"तथा भाद्रपदस्यान्ते, चतुर्दश्यां द्विजोत्तम ।
पौर्णमास्याः समायोगे व्रतञ्चानन्तकं चरेत्" ॥ इति

भविष्ये ।

"मुहूर्तमपि चेद् भाद्रे, पूर्णिमायां चतुर्दशी ॥
सम्पूर्णां तां विदुस्तस्यां, पूजयेद्विष्णुमव्ययम्" ॥

इति स्कन्दोक्तेः। "दिनद्वयेऽप्यौदयिकत्वे पूर्णत्वात्पूर्वविद्धा ग्राह्या" इति स्मार्ताः। अत्र हेतुः स्वरूपासिद्ध इव प्रतिभातः। परन्तु घटिकाव्याप्ताया अपि सूर्य्योदयकालीनायाश्चतुर्दश्याः पूर्णिमासमायोगो विवक्षितः। द्वितीयवचने मुहूर्तपदं घटिकापरं तथोक्तमधस्तादित्याशयस्ततो न स्वरूपासिद्धिरिति।

कृत्यमहार्णवे तु—"आराधिते महेन्द्रे तु" इत्यादि। इदञ्च पूजाव्रतं पूजयेदिति श्रुतेरित्युक्तम्। तथा च देवतापूजनं पूर्वाह्ण एव शस्तः—"पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम्" इति वाक्यात्। सूर्य्योदयव्याप्तचतुर्दशीयुक्त एव पूर्वाह्णः ग्राह्य इति भावः। इति अनन्तव्रतकर्तव्यत्वनिर्णयः।

अथ पूजाप्रकारः

नदीतीरे गृहे वा गोमयोपलिप्ते घटे वा दर्भमयं देवं स्थापयेत्। ततः कृतनित्यक्रियः प्रक्षालितपाणिपादः, आचान्तः प्राङ्मुखश्चोपविश्य स्वस्तिवाचनपूर्वकं कुशादीन्यादाय सूर्य्योदयकाले ताम्रपात्रमादाय, ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता आद्यादिचतुर्दशवर्षाणि यावत् प्रतिभाद्रशुक्लचतुर्दशी अनन्तव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, "ॐ परमानन्तप्रीतिपूर्वकगोधनधान्यरत्नादिमत्त्वकल्पान्तस्थायिपुनर्वसुनक्षत्रभवनकामनया अद्यादिचतुर्दशवर्षाणि यावत् प्रतिभाद्रशुक्लचतुर्दश्यनन्तव्रतमहङ्करिष्ये" इति संकल्पं कुर्य्यादिति व्रतपद्धतिसंकल्पः।

वर्षक्रियाकौमुद्यान्तु "ॐ अमुकगोत्रः श्रीअमुकशर्म्मा सर्वपापमोचन-दारिद्र्यनाशन-सर्वकामभोगोत्तर-विष्णुलोकावाप्तिकामः चतुर्दशवर्षं समाप्य, श्रीमदनन्तव्रतमहङ्करिष्ये"। इति संकल्पो ज्ञेयः।

एवमन्यतरसंकल्पं कृत्वा, तान्त्रिकविधानमते समान्यार्घं स्थापयित्वा द्वारदेवतादिकं सम्पूज्य, विघ्नानुत्सार्य्य, आसनशुद्धिं विधाय, भूतशुद्धिप्राणायाममातृकान्यासान् कृत्वा श्रीविनायकं ध्यायेत्। यथा—

"खर्वं स्थूलतरं गजेन्द्रवदनं, लम्बोदरं सुन्दरम्।
प्रस्यन्दं मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्॥

दन्ताघातविदारिताहितजनं, सिन्दूरशोभाकरम् ।
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं सर्वदा" ॥

इति ध्यात्वा, वारिपूर्णघटे श्रीगणेशमावाहयेत् । ॐ भगवन् गणेश इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य, स्थापयित्वा, पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, स्तुत्वा, प्रणमेत् । ततः कराङ्गन्यासौ कुर्य्यात् । तद्यथा—ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ मध्यमाभ्यां वौषट् । अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ॥ ॐ हृदयाय नमः । ईं शिरसे स्वाहा । ॐ शिखायै वषट् । ऍं कवचाय हूँ । ॐ नेत्रायाय वौषट् । अः अस्त्राय फट् । ततः तालत्रयं दत्त्वा, दिग्वन्धनञ्च कृत्वाऽनन्तं ध्यायेत् ।

"फणासप्तान्वितं देवं, चतुर्वाहुं किरीटिनम् ।
नवाम्रपल्लवाकारं, पिङ्गलश्मश्रुलोचनम् ॥
पीताम्वरधरं देवं, खङ्गचक्रगदाधरम् ।
कराग्रे दक्षिणे पद्मं, शंखं तस्याप्यधः करे ॥
चक्रमूर्द्ध्वकरे वामे, गदां तस्याप्यधः करे ।
दधानं सर्वलोकेशं, सर्वाभरणभूषितम् ॥
क्षीराब्धिमध्ये श्रीमन्तमनन्तं चिन्तयेत्ततः" ।

इति ध्यात्वा मनसा पाद्यादिभिः सम्पूजयेत् । ततो डोरके प्रथमग्रन्थिमारभ्यैवम् मन्त्रान् पठेत् १—ॐ अनन्ताय नमः । २-ॐ पुरुषोत्तमाय नमः । ३—ॐ हृषीकेशाय नमः । ४—ॐ पद्माय नमः । ५—ॐ वैकुण्ठाय नमः । ६—ॐ केशवाय नमः । ७—ॐ नारायणाय नमः । ८—ॐ माधवाय नमः । ९—ॐ गोविन्दाय नमः । १०—ॐ कृष्णाय नमः । ११—ॐ मधुसूदनाय नमः । १२ ॐ त्रिविक्रमाय नमः । १३—ॐ वामनाय नमः । १४—ॐ श्रीधराय नमः । इति प्रत्येकं स्पृष्ट्वा, विशेषार्घं स्थापयित्वा, तज्जलेन पूजोपकरणमात्मानञ्च सिक्त्वा, कुम्भे-पीठे-शालग्रामे आधारशक्त्ये नमः इत्यादिना पीठपूजां कृत्वा केशवेषु विमलादिपीठशक्तीः प्रपूज्य करकच्छपेन अनन्तं ध्यात्वा, यथोक्ताधारे ।

ॐ भगवन्ननन्तदेवेश तेजोराशे जगत्पते ।
क्रियमाणां महापूजां गृहाण सुरसत्तम ।

इत्यावाह्य, पूजाधारे डोरकं धृत्वा ।

ॐ अनन्तसंसारमहासमुद्रे, मग्नान्समम्युद्धर वासुदेव ।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व, अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥

इत्यनेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, ॐ अनन्ताय नमः इत्यनेन षोडशोपचारैः पूजयेत् ।

यथा—

"ॐ अनन्ताय नमस्तुभ्यं, सहस्रशिरसे नमः ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय, नागाधिपतये नमः" ॥ इत्यासनम् ।
"ॐ पाद्यं गृहाण देवेश शंखचक्र-गदाधर ।
सृष्टिस्थित्यन्तभूताय अनन्ताय नमोऽस्तु ते" ॥ इत्यर्घम् ।
ॐ दामोदराय सर्वेषामाराध्याय तनूभृताम् ।
वाञ्छितार्थप्रदायेदं, गृहाणाचमनं नमः" ॥ इत्याचमनीयम् ।
"ॐ सहस्रवाहवे चैव, सहस्रचरणाय च ।
सहस्रशिरसे चैव, सहस्राक्षाय ते नमः" ॥ इति स्नानीयम् ।
"ॐ नारायण नमस्तेऽस्तु, नरकार्णवतारण ।
त्रैलोक्यव्यापकानन्त, त्राहि मां मधुसूदन" ॥ इति वस्त्रम् ।
"दामोदर नमस्तेऽस्तु, त्राहि मां भवसागरात् ।
ब्रह्मसूत्रं सहोत्तर्य्या, गृहाण पुरुषोत्तम" ॥ इति यज्ञोपवीतम् ।

पूर्ववदाचमनीयम् । अनन्तसंसारमहासमुद्र इत्यनेनालङ्करणम् ।

"श्रीगन्धं कुसुमं दिव्यम्, चन्दनादिमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ, प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्" ॥ इति गन्धमनुलेपनञ्च ।

ॐ अनन्ताय नम इत्यनेन तिलान् यवांश्च दद्यात् ।

ॐ मल्लिकाम्भोज-कह्लारकुन्दपुन्नागपाटलैः ।

केतकी-यूथिकापुष्पैः, तुलसीदलमिश्रितैः ।

करवीरैर्जातिपुष्पैः, चम्पकैर्वकुलैः शुभैः ॥

शतपत्रैश्च देवेश, प्रीतो भव जनार्दन ॥

इदं पुष्पमाल्यम् । एतानि नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीदलानि च ॐ अनन्ताय नमः इति दद्यात् ।

"ॐ वनस्पतिरसो दिव्यो, गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।

आघ्रेयः सर्वदेवानां, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्" ॥ इति धूपम् ।

"ॐ आज्यावर्तिसमायुक्तम्, वह्निना योजितं शुभम् ।

गृहाण दीपकं विष्णोस्त्रैलोक्यध्वान्तनाशनम्" ॥ इति दीपम् ।

"ॐ पूगीफलं नागपत्रं, भक्त्या विरचितं विभो ।

कर्पूरादिसमायुक्तम्, ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्" । इति ताम्बूलम् ।

"ॐ अनन्त सर्वदेवेश, सर्वकामफलप्रद ।

अनन्त डोररूपेण, पुत्रपौत्रं विवर्द्धय" ॥

इति गन्धादिना डोरकं प्रपूजयेत् ।

"ॐ अनन्तगुणरत्नाय, विश्वरूपधराय च ।

सूत्रग्रन्थिषु संस्थाय, कामरूप नमोऽस्तु ते" ॥ इति

डोरकाभिमर्षणं कृत्वा,

"ॐ अनन्तसंसारमहासमुद्रे, मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ।

अनन्तरूपे विनियोजयस्व, अनन्तरूपाय नमो नमस्ते" ॥

इति मन्त्रेण डोरकं नमस्कृत्य, दूर्वाक्षतं दत्वा,

"दारिद्र्यनाशनार्थाय, पुत्रपौत्रविवर्द्धये ।

अनन्ताय नमस्तुभ्यं, धारयाम्यहमच्युत" ॥

इति मन्त्रेण डोरकबन्धनं कुर्य्यात् । तत्र पुरुषो दक्षिणे करे, स्त्री तु वामकरे ।

"मन्त्रेणानेन बध्नीयात्, डोरकं दक्षिणे करे ।
पुमान्नारी तु बध्नीयात्, डोरकं वामके करे" ।

इति वचनात् । ततः पूर्वं डोरकमोक्षणं कुर्य्यादनेन —

नमोऽस्तु देवदेवाय, विश्वरूपधराय च ।
सृष्टिस्थित्यन्तदेहाय, विश्वरूप नमोऽस्तु ते" ॥ इति प्रणमेत् ।

ततः—

"मन्त्रहीनं क्रियाहीनं, भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव, परिपूर्णं तदस्तु मे" ॥

इति सम्प्रार्थ्य, पूजां समाप्य—

"अनन्तसंसारेति मन्त्रेण साष्टाङ्गप्रणामं कुर्य्यात् ॥

इति पूजाविधिः ।

अथ कथा—

अरण्ये वर्तमानास्ते पाण्डवाः दुःखकर्षिताः ।
कृष्णं दृष्ट्वा यथान्यायं, प्रतिपूज्येदमब्रवीत् ॥

पाण्डवाः ऊचुः—

वयं दुःखाय सञ्जाताः पृथिव्यां पुरुषोत्तम ।
कथं मुक्तिर्वदास्मकमनन्तदुःखसागरात् ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

अनन्तव्रतमस्त्यन्यत्, सर्वपापहरं शुभम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां, स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ॥
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां, मासि भाद्रपदे शुभे ।
तस्यानुष्ठानमात्रेण, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

युधिष्ठिर उवाच—

कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो, ह्यनन्त इति विश्रुतः ।
किं शेषो नागराजो वा, अनन्तस्तक्षकोऽपि वा ॥
वासुकिर्वाथ पद्मो वा, महापद्मश्च विश्रुतः ।
परमात्माऽथ वानन्त उताहो ब्रह्म उच्यते ॥
एषोऽनन्तसंज्ञो वै, तथ्यं मे ब्रूहि केशव ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

अनन्त इत्यहं पार्थ, मम रूपं निबोधय ।
आदित्यादिप्रभावेण, यः काल उपपद्यते ॥
कलाकाष्ठ निमेषादिदिनरात्रिशरीरवान् ॥
पक्षमासतु वर्षादियुगकल्पव्यवस्थया ॥
योऽयं कालो मया ख्यातः, सोऽनन्त इति विश्रुतः ।
सोऽहं कालोऽवतीर्णोऽस्मि, भुवो भारावतारणात् ॥
दानवानां विनाशाय, वसुदेवकुलोद्भवम् ।
अनन्तं विद्धि मां पार्थ, कृष्णं विष्णुं शिवं परम् ॥
ब्रह्माणं भास्करँ शेषं, सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
विश्वरूपं महात्मानं, सृष्टिसंहारकारकम् ॥
विश्वरूपोऽह्यनन्तोऽस्मि, यस्मिन्निन्द्राश्चतुर्दश ।
वसवोऽष्टौ द्वादशादित्याः, रुद्रा एकादशस्मृताः ॥
सप्तर्षयः समुद्राश्च, पर्वताः सरितो द्रुमाः ।
नक्षत्राणि दिशो भूमिः पातालं भूतलादिकम् ॥
मा कुरुष्वात्र सन्देहमहं पार्थ न संशयः ।
अन्यथा मन्यते यस्तु, स पापः स च किल्विषः ॥

युधिष्ठिर उवाच—

"अनन्तव्रतमाहात्म्यं, वद वेदविदां वर ।
किं पुण्यं किं फलं तस्य, किं दानं किञ्च पूजनम् ॥

केन चादौ पुरा चीर्णं, मर्त्यलोके प्रकाशितम् ।
एतत्समस्तं विस्तार्य्य, कथ्यतां तद्व्रतं हरे ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

-'आसीत्पुरा कृतयुगे, सुमन्तुर्नाम वै द्विजः ।
वशिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः शीलवान् संयतेन्द्रियः ॥
पत्नी तस्याभवद्दीक्षा नाम्ना साऽतिपतिव्रता ।
सर्वलक्षणसम्पन्नामुपयेमे भृगोः सुताम् ॥
तस्यां कालेन संयाता दुहिता सर्वलक्षणा ॥
शीलानाम सुशीला सा, वर्द्धते पितृवेश्मनि ।
माता तस्याश्च कालेन, ज्वरदाहेन पीडिता ॥
प्रविश्य च नदीतीरे, मृता स्वर्गपुरं ययौ ।
कृत्वोर्द्ध्वदेहिकं तस्याः, धर्मोपार्जनकारणात् ।
सुमन्तुस्तु ततोऽन्यां वै, भारद्वाजसुतां पुनः ॥
उपयेमे विधानेन, कर्कशां नाम नामतः ।
कर्कशा चातिदुःशीला, नित्यं कलहकारिणी ॥
अत्यन्तमभवच्चण्डी, सदा परुषभाषिणी ।
साऽपि शीला पितुर्गेहे, गृहार्चनरताऽभवत् ॥
कुड्यस्तम्भगृहद्वारदेहलीतोरणानि च ।
चतुर्विधैस्ततश्चूर्णैः, नीलपीतसितासितैः ॥
स्वस्तिकैः पद्मकैश्चैव, साऽर्चयन्ती मुहुर्मुहुः ।
परिचर्य्यापरा शीला, पित्रे मधुरभाषिणी ॥
दृष्टा सुमन्तुना शीला, कदाचित्प्राप्तयौवना ।
तां दृष्ट्वा चिन्तयामास, वरान् विगणयन् भुवि ॥
कस्मै कन्या मया देया, विवाहसमयोचिता ।
एतस्मिन् समये पार्थ, कौण्डिन्यो मुनिरागतः ।

ऋषिवर्गैः परिवृतः, सुमन्तुं प्रत्यभाषत ॥
कन्यार्थमागतायेह, कौण्डिन्याय मुनिः स्वयम् ।
शीलां ददौ सुमन्तुश्च, कौण्डिन्याय शुभे दिने ॥
गृह्योक्तविधिना देव, विवाहमकरोच्च सः ।
निवर्त्त्योद्वाहिकं कर्म, प्रोक्तवान् विनयान्वितः ॥
किञ्चिद्भद्रे धनं देहि, जामात्रे पारितोषिकम् ।
तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा, वचनं पतिभाषितम् ।
अलङ्कारं समाकृष्य, स्वकीयञ्चापि यद्धनम् ॥
पेट्टालकं दृढं बध्वा, प्रयाता पितृमन्दिरम् ।
कपाटं सुस्थिरं कृत्वा, पारुष्यमवदद् भृशम् ॥
होमावशिष्टचूर्णेन, पाथेयमकरोद्द्विजः ।
कौण्डिन्योऽपि विवाह्येनामगमत्प्रातरेव च ॥
शीलां सुशीलामादाय, गोयानेन रथोपरि ।
मध्याह्ने भोज्यवेलायां, समुत्तीर्य्य सरित्तटे ॥
तस्यास्तु सरितस्तीरे, गोमयेनोपलेपिते ।
ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥
चतुर्दश्यामर्चयन्त्यो, भक्त्या देवं पृथक् पृथक् ।
उपगम्य शनैः शीला, पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम् ॥
नार्य्यः किमेतन्मे ब्रूहि, कस्यैतद्व्रतमीदृशम् ।
ता ऊचुः योषितः सर्वाः, अनन्त इति विश्रुतः ॥
तस्यैव देवदेवस्य, सर्वकामप्रदं व्रतम् ।
साऽब्रवीदहमप्येतत् करिष्ये व्रतमुत्तमम् ॥
विधानं कीदृशञ्चास्य किं दानं किञ्च पूजनम् ।

नार्य ऊचुः—

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां, मासि भाद्रपदे व्रतम् ॥

कर्तव्यं सरितस्तीरे, तडागे वा सुशोभने ।
स्नात्वाऽनन्तं नमस्कृत्य, नववस्त्रधरः शुचिः ॥
शुचौ देशे समालिप्य, गोमयेन विचक्षणः ।
मण्डलं कारयेत्तत्र, सर्वतो भद्रसंज्ञकम् ॥
कृत्वा दर्भमयं देवं, वारिधानीसमन्वितम् ।
पुष्पधूपादिभिर्देवमनन्तं पूजयेद्धरिम् ॥
ध्यात्वा नारायणं देवमनन्तं विश्वरूपिणम् ।
अनन्तसंसारमहासमुद्रे, मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ॥
अनन्तरूपे विनियोजयस्व, अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ।
मन्त्रेणानेनार्चयित्वा, फलानि च चतुर्दश ।
पूपप्रस्थद्वयञ्चैव, घृतपक्कं निवेदयेत् ॥
अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि भोजयेत् ।
चतुर्दशग्रन्थिसंयुक्तम्, पूजयित्वा, सुडोरकम् ॥
पुष्पगन्धैः सनैवेद्यैः, पीतवस्त्रैश्चतुःसमैः ।
तस्याग्रे तु दृढं सूत्रं, कुङ्कुमारक्तडोरकम् ॥
'अनन्तसंसारे'ति मन्त्रेण नारी वामकरे पुनः ।
दक्षिणे च पुमान् कुर्य्यात्, ध्यात्वाऽनन्तं सनातनम् ॥
दक्षिणां विधिवद्दत्वा, विप्रान् सन्तोषयेद् भृशम् ।
योऽनन्तस्य व्रतं कुर्य्यात्, वर्षाणि नव पञ्च च ॥
सर्वान् कामानवाप्यान्ते, विष्णुलोकं स गच्छति ।
साऽपि तासां यथा श्रुत्वा, शीला वद्ध्वा सुडोरकम् ॥
व्रतं चक्रे तथा ताभिर्दत्तैः गन्धादिभिस्ततः ।
पाथेयशेषं विप्राय, दत्त्वा भुक्त्वा तथैव च ॥
आजगामाऽथ तं दृष्ट्वा, गोयानेन समाश्रयम् ।
तेनानन्तप्रभावेण, बहुशो धनसंकुलम् ॥

गृहं तस्याः श्रिया युक्तम्, धनधान्यसमाकुलम् ।
शीला माणिक्यकाञ्चीभिर्युक्ता हारैर्विभूषिता ।
दिव्यवस्त्रासमाच्छन्ना, सावित्रीप्रतिमाऽभवत् ॥
कदाचिदुपविष्टोऽसौ, कौण्डिन्यो बह्निसन्निधौ ।
शीलायाः वामहस्ते तु, दृष्ट्वा बद्धं सुडोरकम् ॥
किमिदं डोरकं हस्ते, मम वश्याय कल्पितम् ।
तामपृच्छत्ततः सा तु, भर्तारं पुनरब्रवीत् ॥
जगत्पतेरनन्तस्य, व्रताङ्गं सूत्रडोरकम् ।
यस्य प्रसादात् धर्मज्ञ, धनधान्यं गृहे तव ॥
इति शीलावचः श्रुत्वा, मुनिः क्रोधपरायणः ।
कोऽनन्त इति जल्प्यैव, त्रुटितं डोरसूत्रकम् ॥
क्षिप्तं ज्वालाकुले बह्नौ, हा हा कृत्वा प्रधावती ।
शीला गृहीत्वा तच्छीघ्रं, क्षीरमध्ये समाक्षिपत् ॥
तेन कर्मविपाकेन, तस्य सा श्रीः क्षयङ्गता ।
गोधनं तस्करैर्नीतं, गृहं चाग्निप्रदीपितम् ॥
यतो यदागतं गेहे, तत्तत्रैव गतं पुनः ।
स्वजने कलहो नित्यं, तर्जनं वर्जनं तथा ॥
अनन्ताक्षेपदोषेण, दारिद्र्यं पूरितं गृहे ।
ततः सञ्चिन्त्य मनसा, कौण्डिन्यो मुनिसत्तमः ॥
अनन्ताक्षेपदोषेण, मम दुर्गतिरीदृशी ॥
व्रतं नियमनञ्चैव, ब्रह्मचर्य्यं चरन् द्विजः ।
विह्वलः प्रययौ पार्थ, सोऽरण्यं जनवर्जितम् ॥
तत्रापश्यन्महावृक्षं, पुष्पितं फलितं तथा ।
वर्जितं पक्षिसंघेन, कीटकैश्च विशेषतः ॥
तमपृच्छद्द्विजोऽनन्तः, कच्चिद्दृष्टस्त्वया द्रुम ।

तदाकर्ण्य द्रुमः प्राह, नानन्तं वेद्म्यहं द्विज ॥
एवं निराकृतस्तेन, गां ददर्श सवत्सकाम् ।
तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव ॥
सोऽब्रवीद्धेनुके ब्रूहि, किमनन्तस्त्वयेक्षितः ।
गौरप्युवाच कौण्डिन्यं नाऽनन्तो वीक्षितो मया ॥
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे, गोवृषं शाद्वले स्थितम् ।
दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्, अनन्तो वीक्षितस्त्वया ॥
गोवृषस्तु तदा प्राह, नानन्तो वीक्षितो मया ।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे, रम्यं पुष्करणीद्वयम् ॥
छन्नं कुमुदकह्लारैः, कमलोत्पलमण्डितम् ।
एकन्तु भ्रमरैर्हंसैश्चक्रवाकैश्च सेवितम् ॥
अन्यं पक्षिगणैर्हीनम्, पद्मसौगन्धिवर्जितम् ।
पुष्करिण्यौ तु पप्रच्छ, किमनन्तः समीक्षितः ॥
आवाभ्यां वीक्षितो विप्र, नानन्तस्ते समूचतुः ।
ततो व्रजन् ददर्शाग्रे, गर्दभं कुञ्जरं तथा ।
तावप्युक्तौ मुनीन्द्रेण, ताभ्यामपि निवेदितम् ।
तावथोक्तौ द्विजेनोक्ताहेचतुर्नैव विद्महे ॥
एवं सम्यक् क द्रक्ष्यामि, तत्रैव भुवि तादृशः ।
कौण्डिन्यो विह्वलो भूत्वा, निराशो जीविते नृप ।
दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य, पपात भुवि भारत ॥
तस्मिन् क्षणे तु निर्विण्णे, कौण्डिन्ये मुनिसत्तमे ।
कृपया सत्यदेवोऽपि, प्रत्यक्षं समजायत ॥
वृद्धब्राह्मणरूपेण, इत एहीत्युवाच तम् ।
प्रवेशयित्वा स्वपुरं, गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥
स्वपुरं दर्शयामास दिव्यनारीगणैर्वृतम् ।

सिंहासने सुखासीनं, शङ्खचक्राब्जशोभितम् ॥
गदया गरुडेनाऽपि, सेवितं विश्वरूपिणम् ।
तं दृष्ट्वा स द्विजो भूमौ, दण्डवन्निपपात ह ॥
अद्य मे सफलं जन्म, जीवितञ्च सुजीवितम् ।
यतोऽङ्घ्रियुगाब्जाग्रे, मन्मूर्द्धा भ्रमरायते ।
तच्छ्रुत्वाऽनन्तदेवोऽपि, ददौ तस्मै वरत्रयम् ॥
दारिद्र्यनाशनं, धर्म्मं, विष्णुलोकमथाक्षयम् ।
प्रतिगृह्य द्विजोऽप्याह, भगवन् किं मयेक्षितम् ॥
कश्चूतः को वृषः का गौः, किञ्च पुष्करणीद्वयम् ।
कः खरः कुञ्जरो वापि, तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥

अनन्त उवाच—

स चूतवृक्षो विप्रोऽसौ, विद्वान् वै वेदगर्वितः ।
शिष्येभ्यो नाददद्विद्यां, तेनासौ तरुतां गतः ॥
सा गौर्वसुन्धरा विप्र, निष्फला प्रतिपादिता ।
वृषभो यस्त्वया दृष्टः, स लोभी वृषभोऽभवत् ॥
धर्माधर्मव्यवस्था सा, यच्च पुष्करणीद्वयम् ।
खरः क्रोधी त्वया दृष्टः, कुञ्जरो धर्म्मविक्रयी ॥
ब्राह्मणोऽसावनन्तोऽहं, गुहासंसारगह्वरे ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः सोऽपि विप्रो गृहं ययौ ॥
चकरानन्तव्रतकं, नववर्षाणि पञ्च च ।
शीलया सह धर्म्मात्मा, भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।
अन्ते जगाम स मुनिः, विष्णोर्लोकमथाक्षयम् ॥
एवं मया ते कथितं, व्रतानां व्रतमुत्तमम् ।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र, कथां शृण्वन् व्रतं करु ।
सर्वदुःखानि निस्तीर्य्य, मामन्ते समवाप्स्यसि ॥

इति भविष्यपुराणोक्तानन्तव्रतकथा समाप्ता।

ततो दक्षिणदिः ॥

अथ वटन्त्याख्या चतुर्दशी।

तिथिनिर्णये यमः—

"माघे मास्यसिते पक्षे, वटन्त्याख्या चतुर्दशी।
सतारव्योमकाले तु, तस्यां स्नानं महाफलम्।
स्नात्वा सन्तर्प्य यमान्, सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥ इति

अत्र ब्रह्मपुराणीयतिथिकृत्यत्वाद् गौणःचान्द्रादरः।

भविष्ये—

"वृश्चिके शुक्लपक्षे तु, या पाषाणचतुर्दशी।
तस्यामाराधयेद् गौरीं, नक्तपाषाणभोजनैः ॥

पाषाणाकारपिष्टकभोजनैरित्यर्थः।

भविष्ये—

"कार्तिके भौमवारे तु, चित्रा कृष्णा चतुर्दशी।
तस्यामाराधितः स्थाणुः, नयेच्छिवपुरं ध्रुवम् ॥
यां काञ्चित्सरितं प्राप्य, कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ॥
यमुनायां विशेषेण, नियमात्तर्पयेद्यमान् ॥
यमाय धर्म्मराजाय, मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय, सर्वभूतक्षयाय च ॥
औदुम्बराय दध्नाय, नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय, चित्रगुप्ताय वै नमः ॥
एकैकस्य तिलैर्मिश्रान् त्रिस्त्रत् दद्याज्जलाञ्जलीन्।
सर्व्वत्सरकृतं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति।

अत्र चाचाराच्चतुर्दशशाकभक्षणं विधेयम् ॥

तत्र निर्णयामृतधृतवचनम्—

"तलङ्केमुकरस्तेकं सर्षपं, कालञ्च निम्बं जयीं ।
शालिञ्चि हिलमोचिकाञ्च पटुकं, शौल्कं गुडीचीं तथा ॥
भण्टाकीं मुनिषण्डकं शिवदिने, खादन्ति ये मानवाः ।
प्रेतत्वं न च यान्ति कार्तिकदिने, कृष्णे च भूते तिथौ ॥

जयी = जयन्ती । पटुकं = पटोलं ।

पराशरः—

"मेषे वा वृषभे वापि सावित्रीं तां विनिर्दिशेत्" ।

तां = चतुर्दशीम् ।

"ज्यैष्ठशुक्लचतुर्दश्यां, सावित्रीमर्चयन्ति याः ।
वटमूले सोपवासाः, न ताः वैधव्यमाप्नुयुः ॥

राजमार्तण्ड—कृत्यचिन्तामण्योः—

"ज्यैष्ठे मासि चतुर्दश्यां; सावित्रीव्रतमुत्तमम् ।
अवैधव्याय कुर्वन्ति, स्त्रियः श्रद्धासमन्विताः" ॥

नारदः—

"दिवाभागे त्रयोदश्यां, यदा चतुर्दशी भवेत् ।
तत्र पूज्या समा साध्वी, देवी सत्यवता सह" ॥

दिवाभागे = दण्डद्वयमात्रेऽपि । अत एव प्रदोषे व्रतमाचरन्ति ।

यथा ज्योतिषे—

"चतुर्दश्याममावास्या यदा भवति नारद ।
उपोष्या पूजनीया सा चतुर्दश्यां विधानतः" ॥

सा = सावित्री । ततश्चामावास्यायां सावित्रीव्रतविधानम् ।

शिवाघोरेतिवचनञ्चैतत्परम्

पराशरः—

"सावित्रीमर्चयित्वा तु, फलाहारः परेऽहनि ।

ततश्चाविधवा नारी, ...वित्तभोगान् ॥

भविष्योत्तरे—

"भाद्रे मास्यसिते पक्षे, अघोराख्या चतुर्दशी ।

तामुपोष्य नरो याति, शिवलोकमयत्नतः" ॥ इति

इति चतुर्दशी तत्कृत्यनिर्णयः समाप्तः ।

अथ पूर्णिमा

अथ पूर्णिमा तदीयं कृत्यं स्मार्तानुमोदितं वक्ष्ये ।

कविवरवदनचरणयुगकरुणाकल्पद्रुमं नत्वा ,

पूर्णिमा । सा च सावित्रीव्रतातिरिक्तव्रतादिषु परान्वितैव ग्राह्या । 'चतुर्दश्या च पूर्णिमेति युग्मादरो ज्ञेयः' ।

"एकादश्यष्टमी षष्ठी, पौर्णमासी चतुर्दशी ।

अमावास्या तृतीया च, उपोष्याः स्युः परान्विताः ॥

ब्रह्मवैवर्ते—

"भूतविद्धा न कर्तव्या, दर्शा पूर्णा कदाचन ।

वर्जयित्वा सुरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्" ॥ इति

एतेन सावित्रीव्रते पूर्णा चतुर्दशीयुतैव कार्य्या ।

यथा—

"पञ्चमी प्रतिपद्भूतसावित्री वटपैतृकी ।

नवमी-दशमी चैव, नोपोष्याः परसँय्युताः" ॥ इति

यत्तु ब्रह्मपुराणवचनम्—

"षष्ठ्येकादश्यमावास्या, पूर्वविद्धा तथाष्टमी ।

पूर्णिमा परविद्धा तु, नोपोष्यं तिथिपञ्चकम्" ॥

इत्यपि सावित्रीव्रतविषयकमिति । तिथिनिर्णये यमः—

भक्षान्ते स्रोतसि स्नायात्, तेन नायाति यत्पदम् । इति

गुरुभोग्यमास-सञ्ज्ञर्क्षयुक्तां पौर्णमासीं महतीमाह राजमार्तण्डे—

"मासस‍ंज्ञे यदा ऋक्षे, चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ।
गुरुणायाति संयोगं, सा तिथिर्महती स्मृता" ॥ इति

माससंज्ञकम् ऋक्षं कार्तिकादौ कृत्तिकादौ कृत्तिकादिकम् । अत एव विष्णुना—

"तस्यां स्नानोपवासादि चाक्षयं परिकीर्तितम्" ।

इत्युक्तम् । स्कन्दमत्स्ययोः—

"पौर्णमासीषु चैतासु, मासर्क्षसहितासु च ।
एतासां स्नानदानाभ्यां, फलं शतगुणं स्मृतम्" । इति

वैशाखीमधिकृत्य यमः—

"गौरान् वा यदि वा कृष्णान्, तिलान् कुसुमसँय्युतान् ।
प्रीयतां धर्मराजेति, पितृदेवांश्च तर्पयेत् ।
यावज्जीवकृतं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति ॥
अब्दायुतं च तिष्ठेयुः, स्वर्गलोके न संशयः ॥ इति

ब्रह्मपुराणम्—

"महाज्यैष्ठ्यां तु यः पश्येत्, पुरुषः पुरुषोत्तमम् ॥
विष्णुलोकमवाप्नोति, मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात्" ।

महाज्यैष्ठीमाह—

"ऐन्द्रीगुरुश्शनिश्चैव, प्राजापत्ये शशी तथा ।
ज्यैष्ठीकुहूः पूर्णिमा च, महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता" ॥ इति

अथ कोजागरास्तुत्यम्

"निशीथे वरदा देवी, कोजागर्तीति वादिनी ।
तस्मै वित्तं प्रयच्छामि, अक्षक्रीडां करोति यः ॥
नारिकेलैश्चिपिटकैः, पितॄन् देवान् समर्चयेत् ।
बन्धूँश्च प्रीणयेत्तेन, स्वयं तदशनो भवेत्" ॥

अत्र निशीथ इत्यभिधानाद्रात्रिकृत्यमिदम् । ततश्च

"प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या, तिथिर्नक्तव्रते सदा ।
प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं, घटिकाद्वयमिष्यते" ॥

इति यमवचनात् । यद्दिने प्रदोषनिशीथोयोभयव्यापिनी पूर्णिमा तद्दिने कोजागराकृत्यम् । उभयव्याप्त्यनुरोधात् । तदा तु पूर्वदिने नीशिथव्याप्तिः परदिने प्रदोषव्याप्तिः तदा ःतरां पूर्वेद्युस्तत्कृत्यम् । पूर्णिमाकृत्यमधिकर्, मासविचारे वक्ष्यामः ।

अमावास्या तत्कृत्यञ्च, किञ्चिदत्र प्रदर्श्यते ।
अधिकम् मासकृत्ये तु, गजाननप्रसादतः ॥

अमावास्यातिथिर्नाधिकमन्तरेणोपवासादिषु प्रतिपद्युता ग्राह्या । "प्रतिपदा त्वमावास्ये"ति-युग्मवाक्यात् । "अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः" इति वचनाच्च ।

निगमेऽपि—

"एकादश्यष्टमी षष्ठी, द्वितीया च चतुर्दशी ।
त्रयोदशी अमावास्या, उपोष्याः स्युः परान्विताः" ॥

चतुर्दशीविद्धायाः निषेधश्च निगमे—

"भूतविद्धा त्वमावास्या, न ग्राह्या मुनिपुङ्गवैः" ॥ इति

ज्यैष्ठामावास्या तु पूर्वविद्धैव ग्राह्या ।

"कृष्णाष्टमी चतुर्थी च, सावित्री वटपैतृकी ।
शुक्ला त्रयोदशी रम्भा, नोपोष्याः परसँय्युताः ।

इति स्कन्दपुराणात् । किञ्चात्र हारीतः—

"कन्यामकरमीनेषु, तुलायां मिथुने तथा ।
भूतविद्धैव सर्वेषां, पूज्या भवती यत्नतः" ॥ इति

जावालिरपि—

तुलायां मकरे मीने, कन्यायां मिथुनेऽपि सा ।
भूतविद्धा व्रते ग्राह्या, शेषेषु प्रतिपद्युता ॥

किञ्च—

"शिवा च शिवदुर्गा च, दुर्भरा च हुताशनी ।

वटच्छाया च गोपूजा, कर्तव्या प्रथमे दिने" ॥ इति

पूर्वविद्धैव कर्तव्या, परविद्धा न कुत्रचिदि"त्यपि ॥

पुराणसमुच्चये—

"गौरी चतुर्थी वट-धेनु-पूजा, दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिका च ।

वत्सस्य पूजा शिवरात्रिरेताः, परा विनिघ्नन्ति नृपस्य राज्यम्" ॥ इति

तथा च—वटसावित्रीव्रतं चतर्दशीविद्धायामवास्यायामेव विधेयम । अत एव

"चतुर्दश्याममावास्या, यदा भवति नारद ।

तदैव सा पूजनीये"त्यपि सङ्गच्छते ॥

ये तु प्रतिपद्विद्धायामप्युदयगामिन्यां वटसावित्रीव्रतमुपदिशन्ति ते ग्रन्थावलोकनसालसमानसा एवेति किं बहुना ।

अथ श्राद्धे त्वमावास्या द्विधा = शुद्धा-विद्धा च । तत्र शुद्धायामविवाद एव । शुद्धायाः लक्षणन्तु

आदित्योदयवेलायामारभ्याषष्टिकाः ।

सा तिथिः सा हि शुद्धा स्यात् सर्वतिथ्योऽह्ययं विधिः ।

इत्युक्तमेव । विद्धा पुनस्त्रिविधा = प्रतिपद्विद्धा, भूतविद्धा, उभयविद्धा चेति । तत्रोभयविद्धा चतुर्द्धा = पूर्वदिन एवापराह्णव्यापिनी-अपरदिन एवायराह्णव्यापिनी-उभयत्रापराह्णव्यापिनी नोभयत्रापराह्णव्यापिनी । तत्र पितृकर्मसु पराह्णप्राशस्त्यात् भूतविद्धा प्रतिपद्विद्धा वा अपराह्णव्यापिन्येव ग्राह्या । "पूर्वाह्णो वै देवानां, मध्यं दिनं मनुष्याणाम्, अपराह्णः पितॄणाम्" इति श्रुतेः । अत्र हारीतोऽपि—

"अपराह्णः पितॄणान्तु, या परानुयायिनो ।

सा ग्राह्या पितृकृत्येषु, न पूर्वानुयायिनी" ॥ इति

दिनद्वये मध्याह्नव्यापिन्यान्तु जावालिः—

"पूर्वाह्णे अमावास्या, नापराह्णे भवेद्यदि ।

भूमविद्धैव सा ग्राह्या, पित्र्ये कर्मणि सर्वदा" ॥ इति

उभयत्रापराह्णव्यापिन्यान्तु—दिनक्षये आहिताग्निभिः पूर्वव्यापिनी ग्राह्या अनाहिताग्न्यादिभिरपरा कुहूर्ग्राह्या । तिथिवृद्धौ साम्येऽपि सर्वैरपि कुहूर्ग्राह्या । तदुक्तं जावालिना—

"अपराह्णद्वयव्याप्यां, यदि दर्शः तिथिक्षये ।
आहिताग्नेः सिनीवाली, निरग्न्यादेः कुहूयुता" ॥

किञ्च--

"सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या, साग्निकैः पितृकर्मणि ।
स्त्रीशूद्रैश्च कुहूर्ग्राह्या, तथा चानग्निकैर्द्विजैः" ॥ इति

सिनीवाली तु--

"सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली, सा नष्टेन्दुकला कुहूः" ।

इत्यमरः ।

"दृष्टचन्द्रा सिनीवाली, नष्टचन्द्रा कुहूर्मता" ।

इति कोषान्तरम् । चतुर्दशीयुता सिनीवाली,नोभयत्रापराह्णव्यापिनी चेत्तदा कुतपकालीना परैव ग्राह्या ।

"भूतविद्धाप्यमावास्या, प्रतिपन्मिश्रिताऽपि वा ।
पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिः, ग्राह्या कुतपकालिनी" ॥

इति हारीतवचनात् । कुतपे उपक्रान्तस्य श्राद्धस्य प्रतिपद्भागेऽपि समाप्तौ न दोषः ।

"पूर्वाह्णे चेदमावास्या, नापराह्णे भवेद्यदि ।
प्रतिपद्यपि कर्तव्यं, श्राद्धं श्राद्धविदो विदुः" ॥

इति वचनात् । एवं पौर्णमास्यां श्राद्धविधायकानाममावास्यावदेव निर्णयः । तदुक्तम्—

"अमावास्या यदा पुण्या, पितृपिण्डस्य कर्मणि ।
पौर्णमासी यदा पुण्या, विशेषोऽस्ति न किञ्चन ॥ इति

अथ गौडनिबन्धे—अमावास्या । सा च चान्द्रे प्रतिपद्युता ग्राह्या, युग्मवाक्यात् ।

पैठीनसिः—

"पुष्ये च जन्मनक्षत्रे, व्यतीपाते च वैधृतौ ।
अमायां च नदीस्नानं, पुनात्यासप्तमं कुलम्" ॥ इति

व्यासः—

"अमावास्या भवेद्रात्रौ, यदि भूमिसुतस्य च ।
गोसहस्रफलं दद्यात् , स्नानमात्रेण जाह्नवी ॥
सिनीवाली कुहूर्वापि, यदि सोमदिने भवेत् ।
गोसहस्रफलं दद्यात्स्नानं यन्मौनिना कृतम्" ॥ इति

मौनं तु अरुणोदयावधिस्नानपर्य्यन्तम् । सिनीवाली चतुर्दशीयुक्ता अमावास्या । साऽपि प्रशस्ता । एवमन्यत्राऽपि वारविशिष्टविधौ नास्या आदरः । निरवकाशत्वे संशयायोगात् । यथा—

"सोमवारे अमावास्या, आदित्या हेतुसप्तमी ।
चतुर्थ्यङ्गारवारे तु, अष्टमी च बृहस्पतौ ॥
अत्र यत् क्रियते पापमथ वा धर्मसञ्चयः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥
शनैश्चरस्य वारेण, वारेणाङ्गारकस्य च ।
कृष्णाष्टमी-चतुर्दश्यौ पुण्यात् पुण्यतरे स्मृते"

स्मृतिः—

"करतोये जलं प्राप्य, यदि सोमयुता कुहूः ।
अरुणोदयवेलायां, सूर्य्यग्रहशतैः समा ॥

स्नानमन्त्रस्तु ।

करतोये सदा नीरे, सरिच्छ्रेष्ठे सुविश्रुते ।
पौण्ड्राप्लावयते नित्यं, पापं हर करोद्भवे" ॥ इति

अधिकममावास्याकृत्यम् मासविचारे अवसेयम् ।

इत्यमावास्या तत्कृत्यनिर्णयः समाप्तः ।

इति श्रीरत्नपाणिसंगृहीते कृत्यसागरे तिथितत्कृत्यनिरूपणं नाम प्रथमं प्रकरणम् ।

श्रीलम्बोदरः पातु ।

अथ मासकृत्यम् ।

अथ नाथनाथं करुणापयोधिं, स्वान्ते निशान्ते भृशमेकदन्तम् ।
नीत्वा महः सारमपारसेतुं, हेतुं हि मासस्य वदामि कृत्यम् ॥
मासक्रमेण यदखिलं दिनकृत्यमत्र, तच्चाग्रतो हि परितोऽपीतोऽवधेयम् ।
नानास्मृतिप्रखरबुद्धिकृतप्रयासान्, ग्रन्थानवेक्ष्य बुधतोषकरं परं यत् ॥

अथ चैत्रो मासः—ततकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः । सा च सूर्य्योदयकालीना ग्राह्या । दिनद्वये प्राप्तिसत्त्वे पूर्वैव ।

"प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ" ॥ इति वचनात् ।
"वत्सरादौ वसन्तादौ, वलिराज्ये तथैव च ।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या, प्रतिपत्सर्वदा बुधैः" ॥

इत्यादिवृद्धवशिष्ठोक्तेश्च । चैत्रशुक्ला पतिपत् परयुतैव ग्राह्या ।

"तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्ताः, तिथयः कुरुनन्दन ।
कार्तिकाश्वयुजोर्मासोः, चैत्रे मासि च भारत" ॥

इति ब्रह्मपुराणोक्तेः, चैत्रशुक्लप्रतिपदादावपि देवीपूजा । तत्रापि प्रतिपत् परयुतैव ग्राह्या ।

"अमायुक्ता न कर्तव्या, प्रतिपच्चण्डिकार्चने ।
मुहूर्तमात्रं कर्तव्या, द्वितीयादिगुणान्विता" ॥

इति देवीपुराणात् । अश्विनप्रतिपदि शुक्लायामप्येवं बोध्यम् ।

"चैत्रशुक्लतृतीयायां, गौरीमीश्वरसँय्युताम् ।
सम्पूज्य दोलोत्सवं, कुर्य्यादीप्सितवाञ्छया" ॥

देवीपुराणेऽपि—

तृतीयायां यजेद्देवीं, शङ्करेण समन्विताम् ।
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥

इत्यादि । इयं हि चतुर्थीयुता ग्राह्या ।

"मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि, दिने गौरीव्रतं परे" ॥

इति माधवोक्तेः । अस्यामेव सौभाग्यशयनव्रतमुक्तम् । मात्स्ये यथा--

"वसन्तमासमासाद्य, तृतीयायां जनप्रिये ।
सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः, कार्य्यं पुत्रसुखेप्सितम्" ॥ इति

अत्र स्त्रीव्रतेऽपि परयुता ग्राह्या । इयं तृतीया मन्वादिरपि ।

गरुडपुराणे—

"पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्या, शुक्ला मनुयुगादयः ॥
दैवे कर्मणि पित्र्ये च, कृष्णे चैवापराह्णिका ॥ इति

अत्र श्राद्धमपि कर्तव्यम् ।

"कृतं श्राद्धं विधानेन, मन्वादिषु युगादिषु ।
हायनानि द्विसहस्रं, पितॄणां तृप्तिदं भवेत्" ॥

इति मत्स्यपुराणात् । मन्वादिश्राद्धं मलमासेऽपि कर्तव्यम् । तथा हि—

"मन्वादिकं तैर्थिकञ्च, कुर्य्यान्मासद्वयेऽपि च" ॥

इति स्मृतेः—चैत्रशुक्लतृतीयैव मत्स्यजयन्ती ज्ञेया सा च परयुता ग्राह्येत्युक्तम् । चैत्रशुक्लचतुर्थ्यां गौरीव्रतं । सा च तृतीयायुता ग्राह्या ।

"गणेशगौरीबहुलाः तृतीयायोजिताः शुभाः" ॥ इति स्मृतेः ।

अन्या तु चतुर्थी बाधकमन्तरेण पञ्चमीयुतैव ग्राह्येति बोध्यम् । अत्र प्रसङ्गतो दशावताराः कथ्यन्ते—

"चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां, भगवान् मीनरूपधृक् ।
ज्यैष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां, कूर्मरूपधरो हरिः ॥
चैत्रे कृष्णनवम्यां तु, हरिर्वाराहरूपधृक् ।
नरसिंहश्चतुर्दश्यां, वैशाखशुक्लपक्षके ॥
मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः ।

राधे शुक्लतृतीयायां, रामो भार्गवरूपधृक् ॥
चैत्रयुक्तनवम्यां तु, रामो दशरथात्मजः ।
नभस्ये तु द्वितीयायां, बलभद्रोऽभवद्धरिः ॥
श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां, कृष्णोऽभूल्लोकरक्षकः ।
ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां, बौद्धः कल्की भविष्यति" ॥ इति

चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः ।

ब्रह्मणो या दिनस्यादिः, कल्पादिः सा प्रकीर्तिता ।
वैशाखस्य तृतीयायां, कृष्णायां फाल्गुनस्य च ॥
पञ्चमी चैत्रमासस्य, तथैवान्त्या तथा परा" ॥ इति
शुक्ला त्रयोदशी माघे, कार्तिकस्य तु सप्तमी ॥
कल्पानामादयो ह्येताः, दत्तस्याक्षयकारिकाः" ॥

अत्रापि मन्वादिवच्छ्राद्धादिकं ज्ञेयम् । चैत्रशुक्लाष्टमी भवान्याः उत्पत्तितिथिः । सा च नवमीयुता ग्राह्या ।

अष्टमी नवमीयुक्ता, नवमी चाष्टमीयुता" ॥

इति ब्रह्मवैवर्तात् । अत्र भवानीदर्शनमवश्यं कार्यम् ।

भवानीं यस्तु पश्येत्तु, शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः ।
न जातु शोकं लभते, सदानन्दमयो भवेत् ॥

इति काशीखण्डवचनात् । चैत्रशुक्लैकादशी परयुता ग्राह्या ।

चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु, कामदानामनामतः ।
एकादशीपुण्यतमा, पापेन्धनदवाऽनला ॥
एतत्प्रदीयते यस्मै, तस्य मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ इति

तत्र दानमन्त्रस्तु—

मया तु यद्व्रतं चीर्णं, कामदाया उपोषणम् ।
गृह्यतां तद्व्रतं दिव्यं, मुक्तये विष्णुसन्निधौ ॥

अन्यच्च ।

ब्रह्महत्यादिपापेषु पिशाचत्वविनाशिनी ।
नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे" ॥ इति

भविष्योत्तरे—इयञ्चैकादशी कामदा ज्ञेया ।

"चैत्रस्य कृष्णपक्षे या, भवत्येकादशी शुभा ।
पापमोचनिकानाम, सर्वपापक्षयङ्करा ॥

चैत्रशुक्लद्वादश्यां मनारोपः कार्य्यः ॥ परन्तु मिथिलायामव्यवहार्य्यत्वान्न विशेषोऽभिहितः । चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ग्राह्या ।

"मधोः श्रावणमासस्य, शुक्ला या तु चतुर्दशी ।
सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या, नान्या शुक्ला कदाचन" ॥

इति बौधायनोक्तेः ।

"सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या, परा पूर्वाङ्गगामिनी" ॥

इत्यपि वदन्ति ।

"चतुर्दशी च कर्तव्या, त्रयोदश्या युता विभो" ॥

इति स्कान्दस्तदपवादश्च—

"तृतीयैकादशी षष्ठी, शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
पूर्वविद्धा न कर्तव्या, कर्तव्या परसँय्युता" ॥

इति नारदः । तदपवादबाधे पुनरुत्सर्गः प्रवर्तत एवेति रूढिः ॥

"चैत्री चित्रायुता तस्यां, यत्किञ्चिच्चित्रवस्तुनः ।
दानैः सौभाग्यमाप्नोति, परत्र परसंमुखम्" ॥ इति

किञ्च ।

"मन्दे वार्के गुरौ वापि, तेषु वारेषु चैत्रिका ।
तत्राऽश्वमेधजं पुण्यं, स्नानश्राद्धादिभिर्लभेत्" ॥

इति ठक्कुरचरणाः । कृत्यमहार्णवे तु—महाभारते—

"चैत्रन्तु नियमतो मासम्, एकभुक्तेन यः क्षिपेत् ।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये, कुले महति जायते" ॥

किञ्च वामनपुराणे—

"चैत्रे विचित्रवस्त्राणि, शयनान्यासनानि च ।
विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि, देयानि ब्राह्मणेष्वथ" ॥

अत्र ब्राह्मणे बहुत्वं त्रित्वपर्य्यवसितं कपिञ्जलन्यायात् ।

मत्स्यपुराणे—

"वर्जयेच्चैत्रमासन्तु, यस्तु गन्धानुलेपनम् ।
शुक्तिं गन्धयुतां दद्यात्, विप्राय सितवाससी" ॥
"वारुणं पदमाप्नोति, दृढव्रतमिदं स्मृतम्" ॥

व्रतान्ते गन्धपूर्णां शुक्तिं दद्यात् । भविष्यपुराणे—

"मासि चैत्रे तु सम्प्राप्ते, यः कुर्य्यान्नक्तभोजनम् ।
शाल्यन्नं पयसा युक्तं, भुञ्जन् वै सँय्यतेन्द्रियः ॥
मानवे पाटलां दद्यात्, वैष्णवीं वारुणां नृप ।
पद्मरागमयैर्यानैर्नरहंसानुयायिभिः ॥
गच्छेत्सूर्य्यपुरं रम्यं, दुष्प्रायमकृतात्मभिः" ॥

नक्तभोजनम् । एन्मासव्यापितरुण्याः गोर्विष्णुदैवत्वेन दानम् ॥

"चैत्रादिचतुरो मासान्, जलं दद्यादयाचितम् ।
व्रतान्ते मणिकं दद्यान्नववस्त्रसमन्वितम् ॥
तिलपात्रं सुवर्णं च, ब्रह्मलोके महीयते ।
कल्पान्ते भूपतिर्नूनं, सानन्दव्रतमुत्तमम् ॥
वर्जयित्वा मधौ यस्तु, दधिक्षीरघृतेक्षुकान् ।
दद्याद्विप्राय वस्त्राणि, रसपात्रयुतानि च ।

सम्पूज्य विप्रमिथुनं, गौरी मे प्रीयतामिति ॥
एतद् गौरीव्रतं नाम, भवानीलोकदायकम्" । इति

अग्निपुराणे—

"समुपोष्यार्चयेल्लक्ष्मीं, पञ्चम्यां वत्सरे गते ।
चैत्रे तु कमलं दद्यात्, तिलधेनुसमन्वितम् ।
हैमं पुरं स वै याति, कल्पादेति पुनर्महीम् ॥
राजराजो भवेच्छ्रीमान्, भवेज्जन्मनि जन्मनि ।
एतल्लक्ष्मीव्रतं नाम, दुःखशोकविनाशनम्" ॥ इति

ब्रह्मपुराणे—

"शुक्लायामथ पञ्चम्यां, चैत्रे मासि शुभानना ।
श्रीर्द्धर्मलोकान्मानुष्यं, सा प्राप्ता केशवाज्ञया ॥
तस्मात्तां पूजयेत्तत्र, यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति ।
एषा श्रीपञ्चमी कार्य्या, विष्णुलोकगतिप्रदा" ॥ इति

शैवागमे—

"मधुमासे तु सम्प्राप्ते, शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।
ख्याता दमनभञ्जीति, सिद्धासुरमहोत्सवा ॥
तत्र ये मूलमन्त्रेण, समूलदमनोच्चयम् ।
निवेदयन्ति गौरीशे, तेषां चैत्रार्चनाफलम्" ॥

चित्रायोगे- महाचैत्री भवति । तदुक्तं ब्रह्मपुराणे—

"माससंज्ञं यदा ऋक्षं, पौर्णमास्यां भवेत्कचित् ।
महतो सा तिथिः प्रोक्ता; स्नानदानेषु चाक्षया" ॥ इति

अथ वैशाखकृत्यम् ।

तत्र पद्मपुराणे—

"एकभक्तमथो नक्तमयाचितमतन्द्रितः ।

माधवे मासि यः कुर्य्यात, लभते सर्वमीप्सितम् ॥

किञ्च ।

"वैशाखे विधिना स्नानं दैवनद्यादिके बहिः ।
हविष्यं ब्रह्मचर्य्यं च, भूशय्या नियमस्थितिः ॥
व्रतं दानं दमो देवी, मधुसूदनपूजनम् ।
अपि जन्मसहस्रोत्थं, पापं हरति दारुणम्" ॥ इति

स्कान्दे—

"प्रपा कार्य्या च वैशाखे, देवे देया गलन्तिका ।
उपानद्व्यजनं छत्रं, सूक्ष्मवासांसि चन्दनम ॥
जलपात्राणि देयानि, तथा पुष्पगृहाणि च ।
पात्राणि च विचित्राणि, द्राक्षारम्भाफलानि च" ॥

किञ्च ।

"ददाति यो हि मेषादौ, सक्तूनम्बुघटान्वितान् ।
पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
वैशाखे यो घटं पूर्णं, सभोज्यं वै द्विजन्मने ।
ददाति सुरराजेन्द्र, स याति परमां गतिम्" ॥

कृत्यमहार्णवे यथा—

"वैशाखं यः क्षिपेन्मासमेकभुक्तेन मानवः ।
स याति श्रेष्ठतां लोके, पूजितो धनवानपि ॥

इति स्कान्दीयम् । मत्स्यपुराणे—

"वैशाखे पुष्पलवणं, वर्जयित्वा तु यो प्रदः ।
स्थित्वा विष्णुपदे कल्पं, ततो राजा भवेदिह" ॥

विष्णुपदम् = विष्णुपुरम् । भविष्यपुराणे —

"वैशाखे मासि राजेन्द्र, यः कुर्य्यादेकभोजनम् ।

दध्योदनञ्च भुञ्जानो, जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥
गोष्ठे सायमधःशायी, निशायामेकवस्त्रधृक् ।
नियमञ्च यथोद्दिष्टं, सामान्यं सर्वमाचरेत् ॥
वैशाख्यां पौर्णमास्याञ्च, कुर्य्यान्म्लानं घृतादिभिः ।
सूर्य्यायालङ्कृतां श्वेतां, दद्याद् गां तरुणां नृप ॥
शंखकुन्देन्दुवर्णाभैः महायानैस्त्वलङ्कृतैः ।
श्वेतैर्गरुडसंयुक्तैः, गच्छत्यर्कस्य मन्दिरम् ॥
सर्वातिशयरूपाभिः, नारीभिः परिवारितः ।
नीलोत्पलसुगन्धाभिः, मोदते कालमक्षयम् ॥

अत्रोपवासदिवसं सप्तमीञ्च त्यक्त्वा, मासं व्याप्य नक्तभोजनम् । मासान्ते वैशाख्युत्तरकुहूदिने श्वेतायाः तरुणायाः गोः दानं मानवे । महाभारते—

"निस्तरेदेकभुक्तेन, वैशाखं यो जितेन्द्रियः ।
आयुष्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च, महापातकनाशनम्" ॥ इति

निस्तरेत् = अतिवाहयेत् । ब्रह्मचर्य्यमत्राङ्गम् । महापातकनाशश्च फलम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

"अपूपानां प्रदानेन, वैशाखे सुखमश्नुते" ॥ इति

राजमार्तण्डे—

"तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नायी सदा भवेत् ।
हविष्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च, महापातकनाशनम्" ॥

वराहपुराणे—

"ये यजन्ति वरारोहे, माधवे मासि संशिताः ।
अहं तत्प्रतिगृह्णामि, माधवे यज्ञयाजिनाम् ॥
दत्त्वा निष्कसहस्राणि, यत्फलं लभते नरः ।
मासे च माधवे यष्ट्वा, फलं प्राप्नोति मानवः" ॥ इति

यागोऽत्र = पूजा । सा चात्र विष्णोरेव, तन्मात्रस्यैवोपस्थितत्वात् । ५९३ बहुनिष्कसहस्रदानजन्यसमम् ।

वामने—

"गन्धमाल्यानि च तथा, वैशाखे सुरभीनि च ।
देयानि द्विजमुख्येभ्यो, मधुसूदनतुष्टये" ॥

आग्नेये—

"वैशाखे रुद्रनामानं, पूजयित्वा वृषान्वितम् ।
धेनुं तिलमयां दद्यात्, सर्वोपस्करसँय्युताम्
एतद्रुद्रव्रतं नाम, महापातकनाशनम् ।
कृत्वा रुद्रपुरं याति, तस्मान्नावर्तते पुनः" ॥ इति

उपस्करः = तिलधेनुयुतस्वर्णशृङ्गादि ।

विष्णुपुराणे—

"कृष्णाजिनतिलान् कृष्णान्, हिरण्यं मधुसर्पिषी ।
ददाति यस्तु विप्राय, सर्वं तरति दुष्कृतम्" ॥

जाबालिर्यथाऽह—

"घृतान्नमुदकुम्भञ्च, वैशाख्यां च विशेषतः ।
निर्दिश्य धर्मराजाय, गोदानफलमाप्नुयात्" ॥ इति
"सुवर्णतिलयुक्तैश्च, ब्राह्मणान् सप्त पञ्च च ।
तर्पयेदुदपात्रैश्च, ब्रह्महत्यां व्यपोहति" ॥ इति

ब्रह्मपुराणे—

"वैशाखे मासि शुक्लायां, तृतीयायां जनार्दनः ।
यवानुत्पादयामास, युगञ्चारब्धवान् कृतम्" ॥ इति

कृतम् = कृतयुगम् ।

"ब्रह्मलोकात्त्रिपथगाम्, पृथिव्यामवतारयत ।
तस्यां कार्य्यो यवैर्होमो, यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ॥

यवं दद्यात् द्विजातिभ्यः, स्वयञ्च प्राशयेद्यवान् ।
पूजयेच्छङ्करं गङ्गां, कैलाशञ्च हिमालयम् ॥
भगीरथञ्च नृपतिं, सागराणां सुखावहम् ।
स्नानं दानं जपः श्राद्धं, जपहोमादिकं चरेत् ॥
श्रद्धया यतते तत्र, तदानन्त्याय कल्पते ।
सिन्धोस्तीरे विशेषेण, सर्वमक्षयमश्नुते" ॥ इति

होम इति ।

होमश्चायं विष्णवे, उपक्रमे तथा दर्शनात् ।

यवप्राशनञ्च तद्विकारद्वारेति वृद्धाः ।

विष्णुधर्मे —

"भक्ष्यभोज्यसमायुक्तां, बर्द्धनीं यः प्रयच्छति ।
तृतीयायां स वैशाखे, ब्रह्मलोके महीयते" ॥

बर्द्धनी = घटी । भोज्यं = सक्तुकादि । वैशाखीमधिकृत्य महाभारते—

वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु, तिलान् दद्याद् द्विजातये ।
तिलाः भक्षयितव्याश्च, तथैवालम्भनं तिलैः ॥
कार्य्यं सततमिच्छद्भि, श्रेयः सर्वात्मना गृहे ।

आलम्भनं = समावर्तनम् । वैशाखीमधिकृत्य देवीपुराणे—

"इन्द्राग्नी दैवते ऋक्षे, पौर्णमास्यां तथैव वा ।
पूजां कृत्वा भवेद् ब्रह्मन्, विगताघो न संशयः ॥

इन्द्राग्निदैवतं = विशाखा । पूजा-दुर्गायाः । क्रमात्तेन युक्तायां वैशाख्यां दुर्गापूजया सकलाघनाशः फलमिति ।

यमः——

"वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु, ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा ।
क्षौद्रयुक्तैस्तिलैः कृष्णैः, वार्चयेद्यदि वेतरैः ॥

प्रीयतां धर्मराजेति, यद्वा मनसि रोचते।
यावज्जीवकृतं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति।

इतरैः = श्वेतैः, समधून् = कृष्णान् श्वेतान्वा तिलान्॥ सप्त पञ्च ब्राह्मणान भोजयित्वा, धर्मराजः प्रीयताम्, विष्णुः प्रीयतामिति वार्चयित्वा। यावज्जीवकृतं पापं नाशमाप्नोतीत्यर्थः। भारते--

"प्रपा कार्या प्रयत्नेन, गवार्थं द्विजसत्तमाः"॥ इति

अथ ज्यैष्ठमासः।

तत्र महाभारते--

"ज्येष्ठामूलं तु यो मासमेकभुक्तेन संक्षिपेत्।
ऐश्वर्य्यमतुलं श्रेष्ठं, पुमान् स्त्री वाधिगच्छति॥

संक्षिपेत् = अतिवाहयेत्। तथा -

"निदाघकाले पानीयं, यस्य तिष्ठत्यवारितम्।
स दुर्गविषमं कृष्णं, न कदाचिदवाप्नुयात्॥
छत्रदानात्तथा ज्यैष्ठे, सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
छत्रोपानहोर्दानात्, ज्यैष्ठे मासि द्विजोत्तमाः।
अक्षयं फलमाप्नोति, न चाकालञ्च गच्छति॥
ज्यैष्ठे मासि द्विजश्रेष्ठ, कृष्णाष्टम्यां त्रिलोचनम्।
यः पूजयति देवेशमीशलोकं स गच्छति"॥ इति

ब्रह्मपुराणे -

"ज्यैष्ठे शुक्लचतुर्थ्यान्तु, जाता पूर्वमुमा सती।
तस्मात्सा तत्र सम्पूज्या, स्त्रीभिः सौभाग्यकामया॥

याम्ये---

"ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं, हेमधेनुप्रदो दिवम्।
ज्यैष्ठे अष्टम्याम्; चतुर्दश्यां, शुक्लायां पञ्चतपाः = पञ्चाग्निव्रतधृक्।
चतुर्दश्यां सायं = व्रतान्ते हेम्नो धेनोश्च दानात् दिवं यातीत्यर्थः॥

आग्नेये—

"ज्यैष्ठे पञ्चतपाः सायं, चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
यः करोति सुवर्णस्य, धेनुदानं द्विजातये ॥
स याति शाङ्करं लोकं, रुद्रव्रतमिदं स्मृतम्" ॥

धेनुः = सौवर्णी, शेषं पूर्ववत ।

"ज्यैष्ठे मासे पञ्चदश्यां, सावित्रीव्रतमुत्तमम् ।
अवैधव्याय कुर्वन्ति, स्त्रियः सर्वाः समन्विताः" ॥

वामनपुराणे—

"उदकुम्भाम्बुधेनुञ्च, तालवृन्तं सचन्दनम् ।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं, दातव्यं साधुभिः सदा" ॥ इति

दानमिदं ज्यैष्ठे प्रकरणवशात् । किञ्च शिष्टाः—

"यो वृषवर्तिनि सवितरि, शिरीषवरबीजमश्नाति ।
स नरः खगपतिसदृशो, नागकुलैर्दृश्यते सततम्" ॥

बीजे वरत्वं कोटाविद्धता । तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

"अत्र च ज्यैष्ठकृष्णैकादशी 'अपरा' संज्ञका । सा च परयुता ग्राह्येत्युक्तमेव ।
'बहुपुण्यप्रदा ह्येषा, महापातकनाशिनी' ।

इति फलम् । तथा—

"लोकप्रसिद्धतामेति, अपरां यस्तु सेवते ।
ब्रह्महत्याभिभूतो, गोत्रहा भ्रूणहा तथा ।
परापवादवादी च, परस्त्रीरसिकोऽपि च ॥
कूटसाक्षी सालकूटं, तुलाकूटं करोति यः ।
कूटवेदं पठेद्विप्रः, कूटशास्त्रं तथैव च ।
ज्योतिषी कूटगणकः, कूटपूर्वादिको भिषक् ।
कूटसाक्षी समा ह्येते, विज्ञेया नरकौकसः ॥

अपरासेवनाद्राजन् , पापमुक्ता भवन्ति ते ।
क्षत्रियः क्षात्रधर्मं यस्त्यक्त्वा युद्धात्पलायते ॥
स याति नरके घोरे, स्वामिधर्मवहिष्कृतः ।
विद्यामधीत्य यो विप्रो, गुरुनिन्दां करोति च ॥
स महापापसँय्युक्तो, निरयं याति दारुणम् ।
अपरासेवनात्सोऽपि, सद्गतिं प्राप्नुयान्नरः ॥
पुष्करत्रितये स्नात्वा, कार्तिक्यां यत्फलं लभेत् ।
मकरस्थे रवौ माघे, प्रयागे यत्फलं लभेत् ।
काश्यां यत्प्राप्यते पुण्यं, शिवरात्रेरुपोषणात् ।
गयायां पिण्डदानेन, पितॄणां तृप्तितो भवेत् ॥
अपरासेवनात्सोऽपि, तत्सर्वं लभते फलम्" ।

इत्यपरैकादशीमाहात्म्यम् ।

ज्योतिःशास्त्रे —

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव, प्राजापत्ये रविस्तथा ।
पूर्णिमा ज्यैष्ठमासस्य, महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता" ॥ इति

आदित्यपुराणे—

ज्यैष्ठे मासि तिलान् पौर्णमास्यां विशेषतः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य, फलं प्राप्नोत्यसंशयम्" ॥

विष्णुः—

ज्यैष्ठी ज्येष्ठायुक्ता चेत्, तस्यां छत्रोपानद्दानेन गाणपत्यफलमाप्नोति, ज्यैष्ठो-मन्वादिरपि ॥ श्राद्धमप्यत्र कार्य्यमिति ।

अथाषाढमासाः ।

तत्र स्कन्दपुराणे—

"आषाढं चापि यो मासमेकभुक्तं समाचरेत् ।

राज्ञः सामान्यतां प्राप्य, भोगान्याप्नोति पुष्कलान् ॥
आषाढमेकभुक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः ।
बहुधान्यो बहुधनो, बहुमानश्च जायते ॥
माघे मासि समुद्युक्तं, यो भक्त्या पूजयेद्धरिम् ।
लभेत्षाण्मासिकं पुण्यं, मासेनैव न संशयः ॥
यथा माघे तथाषाढे, मासमेकञ्च कार्तिके" ॥

इति आषाढप्रतिपदि चामीषामारम्भः । वायुपुराणे—

"कृष्णाष्टम्यां तथाषाढे, गाणपत्ये विनायकः ।
कृतः पूज्यश्च तत्रैव, सगणो मोदकोत्करैः ॥
भक्ष्यैर्माल्यैस्तथा गन्धैः, कुल्माषेण च भूरिणा ।
गीतवाद्यैः समधुरैः, तथा ब्राह्मणतर्पणैः ।
कृष्णाष्टमीषु सर्वासु, विघ्नेशं पूजयेच्च तम् ।

उत्करः = समूहः । कुल्माषः = ईषत्स्विन्नमाषः । यवपिष्टक इत्येके इतिसमयप्रदीपः । शिष्टाः—

"आषाढे मासि भूताहे, शिवं सम्पूज्य यत्नतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः, शिवलोके महीयते" ॥

भूताहः = कृष्णचतुर्दशी । ब्रह्मपुराणे —

"एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः ।
भुजङ्गशयने शेते, तदा क्षीरार्णवे सदा ॥
तदा तत्प्रतिमा कर्य्या, सर्वलक्षणसँय्युता ।
सुप्ता च शेषपर्य्यङ्के, शैलमृद्भिः सुदारुभिः ॥
ताम्रारकूटरज़तैः तथा चित्रपटेषु वा ।
लक्ष्म्या उत्सङ्गहस्ते तु, विन्यस्तचरणाम्बुजा ॥
त्रयोदश्यां ततो नृत्यं, गीतं वाद्यं निवेदयेत् ।

बैष्णवैरङ्गजीविभ्यो, धनं दद्याच्च शक्तितः ॥
चतुर्दश्यामुपोष्याथ, पौर्णमास्यां यजेद्धरिम् ।
सुप्ते तु सर्वलोकेशे, नक्तभोजी भवेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः, सर्वलोकेश्वरो भवेत् ।
तैलाभ्यङ्गञ्च चत्वारि, सामान्येतानि वर्जयेत्" ॥

एतावत्कर्मकलापस्य स्वर्गफलम् । आरकूटः = पित्तलम् । लक्ष्म्या इति । लक्ष्म्याः उत्सङ्गे तस्याः हस्तादुपरि हरेश्चरणौ न्यस्तावित्यर्थः । रङ्गजीविनो नर्तकाः । हरिः = प्रतिमारूपं यजेत् । एतावत्कर्मकलापस्य स्वर्गः फलम् । विश्वजिन्न्यायात् । एवञ्चैकादश्यां हरेः शयनमायाति । चातुर्मास्यव्रतं तु भिन्नम् ।

यमः —

क्षीराब्धौ शेषपर्य्यङ्के, आषाढ्यां संविशेद्धरिः ।
निद्रां त्यजति कार्तिक्यां, तयोस्तां पूजयेत्सदा ॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं, क्षिप्रमेव व्यपोहति ।
हिंसात्मकैश्च किं तस्य, यज्ञैरन्यैर्महात्मनः ॥
स्वस्वापे च प्रबोधे च, पूजितो येन केशवः ।

एवञ्चाषाढीपदस्य तत्पूर्णिमाशक्त्या आषाढीपूर्णिमायां हरेः शयनमायाति ।

वामनपुराणे —

"एकादश्यां जगत्स्वामिशयनं परिकल्पयेत् ।
शेषाहिभोगपर्य्यङ्कं, कृत्वा सम्पूज्य केशवम् ॥
कृत्वा पवित्रकञ्चैव, सम्यक् सम्पूज्य च द्विजान् ।
अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च, द्वादश्यां प्रयतः शुचिः ॥
लब्धपीताम्बरधरः, स्वस्ति निद्रां समानयेत् ।
त्रयोदश्यां ततः कामः; प्रसुप्तः शयने शुभे ॥
कदम्बानां सुगन्धानां, कुसुमैः परिकल्पिते ।
चतुर्दश्यां तथा दक्षाः, स्वपन्ति सुखशीतले ॥

सौवर्णपङ्कजकृते, सुखास्तीर्णोपधानके ।
पौर्णमास्यामुमानाथे, सुषुप्ते चर्मसंस्तरे ॥
वैयाघ्रं सजटाभारं, समुद्ग्रन्थ्याऽथ चर्मणा ।
ततो दिवाकरो राशिं, सम्प्रयाति च कर्कटम् ॥
ततोऽमराणां भवति, रजनी दक्षिणायनम् ।
ब्रह्मा प्रतिपदि तथा, नीलोत्पलदले शुभे ॥
तल्पे स्वपिति लोकानां, दर्शयन् मार्गमुत्तमम् ।
विश्वकर्मा द्वितीयायां, तृतीयायां गिरेः सुता ॥
विनायकश्चतुर्थ्यान्तु, पञ्चम्यामथ धर्मराट् ।
षष्ठ्यां स्कन्दः स्वपिति, सप्तम्यां भगवान्रविः ॥
कात्यायनी तथाष्टम्यां, नवम्यां कमलालया ।
दशम्यां भुजगेन्द्रस्तु, स्वपन्ते वायुभोजनाः ॥
एकादश्यां तु, कृष्णायां, साध्याः ब्रह्मन् स्वपन्ति च ।

एवञ्चैकादश्यां शयनपरिकल्पनम् , द्वादश्यां निद्रोदय इति वामनपुराणम् । तिथितत्त्वचिन्तामणौ तु मार्कण्डेयपुराणे यथा—

"आषाढस्य सिते पक्षे, योगिनीनामनामतः ।
एकादशीव्रतश्रेष्ठमहापातकनाशिनी ॥
आषाढे कृष्णपक्षे तु, योगिनोव्रतमाचरेत् ।
अस्य व्रतस्य पुण्येन, क्लिष्टं नश्यति ते वध्रम् ॥
अष्टाशीतिसहस्राणि, द्विजान् भोजयते तु यः ।
तत्फलं समवाप्नोति, योगिनीव्रतकृन्नरः ॥
महापापप्रशमनी, महातुष्टिफलप्रदा ।
शुचौ कृष्णैकादशी ते तु, कथिता योगिनी नृप" ॥ इति

आषाढशुक्लदशमी मन्वादिः । सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । तथा प्रतिपादितं प्राक् । ब्रह्मवैवर्ते—

"एकादश्यां तु गृह्णीयात्, संक्रान्तौ कर्कटस्य तु ।
आषाढ्यां वा नरो भक्त्या, चातुर्मास्यव्रतक्रियाम् ॥
मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्याद्वयं स्पृशेत् ।
द्विराषाढः स विज्ञेयो, विष्णुः स्वपिति कर्कटे ॥
मिथुनस्थे सहस्रांशौ, स्वापयेन्मधुसूदनम् ।
तुलाराशिगते तस्मिन्, पुनरुत्थापयेद्द्रुतम् ॥
अधिमासे च पतिते, एवमेव विधिः स्मृतः ।
नाऽन्यथा स्नापयेद्देवं, तथैवोत्थापयेद्धरिम्" ॥ इति

किञ्च—

"स्वापयेत्प्रतिमां विष्णोः, शंखचक्रगदाधराम् ॥
पीताम्बरधरां सौम्यां, पर्य्यङ्के विहिते शुभे ।
सितवस्त्रसमाच्छन्ने, सोपधाने युधिष्ठिर ।
स्नापयित्वा दधिक्षीरैः, घृतैः क्षौद्रैर्जलेन वा ॥
समालभ्य शुभैर्गन्धैः, धूपैस्सम्यक् सुधूपिताम् ।
पूजितां कुसुमैः शुभ्रैर्मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥
सुप्ते त्वयि जगन्नाथ, जगत्सुप्तं चराचरम् ।
एवं तां प्रतिमां विष्णोः, स्नापयित्वा युधिष्ठिरः ॥ इति

अत्र चातुर्मास्यव्रतारम्भोऽप्याह भारते—

यथा—

"आषाढे तु सिते पक्षे, एकादश्यामुपोषितः ।
चातुर्मास्यव्रतं कुर्य्याद्यत्किञ्चिन्नियतो नरः" ॥

इति व्रते तन्नित्यम् । वार्षिक्यांश्चतुरो मासान् वाहयेत्केनचिन्नरः ॥
व्रतेन नो चेदाप्नोति, किल्विषं वत्सरोद्भवम् ।
असम्भवे तुलार्केऽपि, कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः" ॥ इति

चातुर्मास्यव्रतारम्भः कृत्यमहार्णवे—तत्र ब्रह्मपुराणे—

"एकादश्यां तु गृह्णीयात्, संक्रान्तौ कर्कटस्य वा" ॥

इत्यादिः—

वार्षिकाँश्चतुरो मासान्, यो मासं परिवर्जयेत् ।
चत्वारि भद्राण्याप्नोति, कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥ इति

मत्स्यपुराणे—

"आषाढादिव्रते यस्तु, वर्जयेन्नखकर्तनम् ।
कार्तिक्यां हेमसँय्युक्तं, दद्यात्सर्पिर्मधोर्घटम् ॥
शिवाय रुद्रलोके तु, वसेत्कल्पान्ततो नृप ।
शिवव्रतमिदं नाम, सुखकामप्रदायकम्" इति

आषाढ्यामारम्भः कार्तिक्यामुपसंहारः श्रवणे तथैव चातुर्मास्यसिद्धेः । चातुर्मास्याधिकारे विष्णुधर्मे—

"कटुतैलपरित्यागाद्दरनाशमवाप्नुयात् ।
मधुतैलपरित्यागे, सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥
फलत्यागाचु मतिमान् बहुपुत्रस्तु जायते ।
सदा मुनिः सदा योगी, मधुमांसस्य वर्जनात्" ॥

इति चातुर्मास्यकल्पे, यथा चिन्तामणौ—

"चत्वार्य्येतानि, चतुराश्रमवर्तिनाम् ।
प्रथमे मासि कर्तव्यं, नित्यं शाकव्रतं नरैः ॥
द्वितीये मासि कर्तव्यं, दधिव्रतमनुत्तमम् ।
पयोव्रतं तृतीये तु, चतुर्थेऽपि निशामयम् ॥
द्विदलं बहुबीजञ्च, वृन्ताकञ्च विवर्जयेत् ।
नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र, व्रतान्याहुर्मनीषिणः ॥
जम्बीरं राजमाषाञ्च, मूलकं रक्तमूलकम् ।

कुष्माण्डं चेक्षुदण्डञ्च, चातुर्मास्ये त्यजेद्बुधः" ॥

तथा च—

"विशेषादुदरीं धात्रीं कुष्माण्डं तिन्तिणीं त्यजेत् ।
जीर्णधात्रीफलं ग्राह्यं, कथञ्चित्कायशोधनम्" ॥ इति

स्कान्दे—यदाह—

"वार्षिकान् चतुरो मासान्, प्रसुप्ते वै जनार्दने ।
मञ्चखट्वादिशयनं, वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ॥
अनृतौ वर्जयेद् भार्य्यां, मांसंमधुपरौदनम् ।
पटोलं मूलकञ्चैव, वृन्ताकञ्च न भक्षयेत् ॥
अभ्यङ्गं वर्जयेद्दूरं, मसूरं सितसर्षपम् ।
राजमाषान् कुलत्थांश्च, असद्धान्यञ्च वर्जयेत् ॥

दशविधशाकबोधकवचनं यथा—

"मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकाः ।
त्वक्पुष्पञ्च करम्बीजशाकं दशविधं स्मृतम्" ॥ इति

क्षीरस्वाम्यभिधानात् । देवलश्चाह—

"ब्रह्मचर्य्यं तथा शौचं, सत्यमामिषवर्जनम् ।
व्रतेष्वेतानि चत्वारि, वरिष्ठानीति निश्चयः ॥

पाद्मे—

"पुण्ये ऽङ्गचूर्णचर्माम्बुजं वीरं बीजपूरकम् ।
अयज्ञशिष्टं माषादि, यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥
दग्धमन्नमसूरञ्च, मांसञ्चेत्यष्टधाऽमिषम् ।

तत्रैव—

"गो-छागी-महिषीदुग्धादन्यद्दुग्धादि चामिषम् ॥
धान्ये मसूरिका प्रोक्ता, अन्नं पर्य्युषितं तथा ।

ताम्रपात्रस्थितं गव्यं, जलं पल्वलसंस्थितम् ॥
आत्मार्थं याचितञ्चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ॥

तथा—

निष्पावान् राजमाषांश्च, मसूरं सन्धितानि च ।
वृन्ताकञ्च कलिङ्गञ्च, देवे सुप्ते विवर्जयेत् ॥

सन्धितानि = लवणशाकादीनि ॥ विष्णुधर्म्मे यथा —

"चतुर्ष्वपीह मासेषु, हविष्याशी न पापभाक् ।

हविष्याणि पूर्वमेव व्रतधर्मे कथितानि । मिथुनगते सूर्य्ये तण्डुलवारिणा शिरीषमूलपानं सर्पभयक्तं गारुडोक्तम् । अत्र च तण्डुलाः व्रीहेराद्रियन्ते इति समयप्रदीपः ।

अथाषाढीकृत्यम् ।

तत्र भविष्यपुराणे —

"पौर्णमास्यामाषाढस्य, विधिवत्पूजयेच्छिवम् ।
अश्वमेधफलं प्राप्य, विष्णुलोके महीयते ॥
पौर्णमास्यामाषाढस्य, योऽर्चयेदम्बिकां नरः ।
सोपवासो महाराज, स याति परमां गतिम् ॥

सोपवासः = कृतोपवासः । किञ्च विष्णुः —

"आषाढ्यषाढयुक्ताचेत्तस्यामन्नदानेन तदेवाक्षयमाप्नोति ॥ रामायणे—

आषाढ़ीकार्तिकीमाघीतिथयः पुण्यसंभवाः ।
अत्र दानवतो यातु, यस्यार्य्योऽनुमतो गतः ॥

अत्र दानमतिशयप्रशस्तमित्याशयः । आषाढे कस्मिंश्चिद्रविवासरे पुलिक-बन्धनं सर्वैरेव कार्य्यम् यथा ज्योतिःसारे —

"शुचिसितदिनकरवारे, करमूले बद्धपुलिकमूलस्य ।
नागारेरिव नागाः, प्रयान्ति किल दूरतस्तस्य" ॥ इति

अत्र पुलिकबन्धनमकुर्वञ्जनस्य प्रायश्चित्तमाह--वशिष्ठः---

"अकृत्वा पुलिकैर्बन्धं, प्रायश्चित्तीयते नरः ॥
चातुर्मास्ये व्यतीते तु, मुक्तिस्तेषां कराद्भवेत्" ॥ इति

वचनार्द्धेन बन्धमोक्षणमप्युक्तम् । भविष्यपुराणे –

"आर्द्रायाः प्रथमे पादे, क्षीरमश्नाति यो नरः ।
अपि रोषगतस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति" ॥ इति

क्षीरं परमान्नमश्नात्यन्वयवशादिति प्रतिहस्तकादयः । किञ्च---

"मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः, प्रत्यङ्गिरासम्भवम् ।
निःपिष्टं शुचि भद्रयोगदिवसे, तस्याहिभीतिः कुतः ।
सपदिव फणी यदा दशति तं, मोहान्वितो मूलपं ।
स्थानं तेन स एव याति नियतं, वक्त्रं यमस्याचिरात्" ॥

शुचिराषाढः । प्रत्यङ्गिरा = शिरोषः ।

"आषाढे पौर्णमास्यां तु, सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते ।
संकल्पयेन्मासमेकम्, श्रावणे खलु प्रत्यहम् ॥
स्नानं करिष्ये नियतं, ब्रह्मचर्य्यव्रतं नरः ।
भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां, करिष्ये प्राणिनां दयाम्" । इति

अस्य नक्तव्रतत्वात् सायाह्नव्यापिनी ग्राह्येति ॥

अथ श्रावणमासः ।

तत्र कृत्यमहार्णवे–आग्नेयपुराणे--

"यश्चेन्धनं ददेद्विप्रे, वर्षादिचतुरो ऋतून् ।
घृतधेनुं प्रदायान्ते, परं ब्रह्माधिगच्छिति ॥

शातातपः –

अयनादौ सदा देयं, द्रव्यमिष्टतमञ्च यत् ।
यदा तु कर्कटं याति, भगवांश्चन्द्रदीधितिः ॥

ततः प्रभृति:कालः स्यात्, दक्षिणायनसंज्ञितः ।
तत्र प्रावृट् सुसम्पूज्या, फलपुष्पाम्बुभिर्यथा ॥
गोरसाक्तांस्तथा सक्तून्, ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।
हिमञ्च शर्कराञ्चैव, शाकमूलफलानि च ॥
उपानच्छत्रमाल्यानि, जलधेनुञ्च शास्त्रवित् ।

तत्र = कर्कटसंक्रान्तिदिने । हिमं = कर्पूरम् । अत्र स्वर्गः फलम् । विश्वजिन्न्यायात् । भविष्ये—

"नैरन्तर्य्येण यो मासं, विधिना संपूजयेद्रविम् ।
पुण्यं तदेव सकलं, भवेद्विषुवदर्चनात ।
एवमेव च विज्ञेयं, ग्रहणे चोत्तरायणे ॥
संक्रान्तिषु दिनच्छेदे, षडशीतिमुखेषु च ।
तत्कार्तिक्यां भवेत्पुण्यं, समाराध्य दिवाकरम् ॥
पुण्यमेवञ्च फाल्गुन्यामाषाढ्यामेवमेव च" ॥ इति

मत्स्याग्निपुराणयोः—

"आषाढादिचतुर्मासान्, प्रातः स्नायी भवेन्नरः ।
विप्रेषु भोजनं दत्त्वा, कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत् ॥
स वैष्णवपदं याति, विप्राय घृतपायसम् ।
एतच्छीलव्रतं नाम, शीलारोग्यप्रदायकम्" ॥ इति

छन्दोगपरिशिष्टे—

"यच्च द्वयं श्रावणादि, सर्वा नद्यो रजस्वलाः ।
तासु स्नानं न कुर्वीत, वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥

अत्र यो मासः स च कृष्णादिभिरिति स्मृतिसारः, समयप्रदीपः । शुक्लादिभिरिति सौर इति रत्नाकरादयः । अयं तु श्रेयान् । समुद्रगा नदीराह—

गङ्गा, महानी, तापी, कृष्णा, वेण्या, बहुभद्रा, गोदावरी, ताम्रपर्णी, कावेरी, रेवा, सिन्धुः, गोमती, एकादशी ।

धनुःसहस्राण्यष्टौ च, गतिर्यासां न विद्यते ।
न ताः नदीपदवहाः, गर्तास्ते परिकीर्तिताः ॥

धनुः = चतुर्हस्तो दण्डः ।

उपाकर्मणि सोत्सर्गे, व्रते स्नाने तथैव च ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव, रजोदोषो न विद्यते ॥

शिष्टाः—

तपनस्य सुता गङ्गा, गोमती च सरिद्वरा ।
रजसा नैव दुष्यन्ति, ये चान्ये नदसंज्ञकाः ॥
आदौ कर्कटके देवी, त्र्यहं यावद्रजस्वला ।
चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते, शुद्धा भवति जाह्नवी ॥
सिंहकर्कटयोर्मध्ये, सर्वा नद्यो रजस्वलाः ।
तासु स्नानं न कुर्वीत, देवर्षिपितृतर्पणम् ॥

महाभारते—

श्रावणे नियतं मासमेकभुक्तेन यः क्षिपेत् ।
यत्र तत्राभिषेकेन, युज्यते ज्ञातिभिर्धनैः ॥

अत्राशून्यशयनव्रतम्, नागपञ्चमीकृत्यादि पञ्चमीतिथिनिरूपणे द्रष्टव्यम्।

श्रावणी कृत्यम् ।

तत्र गौतमः---श्रावण्याग्रहायण्योरष्टकासु च पितृभ्यो दद्यात् ।

विष्णुधर्मे---

श्रावण्यां शुक्लपक्षे, द्वादश्यां प्रीतये हरेः ।
गोप्रदानेन देवेश, यत्पूर्वं लिखितं तव ।
कृतोपवासः संस्पृश्य, पञ्चगव्यं नरेश्वर ॥
घृतक्षीराभिषेकञ्च, कृत्वा विष्णोः समाहितः ।
समभ्यर्च्य तु गोविन्दं, पुष्पादिभिरभिनन्दनम् ।
उदङ्मुखीमर्चयित्वा, तथा गृष्टिं पयस्विनीम् ॥

सपुत्रां वत्समितां, सितयज्ञोपवीतिनीम् ।
स्वर्णशृङ्गां शुभाकारां, हिरण्योपरिसंस्थिताम् ॥
हिरण्यं वाचयित्वाग्रे, ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
इमां त्वं प्रतिगृह्णीष्व, गोविन्दः प्रीयतामिति ॥
सम्यगुच्चार्य्य तं विप्रं, गोविन्दं परिकल्पयेत् ।
अनुव्रजेच्च गच्छन्तं, पदान्यष्टौ नराधिप ।
अनेन विधिना धेनुं विप्राय यः प्रयच्छति ॥
गोविन्दप्रीणनाद्राजन्, विष्णुलोकं स गच्छति ।
सप्तापराँस्तथा पूर्वान्, सप्तान्यानपि मानवः ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मोचयेदवनीपते ।
पदे पदे तु यज्ञस्य, गोसहस्रस्य मानवः ।
फलं प्राप्नोति राजेन्द्र, दक्षायैवं जगौ हरिः ॥
सर्वकामप्रदा सा स्यात्, सर्वकालेषु पार्थिव ।
भवत्यघौघा पापहरा, यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
सर्वेषामेव पापानां, कृतानामविजानताम् ।
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तमनुतापावृतं हितम् ॥

गृष्टिः = एकवारप्रसूता गौः । तं = विप्रं । गोविन्दं प्रकल्पयेत् । दत्वा च गोविन्दः प्रीयतामिति तं विप्रं वाचयित्वा, तस्मै ब्राह्मणाय । हिरण्यमुपपादयेत् = दक्षिणां दद्यादित्यर्थः ॥

विष्णुः—श्रावण्यां = श्रवणायुक्तायां जलधेनुं । साम्नां = वासोयुगाच्छादितां । दत्वा स्वर्गलोकमवाप्नोति ।

श्रावण्यां हयग्रीवोत्पत्तिरभूत् । श्रावणी पूर्णिमा तु पूर्वविद्धैव कार्य्या "श्रावणो दौर्गनवमी"त्यादिवचनात् । रक्षिकाबन्धनमत्रैव कार्य्यम् । बन्धनमन्त्रस्तु—

"येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रतिवध्नामि, रक्षे मा चल मा चल" ॥ इति

भद्रायां बन्धनं कार्य्यमिति तिथितत्त्वकृतः । अनन्तभट्टस्तु—

"दिनार्द्धात्परतश्चेत्स्याच्छ्रावणी कालयोगतः ।
रात्रौ भद्रावसाने तु, रक्षाबन्धः प्रशस्यते" ॥ इत्याहुः ।

अथ भाद्रमासः ।

तत्र महार्णवे--वामनपुराणे—

"मासि भाद्रपदे दद्यात्पायसं मधुसर्पिषी ।
हृषीकेशस्य प्रीत्यर्थं, लवणं सगुडोदनम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

"कार्तिकं सुमहत्फलम्" ॥ इत्यधिकृत्य—
"तथा प्रौष्ठपदे मासि, प्रदानात्फाणितस्य च" ॥

फाणितं = खण्डसरुकीति प्रसिद्धेति दानसागरः । भाद्रकृत्यमधिकृत्य देवीपुराणे—

"भाद्रे च गण्डकी पुण्या" ॥ इति

महाभारते—

प्रौष्ठपद्यां तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः ।
गराढ्यं स्फीतकमलमैश्वर्य्यं सुप्रपद्यते" ॥

स्कन्दपुराणे—

"यस्तु भाद्रपदे मासि, एकभुक्तं समाचरेत् ।
स तेन कर्मणा देव्यो, धनवानभिजायते" ॥

ब्रह्मपुराणे—

"सिंहसूर्य्यसंक्रान्त्यामन्तः कलियुगस्य तु" ।

तथा—

"युगाद्येषु युगान्तेषु, श्राद्धमक्षयमुच्यते" ॥

तिथितत्त्वचिन्तामणौ—

भाद्रे मासि गोप्रसवे गृहस्थस्य गोप्रसवसूचकं नारदवाक्यं यथा—

भानौ सिंहगते चैव, यस्य गौः सम्प्रसूयते ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं, षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि, येन सम्पद्यते शुभम् ।
प्रसूतां तत्क्षणादेव, तां गां विप्राय दापयेत् ॥
ततो होमं प्रकुर्वीत, घृताक्तैः राजसर्षपैः ।
आहूतानां घृताक्तानामयुतं जुह्यात्ततः ॥
व्याहृतिभिस्तत्र होमं, कुर्वीत नियतेन्द्रियः ।
सोपवासः प्रयत्नेन, दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥

ततः शुभम् । किञ्च—

सिंहराशिगते सूर्य्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत् ।
पौषे च महिषीसूते, दिवैवाश्वतरी तथा ॥
तदाऽनिष्टं भवेत्किञ्चित्,....शान्तिकं चरेत् ।
अस्य नामेतिसूक्तेन, तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ।
जुहूयाच्च तिलाज्येन, शतमष्टोत्तरान्वितम् ॥
मृत्युञ्जयविधानेन, जुहूयाच्च तथाऽयुतम् ।
श्रीसूक्तेन ततस्त्वायौ, शान्तिसूक्तेन वा पुनः ॥
मध्यरात्रे निशीथे वा, गौश्चन्द्रगते यदा ।
ग्रामे वासगृहे वापि, शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत् ॥

एवं गार्ग्यपरिशिष्टे श्रावणे बडवाप्रसवो दिने निषिद्धः ।

माघे बुधे च महिषी, श्रावणे वडवा दिवा ॥
सिंहे गावः प्रसूयन्ते, स्वामिनो मृत्युदायिकाः ।

तत्र पूर्ववच्छान्तिः कार्य्या । द्वादशीमुपक्रम्य विष्णुधर्मोत्तरे —

गोदः प्राप्नोति गोलोकं, मासि भाद्रपदे द्विजः ।
तथा भाद्रपदे मासि, श्रावणेन समन्विते ॥
नक्षत्रयुक्तास्वेतासु, तथा दानमुपोषितम् ।
सर्वं महाफलं ज्ञेयमनन्तं द्विजसत्तम ॥

अथ भाद्रद्वादशीकृत्यम् ।

तत्र ब्रह्मपुराणे—

"इन्द्रो भाद्रपदे मासि, शुक्लपक्षे तु विष्णुना ।
नियुक्तः सर्वसस्यानि, व्रीहींश्च फलानि च ॥
ओषधीः बज्रहस्तश्च, ताडयन् पालयत्यपि ।
तद्भयात्तानि सर्वाणि, बर्द्धयत्यखिलं जगत् ।
तस्मात्स तत्र सम्पूज्यः, सभार्यश्च दिने दिने ॥
सगणः सायुधश्चैव, सानुयात्रः सवाहनः ।
पटभित्तिगतो देवो राज्ञा पूज्यो विशेषतः ॥
तमुद्दिश्यार्चयेद्विप्रान् तथा रङ्गोपजीविनः ।

सानुयात्रः सानुचरः सानुयात इति क्वचित्पाठः । तत्र सपुत्र इत्यर्थः । पटभित्तिगत = पटभित्तौ लिखितः । दिने दिने इति वचनात् । द्वादशीमारभ्य यावदवस्थानं प्रत्यहं पूज्यः । ज्योतिःशास्त्रे—

"द्वादशीं तु परित्यज्य, तिथावन्यत्र शास्त्रतः ।
शक्र उत्थापितो हन्ति, राजानं राष्ट्रमेव च ।
शक्रमुत्थापयेद्राजा, उत्तरेण कदाचन ।
श्रवणेन धनिष्ठायां, न तु ऋक्षान्तरेण तु ॥
विश्वस्योत्थितमश्विन्यां, श्रवणे यमदैवते ।
वासरे कृत्तिकायां तु, निशि शक्रं प्रवासयेत् ।

उत्तरे—उत्थितमश्विन्याम् । श्रवणे-उत्थितं-भरण्याम् । धनिष्ठायामुत्थितं कृत्तिकायां प्रवासयेदिति । अत्रैव श्रीपतिसंहितायाम्—

"द्विराषाढे तु कन्यायां, शक्रं नोत्थापयेद्यदि ।
राज्ञो राज्यं विनश्येत्तु, प्रजा चैव निपीड्यते" ॥

अत्रावाहनमन्त्रः—

"एह्येहि सर्वामरसिद्धिसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरोऽमरेश ।
समुत्थितस्त्वं श्रवणाऽऽद्यपादे, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

अथ पूजामन्त्रः—

"ऐरावतसमारूढो, वज्रहस्तो महाबलः ।
शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥
रक्षार्थं सर्वभूतानां, पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।

अर्थप्रार्थना—

"नमस्ते देवदेवेश, सहस्राक्ष नमोऽस्तु ते ॥
आखण्डल नमस्तेऽस्तु, रूपं देहि श्रियं स्थिराम्" । इति

अभरण्यां निशावसाने तद्विसर्जनम् । तदुक्तम्—राजमार्तण्डे—

"याम्ये ततो देवपतेर्निशायाम्, विसर्जनं शान्तिकरं नृपाणाम्" ॥

विसर्जनमन्त्रः—

"सार्द्धं सुरासुरगणैः, पुरन्दर शतक्रतो ।
उपाहारं गृहीत्वेमं, महेन्द्रध्वज गम्यताम्" ॥ इति

यद्यष्टमेऽहनि भरणी तदा तत्र विसर्जनीयः । तदुक्तं—राजमार्तण्डे—

"अनन्तस्यादिमध्यान्तं, यदि स्यादष्टमेऽहनि ।
शक्रं विसर्जयेत्तत्र, नो विधिश्चाष्टमोपरि ॥
पालयेदष्टमे ह्यह्नि, लोकान् वै पालयन्ति ये ।
निशायां सर्वसत्त्वानां, करोतु कुशलं रवि ॥

नवमे तु दिने दृष्टो, राज्ञां शक्रो भयप्रदः ॥
ततोऽनादृत्य यास्यन्ति, निशि सुप्ते निपातयेत ।
अष्टमात्परतः शक्रं, याम्यान्तस्याऽनुरोधतः ॥
ये पश्यन्ति वज्रपाणिं, तेषां राज्यं विनश्यति ॥

अन्तकस्य यमदैवतस्य भरणीनक्षत्रस्य सप्तमनिशावसानेऽप्राप्ताष्टमनिशावसाने भरण्याद्यस्य तन्मध्यस्य तदन्तस्य वा लाभे शक्रविसर्जनम् । तदापि तदलाभे तदैवाश्विन्यामपि तद्विसर्जनमित्यर्थः ।

"सौरिभूमिजयोर्वारे, सूतके मृतके तथा ।
भूमिकम्पादिकोत्पाते, शक्रं नैव प्रवासयेत" ॥

अथागस्त्यार्घदानप्रकारः—अर्घदानन्तु भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां कर्तव्यम् । विशेषतस्तद्विधानन्तु निर्णयसिन्धौ द्रष्टव्यम् । तत्र सौरभाद्रकृत्यमिति वर्षक्रियाकौमुदी । ब्रह्मवैवर्ते—

"अप्राप्ते भास्करे कन्यां, शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अर्घं दद्यादगस्त्याय, गौडदेशनिवासिनः" ॥ इति

भीमपराक्रमे—

"यस्तु भाद्रपदस्यान्ते, उदिते कलशोद्भवे ।
अर्घं दद्यादगस्त्याय, सर्वान् कामान् लभेत्ततः ॥

नारसिंहे—

"शंखे तोयं विनिःक्षिप्य, सितपुष्पाक्षतैर्युतम् ।
मन्त्रेणानेन वै दद्यात्, दक्षिणाशां मुखे स्थितः ॥

तथा जानुभ्यामवनीङ्गत्वा शिरस्थितताम्रपात्रेण प्रणम्यागस्त्यं ध्यात्वा अर्घो देयः । तथा प्रत्यब्दं फलत्यागे विशेषः ।

"बीजपूरं नारिकेरं, मा····जातीफलं तथा ।
खर्जूरचूतदाडिम्यः, फलान्येतानि वर्जयेत" ॥

अर्घदाने मन्त्रस्तु—

"ॐ कुशकाशप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्र, कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥
ॐ शंखं पुष्पं फलं तोयं, रत्नानि विविधानि च ।
उदयस्ते लङ्काद्वारे, अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।

प्रार्थनन्तु—

"आतापी भक्षितो येन, वातापी च महाबलः ।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥

कुशकाशप्रतीकाशेत्यादिमन्त्रस्याविशेषार्चान्तरस्य विषयत्वात । गन्धादिकन्तु ॐ अगस्त्याय नमः इत्यनेन दातव्यम । विशेषानुपदेशात् साम्यतः प्राप्तत्वात् । कृत्य-महार्णवे तु—ॐकारादिनमोऽन्तेनागस्त्यपदेन दातव्यं सामान्यविधिप्राप्तत्वात् । अर्घद्रव्येऽपि ।

"रक्तविल्वाक्षतैः पुष्पैः, दधिदुर्वाकुशैस्तिलैः ।
सामान्यतः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्तितः" ॥

इति सामान्यविधिरेव विशेषानभिधानादित्युक्तम् ।

अथ भाद्रपदीयामावास्या = दुर्भराख्या तत्र कुशोत्पाटनं कृत्यरत्नावल्यां हारीतेनोक्तम्—यथा—

"मासे नभस्येऽमावास्यां दर्भऽश्रयोगतः ।
अजातयामाऽस्ते ज्ञेयाः विनियोज्याः पुनः पुनः" ॥ इति

कुशानयनप्रकारः दाक्षिणात्यमतेनाह—मार्कण्डेयः—

"शुचिर्भूत्वा शुचौ देशे, स्थित्वा पूर्वोत्तरामुखः ।
ओँकारेणेव मन्त्रेण, कुशान् स्पृष्ट्वा द्विजोत्तमः ॥

स्पर्शनानन्तरं पठनीयो मन्त्रः—

ओँ विरञ्चिना सहोत्पन्नः, परमेष्ठी निसर्गज ।

दहस्व सर्वपापानि, दर्भाः स्वस्तिकरो भव ॥ इति

पठित्वा हूँ फट्कारेण दर्भस्तु, सकृच्छित्वा समुद्धरेत् । कुशमहिमानमाह–

गोभिलः—

"कुशमूले स्थितो ब्रह्मा, कुशमध्ये जनार्दनः ।
कुशाग्रे शङ्करं विद्यात्, सर्वदेवाः कुशे स्थिताः ॥

के कुशाः परित्याज्याः इत्याह–स्मृतिः—

"चितौ दर्भाः पथि दर्भाः, ये दर्भाः यज्ञ-भूमिषु ।
स्तरणासनपिण्डेषु, षट् कुशान् परिवर्जयेत ॥

तथा—

पिण्डार्थं ये स्तृताः दर्भाः, यैः कृतं पितृतर्पणम् ।
मूत्रोच्छिष्टे धृताः ये च, तेषां त्यागो विधीयते ॥

गृह्यपरिशिष्टे –

"अमेध्यलिप्ताः ये दर्भाः, तेषां त्यागो विधीयते ।

पवित्रकुशानाह—

"नीवीमध्ये तु ये दर्भाः, ब्रह्मसूत्रे च ये धृताः ।
पवित्राँस्तान् विजानीयात्, यथा कायस्तथा कुशाः ॥

तथा—

"दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्राः, ब्राह्मणा हविरग्नयः ।
अयातयामान्येतानि, नियोज्यानि पुनः पुनः ॥

प्रयोगपारिजाते—

"कुशाः काशाः यवाः दुर्वा, उशीराश्च सगन्धकाः ।
गोधूमाः व्रीहयः मुञ्जाः, दश दर्भाः सवल्लुजाः ॥

वल्लुजं = शुच्याद्रतृणम् । कुशाभावे तु काशाः स्युः, काशा— कुशसमाः स्मृताः काशाभावे ग्रहीतव्याः

अन्ये दर्भाः यथोचितम् ॥ हरौ सुप्ते कुशाः
नोत्पाटनीयाः इति प्रसिद्धिरसमीचीनैव ।

"कृष्णे श्रावणमासस्य समन्त्रोत्पाटिताः कुशाः" ॥

इति विष्णूक्तेः । कृत्यमहार्णवे—कुशेषु कात्यायनः—

"हरिताः यज्ञियाः दर्भाः, पीतकाः पञ्च यज्ञियाः ।
समूलाः पितृदैवत्याः, काल्माषाः वैश्वदेविकाः ॥
ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः, कुशाः दीर्घास्तु बर्हिषः ।
दर्भापवित्रमित्युक्तमतः सन्ध्यादिकर्मसु ॥
सव्यः सोपग्रहः कार्य्यो, दक्षिणः सपवित्रकः ।

यज्ञियाः = दर्शादियज्ञार्थाः । पीतकाः = पीतवर्णाः । पञ्च यज्ञियाः = पञ्च यज्ञार्थाः । समूलाः सामाश्च दैवकर्मपितृकर्मार्थाः । "कुशाः साग्राः समूलकाः" इति ब्रह्मपुराणात् । ते च प्रचरणीयाः = प्रचरणम् = अनुष्ठानम् तत्साधनीभूताः । दीर्घाः = अवधिकप्रमाणाः दर्भा इति । यतो यज्ञादौ हरितादयो विशेषविहिताः । अतः सन्ध्यादिषु दर्भमात्रं पवित्रं शुचि । न तु पवित्रलक्षणमेतत् । अत इत्यस्यान्वयात् । न चात्र पीतिपदानन्वयः, इत्यत इत्यन्वयस्य विवक्षितत्वात् । अत एव पवित्र-लक्षणमाह—स एव ।

"अनन्तगर्भिणं साग्रं, कौशं द्विदलमेव च ।
प्रादेशमात्रं विज्ञेयं, पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥
एतदेव तु पिञ्जल्याः लक्षणं समुदाहृतम् ।
आज्यस्योत्पवनार्थं यत्, तदप्येतावदेव तु" ॥

अनन्तगर्भिणामिति । गर्भः अनन्तः, गर्भं च त्रितयं त्यक्त्वा चतुर्थं पवित्रं ग्राह्यम् । द्विदलमिति पत्रद्वयमित्यर्थः । तेनैव तादृशपत्रद्वयं = पत्रद्वयात्मकं पवित्रं भवति । एवं पिञ्जल्यपि । एवं सर्वविधे कर्मणि वामपाणौ कुशत्रयम् । दक्षिणे च

यथोक्तं कुशपत्रद्वयं धार्य्यम् । जप-होम-दान-स्वाध्याय पितृ-तर्पणेषु दक्षिणकरे कुश-त्रयधारणमपि ।

"जपे होमे तथा दाने, स्वाध्याये पितृतर्पणे ।
अशून्यं तु करं कुर्य्यात्, सुवर्णरजतैः कुशैः" ॥ इति

लघुहारीतवचनात् । अत्राऽयं भावः । सुवर्णरजतैरिति बहुवचनम्, एकसुवर्णस्य रजतस्य चैकस्य धारणेऽप्युपपद्यते । सुवर्णत्वादिजातेरवयवाव्ययवृत्तित्वात् । कुशैरिति वहुवचनम् कपिञ्जलन्यायात् त्रित्वपरम् । अशून्यमित्यादिना सुवर्णरजतकुश-त्रयाणां धारणविधानादर्थासमुच्चयः । तत्र दक्षिणकरे अनामिकायां सुवर्णधारणम् ।

"अनामायां तु तद्धार्य्यं दक्षिणस्य कारस्य च" ।

इति हेमधारणप्रकरणस्य देवीपुराणवचनात् । रजतधारणमपि तत्रैव समभिव्याहारा-दिति कल्पतरुः । कुशधारणमप्यत्रैव । "तर्जन्यां रजतं धार्य्यम्" इति पाठस्तु केचि-त्तर्जन्यां रजतधारणमाहुरिति वाचस्पतिमिश्राः । अत्रेदं प्रतिभाति—"अनामिकायां तद्धार्य्यम्" इतिवचनेन "सुवर्णञ्चाप्यानामिकायाम्" इति वचनेन च अनामिकायां सुवर्ण-धारणमविवादमेवेति चेत्तर्हि "तर्जन्यां रजतं धार्य्यम्" इत्यानामिकावचनेन तर्जन्यां रौप्यधारणमप्यसंशयमेव । समभिव्याहारवशेनानामिकायामेव रौप्यधारणकल्पनन्तु न चारु । सति वचने कल्पनाया अप्रयोजकत्वात् । अत एव "पादुके चोत्तरीयञ्च तर्जन्यां रौप्यधारणम् । न जीवत्पितृकः कुर्य्यात् ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति ॥ इति वृद्धमनुना निषेधोऽपि प्रसक्तावेव संगच्छते । "प्रसक्तं हि प्रतिषिद्ध्यते" इति न्यायात् । अन्यथा तर्जन्यां रौप्यधारणस्याप्रसक्तत्वेन निषेधस्याभुक्तवान्तत्वापत्तेरिति ध्येयम् ।

अथ तीर्थविचारे याज्ञवल्क्यः—

"कनिष्ठा तर्जन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्य तु ।
प्रजापतिपितृदेवतीर्थान्यनुक्रमात्" ॥

मनुः—

"ब्राह्मणविप्रस्तीर्थेन, नित्यं कालमुपस्पृशेत् ।

आचमेत् । मार्जनार्चनवलिकर्मभोजनानि दैवेन । पित्रर्थानपि पित्र्येण । प्रतिग्रहमाग्नेयेन गृह्णीत । आग्नेयं करतलं "मध्ये आग्नेयम्" इति वचनात् कात्यायनः—

"स्वक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता, विद्वद्भिः कर्मकारिणाम् ।
स्वक्रिया च परोक्ता च, तृतीया चायथा क्रिया" ॥

स्वक्रिया यथोक्तक्रियाविरहः । स च त्रेधा क्रियाविरहात् । परोक्ताचरणात् स्वोक्तक्रमविरहाच्च । तत्रान्यसनमाह—

"प्रधानस्याक्रिया यत्र, साङ्गञ्च क्रियते पुनः ।
तदङ्गस्याक्रियायान्तु, नावृत्तिर्न च तत्क्रिया" ॥

तत्क्रिया = तदङ्गमात्रक्रिया, सापि नास्ति । किन्तु योगियाज्ञवल्क्योक्तं विष्णुस्मरणमात्रम् । द्वितीये त्वाह—स एव—

"स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य, परशाखाश्रयञ्च यः ।
कर्तुमिच्छति दुर्मेधाः, मोघं तस्य तु चेष्टितम्" ॥

इदं तत्तत्कर्मणः स्वशाखीयत्वे द्रष्टव्यम् । अन्यथा परशाखीयकमपि ग्राह्यम् । तदाह—स एव—

"यन्नो स्नातं स्वशाखायां, पारक्यमपि बाधि यत् ।
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत्" ॥

यत्र तु स्वशाखायां स्तोकमभिधानं तत्राङ्गाकांक्षापूरकं पारक्यमपि ग्राह्यमेव—

"स्मृतिशास्त्रविकल्पस्तु आकांक्षापूरणे सति" ॥ इति

वाक्यात । यत्र तु कर्मैव न सूत्रेण न वा सामान्यविधिना प्राप्तं किन्तु परोक्तन्तु परोक्तं न कार्य्यमित्याह—स एव—

"बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रकीर्तितम् ।
तस्य तावति शास्त्रार्थे, कृते सर्वः कृतो भवेत्" ॥ इति

तृतीये प्रकारे त्वाह स एव—

"समाप्तौ यदि जानीयान्मयैतदन्यथा कृतम् ।
तावदेव पुनः कुर्य्यात् नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥

तावदेवेति । अन्यथा कृतं यत् तन्मात्रमेव पुनः करणीयम् । न तत्तदुत्तर-पदार्था अपीत्यर्थः । इदमपि तदनुष्ठानस्य सुकरत्वे द्रष्टव्यम् । दुष्करत्वे विष्णुस्मरण-मात्रमित्येतट्टीका । याज्ञवल्क्यः —

"विधिदृष्टन्तु यत्कर्म, करोत्यविधिना नरः ।
फलं न किञ्चिदाप्नोति, क्लेशमात्रं हि तस्य तत् ॥
आसीनः प्राङ्मुखो दर्भपाणिः पत्नी तदुत्तरा ।
द्विराचान्तो बद्धशिखो, सर्वकर्मस्वयं विधिः ॥

वायुपुराणे —

क्रियां यः कुरुते मोहात्, अनाचम्येह नास्तिकः ।
भवन्ति हि वृथा तस्य, क्रियाः सर्वाः न संशयः ।

तथा—

दानं प्रतिग्रहो होमं, भोजनं वलिरेव च ।
साङ्गुष्ठेन सदा कार्य्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत् ॥
एतान्येव तु कर्माणि, दानादीनि विशेषतः ।
अनुजानुविशेषेण, तद्वदाचमनं नृप ॥

अङ्गुलीसहिताङ्गुष्ठेन, अनुजानु = जानुमध्ये हस्तौ यथा स्यात् तां = क्रियां, तथा कर्तव्यानीत्यर्थः । बोधायनः —

"कर्मयुक्तो नाभेरधः स्पर्शं विवर्जयेत्" ।

कात्यायनः —

"यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ, ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।
यवानामिव गोधूमाः व्रीहीणामिव शालयः" ॥

पुनः स एव —

"आसीन ऊर्ध्वप्रह्वो वा, नियमो यत्र नेदृशः।
तदासीनेन कर्तव्यं, प्रयत्नेन च तिष्ठता।

प्रह्वः = अवनतकायः।

"यत्र दिङ्नियमो नास्ति, जपहोमार्चिकर्मसु।
तिस्रस्तत्र दिशो ज्ञेयाः, ऐन्द्री सौम्या पराजिता" ॥

ऐन्द्री = पूर्वा। सौम्या = उत्तरा। पराजिता = ऐशानी।

"कर्मोपदृश्यते यत्र, कर्तुरङ्गं न चोच्यते।
विज्ञेयो दक्षिणो हस्तः, कर्मणां पारगः करः" ॥

अस्तु तावदेवं प्रसङ्गादभिहितम्।

अथ भाद्रीकृत्यम्।

तत्र विष्णुः — प्रौष्ठपद्यां तद्युक्तायां गोप्रदानेन सर्वपापविनिर्मुक्तो भवति।
तद्युक्तायाम् = भाद्रपदयुक्तायाम्। देवीपुराणे —

"प्रौष्ठपद्यां तु कर्तव्यं, पूजाजागरणं निशि।
महोत्सवविधानेन, सौत्रामणिफलं लभेत्" ॥

विष्णुधर्मोत्तरे —

"गोप्रदानञ्च प्रौष्ठपदे, पौर्णमास्यां महाफलम्।
भाद्रप्रौष्ठपद्यां प्रपितामहादिपितृनुद्दिश्य श्राद्धं कर्तव्यम् ॥

इति दाक्षिणात्याः। तत्तु गौडमैथिलैर्नादृतम्।

अथाश्विनमासकृत्यम्।

आश्विनं सकलं मासम् ब्राह्मणेभ्यो घृतं प्रदायाश्विनौ प्रीणयित्वा रूपवान् भवति। वामनपुराणे —

"तिलाँ-स्तुरङ्ग वृषभ दधि-ताम्रायसादिकम्।
प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य, देयमश्वयुजे नरैः" ॥

आदिपदेनाभूषणं-शुचिद्रव्यपरिग्रहः ॥ भविष्यपुराणे—

"कृत्वा चाश्वियुजे मासि, विपुलं धान्यपर्वतम् ।
सुवस्त्रं गन्धसंयुक्तं, सूर्य्यस्याग्रे निवेदयेत् ॥
सावित्रैस्तु महायानैर्वरभोगसमन्वितैः ॥
वर्षकोटिसहस्राणि, सूर्य्यलोके महीयते ।
योऽपि चाश्वयुजं मासमेकभक्ते न संक्षिपेत् ॥
स्रजावानवाहनायुधश्च, वहुपुत्रश्च जायते ।

स्रजा शुद्धः । स चाधिकारिविशेषणम् । स्कन्दपुराणे—

"योऽपि चाश्वयुजं मासमेकभुक्तेन तिष्ठति ।
वाणिज्यस्तु भवेत्तस्य, कृषिः पशुगणस्तथा ॥

अत्र शुक्लादिमासादरः । देवीपुराणे—

"एकाहमपि यो भक्त्या, कन्यासंस्थे दिवाकरे ।
पूजयित्वा शिवाचक्रं, दीपान् संरोधयन्ति च" ॥

शिवाचक्रं = दुर्गासमूहम् । सम्बोधनमुद्दीपनम् ।

"ते लभन्ते शुभान् भोगानायुरारोग्यसम्पदः ॥
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते, पूजयित्वा तु मानवाः ।
ये ददति घृतैर्दीपाऽनुत्करं पयसान्वितम् ।
न तेषां दुष्करं किञ्चित् वर्तते मुनिसत्तम् ।

उत्करं = भक्तं । पलं = मांसं ।

"मृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा, विल्वे वा यस्तु पूजयेत् ।
आत्मवित्तानुसारेण, सलभेन्मौलिकं फलम् ॥

मूलपूजाजन्यफलमित्यर्थः । यमः—

"घृतमाश्वयुजे मासि, नित्यं दद्याद्द्विजातये ।
पूजयित्वाश्विनौ देवौ रूपभागभिजायते ॥

आश्विनानुवृत्तौ विष्णुः—

"तस्मिन्नेव मासि गोरसं ब्राह्मणान् भोजयित्वा आरोग्यभाग् भवेत ।

नन्दिपुराणे—

"अथ वाश्वयुजं मासं, वर्जयेन्मांसभक्षणम् ।

मासषट्ककृतं पुण्यं, लभेताश्वयुजान्नरः ॥

मासषट्कमांसवर्जनजन्यपुण्यं लभेदित्यर्थः ।

देवीपुराणे—

"घृताभिषेकं यः कुर्य्यादहोरात्रं नराधिप ।

शुक्लधारेण भाण्डेन, भगवत्या विचक्षणः ॥

मासि चाश्वयुजे वीर, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

आश्विने घृतदानमावश्यकम्—

"आश्विने घृतदाने च, रूपवानभिजायते" ।

इति विष्णुधर्मात् । भविष्यपुराणे—

"कन्यागते सवितरि, कृष्णपक्षेऽष्टमी च या ।

सा च पुण्या पापहरा, शिवस्यानन्दवर्द्धिनी ॥

स्नानं दानं जपो होमः, पितृदेवाभिपूजनम् ।

सर्वप्रोतिकरं स्याच्च, प्रीते तस्मिन् त्रिलोचने ॥

अत्र अष्टम्यामष्टकाश्राद्धमपि विधेयम् । यथा—

"कृत्वा चाश्वयुजे मासि, कृष्णपक्षे नराधिप ।

नवम्यामुपवासन्तु, दुर्गादेवी प्रपूज्यते ॥

पुष्पधूपोपहारैस्तु, ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः ।

पूजयित्वा रथं कृत्वा, नानावस्त्रोपशोभितम् ॥

शोभितं ध्वजमालाभिः, छत्रदर्पणचामरैः ।

कृत्वा स्वर्णमयीं दुर्गां, महिषे शूलशोभिताम् ॥

विन्यस्य रथमध्ये तु, पूजयेत्कृतलक्षणाम् ।
नवम्यां भ्रामयित्वा तु, जले दुर्गां नयेन्नृप ॥
तत्र जागरपूर्णन्तु, प्रदीपेनोपशोभितम् ।
प्रभाते स्नपनं कृत्वा, ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥
रथशोभासमायुक्तं, भगवत्यै निवेदयेत् ।
भुक्त्वा च बान्धवैः सार्द्धं, प्रणम्याचार्य्यं गृहं व्रजेत् ॥
सर्वव्रतानां प्रवरं, सर्वपापप्रणाशनम् ।
नवमीरथव्रतं नाम, सर्वकामार्थसाधकम् ॥
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं, सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्फलं सकलं विद्यात्, नवमीव्रतपालनात् ॥
कल्पकोटिशतं साग्रं, विष्णुलोके महीयते ।
पुनरेव महीङ्गत्वा, सार्वभौमो भवेदिह ।
रत्नोपकरणैर्युक्तां, दन्तदारुमयीं शुभाम् ।
शय्यां निवेदयेद्यस्तु, भगवत्यै नराधिप ॥
दुकूलफलवस्त्राणां, परिसंख्या तु यावती ।
तावद्वर्षसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ॥
वृषं शूलाङ्कितं यस्तु, भगवत्यै निवेदयेत् ।
आसमं स तु कुलं गृह्य देवालयं व्रजेत् ॥
दत्त्वोभयमुखीं गाञ्च, भगवत्यै सुशोभनाम् ।
सप्तद्वीपां धरां दत्त्वा, यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥
पदद्वयाच्छिरो यावत्, वत्सस्याङ्गं विनिर्गतम् ।
तावद् गौः पृथिवी ज्ञेया, दाता तस्य महीप्रदः ॥

इति नवमीरथव्रतम् । शय्यादानादीनि स्वतन्त्राणि फलश्रुतेः ॥

अथापरपक्षस्तत्कृत्यञ्च ।

तत्र ब्रह्मपुराणे—

"अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु, श्राद्धं देयं दिने दिने ।
त्रिभागहीनं पक्षं वा, त्रिभागं त्वर्द्धमेव वा ॥
न सन्ति पितरश्चेति, कृत्वा मनसि यो नरः ।
श्राद्धं न कुरुते तत्र, तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥
यावच्च कन्यातुलयोः, क्रमादास्ते दिवाकरः ।
तावच्छ्राद्धस्य कालः स्याच्छून्यं प्रेतपुरं तदा ।

अत्र दिने दिने इति वीप्सावलात् सर्वस्मिन् दिने इति कल्पतरुः । "सकलपक्षे" इति पारिजातः । तृभागहीनं = तृतीयभागहीनम् । तेन पञ्चमीमारभ्य तृतीयभागम् । तेन दशमीमारभ्य अर्द्धम् पक्षस्य । तेनाष्टमीमारभ्य पक्षं वेति चतुर्द्धा विभागः । ब्रह्माण्डे—

"दिव्यभौम्यन्तरिक्षाणि, स्थावराणि चराणि च ।
पिण्डमिच्छन्ति पितरः, कन्याराशिगते रवौ ॥
कन्यां गते सवितरि, यान्यहानि तु षोडश ।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि, तेषु दत्तमथाक्षयम् ॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां यदीच्छेत्सदृशं फलम् ।
अप्यम्बुमूलशाकाद्यैः, पितॄन् कन्यागतेऽर्चयेत् ॥

षोडशेति तिथिवृद्ध्यपेक्षया । तेन यदा दिवसषोडशके विहितकालेऽपरपक्षीय-तिथीनां प्राप्तिस्तदा दिनषोडशकं भवतीति कल्पतरुस्वरसः । श्राद्धविवेके तु कन्या सूर्य्यस्य चरमाः षोडशांशाः अनेन प्रशस्यन्त इत्युक्तम् । अन्ये तु प्रोष्ठपद्या सह षोड-शत्वम् ।

"श्राद्धं तु प्रोष्ठपद्यां वै, दत्वा क्रतुफलं लभेत्" ।

इति ब्रह्मपुराणेन तत्रापि श्राद्धस्य विहितत्वादित्याहुः । किञ्चाश्विनाऽपरपक्षस्य गुणफलमिदम् न तु कालान्तरविषयम्, गौरवात् । अत्र कन्यागतत्वाभावेऽपि अवश्यं श्राद्धं कर्तव्यमिति जातूकर्णः ॥

आषाढीमवधिं कृत्वा, यः स्यात् पक्षस्तु पञ्चमः ।

अपरपक्षस्स विज्ञेयः, कन्यां गच्छतु वा न वा ॥

जावालोऽपि—

"आगते तु रवौ कन्यां, श्राद्धं कुर्वीत यत्नतः ।

आषाढ्याः पञ्चमः पक्षः, प्रशस्तः पितृकर्मसु" ॥ इति

अत एवाश्विनापरपक्षः कृष्णादिरीत्यैवेति सिद्धम् । किञ्च—

"येयं दीपान्विता राजन्, ख्याता पञ्चदशी भुवि ।

तस्यां दद्यान्न चेद् वृत्तं, पितृणां तु महालये" ॥

इत्यनेन महालयपतितश्राद्धकालत्वेन, कार्तिकामावास्या तावद्विधीयते। एतच्च तदा घटते यद्याषाढीतः पञ्चमः पक्षो महालयो भवेत् । महालयपदं त्वपरपक्षपरम् । महालयः = महस्योत्सवस्यालय इति व्युत्पत्तेः—सम्भवात् ॥ इदञ्चाश्विनापरपक्षश्राद्धं नित्यम् । फलनिरपेक्षविधिश्रवणात् । सन्ध्योपासनवत् ।

"सूर्य्ये कन्यागते श्राद्धं, यो न कुर्य्याद् गृहाश्रमी ।

धनं पुत्राः कुतस्तस्य, पितृनिःश्वासदर्शनात्" ॥ इति स्मृतेश्च ॥

अत्र पार्वणं काम्यमपीत्याह—वायुपुराणे—

"प्रतिपद्धनलाभाय, लब्धञ्चास्य न नश्यति ।

द्वितीयायां तु यः कुर्य्यात, द्विपदानां पतिर्भवेत् ॥

वरार्थिनां तृतीयायां, शत्रुघ्नं पापनाशनम् ।

श्राद्धं चतुर्थ्यां कुर्वाणः, शत्रोश्छिद्राणि पश्यति ॥

पञ्चम्यां चैव कुर्वाणः प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥

षष्ठ्यां श्राद्धं तु कुर्वाणः, द्विजास्तं पूजयन्त्युत ॥

कुरुते यस्तु सप्तम्यां, श्राद्धं तु सततं नरः ॥

महाञ्छुक्रगणाध्यक्षो, बहुबन्धुश्च जायते ॥

महामन्त्रमवाप्नोति, योऽष्टम्यां कुरुते नरः ।

श्राद्धं नवम्यां कर्तव्यमैश्वर्य्यं स्त्रीषु काम्यता ।
कुर्वन् दशम्यां तु नरो, ब्राह्मीं श्रियमवाप्नुयात् ।
वेदांश्चैवाप्नुयात्सर्वान्, विप्राणां समतां तथा ॥
एकादश्यां परं दानमैश्वर्य्यं सन्ततिस्तथा ।
द्वादश्यां जयलाभश्च, राज्यमायुर्वसूनि च ॥
प्रजावृद्धिं पशून् मेधां, स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ।
दीर्घमायुरथैश्वर्य्यम्; कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् ॥
अमावास्यां प्रकुर्वीत, श्राद्धं यत्नाच्छुचिः सदा ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति, स्वर्गञ्चानन्तमश्नुते" ॥ इति

तथा ब्रह्मपुराणे—

"प्रायो नाशकशस्त्राग्निविषोदकबन्धनैस्तथा ।
चतुर्दश्यां भवेत्पूजा, तृप्त्यर्थमिति निश्चितः ॥
अमावास्यां तु स्वर्गाया भक्त्या सन्तर्पयेत् पितॄन् ।

किञ्च । कात्यायनः—

"श्रद्धान्वितः श्राद्धं कुर्य्याच्छाकेनापि नापरपक्षमतिक्रामेत" ।

मासि वोशनमितिश्रुतेः । किञ्च मनुः—

"कृष्णपक्षे दशम्यादौ, वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।
श्राद्धे प्रशस्ताः तिथयो, यथैता न तथेतरा ॥ इति

मरीचिः—

"विषशस्त्रश्वापदाहितिर्य्यक्ब्राह्मणघातिनाम् ।
चतुर्दश्यां भवेत्पूजा, अन्येषां तु विगर्हिता" ॥ इति
आहवेषु विपन्नानां, जलाग्निभृगुपातिनाम् ।
चतुर्दश्यां भवेत्पूजा, अमावास्यां तु कामुकी" ॥

इत्यपि । एवञ्च चतुर्ष्वपि पक्षेषु चतुर्दशीं विहाय पार्वणं श्राद्धं विधेयम् ।

शस्त्रादिहतानां पार्वणश्राद्धनिषेधात् पूजैव विधेया । पूजा च शस्त्रादिहतानुद्दिश्य ब्राह्मणभोजनादिरूपा बोध्या । एकोद्दिष्टरूपा वेत्यग्रे वक्ष्यते । "अश्वयुक्कृष्णपक्षे त्वि" त्यादिना । सौरायुसम्भवे चन्द्रमासस्योपस्थाने तत्र—

"तिथिनैकेन दिवसश्चान्द्रे माने प्रकीर्तितः ।
अहोरात्रेण चैकेन सावनो दिवसः स्मृतः ॥

इति शिष्टपरिग्रहबलेन दिवसशब्दस्य तिथिवाचकत्वसिद्धेः । अन्यथा मासिकादौ चाहोरात्रह्रासे कर्मसिद्धिरेव न स्यात् । त्रिंशदहोरात्रस्य तत्रासिद्धेः । तथा च पदैकयैव तिथ्याऽपराह्णद्वयव्यापनं तदा कपालाधिकरणन्यायेन आद्यदिन एव श्राद्धम् । सकृत्करणादेव शास्त्रार्थसिद्धेः नोत्तरत्रापि तु तिथौ । तथा च तत्रोत्तराहे पार्वणाननुष्ठानमेव । एवञ्च यत्रैकत्र पराह्णे तिथिद्वयप्राप्तिस्तदा तस्मिन्नपि न पार्वणद्वयमिति सिद्धम् । यत्तु राजमार्तण्डे—

"कन्यागते सवितरि, दिनानि पञ्चदश च ।
पार्वणेन विधानेन, तत्र श्राद्धं प्रदीयते" ॥ इति

मत्स्यपुराणवचनं लिखितलक्ष्मीधराद्युल्लिखितत्वान्निर्मूलम् । समूलत्वे वा कन्याशेषषोडशांशे काम्यश्राद्धबोधकम् । तदुक्तं सूर्य्यसिद्धान्ते—

"तुलादिषडशीत्यंशे, षडशीतिदिनं मुखम् ।
तच्चतुष्टयमेव स्यात्, द्विस्वभावेषु राशिषु ॥
षड्विंशे धनुषो भागे, द्वाविंशे धनुषस्य तु ।
मिथुनाष्टादशे भागे, कन्यायाश्च चतुर्दशे ॥
अत ऊर्ध्वं तु कन्यायाः, यान्यहानि तु षोडश ।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि, तेषु दत्तमथाक्षयम् ॥

तुलादीति । एकस्मिन्नब्दे षष्ठ्यधिकशतत्रयमिताः अंशकाः भवन्ति । तत्र तुलासंक्रमणमुपक्रम्य षडशीतिगणनया चतुष्टयमापूर्य्य षोडशांशाः, श्राद्धे पक्षानादरेणैव प्रशस्ता इति ॥

सर्वेष्वेव आश्विनापरपक्षस्य दिनेषु विहितमुहूर्ते पार्वणं कर्तव्यम् । तेन त्रयोदशी यदा पञ्चदशी वा बर्द्धमाना सती अग्रिमदिने आयुमुहूर्तद्वयाधिकम् साङ्गश्राद्धनिर्वाहक्षमम् प्राप्नोति तदारब्धचतुरेकतमकल्पकेन पुंसा तदाऽपि पार्वणं कर्तव्यम्, बाधकाभावात् । इति ।

अथ विशेषतश्चतुर्दशीकृत्यं प्रदर्श्यते —

तत्र वायुपुराणे—

"युवानस्तु गृहे यस्य, मृतास्तेषान्तु दापयेत् ।
शस्त्रेण हता ये वै, तेषां दद्याच्चतुर्दशीम् ॥

तत्र यौवनं षोडशवर्षादूर्ध्वं त्रिंशद्वर्षपर्य्यन्तम् ज्योतिश्शास्त्रोक्तं ग्राह्यम् । इदञ्च पुंसस्स्त्रियाश्च विशेषाभावात् । अत्र च यथोक्तेनानुगमापत्त्या रोगव्यतिरेकमृतत्वममीषामनुगतं सत्प्रयोजकम् । तेन प्रसवप्रकोपमृतायाः कृतपत्त्यनुमरणायाश्च न शस्त्रहतश्राद्धम् ।

न च

"योषिद्भ्यस्तु पृथग् दद्यादवसानदिनादृते ।
स्वभर्तृपिण्डभावेभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता ॥"

इति वचनान्न तासामिदमिति वाच्यम्, तन्निषेधस्य सामान्यसुखप्रवृत्ततय विशेषसुखप्रवृत्तेतच्छास्त्राविषयत्वात् । अन्यथा

"ये सपिण्डीकृताः प्रेताः, न तेषान्तु पृथक् क्रिया ।"

इति शातातपवचनात् पुंसोऽपि न तत्स्यात् ।

न च

"शस्त्रहता ये वै, तेषां दद्याच्चतुर्दशीम् ।"

पुलिङ्गकरणादत्राऽनन्वयः, तद्वचनानामुद्देश्यमात्राकांक्षाप्रवृत्तत्त्वेन लिङ्गविशेषतात्पर्य्याभावात् । पल्लवे—

"पक्षिदंष्ट्रिशृङ्गिनखैर्हताः, पतनानशनप्रायै-

रुद्बन्धाशनिबन्धनैः मृताः जलप्रवेशेन ते वै शस्त्रहताः स्मृताः ।

मरीचिः—

"विषशस्त्रस्वापदाहितिर्य्यक्ब्राह्मणघातिनाम् ।

चतुर्दश्यां भवेत्पूजा, अन्येषां तु विगर्हिता ॥

घातोऽस्यास्तीति घाती । तेन विषादिहतानामित्यर्थः ।

"आहवेषु विपन्नानां, जलाग्निभृगुपातिनाम् ॥

चतुर्दश्यां भवेत्पूजा, अमावास्यां तु कामुकी ।"

"ब्राह्मणादिहते ताते, पतिते सङ्गवर्जिते ।

व्युत्क्रमाच्च हते देयं येभ्यः ददात्ययम्" ॥

इत्यादिना ब्राह्मणहतस्य श्राद्धानर्हत्वात् कथं शस्त्रहतश्राद्धमिति वाच्यम्, प्रमादतो ब्राह्मणादिहतस्य मरीचिवचनात् । दुर्वृत्तस्य ब्राह्मणेन ज्ञात्वा व्यापादितस्य श्राद्धानर्हत्वात् तद्विषयकाः "ब्राह्मणादिहते ताते" इत्यादिवचनादिति बोध्यम् । प्रायोऽनशनशस्त्राग्नी"ति ब्रह्मपुराणीयवचनन्तु प्रागेव लिखितं ज्ञेयम् । इदञ्च श्राद्धमेकोद्दिष्टविधिना कर्तव्यम् । "शस्त्रघातिनामि"ति शिष्टाचारोपष्टब्धस्मृतेः । मध्यदेशीयास्तु पितृपक्षे नवम्यां मातुः श्राद्धं, पितुश्च मरणसजातीयायां तिथौ श्राद्धमवश्यमाचरन्ति । तत्राद्ये देशाचारो मूलम् । द्वितीये च आषाढ्याः । पञ्चमे पक्षे, कन्यासंस्थे दिवाकरे ।

मृताहनि पुनर्यो वै, श्राद्धं दास्यति मानवः

तस्य सव्वँत्सरं यावत्तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम् ॥

इति नागरखण्डवचनम्, मूलमवधेयमिति वाचस्पतिमिश्रमतविनिश्चितः पन्थाः ।

अथ गजच्छाया । तत्कृत्यविचारणं तु त्रयोदशीकृत्यनिरूपणे द्रष्टव्यम् । अथ तत्त्वचिन्तामणावपरपक्षविधानं किञ्चिदत्र प्रदर्श्यते—अत्र वृद्धमनुः—

"मध्ये वा यदि वा चान्ते, यत्र कन्यां व्रजेद्रविः ।
स पक्षः सफलः श्रेष्ठः, श्राद्धषोडशकं प्रति" ॥ इति
तथा पार्वणेनेह विधिना, श्राद्धं तत्र विधीयते ॥
कन्याङ्गते सवितरि, यान्यहानि तु षोडश ।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि, देवो नारायणोऽब्रवीत् ॥

अत्र षोडशत्वं त्रेधा हेमाद्रिर्व्याचख्यौ । तद्यथा—तिथिवृद्धया पक्षस्य षोडशदिनत्वम् । श्राद्धवृद्धयर्थमिति प्रथमः कल्पः । आश्विनशुक्लप्रतिपदा सह इति द्वितीयः कल्पः । भाद्रपूर्णिमया सहित इति तृतीयः कल्पः । अत्र द्वितीयः कल्प एव श्रेयान् इत्याचार्य्याः । अत्र पञ्च पक्षाः सम्भाव्यन्ते—"तथा हि हेमाद्रौ ब्राह्मे यथा—"अश्वयुक्कृष्णपक्षः" इत्यादि । अत्र पक्षपर्य्यन्तं दिने दिने इति न्याय्यः । त्रिभागहीनमिति पञ्चम्यादिपक्षः । अर्द्धमिति चाष्टम्यादिपक्षः । त्रिभागमिति दशम्यादिपक्षः । त्रिभागहीनमिति चतुर्दशीसहितप्रतिपदादिवर्जनाभिप्रायेणेतिकल्पतरुप्रभृतयः । अत्र प्रेतपक्षीयतिथित्वं श्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम् । तेन पञ्चदशतिथिव्यापिश्राद्धं सिद्धयति । अत्र हि चतुर्दशीनिषेधो नित्यश्राद्धे संव्वत्सरमध्ये अन्यकृष्णपक्षपर इति गौडाः । तच्च श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव "चतुर्दश्यां महालये" इत्यादिवचनविरोधादुपेक्ष्यम् । पञ्चम्यर्द्धं तत्राऽपि दशम्यूर्ध्वम् "ततोऽप्यती"ति विष्णूक्तेः ॥

कालादर्शे तु—

"पक्षत्यादिदर्शान्तं, पञ्चम्यादियुगादि च ।
अष्टम्यादि यथाशक्ति, कुर्य्यादापरपक्षिकम्" ॥

इत्यादिप्रतिपदादिकदशमीदर्शान्तं सर्वत्राऽन्वेति ।

"यो वै श्राद्धं नरः कुर्य्यादेकस्मिन्नपि वासरे ॥
तस्य सव्वँत्सरं यावत, संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्" ॥

इति त्रयोदश्यादिपक्ष एव नित्य इति दाक्षिणात्याः । पृथ्वीचन्द्रोदये प्रयोगपारिजाते वशिष्ठो निषेधमाह—यथा—

"नन्दायां भार्गवदिने, त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि
एषु श्राद्धं न कुर्वीत, गृही पुत्रधनक्षयात् ॥

वृद्धगार्ग्यश्चाह––

"प्राजापत्ये च पौष्यर्क्षे, पित्रर्क्षे भार्गवे तथा ।
यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत, तस्य पुत्रो विनश्यति" ॥

इत्यादिवचनानि पितृपक्षश्राद्धव्यतिरिक्तपराणि बोध्यानि । इति ।

अथ त्रयोदशीश्राद्धम् ।

"त्रयोदशी शूद्रपदी, कृष्णा पितृप्रिया तथा ।
तृप्यन्ति पितरस्तस्यां, स्वयं पञ्चशतं समा ॥
मघायुतायां तस्यां तु, जलाद्यैरपि तोषिताः ।
तृप्यन्ति पितरस्तस्य, वर्षाणामयुतं तथा ॥

शंखश्चाप्याह––

"प्रौष्ठपद्यामतीतायां, मघायुक्तां त्रयोदशीं ।
सम्प्राप्य श्राद्धं कर्तव्यं, मधुना पायसेन च ॥
प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यञ्च धनं तथा ।
नृणां श्राद्धं सदा प्रीताः, प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥

वायवीये–यथा––

"हस्ते हस्तस्थिता या तु, मघायुक्ता त्रयोदशी ।
तिथिर्वैवश्वतं नाम, सैवार्य्याकुञ्जरस्य तु ॥
अपि नः स कुले भूयात, यो नो दद्यात् त्रयोदशीम् ।
"तिथिर्वैवश्वतीनाम, सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥
अपि नः स कुले भूयात्, यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिभ्याम , प्राक्छाये कुञ्जरस्य तु ॥

अत्र गजच्छायाश्राद्धं त्रयोदशीकृत्ये बोध्यम्।

अथ चतुर्दशीकृत्यम्। तत्र मरीचिः——

"विषशस्त्रस्वापदाहितिर्य्यक्ब्राह्मणघातिनाम्।
चतुर्दश्यां क्रिया कार्य्या, अन्येषान्तु विगर्हिता"॥

प्रचेताः——

"वृक्षारोहणलोहाद्यैः, विद्युद्वज्रहताश्च ये।
नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये, तेषां शस्ता चतुर्दशी॥

ब्राह्मे——

"युवानः पितरो यस्य, मृताः शस्त्रेण वा हताः।
तेन कार्य्यं चतुर्दश्यां, तेषां तृप्तिमभीप्सता॥
जलाग्निभ्यां विपन्नानां, सन्यासे वा गृहे पथि।
श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै, वर्जयित्वा चतुर्दशीम्"॥ इति

शाकाटायनादिषु अमावास्यायां विशेषमाह—यमः-—

चन्द्रे करस्थिते या तु, अमावास्या करान्विता॥
सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया, इति बौधायनोऽब्रवीत्॥
वनस्पतिगते सोमे, याच्छाया प्राङ्मुखी भवेत्॥
गजच्छाया तु सा प्रोक्ता, श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत॥ इति महेशचरणाः।

अत्र तिथिप्रदीपे दाक्षिणात्याः——"अथापरपक्षश्राद्धं पितृभ्यो दद्यात् पञ्चम्यादिदर्शान्तम्। अष्टम्यादि, दशम्यादि सर्वस्मिंश्चेति हेमाद्रिनागरखण्डे——

"आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे।
यो वै श्राद्धं नराः कुर्य्यदेकस्मिन्नपि वासरे॥

तस्य सम्वत्सरं यावत्सन्तुष्टाः पितरो ध्रुवम्। इति। सकृन्महालये वर्ज्यतिथ्यादिकम् पृथ्वीचन्द्रोदये-प्रबोधचन्द्रोदये-प्रयोगपारिजातादावुक्तम्। वशिष्ठः——

''नन्दायां भार्गवदिने, चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु ।
एषु श्राद्धं न कुर्वीत, पुत्रदारधनक्षयात्'' ॥ इति

जन्मभे पूर्वोत्तरे त्रिजन्मनि । आस्यापवादमाह हेमाद्रौ—

"अमापाते भरण्याञ्च, द्वादश्यां पक्षमध्यके ।
तथा तिथिञ्च नक्षत्रं, वारञ्च न विचारयेत ॥

पराशरमाधवपारिजातादिष्वेवम् । निर्णयदीपिकायान्तु—

"आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे, कन्यासंस्थे दिवाकरे ।
मृताहनि पितुर्यो वै, श्राद्धं दास्यति मानवः ॥
तस्य सव्वँत्सरं यावत्संतुष्टाः पितरो ध्रुवम्" ।

इति नागरखण्डोक्तेः ।

"या तिथिर्यस्य तातस्य, मृताहे तु प्रवर्तते ।
सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः" ॥

इति कात्यायनोक्तेश्च । अत्रिः—

"महालये क्षयाहे च, दर्शे पुत्रस्य जन्मनि ।
तीर्थे च निर्वपेत्पिण्डान्, रविवारादिकेष्वपि" ॥

इति कात्यायनः—

"अशक्तः पक्षमध्ये तु, करोत्येकदिनं यदा ॥
निषिद्धेऽपि दिने कुर्य्यात्, पिण्डदानं यथाविधि" ॥

इति स्मृत्यर्थसागरे—

"विवाहव्रतचूडासु, वर्षमर्द्धं तदर्द्धकम् ।
पिण्डदानं प्रकुर्वीत, युगादिभरणीमघे ॥
महालये गयाश्राद्धे, मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत, पिण्डनिर्वापनं सदा" ॥ इति

इत्यपरपक्षतत्कृत्यनिर्णयः ।

अथाश्विनशुक्लपक्षतत्कृत्यनिर्णयस्तोकः प्रदर्श्यते । चण्डिकार्चने प्रतिपत्कीदृशी ग्राह्येति निर्णयः प्रतिपत्तिथिनिरूपणे प्रागेवाभिहितः । तथाप्यत्र प्रकरणवशादुच्यते आश्विन-शुक्लप्रतिपत् परयुता ग्राह्येति ।

"शुक्ले पक्षे प्रकर्तव्या, प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी" ।

इति स्मृतेः । अपराह्णयोगिन्याः प्राशस्त्यं द्वितीयदिने प्रतिपदोऽभावे बोध्यम् ।

"आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्त्वा, षोडशद्वादशापि वा ।
अपराह्णे च कर्तव्या, शुद्धा सन्ततिकांक्षिभिः" ॥

इति शुद्धतिथौ निर्विवादः । तिथिद्वयवेधे द्वितीयाविद्धा कार्येति दाक्षिणात्याः । यथाव-चनमुद्घाटयन्ति—

"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला, भवेत्प्रतिपदाश्विने ।
नवरात्रव्रतं तस्यां, न कार्य्यं शुभमिच्छता ॥

इति मार्कण्डेयपुराण-देवीपुराणास्वरसात् । किञ्च—

"देशभङ्गो भवेत्तत्र, दुर्भिक्षं चोपजायते ।
नन्दायां दर्शयुक्तायां, यत्र स्यान्मम पूजनम्" ॥ इति

पुनश्च—

"प्रतिपद्याश्विने मासि, या शुद्धा शुभदा भवेत् ।
भाद्रपञ्चदशी कृष्णा, जयायुक्ता प्रदर्श्यते ।
विरुद्धफलदा सा हि, पुत्रदारभयावहा" । इत्यादि ।

तथा हि—देवीपुराणे—

"यो मां पूजयते नित्यं, द्वितीयायां गुणान्विताम् ।
प्रतिपच्छारदीम्पूजां, सोऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥
यदि कुर्य्यादमायुक्तप्रतिपत्स्थापनं मम ।

तस्मै शापायुतं दत्वा, तस्य शेषं करोम्यहम् ॥
आग्रहात्कुरुते यस्तु, कलशस्थापनं मम ।
तस्य सम्पद्विनाशः स्यात, ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति" ॥

इत्यनिष्टफलबोधकवाक्यानि च पठन्ति । तत्रायं विचारः ।

"व्रतोपवासनियते, घटिकैकाऽपि या भवेत् ।
सा तिथि तद्दिने पूज्या, विपरीता तु पैतृके" ॥ इति देवलः ।

तत्र घटिका = मुहूर्त इति गौडाः । यदा तु पूर्वदिने सम्पूर्णा शुद्धा च भूत्वा परदिने वर्द्धते तदा सम्पूर्णत्वादमायोगाभावाच्च पूर्वैव । द्वितीयायोगनिषेधकानि वचनानि यानि पठन्ति तान्यपि शुद्धाधिकनिषेधपराणि बोध्यानि । परदिने प्रतिपदोऽत्यन्तासत्त्वे तु दर्शयुक्ता पूर्वैव ग्राह्या । गौडनिर्णयादौदयिको ग्राह्या इति । घटिकेत्यस्य द्विमुहूर्तत्वोक्तेः द्विमुहूर्ता ग्राह्या ।

"उदिते दैवते भानौ, द्विमुहूर्ता यदा भवेत्" ।

इत्यादि तत्प्रमाणम् । देवीपुराणे यथा —

"कन्यासंस्थे रवौ चन्द्रे, शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ।
अयाची ह्यथ चैकाकी, नक्ताशी वाऽथ वास्वपः ॥
भूमौ शायी तु चामन्त्र्य, कुमारीं पूजयेन्मुदा ।
वस्त्रालङ्कारदानैश्च, सन्तोष्याः प्रतिवासरम् ॥
बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं माससंय्युतम् । इत्यादि ।

तत्र नन्दिकापदेन प्रतिपदं ग्राह्यमिति मैथिलाः । षष्ठीति गौडाः । रात्रौ पूजनमाह—

"आश्विने मासि मेधान्ते, प्रतिपद् या तिथिर्भवेत् ।
तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत, रात्रौ देवीं प्रपूजयेत् ॥
रात्रिरूपा यतो देवी, दिवारूपो महेश्वरः ।
रात्रिव्रतमिदं पुण्यं, सर्वपापं प्रणाशयेत" ॥

अत्र च देवीपूजा प्रधानम् , नक्तादिकमङ्गमिति ध्येयम् । पूजाप्रकारः, प्रदीपे—

"शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च, पूर्वं कृत्वा तु वेदिकां ।
यवान्वै दापयेत्तत्र, गोधूमैश्चापि संय्युतान् ॥
तत्र संस्थापयेत्कुम्भं, विधिना मन्त्रपूर्वकम् ।
सौवर्णं राजतं वापि, ताम्रं मृन्मयं तु वा" ॥ इति

..थात्र कलशस्थापनप्रकारः । यथा दुर्गोत्सवे—भूमिशोधनं यथा—ॐ भूरसि मिरस्यदितिरसि विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं माहिंसीः" । इत्यनेन भूमिशुद्धिं कृत्वा गोमयोदकेनोपलेपनं कुर्य्यादनेन—

"ॐ मानस्तोके तनये मान आयुषिमानो गोषु मानो अश्वेषुरीरिषः ।
मानो वीरान् रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे" ॥ इति

ततः

"ॐ आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः ।
पुनरुर्जानिवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः" ।

इति कलशं स्थापयित्वा । "ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद" ॥ इत्यनेन कलशे जलं दत्त्वा "ॐ या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः वृहस्पतिप्रसूताः ता नो मुञ्चन्त्वंहसः" । इत्यनेन जातिफलं पूगफलं वा दत्त्वा "ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम" । इत्यनेन पञ्चरत्नानि दद्यात् ।

"५लकं कुलिशनीलञ्च पद्मरागञ्च मौक्तिकम् ।
एतानि पञ्चरत्नानि मुनिभिः कथितानि च" ॥

इति पञ्चरत्नानि बोध्यानि । "ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृत । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरूषम्" । इत्यनेन पञ्चपल्लवं दद्यात् । "अश्वत्थोदुम्बराम्रवटवेतसपल्लवाः पञ्चविधाः ज्ञेयाः । "ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विशी-

मतः सुरुचो वेन आवः सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः शतश्च योनिमसतश्च वीरः"। इत्यनेन ब्रह्मस्थापनम्। "पञ्चाशद्भिः कुशैर्ब्रह्मा, तदर्द्धेन तु विष्टरः। ऊर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा, लम्बकेशस्तु विष्टरः। दक्षिणावर्तको ब्रह्मा, वामावर्तस्तु विष्टरः"। इति ब्रह्मविष्टरयोर्लक्षणम्। "ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायत्वोदानायत्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वामहीनां पयोसि"। इत्यनेन धान्यम्।

"ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्योज्योतिः स्वाहा"। इत्यनेन दीपदानम्। इति कलशस्थापनम्।

तत्र देवीपुराणे—

"इषे मासि सिते पक्षे, कन्याराशिगते रवौ॥
नवम्यां बोधयेद्देवीं, क्रीडाकौतुकमङ्गलैः।
ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां, षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम्॥
सप्तम्यां मूलयुक्तायां, पत्रिकायाः प्रवेशनम्।
पूर्वाषाढयुताष्टम्यां, पूजाहोमाद्युपोषणम्॥
उत्तरेण नवम्यां तु, बलिभिः पूजयेच्छिवाम्।
श्रवणेन दशम्यां तु, प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥
यावद् भूवायुराकाशं, जलं वह्निशशिग्रहाः।
तावच्च चण्डिकापूजा, भविष्यति सदा भुवि॥
प्रावृट्काले विशेषेण, आश्विने चाष्टमीषु च।
महाशब्दो नवम्यां तु, लोके ख्यातिं गमिष्यति॥
अत्र कन्याराशिगते रवाविति फलातिशयार्थम्।

प्रायिकाभिप्रायं वा। न तु निथमार्थमिति ध्येयम्।

अथ षष्ठी ।

देवीपुराणे चोक्तम्—

"ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां, षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणमि'ति ।

अत्र तिथिनक्षत्रयोगादरो मुख्यः ।

तदभावे तिथिरेव ग्राह्या युग्मादिवाक्यात् ।

"तिथिः शरीरं देवस्य, तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् ।

तस्मातिथिं प्रशंसन्ति, नक्षत्रं न तिथिं विना" ॥

इति विद्यापतिठक्कुरधृतवचनात् । किञ्च

"तिथिनक्षत्रयोर्योगे, द्वयोरेवानुपालनम् ।

योगाभावे तिथिर्ग्राह्या, देव्याः पूजनकर्मणि ॥ इति

अत्र पत्रिकाप्रवेशात् पूर्वेद्युः सायंकाले षष्ठ्यभावे तत्पूर्वदिनेऽधिवासनं कार्य्यम् । सायंकाले तदसत्त्वे अधिवासनलोपः ।

"षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत, बिल्ववृक्षेऽधिवासनम्" ।

इति क्रमस्तत्र च यथा—बिल्ववृक्षसमीपं गत्वा देवीं बिल्वञ्च सम्पूज्य प्रार्थयेत्—तत्र मन्त्रः—

"रावणस्य वधार्थाय, रामस्यानुग्रहाय च ।

अकाले ब्रह्मणा बोधो, देव्यास्त्वयि कृतः पुरा ॥

अहमप्याश्विने षष्ठ्यां, सायाह्ने बोधयाम्यतः ।

श्रीशैलशिखरे जातः, श्रीफलः श्रीनिकेतनः ।

नेतव्योऽसि मया वृक्ष, पूज्यो दुर्गास्वरूपतः" । इति

एवं देवीमधिवास्य परदिने निमन्त्रितबिल्वशाखापत्रिकाप्रवेशपूजनं कुर्य्यात् । तदुक्तं लिङ्गपुराणे—

"मूलाभावे तु सप्तम्यां, केवलायां प्रवेशयेत् ।

तथैव प्रतिमा देव्याः, स्नात्वाऽभ्युक्ष्य प्रवेशयेत् ॥

तथा च

मूलेनावाहयेद्देवीम्'' इत्यप्यनियतमिति बोध्यम् ।

अत्र

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च, सप्तमी पार्वतीप्रिया ।
रवेरुदयमीक्षन्ते, न तत्र तिथियुग्मता ॥

इति कृत्यतत्त्वोक्तिवचनात्पूजोपवासादौ सप्तमी सूर्य्योदयकालीनेति सिद्धम् । किञ्च तिथितत्त्वेऽपि नन्दिकेश्वरवचनं यथा—

"भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः ।
तिथावुदयगामिन्याः, सर्वास्ताः कारयेद्बुधः" ॥ इति

दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यामपि—घटिकातो न्यूना परा न कार्य्या

"व्रतोपवासनियमो घटिकैका यदा भवेत्" ।

इति देवलोक्तेः । किञ्च चक्रनारायण्यां क्रियायोगसम्वादे

"शरत्काले महापूजा, क्रियते या च वार्षिकी ।
सा कार्य्योदयगामिन्यां, न तत्र तिथियुग्मता" ॥

इति तिथितत्त्वोक्तेः । अत्रोदयकालीनघटिकामात्रतिथौ सम्यक् पूजाकरणासामर्थ्ये कालिकापुराणम्—

"सम्यक्कल्पोदितां पूजां, यदि कर्त्तुं न शक्यते ।
उपचारांस्तदा दातुं, पञ्चैतान्वितरेत्तदा ।
गन्धं पुष्पञ्च धूपञ्च, दीपं नैवेद्यमेव च ॥
अभावे पुष्पतोयाभ्यां, तदभावे तु भक्तितः" ।
संक्षेपपूजा कथिता, तथा वस्त्रादिकं पुनः" ॥ इति

अथ पत्रिकाः—

रम्भा कच्वी हरिद्रा च, जयन्ती विल्वदाडिमाः ॥
अशोको मानवृक्षश्च, धान्यादिनवपत्रिकाः" ॥

दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यामपि एवमेव पत्रिकाः ज्ञेयाः ॥

"आश्विने मासि शुक्ले तु, कर्तव्यं नवरात्रकम् ।
एकभक्तेन नक्तेनायाचितो पोषितः क्रमात्" ॥ इति ।

अथ महाष्टमी । सा द्विविधा शुद्धा विद्धा च । तत्र शुद्धायामविवाद एव । तिथिद्वयवेधे चाष्टमो नवमीयुता कार्य्या ।

"अष्टमी नवमीयुक्ता, नवमी चाष्टमीयुता" ।

इति पद्मपुराणीयवचनात् । किञ्च महाष्टम्याः कीदृश्याः कर्तव्यत्वमकर्तव्यत्वमिति निश्चयोऽष्टमीनिरूपणे द्रष्टव्यः ।

देवीपुराणे—

एकादशीकोटिसहस्रतुल्या ।
सिताष्टमी पर्वतराजपुत्र्याः ।
ततोऽपि शुक्ला गुणिता शतेन ।
पराशरव्यासवशिष्ठमुख्यैः ॥

स्कान्दे—

अष्टमी नवमीमिश्रा, कर्तव्या भूतिमिच्छता ।

अत्र भूतिश्रवणात पुत्रादेस्तदन्तर्भावात् पुत्रकामस्यापि उपवासव्यवहारः । यथा—

भविष्ये—

"शुक्लपक्षे तथाष्टम्यामुपवासपरायणः ।
मालतीकरवीरेण, विल्वपत्रैश्च पूजयेत् ॥
दुर्गेति नाम जप्तव्यम्, परतोऽष्टशतं नृप ।
सर्वमङ्गलनामेदं, जप्तव्यं किल भावतः" ॥

देवीपुराणे—

"अष्टमीं समुपोष्यैव, नवम्यामपरेऽहनि ।
मत्स्यमांसोपहारेण, दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥

तेनैव विधिना मांसं, स्वयं भुञ्जीत नान्यथा'' ॥ इति

एतेन अष्टम्युपवासस्य पारणं मांसेनापि तेन कर्तव्यमिति सूचितम् । भविष्ये

"अजानां महिषाणाञ्च, मेषाणाञ्च तथाविधात् ।
प्रीणयेद्विधिवद्दुर्गां, मांसशोणिततर्पणैः ॥
"दुर्गायाः दर्शनं प्राप्य, दर्शनादभिवन्दनम् ।
वन्दनात् स्पर्शनं श्रेयः स्पर्शनादभिपूजनम् ॥
पूजनात्स्नपनं श्रेयः, स्नपनात्तर्प्पणं स्मृतम् ।
तर्प्पणान्मांसदानन्तु, महिषाजनि पात्रगम् ॥

महिषो निपात्यते यत्र मांसबलौ । चर्मणि द्वीपिनं हन्तीतिवत् । किञ्च

स्वमेकमेकवरदा तृप्ता भवति चण्डिका ।
सहस्रं तृप्तिमायाति स्वदेहरुधिरेण तु ॥
तर्पिता विधिवद्दुर्गा, छित्त्वा बाहू च जङ्घके ॥
नारेण शिरसा वीर, पूजिता विधिवन्नृप ॥
तृप्ता भवेद् भृशं दुर्गा, वर्षाणां लक्षमेव तु ॥

स्वमेकः सर्व्वत्सरः । उरणस्य मेषस्य प्रदानमन्त्रः—कालिकापुराणे—

महामाये जगन्मातः, सर्वकामप्रदायिनि ।
ददामि देहरुधिरं, प्रसीद वरदा भव ॥
इत्युक्त्वा मूलमन्त्रेण, नतिपूर्वं विचक्षणः ।
स्वगात्ररुधिरं दद्यान्मानवः सिद्धिभाग्भवेत् ॥

अत्र स्त्रीत्वविशिष्टां व्यक्ति वलिं न दद्यादित्याह-देवीपुराणम्—

स्त्रियं न दद्यात्तु वलिं, दत्त्वा नरकमाप्नुयात ॥

कियद्वयस्कस्य पश्वादेर्वलिदानं कीदृशस्य वेति तत्रैवाह—

"न त्रिमासीयकान्न्यूनम्, पशुं दद्याच्छिवावलिम् ।
न च त्रैपक्षिकान्न्यूनं, प्रदद्याद्वै पतत्त्रिणम् ॥
काणव्यङ्गादिभिर्दुष्टं, न पशुं न पतत्त्रिणम् ।

छिन्नलाङ्गूलकर्णादिभग्नशृङ्गादिकं तथा ॥
कूष्माण्डमिक्षुदण्डञ्च, सद्यं पललमेव च ।
एते वलिसमाः ज्ञेयाः, तृप्तौ छागसमाः स्मृताः ॥

चन्द्रहासेन खड्गेन

अत्र कियतां वलीनां निषेधः कलावित्याह— याज्ञवल्क्यदीपिकायाम्—

"नराश्वमेधौ मद्यञ्च, कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः" ।

इति । किञ्चोशनाः—

"मद्यमपेयमदेयमनिर्ग्राह्यमि"ति ।

अनिर्ग्राह्यमस्वोकार्य्यमिति कल्पतरुः ।

कालिकापुराणेऽपि—

"स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा, आत्महत्यामावाप्नुयात् ।
मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु, ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥
न कृष्णसावमितरे, बलिं वै क्षत्रियादयः ।
ददत् कृष्णसावस्तु, ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ।

अतो मद्यप्रतिनिधिदानमपि न युक्तमिति बोध्यम् । पुनर्देवीपुराणे निशापूजाऽभिप्राये णाह—

"कन्यासंस्थे रवावीषे, शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत ।
सोपवासो निशार्द्धे तु, महाविभवविस्तरैः ।
पूजां समारभेद्देव्याः, नक्षत्रे वारुणेऽपि वा ।

पशुघातश्च कर्तव्यो,

अत्र नक्षत्रस्य योगाभावेऽपि तिथिरादरणीया । अत्रेदमवधेयम् ।

"मत्स्यांस्तु कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत् ।

इति याज्ञवल्क्येनोक्तम्—

"वृथा मांस न भोक्तव्यं भोक्तव्यं श्राद्धकर्मणि ।
अन्यथा भक्षयन् विप्रः, प्राजापत्यं समाचरेत्" ।

इति । छागलेयेनोक्तम्—

"नाद्यादविधिना मांसं, विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ।

जग्ध्वा त्वविधिना मांसं, प्रेत्य तैरघमश्नुते" ॥

इति मनुनोक्तम् ।

"श्राद्धे प्रदत्तं विधिना दैवे वाऽभ्यर्थितो द्विजः ।

उपाकृतान्महारोगान्, मांसं भुञ्जीत नान्यथा" ॥

इति व्यासेनोक्तं, तत्सर्वं चतुर्दश्यादितिथिविषयम् । अन्यथा सामान्येनैवाऽभक्ष्यत्वे तिथिविशेषनिषेधस्यानर्थक्यप्रसङ्गात् । तस्मादष्टम्यामुपवासं कृतवतो मांसेन निवेदितेन पारणे दोषाभावः । अत एव

"प्राणात्यये तथा श्राद्धे, प्रोक्षितं द्विजकाम्यया ।

देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य, खादन् मांसं न दुष्यति" ॥

इति संगच्छते । परन्तु मांसाशनत्यागकृतनियमानां मांसवर्जनमाह-यमः—

"भक्षयेत्प्रोक्षितं मासं, सकृद्ब्राह्मणकाम्यया ।

दैवे नियुक्तः श्राद्धे वा, नियमे तु विवर्जयेत ॥ इति

प्रोक्षितं = यज्ञार्थं संस्कृतं शस्त्रैर्ज्ञेयम् । आरण्यानामिदानीं तेन प्रोक्षणाद्यपेक्षा नास्तीत्याह—महाभारते—

"आरण्याः सर्वदैवत्याः, प्रोक्षिताः सर्वशो नृप ।

अगस्त्येन पुरा राजन्, मृगया येन पूज्यते ॥

प्रमाणान्तराप्राप्तत्वेन पशुना यजेतेत्यत्रैकत्ववद्विधेयविशेषणत्वेन आरण्याः इत्यादेः पुंस्त्वं विवक्षितम् । अत एव हरिवंशेऽपि—

"अवध्याश्च स्त्रियं प्राहुः, तिर्यग्योनिगतामपि ।

ततश्च न हरिण्यादीनां प्रोक्षितत्वम्, इत्यभक्ष्यत्वम् । तिथितत्त्वे—

"नियुक्तस्तु यथान्यायं, मांसं नाश्नाति मानवः ।

स प्रेत्य पशुतां याति, सम्भवानेकविंशतिम्" ।

इति मनुवचनम्। किञ्च पीयूषलतायाम्—

"आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे, दैवे कर्मण्यनातुरः ।
न भुनक्तीह चेन्मांसं, सोऽश्वमेधफलं लभेत्" ॥ इति

मासत्यागोपदेशेऽपि तत्फलमाह—नन्दिपुराणे—

"यश्चोपदेशं कुरुते, परस्य तु महात्मनः ।
मांसवर्जनफलं, सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

अतो रविवारादौ मत्स्यमांसत्यागमपि । मत्स्यमांसं विनापि रविवारादावष्टम्युपवास-पारणमिति रघुनन्दनभट्टाचार्य्याः । मांसपरित्यागे फलविशेषं याज्ञवल्क्योऽप्याह—

"सर्वान् कामानवाप्नोति, हयमेधफलं तथा ।
गृहेऽपि निवसन् विप्रो, मुनिर्मांसस्य वर्जनात्" ॥ इति

यत्तु मनुनोक्तम्—

"यक्षरक्षःपिशाचान्नं, मद्यं मांसं सुराऽसवम् ।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं, देवानामश्नतां हविः" ॥ इति

तदपि आममांसाभिप्रायेणैव । आममांसस्यैव राक्षसान्नत्वेन नानाऽगमेषु प्रसिद्ध-त्वात् । इति । रविवारे आमिषादिवर्जनमाह—भविष्ये—

"आमिषं रक्तशाकञ्च, यो भुङ्क्ते च रवेर्दिने ।
सप्तजन्म भवेत्कुष्ठी, दरिद्रश्चोपजायते ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, एकभुक्तं रवेर्दिने ।
कुर्य्यान्नक्तं हविष्यं वा, रोगयुक्तोऽन्यथा भवेत्" ॥ इति

स्मृतिः—

"मासमामिषमाषञ्च, मसूरं निम्बपत्रकम् ।
भक्षयेद्यो रवेर्वारे, सप्तजन्मन्यपुत्रकः ॥
स्त्रीतैलमधुमांसानि, सेवयेद्यो रवेर्दिने ।
सन्ततिं सप्तजन्मानि, हन्ति तस्य दिवाकरः

माषं मधु मसूरञ्च, काञ्जिकं पत्रमार्द्रकम् ।
वर्जयेद्रविवारे च, कांस्ये पात्रे च भोजनम्" ॥ इति

अथ प्रकृतमनुसरामः ।

"आश्विने मासि शुक्ले तु, कर्तव्यं नवधात्रिकम् ।
प्रतिपदादिक्रमेणैव, यावच्च नवमी भवेत्" ॥ इति

त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं, सप्तम्यादि यथाक्रमम् । इति कृत्यकल्पलताधृतभविष्योत्तरवचने पूजनस्य विधानात । तत्रातीते कर्मान्ते छन्दोगपरिशिष्टे दक्षिणाभिधानात् । यथा––

"ब्राह्मणे दक्षिणा देया, यत्र या परिकीर्तिता ।
कर्मान्ते जायमाने तु, पूर्णपात्रादिका भवेत्" ॥

ब्राह्मणे इति कारयितुरुपलक्षणम् । अत्र नवरात्रिकमित्यौपसर्गिकम्, तिथिवृद्धिह्रासाभ्यामधिकन्यूनतासम्भवात् । सप्तमीमधिकृत्य दाक्षिणात्यनिबन्धे–––

"मूल ऋक्षे सुराधीश, पूजनीया सरस्वती ।
पूजयेत्प्रत्यहं देव, यावद्वैष्णवमृक्षकम् ॥
नाध्यापयेन्न लिखेन्नाधीयीत कदाचन ।
पुस्तके स्थापिते देव, विद्याकामो द्विजोत्तमः" ॥

इति रुद्रयामलीयम् । संग्रहेऽपि—

"आश्विनस्य सिते पक्षे, मेधाकामः सरस्वतीम् ।
मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्" । इति।
"मूलेषु स्थापनं देव्याः, पूर्वाषाढासु पूजनम् ।
उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत्" ॥

इति देवीपुराणे इत्याहुः ।

अथाश्विनशुक्ला नवमी = महानवमी ।

"कन्यागते सवितरि, शुक्लपक्षेऽष्टमीयुता ।
मूलनक्षत्रसंयुक्ता, सा महानवमीस्मृता ॥

सा = शुद्धा-विद्धा च । तत्र शुद्धायां विवादाभावो विद्धायां निर्णयो यथा—

"श्रावणी दौर्गनवमी, दुर्वा चैव हुताशनी ।
पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" ॥

इति पद्मोक्तेः । किञ्च भविष्ये—

"अश्वयुक्शुक्लपक्षे तु, अष्टमी मूलसय्युँता ।
सा महानवमी नाम, त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा" ॥ इति

मूलमुपलक्षणम्—

"पूजासु नवमी या तु, मूलादित्रितयान्विता ।
महती कीर्तिता तस्यां, दुर्गा महिषमर्दिनी" ॥ इति

देवीपुराणेऽपि—

"अश्वयुक् शुक्लनवमी, मुहूर्तं वा कला यदि ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया, लक्ष्मीविद्याजयार्थिभिः" ॥ इति

सौधधर्मेऽपि—

"सूर्य्योदये परं रिक्ता, पूर्णा स्यादपरे यदि ।
बलिदानं प्रकर्तव्यं, तत्र देशे शुभावहम्" ॥ इति

राजमार्तण्डे—

"नवम्यां च जपं होमं, समाप्य विधिवद्बलिम्" । इति

ब्रह्मवैवर्ते—

"अत्रापराह्णिके काले, बलिदानं प्रशस्यते ।
दशमीं वर्जयेत्तत्र, नात्र कार्य्या विचारणा" ॥ इति

अत्र दाक्षिणात्या—

"अत्र बल्यादिकमुपक्रम्य नवम्यामेव समापयेत् ।
तिथ्यन्ते पारणं कुर्य्याद्यदि चेत्प्रहरद्वयम् ॥

"....गामिन्यां प्रातरेव हि पारणम्" ॥ इति

केचिदष्टमीमारभ्य नवम्यां समापयति ।

"पूर्वाषाढायुताष्टम्यां, पूजाहोमाद्युपोषणम् ।
नवम्यां बलिदानञ्च, कुर्य्यात्तत्र विभूतये" ॥ इति

तत्र मूलं शिष्टाचार एव । होमद्रव्यं चाज्यतिलादि ।

"पूजयेत्तिलहोमैश्च, दधिक्षीरघृतादिभिः ।
जयन्ती मङ्गला काली, भद्रकाली कपालिनी ॥
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री, स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते" ।
अनेनैव तु मन्त्रेण, जपहोमादि कारयेत् ॥

इति देवीपुराणात् । अत्र डामरतन्त्रे विशेषः—

"पायसं सर्पिषा युक्तं, तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् ।
होमयेद्विधिवद्भक्त्या, दशांशेन नृपोत्तम ॥
रुद्राध्याये यथाहोमम्मन्त्रैणेकेन साधयेत्" । इति

रुद्रयामलेऽपि—

"प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टपायसान्नं तिलांस्तथा ।
किंशुकैः सर्षपैः पूगैः; लाजादुर्वाङ्कुरैरपि ॥
यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैः, नानाविधफलैरपि ।
राजचन्दनखण्डैश्च, गुग्गुलैश्च मनोहरैः ॥
प्रतिश्लोकञ्च जुहुयात्, सर्वद्रव्याणि च क्रमात्" ।

इति ।

"अष्टम्यां जागरणं कुर्य्यात्, नवम्यां पारणं तथा ।
दशम्याञ्च विसर्गः स्यादभिषेकञ्च साधयेत्" ॥ इति

"नवम्यां तु विशालक्ष्याः, कार्य्याः होमादिकाः क्रियाः ।

पारणञ्च प्रकुर्वीत, देवीपूजनपूर्वकम् ॥
दशम्यां मिश्रिता यत्र, पारणे नवमी भवेत् ।
सप्तजन्मार्जितं पुण्यं, तत्क्षणादेव नश्यति" ॥

तथा—

"यो मोहात् पारणं कुर्य्यात्, दशमे दिवसे विभो ।
तद्राष्ट्रं नाशमायाति, दुर्भिक्षादिभयं भवेत् ॥
नृपहीनं भवेद्राष्ट्रं, दशम्यां पारणे कृते ।
तस्मात्तु पारयेदेव, नवम्यां भक्तितत्परः ॥
नवम्यां पारिता देवी, कुलवृद्धिं प्रयच्छति ।
दशम्यां पारिता देवी कुलनाशं करोति वै ॥
तस्मात्तु पारणं कुर्य्यान्नवम्यां विबुधाधिप" ॥ इति

मत्स्यपुराणेऽपि—

"नवम्यां पूर्ववत्पूजा, कर्तव्या भूतिमिच्छता ।
दक्षिणां वस्त्रयुग्मञ्च, आचार्य्याय निवेदयेत्" ॥ इति

पारणं तु सूतकेऽपि कार्य्यम् । रुद्रयामले यथा—

"सूतके पारणं कुर्य्यान्नवम्यां होमपूर्वकम् ।
तदन्ते भोजयेद्विप्रान्, दानं दद्याच्च शक्तितः" ॥ इति

किञ्च—

"काम्योपवासे प्रक्रान्ते, त्वन्तरामृतसूतके ।
तत्र काम्यं व्रतं कुर्य्याद्दानार्चनविवर्जितम्" ॥ इति माधवीये

कौर्मोक्तेश्च । एवं रजोदर्शनेऽपि स्त्रिया पारणं कार्य्यम् । तदाह सत्यव्रतः—

"प्रारब्धदीर्घतपसां, नारीणां यद्रजो भवेत् ।
न तत्रापि व्रतसाम्यादुपरोधः कदाचन" ॥ इति

एतच्च सधवापरम् । विधवायास्तु त्रिरात्रमध्ये भोजने निषेधादिति केचित् । तत्र

निषेधस्य रागप्राप्तभोजनगोचरत्वेन वैधपारणविपर्य्ययत्वायोगात् । अन्ये तु--

"नियमस्था यदा नारी, सम्पश्येदन्तरा रजः ।
उपोष्यैव तु ताः रात्रीः, स्नात्वा शेषं चरेद्व्रतम्" ॥

इत्यङ्गिरोवचनात् पञ्चमेऽहनि पारणं कार्य्यमित्याहुरित्यन्तमाहुः । अथ कृत्यमहार्णवे भविष्यपुराणे—

"नवम्यां श्रीसमायुक्ता, दैवैः सर्वैः सुपूजिता ।
जघान महिषं दुष्टमवध्यं देवतादिभिः ॥
लब्धाभिषेकं वरदा, शुक्ले च श्वयुजस्य तु ।
तस्मात्सा तत्र सम्पूज्या, नवम्यां चण्डिका बुधैः ॥
महत्त्वं हि यतः प्राप्ता, यत्र देवी सरस्वती ।
अतोऽर्थं महती प्रोक्ता, नवमीयं सदा बुधैः ॥
पूजयित्वा महादेवीं, नवम्यां तत्र चण्डिकाम् ।
महत्त्वं प्राप्तवान्धीरो, ब्रह्मा विष्णुस्तथाऽमराः ॥
तस्मादियं महापुण्या, नवमी पापनाशिनी ।
उपोष्या तु प्रयत्नेन, सततं सर्वपार्थिवैः ॥
मूलोत्तरेण ऋक्षेण, सय्युँक्ता विधिवन्नृप ।
विशेषतो ध्यानजपैः, बालवृद्धैः सयौवनैः ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः, शूद्रैरन्यैश्च सेवकैः ।
अत्र दानानि देयानि, सोपवासैर्नरैर्नृप ॥
गोसुवर्णादि राजेन्द्र, वस्त्राणि विविधानि च ।
स्वमांसरुधिरैर्दत्ते, देवी तुष्यति वै भृशम् ॥
महिषच्छागमेषाणां, रुधिरेण तथा नृप ।
स्वमेकमेकं वरदा, तृप्ता भवति चण्डिका ॥
अजस्य दशवर्षाणि, रुधिरेण सुतर्पिता ।

महिषेण शतं वीर, तृप्ता भवति चण्डिका ॥
सहस्रं तृप्तिमायाति, स्वदेहरुधिरेण तु ।
तर्पिता विधिवद्दुर्गा, भित्वा बाहू च जङ्घके ॥
नरेण शिरसा देवी, पूजिता विधिवन्नृप ।
तृप्ता भवेद् भृशं दुर्गा, वर्षाणां लक्षमेव च ॥
एवं नानाम्लेक्षगणैः, पूज्यते सर्वदस्युभिः ।
अङ्गवङ्गकलिङ्गैश्च, किन्नरैर्वर्बरैः शकैः ॥
मासिचाश्वयुजे शुक्ला, नवमी या नराधिप ।
तस्यां या क्रियते वीर, नरैः स्नानादिकं प्रभो ॥
तत्सर्वमक्षयं याति, तद्वै सिद्धकरं तथा" ॥ इति

तत्रैव । अथ प्रतिपदादितो दशमीपर्य्यन्तं कुमारीपूजा । तत्र शिवरहस्ये—ईश्वर उवाच—

"कथयामि न सन्देहः, कुमार्य्याः पूजनं मतम् ।
यस्याः पूजनमात्रेण, त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ॥
अणिमादीनि सिद्धयन्ति, पातालगुटिकाञ्जनम्" ।

तथा—

"एकवर्षा भवेत् सन्ध्या, द्विवर्षा च सरस्वती ।
त्रिवर्षा च त्रिमूर्तिश्च, चतुर्वर्षा तु बालिका ॥
सुभगा पञ्चवर्षा च, षड्वर्षा तु भवेदुमा ।
सप्तभिर्मालिनी साक्षात्, अष्टवर्षा तु भक्तिदा ॥
नवभिः कालसङ्कर्षा, दशभिस्त्वपराजिता ।
एकादशे तु रुद्राणी, द्वादशेऽब्दे तु भैरवी ॥
त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विशस्ता पीठनायिका ।
क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः, षोडशे चाम्बिका मता ॥

एवं क्रमेण पूज्यन्ते, यावत् पुष्पं न विद्यते ।
प्रतिपदादिपूर्णिमान्तं, मूर्तिभेदेन पूजयेत् ॥
महानवम्यां देवेशि कुमारीञ्च प्रपूजयेत् ।
महोत्सवे समुत्पन्ने, कन्या अष्टौ प्रपूजयेत् ॥
सर्वेषां तु कुमारीं वै पूजयेच्च प्रयत्नतः" । इति

किञ्च ग्रन्थान्तरे--

"एकवर्षा तथा कन्या, पूजार्थे तां विवर्जयेत् ।
गन्धपुष्पफलादीनां, प्रीतिस्तस्याः न विद्यते ॥

व्यवहारास्तु—

"द्विवर्षादारभ्य दशवर्षपर्य्यान्ता एव पूज्याः ।

तासां क्रमेण—कुमारिका, त्रिमूर्तिः, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा—सुभद्रेति नामभिः पूजा कार्य्या । सामान्यतस्तु पूजने—

"मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं, मातॄणां रूपधारिणीम् ।
ननु दुर्गात्मिका साक्षात्, कन्यामावाहयाम्यहम् ॥
एवमभ्यर्चनं कुर्य्यात्, कुमारीणां प्रयत्नतः ।
कञ्चुकैश्चैव वस्त्रैश्च, गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥
नानाविधैः भक्ष्यभोज्यैः, भोजयेत्पायसादिभिः ।
पाद्यार्घाचमनीयञ्च, स्नानं वसनभूषणे ॥
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनन्ततः ।
ताम्बुलमर्चनं स्तोत्रं, तर्प्पणञ्च नमस्क्रिया ॥
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांश्च षोडश ।
दशोपचारो यथाऽर्घ्यं, पानं निवेद्याथ तथैवाचमनीयकम् ॥
मधुपर्काचमनञ्चैव, गन्धपुष्पे ततः परम् ।
धूपदीपौ च नैवेद्यम्, दशोपचारकं स्मृतम्" ॥

पञ्चोपचारो यथा—

"गन्धादयो नैवेद्यान्ता, पूजा पञ्चोपचारिका" ॥ इति

कुमारीपूजने पक्षान्तरम्——

"एकवर्षा न कर्तव्या; कन्या पूजाविधौ नृप ।
अरसज्ञा तु भोगानां, गन्धादीनां तु बालिका ॥
कुमारिका च सा प्रोक्ता, द्विवर्षाया भवेदिह ।
त्रिमूर्तिनी त्रिवर्षा च, कल्याणी चतुराब्दिका ॥
रोहिणी पञ्चवर्षा च, कालिका षष्ठवार्षिकी ।
चण्डिका सप्तवर्षा च, अष्टवर्षा च शाम्भवी ॥
नववर्षा भवेद् दुर्गा, सुभद्रा दशवार्षिकी ।
अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या, सर्वकार्ये विगर्हिता ॥
एभिश्च नामभिः पूजा, कर्तव्या विधिसंयुता ।
तासां फलानि वक्ष्यामि, नराणां पूजने सदा ।
कुमारी पूजिता कुर्य्यात, दुःखदारिद्र्यनाशनम् ॥
शत्रुक्षयं धनायुष्यं, बलं वृद्धिं करोति वै ।
त्रिमूर्तिपूजनादायुस्त्रिवर्गस्य फलं भवेत् ॥
धनधान्यागमश्चैव, पुत्रपौत्रादिवृद्धि च ।
विद्यार्थी विजयार्थी च, राज्यार्थी यश्च पार्थिवः ॥
सुखार्थी पूजयेत्कल्याणीं सर्वकामदाम् ।
रोहिणीं रोगनाशाय, पूजयेद्विधिवन्नरः ॥
कालिकां शत्रुनाशार्थं, पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।
ऐश्वर्य्यधर्मकामाय, चण्डिकां परिपूजयेत् ॥
पूजयेच्छाम्भवीं नित्यं, नृपसम्मोहनाय च ।
दुःखदारिद्र्यनाशाय, संग्रामे विजयाय च ॥
क्रूरशत्रुविनाशार्थं, तथोग्रकर्मसाधने ।

दुर्गाञ्च पूजयेद्भक्त्या, परलोकसुखाय च ॥
वाञ्छितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रां पूजयेत्सदा ।
रोहिणीं रोगनाशाय, पूजयेद्विधिवन्नरः ॥
श्रीरसीति च मन्त्रेण, पूजयेद् भक्तितत्परः ।
श्रीयुक्तमन्त्रैरथ वा, बीजमन्त्रैरथापि वा ॥
कुमारस्य च तत्त्वानि, या सृजत्यपि लीलया ।
कादीनपि च देवांश्च, कुमारीं पूजयाम्यहम् ॥
सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तायास्तैर्हीना सौम्यरूपिणी ।
त्रिकालव्यापिनीं शक्तिं, त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥
कल्याणकारिणीं नित्यं, भक्तानां पूजिताऽनिशम् ।
पूजयामि च ताम्भक्त्या, कल्याणीं सर्वकामदाम् ॥
रोहयन्ति च बीजानि, प्राग्जन्मसञ्चितानि वै ।
या देवी सर्वभूतानां, रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥
अकारणात्समुत्पत्तिः, या मूर्तिः परिकीर्तिता ।
यस्यास्तां सुखदां, शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥
दुर्गाच्चापतिभक्तेषा, सदा दुर्गतिनाशिनी ।
दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां, तां दुर्गां पूजयाम्यहम् ॥
या सुभद्राणि भक्तानां, कुरुते पूजिता सदा ।
अभद्रनाशनीं देवीं, सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥
एभिर्मन्त्रैः पूजनीया, नवधा कन्यकास्त्विमाः ।
वस्त्रालङ्कारणैर्माल्यैः गन्धैरुच्चावचैरपि" ॥

एवमासां क्रमेण प्रत्येकपूजामन्त्रैः फलविशेषानुद्दिश्य षोडशोपचारैः दशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजा विधेया ।

इति कुमारिकापूजा

तिथितत्त्वचिन्तामणौ प्रतिपदादिनवम्यन्तं चण्डीपाठक्रमस्त्वयम्—

"स्वयञ्च लिखितं यच्च, शूद्रेण लिखितं भवेत् ।

अब्राह्मणेन लिखितं, तच्चापि विफलं भवेत् ॥
ऋषिच्छन्दादिकं यस्य, पठेत्स्तोत्रं विचक्षणः ।
स्तोत्रेण दृश्यते यत्र, प्रणवं तत्र विन्यसेत् ॥
सर्वत्र पाठो विज्ञेयः, त्वन्यथा विफलो भवेत् ।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर, जयपुर पुस्तकालय क्रमांक 8564

देवीपुराणे—

"यदाद्यदिवसे कुर्य्याच्चण्डिकापूजनादिकम् ।
द्विगुणं तद्द्वितीयेऽह्नि, त्रिगुणं तत्परेऽहनि ॥
नवमीतिथिपर्य्यन्तं, वृद्धया पूजाजपादिकम्" । इति

अत्र शतचण्ड्यादिविधानमपि यथाशक्ति कर्तव्यम् । तद्यथा—

"सहस्रचण्डीं विधिवच्छृणु विष्णो महामते ।
राज्यभ्रंशे महोत्पाते, जलमारे महाभये ॥
गजमारेऽश्वमारे च, परचक्रभये तथा ।
इत्यादिविविधैर्दुष्टे, क्षयरोगादिजे भये ॥
सहस्रचण्डिकापाठं, कुर्य्याद्वा कारयेत्तथा ।
पाठकास्तु शतं प्रोक्ताः, विशुद्धस्तस्य मण्डपः ॥
भोज्याः सहस्रं विप्रेन्द्राः, गोशतं दक्षिणां दिशेत् ।
गुरवे द्विगुणं देयं, शमोदानं तथैव च ॥
सप्तधान्यञ्च भूदानं, श्वेताश्वञ्च मनोहरम् ।
पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः, कर्तव्या धर्ममानतः ॥
अष्टहस्तभुजा देवी, सर्वायुधविभूषिता ।
अवारितान्नं दातव्यं, सहस्रं प्रत्यहं विभो ॥
अपूपेन च सन्तोष्याः, ब्राह्मणाश्च शतं तदा ।
एवं यश्चण्डिकापाठं, सहस्रं तु समाचरेत् ॥
तस्य स्यात् कार्य्यसिद्धिस्तु, नात्र कार्य्या विचारणा ।
इति सहस्रचण्डीविधिः ।

वाराहीतन्त्रे यथा--

"संकटे समनुप्राप्ते, दुश्चिकित्स्याभये तथा ।
जातिभ्रंशे कुलोच्छेदे, आयुषो नाश आगते ॥
वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ, धननाशे तथा क्षये ।
कुर्य्याद्यत्नाच्छतावृत्तिं, ततः सम्पद्यते शुभम् ॥
श्रेयोवृद्धिः शतावृत्त्या, कुलवृद्धिस्तथा परा ।
मनसा चिन्तितं देवि, सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छात् ॥
सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा ।
भुक्त्वा मनोरथान् कामान्, नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥
चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात्, सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ।

इति शतचण्डीप्रयोगः

"दशम्यां पारणां कुर्य्याद्देवीनैवेद्यसम्भवैः ।
भोजयेद् ब्राह्मणांस्तत्र, कुमारीं च पृथक् पृथक् ॥

कालिकापुराणे—

"कन्यासंस्थे रवावीषे, या शुक्ला तिथिरष्टमी ।
तस्यां रात्रौ पूजितव्या, महाविभवविस्तरैः ॥
नवम्यां बलिदानन्तु, कर्तव्यं वै यथाविधि ।
जपं होमञ्च''''कुर्य्यात्तत्र विभूतये ॥

अत्र नवम्यां होमश्रुतेः पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणमिति श्रुतेश्चोभयत्रैकस्मिन् वा होम आवश्यकः । अत्र दानादिकमप्यावश्यकम्—

"देवे दत्वात्र दानानि, देवे दद्यात्तु दक्षिणाम् ।
तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा निष्फलं भवेत्" ॥

इति मत्स्यपुराणात् । अत्र परिवारदेवतापूजनमपि कार्य्यम् ।

"देवान् सम्पूजयेद् भक्त्या, सुमनोभिः सकुंकुमैः ॥

धूपैर्दीपैर्मनोज्ञैश्च, पायसेन च भूरिणा ।
मात्रयान्नप्रदानैश्च, होमैः पुण्यैः सदक्षिणैः'' ॥

इति ब्रह्मपुराणात् । कथं पूजयेदित्याह देवीपुराणे—

''पूजयेत्तिलहोमैश्च, दधिक्षीरघृतादिभिः ।

''कुर्य्याद्देव्यास्तु मन्त्रेण'' इत्यभिधाय—

''ॐ जयन्ती मङ्गला काली, भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री, स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण, जपहोमौ तु कारयेत् ।
पुरश्चरणकार्य्येषु, विल्वपत्रयुतैस्तिलैः ॥
साक्षतैः सघृतैर्वापि, शिवामुद्दिश्य यत्नतः ।
जुहुयादनलं वृद्धं, संस्कृतं कामसिद्धये'' ॥ इति

अतो विल्वपत्रघृतयोगितेति । तथा—

''पञ्चोपचारैर्विधिवज्जयन्त्यादि ततः परम् ।
जयन्ती मङ्गला काली, भद्रकाली कपालिनी ॥
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री पुजनीया प्रयत्नतः ।
दक्षप्रान्ते ततो देव्याः, स्वाहाञ्चैव स्वधां तथा ॥ इति

पूजायां ह्रीमिति चतुरक्षरमप्याह—कालिकापुराणम् ।

''तल्लिङ्गैः पूजयेन्मन्त्रैः, सर्वान् देवान् समाहितः ।
नमस्कारेण पुष्पादि, विन्यसेत्तु पृथक् पृथक्'' ॥ इति

अत्र च तथा—

''अष्टम्यां भद्रकाली, दक्षयज्ञविनाशिनी ।
आविर्भूता महाघोरा, योगिनीकोटिभिः सह ॥
अतोऽत्र पूजनीया सा, तस्मिन्नहनि मानवैः'' ।

इति ब्रह्मपुराणदर्शनात् ।

"ॐ दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनी-
कोटिपरिवृतायै भद्रकाल्यै नमः" ।

इत्यनेनापि पूजा प्रचलति । होमदावङ्गुलीमानादिग्रहणे छन्दोगपरिशिष्टम्—

"मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्तरि ।
मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः ॥

यजमानासन्निधाने तु साधारणाङ्गुलीमानग्रहणम् । तथा कपिलपञ्चरात्रम्—

"अष्टभिस्तैः भवेज्ज्यैष्ठ्यं, मध्यमं सप्तभिर्यवैः ।
कल्यं संषड्भिरुद्दिष्टमङ्गुलं मुनिसत्तम ॥

तैः = प्रक्रम्यमानयवैः । कल्यं संकनिष्ठं मानन्तु पार्श्वेन । "षड्यवाः पार्श्वसम्मिता" इति कात्यायनात् । खादिरस्रुवाभावे कथं होमः कार्य्य इत्याह राघवभट्टधृतसंहिताया-म्—

"पलाशपत्रे निश्छिद्रे, रुचिरे स्रुक्स्रुवौ स्मृतौ ।
विदध्याद्वाश्वत्थपत्रे, संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥

यथोक्तकुण्डाज्ञाने वेद्यादौ कृते होमोपपत्तिरित्याह—वशिष्ठसंहितायाम्—

"तस्मात्सर्वं परीक्ष्यैवं, कर्तव्यं शुभवेदिकम् ।
हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा, संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥

क्रियासारेऽपि—

"कुण्डमेवं विधं न स्यात्, स्थण्डिलं वा समाश्रयेत् ।

किञ्च शारदातिलके—

"नित्यं नैमित्तिकं काम्यं, स्थण्डिले वा समाचरेत् ।
हस्तमात्रं तु तत्कुर्य्यात्, चतुरस्रं समन्ततः" ॥ इति

महाकपिलपञ्चरात्रे—

"संख्यानुक्तौ शतं साष्टं, सहस्रं वा जपादिषु ।

किञ्च—

"अष्टोत्तरशतं जाप्यं यावज्जीवितसंख्यया ॥
सहस्रं वा जपेद्देवि, नित्यपूजाविधौ पुनः ।
अशक्तश्चेद्विंशत्या, न्यूनं न जपेद् बुधः" ॥ इति

होमे स्वाहान्ततामाह—यज्ञपार्श्वः—

"आदाय दक्षिणे पाणौ स्रुवं त्रिमधुरं हविः ।
प्राङ्मुखो वह्निजायान्तं, जुहुयान्न्युब्जपाणिना" ॥ इति

त्रिमधुरम् = मधुशर्करान्वितम् । वह्निजाया = स्वाहा । द्विष्ठं स्वाहाऽनलप्रिया" इति राघवभट्टः । स्मृतिः—

"मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः ।
स्वाहावसाने जुहुयात, ध्यायन्वै मन्त्रदेवताम्" ॥ इति

मन्त्रतन्त्रप्रकाशेऽपि—

"नमोऽन्तेन नमो दद्यात, स्वाहान्ते द्विठमेव च ।
पूजायामाहुतौ चैव, सर्वत्राऽयं विधिः शिवे" ॥ इति

द्विठः = स्वाहेत्युक्तमेव । कथं जुहुयाद्धविरित्याह—गोभिलः—

"उत्तानेनैव हस्तेन, ह्यङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् ।
संहताङ्गलिपाणिस्तु, वाग्यतो जुहुयाद्धविः" ॥ इति

किञ्च—भविष्ये—

"आहुतिस्तु घृतादीनां, स्रुवेणाधोमुखेन तु ।
हुनेतिलाजाहुतींस्तु, दैवेनोत्तानपाणिना" ॥ इति

पञ्चाङ्गुलंत्यक्त्वा शङ्खमुद्रया स्रुवधारणमित्यत्र वाचस्पतिमिश्रकृतमहादाननिर्णयधृतवचनं यथा—

"पञ्चाङ्गुलान् बहिस्त्यक्त्वा, धारयेच्छङ्खमुद्रया" । इति

होमीयद्रव्ये क्रमेण विशेषमाह—विष्णुधर्मोत्तरे—

"दूर्वाहोमः परः प्रोक्तस्तेन स्वर्गे महीयते ।

तस्माद्दशगुणंपुण्यमिक्षुभिः प्राप्नुयात्कृते ॥
तस्माद्दशगुणं शस्यैर्व्रीहिभिर्द्विगुणं भवेत् ।
यवैश्चतुर्गुणं प्रोक्तं, तिलैर्दशगुणं स्मृतम् ॥
विल्वैर्दशगुणं प्रोक्तं, घृतेनाष्टगुणं भवेत्" ।

इति घृतस्य सर्वोत्कृष्टत्वमुक्तम् । अथ कियत्प्रमाणेन होमः कार्य्यः इत्याह—नीलतन्त्रादौ—

"अथात्र होमद्रव्याणां, प्रमाणमभिधीयते ।
कर्षमात्रं घृतं होमे, कर्षमात्रं पयः स्मृतम् ॥
उक्तानि पञ्चगव्यानि, तत्समानि मनीषिभिः ।
दधिप्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः ।
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः, शक्तवोऽपि तथोदिताः ।
गुडः पलार्द्धमानः स्याःच्छर्करापि तथा स्मृता ॥
ग्रासार्द्धं चरुमानः स्यादिक्षुः पर्वावधिः स्मृतः ।
एकैकं पत्रपुष्पाणि, तथाऽपूपानि कल्पयेत् ॥
कदलीफलनारङ्गं, फलान्येकैकशो विदुः ।
मातुलुङ्गं चतुः खण्डं, पनसा दशधा स्मृतम् ॥
अष्टधा नारिकेलानि, खण्डितानि विदुर्बुधाः ।
द्विधाकृतं फलं वैल्वकपित्थं खण्डितं द्विधा ॥
उच्चारकफलं होमे, चोदितं खण्डितं त्रिधा ।
फलान्यन्यानि खण्डानि, समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः ॥
दूर्वात्रयं सामुद्दिष्टाः गुडूची चतुरङ्गुलाः ।
व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युः, मुद्गमाषाः यवाः अपि ॥
तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवाः मुष्टिसम्मिताः ।
गोधूमाः रक्तशाकाः विहिता मुष्टिकामिता ॥
तिलाश्चणकमात्राः स्युः, सर्षपास्तत्प्रमाणकाः ।

भक्तिप्रमाणं लवणं, मरीचान्यपि विंशतिः ।
पुरं कुडवमानं स्याच्चामठं तत्समं स्मृतम् ॥
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च ।
तिन्तिडीबीजमानानि, समुद्दिष्टानि दैशिकैः ॥
वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत्, समिद्धोमेषु दैशिकः ।

शयानममाज्यहोमेषु, निषण्णं शेषवस्तुषु । स्रुवस्य शङ्खमुद्रया धारणं पूर्वमुक्तमतः शङ्ख-मुद्राऽपि प्रदर्श्यते मुद्राध्याये यथा—

"वामाङ्गुष्ठं तु संगृह्य, दक्षिणेनैव मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानं तथा मुष्टिमङ्गुष्ठन्तु प्रसारयेत् ॥
वामाङ्गुल्यस्तथाश्लिष्टाः, संयुक्ताः स्युः प्रसारिताः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंस्पृष्टा, मुद्रैषा शङ्खसञ्ज्ञका" ॥ इति

अग्नेर्नामानि यथा—छन्दोगपरिशिष्टे—

"लौकिकैः पावको ह्यग्निः पावकः परिकीर्तितः" ।

लौकिकैः गृहप्रवेशे—

"अग्निस्तु मारुतो नाम, गर्भाधाने विधीयते ।
पुंसवने चन्द्रमाश्च,''''कर्मणि शानभः ॥
सीमन्ते मङ्गलो नाम, प्रगल्भो जातकर्मणि ।
नाग्निः स्यात्पावको ह्यग्निः प्राशने च शुचिस्तथा ॥
सत्यनामाथ चूडायां, व्रतादेशे समुद्भवः ।
गोदाने सूर्यनामा च, केशान्ते ह्यग्निरुच्यते ।
वैश्वानरो विसर्गे तु, विवाहे याजकः स्मृतः" ॥ इति

गोदाने = गोदानाख्यसंस्कारे ।

चतुर्थ्यां तु शिखी नाम, धृतिरग्निस्तथापरे ।

अपरे धृतिहोमादौ,

प्रायश्चित्ते विचीनाम, पाकयज्ञे तु साहसः ।

लक्षहोमे च वह्निः स्यात्, कोटिहोमे हुताशनः ।।

पूर्णाहुत्या स्मृतो नाम, शान्तिके वरदस्तथा ।

पौष्टिके वरुणश्चैव, क्रोधोऽग्निश्चाभिचारके ॥

कोष्ठे तु जठरो नाम, क्रव्यादो मृतभक्षणे ।

विशेषतो नामाज्ञाने स्मृतिः—

"विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु ।

गुणविष्णुधृतस्मृतिरपि—

"सर्वतः पाणिपादान्तः, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।

विश्वरूपो महानग्निः, प्रणीतः सर्वकर्मसु" ॥ इति

ध्यानस्य आदित्यपुराणे—

"पङ्गुश्मश्रुककेशाक्षः, पीनाङ्गजठरोऽरुणः ।

छागस्थः साक्षसूत्रेऽग्निः, सप्तर्चिः शक्तिधारकः" ॥

छन्दोगपरिशिष्टे—

"यत्र व्याहृतिभिर्होमः, प्रायश्चित्तात्मको भवेत् ।

चतुरस्रस्तु विज्ञेया, स्त्रीपाणिग्रहणे यथा ॥

अपिराज्ञातुमित्येषा, प्रजापत्यापि वाहुतिः ।

होतव्या त्रिकल्पोऽयं, प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥

वायुपुराणे—

"अर्चिष्मा पिण्डितशिखः, सर्पिः काञ्चनसन्निभः ।

स्निग्धप्रदक्षिणश्चैव, वह्निः स्यात् कार्यसिद्धये ॥

ब्रह्मपुराणे—

क्षुत्तृट्क्रोधसमायुक्तो, हीनमन्त्रं जुहोति यः ॥

अप्रवृद्धे समृद्धे वा, सोऽन्धः स्यादन्यजन्मनि ।

आर्द्रकाष्ठैः सुसम्पूर्णे, फुत्कारवति पावके ॥

कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे, तथा लिहति मेदिनी ।

आहुतिं जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम् ॥

आपस्तम्बः—

"नाप्रोक्षितमिन्धमग्नावादध्यादिति ।

ततो बर्हिं पूजयेत् ।

"सम्पूजयेत्ततो बर्हिं, दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ।

यथोक्तहोमं कृत्वा मूर्द्धेत्यादिमन्त्रेण उत्थाय पूर्णाहुतिं दद्यात् । यथाग्निपुराणम्—

"मूर्द्धानं दिवेतिमन्त्रेण, संस्रुवेण च धारयन् ।

दद्यादुत्थाय पूर्णां वै, नोपविश्य कदाचन" ॥ इति

भविष्येऽपि—मूर्द्धानं दिवेति यजुर्वेदीयानां सामगानान्तु 'पूर्णहोममि' त्यादिर्मन्त्रः । वशिष्ठ ऐशान्यामाहरेद् भस्मस्रुचा चाथ स्रुवेण वा ।

"वन्दनं कारयेत्तेन, शिरः कन्यांशकेषु च ।

कश्यपश्येतिमन्त्रेण, यथार्थक्रमयोगतः ॥

ततः शान्तिं प्रकुर्वीत, अवधारणवाचनम् ।

दक्षिणा च प्रदातव्या, ग्रहादीनां विसर्जनम् ॥

शान्तिर्वामदेव्यगानादिः । पर्य्युक्षणं सर्वत्र कर्तव्यम् । 'अदिते' त्विति । अन्ते वामदेव्यस्य गानम् । इति । अथ वा त्रिधेति छन्दोगपरिशिष्टात् । गानं कुर्य्याद्दचस्त्रिधेत्यपि पाठः । अवधारणम् = अच्छिद्रावधारणं कर्तव्यं दक्षिणानन्तरं न तु पाठक्रमादेव । यथा नारदीये--

"वृथा विप्रवचो यस्तु, गृह्णाति मनुजः शुभे ।

अदत्वा दक्षिणां वापि, स याति नरकं ध्रुवम् ॥

अतः शारद्याः पूजायां नवम्यामेव दक्षिणा देया ।

"नवम्यां पूर्ववत्पूजा, कर्तव्या भूतिमिच्छता ।

दक्षिणा वस्त्रयुग्मञ्च, आचार्य्याय निवेदयेत्" ॥ इति

देवीविसर्जनानन्तरं न दक्षिणेति दुर्गाभक्तितरङ्गिणी । मत्स्ये--

"अर्थहीनो दहेद्राष्ट्रं, मन्त्रहीनस्तदर्थिनम् ।
आत्मानं दक्षिणाहीनो, नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥ इति

अर्थो = द्रव्यम् । पूजारत्नाकरे—

"भक्त्या पिष्टप्रदीपाद्यैः, चूताऽश्वत्थादिपल्लवैः ।
ओषधीभिश्च मेध्याभिः, सर्वबीजैर्यवादिभिः" ॥ इति
नवम्यां सर्वकालेषु, यात्राकाले विशेषतः ॥
यः कुर्य्याच्छ्रद्धया वीर, देव्या नीराजनं नरः ॥
शङ्खभेर्य्यादिनिनदैः, जयशब्दैश्च पुष्कलैः ।
यावन्तो दिवसान् वीर, देव्या नीराजनं कृतम् ॥
तावत्कल्पसहस्राणि, स्वर्गलोके महीयते ।

सर्वकाले = उत्सवकाले । देव्याः इत्यत्र स्त्रीत्वमविवक्षितम्, आचारात् । यात्राधिकारे हरेः स्तुतिः मत्स्यपुराणे--

"प्रयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः ।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं, पीडिते पीडितं भवेत्" ॥ इति

बलिदानं तु नवमीपर्य्यन्तमेव कर्तव्यम्--

"दशम्यां बलिदानं तु, दीयते यत्र मानवैः ।
तद्राष्ट्रं नाशमायाति, विविधोपद्रवैः स्फुटम्" ॥

इति कृत्यमहार्णवधृतभविष्यशिवरहस्योयोर्वचनात् । देवताप्रतिमां दृष्ट्वा भक्त्या नतिः कार्य्या ।

"देवताप्रतिमां भक्त्या, यतिं दृष्ट्वाप्यदण्डिनम् ।
नमस्कारं न कुर्य्याद्यः, प्रायश्चित्तीयते नरः" ॥

इति यमदग्निवचनात् । उत्तरामुखासीनो देवीपूजां कुर्य्यात् ।

"दिग्विभागे तु कौबेरी, दिशि सा प्रीतिदायिनी ।

तस्मात्तन्मुख आसीनः, पूजयेच्चण्डिकां सदा" ॥

इति कालिकापुराणात्। प्रतिमादिकस्थानेष्वप्सु आवाहनादिकं कुर्य्यात्।

"प्रतिमायाः स्थानेष्वप्सु आवाहनविसर्जनम्"।

इति बोधायनवचनात्। किं कृत्वा देवतापूजनं कार्य्यमित्याह सारसमुच्चये—

"स्नात्वा यथाविधि विधो तु, करानना ङ्घ्रि-

मात्रस्य सम्यगमलाम्बरयज्ञसूत्रः।

प्रागाननो धनददिग्वदनोऽथ वापि

बध्वासनं गणपतिञ्च गुरुञ्च नत्वा" ॥ इति

शिवार्चने—हिरण्यादिदानाकरणे दोषमाह–भविष्यपुराणम्—

"बलिहीने च दुर्भिक्षं, गन्धहीने दुर्भाग्यताम्।

धूपहीने तथोद्वेगं, वस्त्रहीने धनक्षयम्" ॥ इति

अस्य प्राप्नुयादिति शेषः। अथ कीदृशो धूपो देव्यै देय इत्याह–स्मृतिः—

मधु मुस्तं घृतं गन्धो, गुग्गुलं गुरुशैलजम्।

सबलं सिह्लसिद्धार्थं, दशाङ्गो धूप इष्यते ॥

दशाङ्गो = दशघटितः। शैलजम् = सुनसि इति ख्यातम्। सिह्लेति। सिह्ल इति ख्यातम्। सिद्धार्थम् = श्वेतसर्षपः।

"तरुष्कग्रन्थिकर्प्पूरनागरागुरुकुङ्कुमैः।

मुरामांसीसितामिश्रं, धूपं दद्यात्सदीपकम्" ॥

तरुष्कं = सिह्लकम्। ग्रन्थिः = गेठि आनीति प्रसिद्धम् मुरा सुनाम इति ख्याता। मांसी = जटामासीतिख्याता सिता = शर्करा। नागरा = शुण्ठी।

अथ देव्यै किं किं वस्तु देयमित्याह–कालिकापुराणम्—

"नाङ्गलं क्रमुकं दत्वा, रुचकं करमर्दकम्।

सौभाग्यमतुलं प्राप्य, देवीलोके महीयते।

परमान्नं पिष्टकञ्च, यावकं कृशरं तथा।

मोदकं पृथुकादीनि, कन्दुपक्कानि चोत्सृजेत् ।।
हरिशान्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ।
निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च ॥
क्षीरादीन्यथ गव्यानि, माहिषाणि च सर्वशः" ॥

नाङ्गलं = नारिकेलम् । क्रमुकम् = गुवाकम् । रुचकम् = बीजपूरम् । करमर्दकम् = पानीयामलकम् । कन्दुपक्कम् = जलं विना केवलपात्रे यद्वह्निना पक्कम् ।

अथ वाद्यविचारो—योगिनीतन्त्रे—

"शिवागारे झल्लकञ्च, सूर्य्यागारे च शङ्खकम् ।
दुर्गागारे वंशिवाद्यं, मधुरीं च न वादयेत्" ॥

झल्लकं = कांस्यनिर्मितम् ।

"तालकं गीतवाद्यादि, गृहस्थाग्रे च कारयेत्" ।

पुण्यबुद्ध्या परकीयधर्म्मकार्य्ये मूल्यमगृह्णन् तत्कार्यं कुर्वन् फलमाप्नोति ।

"अभिरूपेण सम्पन्नान्, घटयित्वा विना भृतिम् ।
धर्मकार्य्यमिति ज्ञात्वा, न गृह्णन्ति कथञ्चन" ॥

इति मत्स्यपुराणात् प्रतिपदादितत्तिथिषु कृत्यमाह—भविष्ये—

"केशसंस्कारद्रव्याणि, प्रदद्यात्प्रतिपद्दिने ।
पट्टडोलं द्वितीयायां, केशसंयमहेतवे ॥
दर्प्पणं च तृतीयायां, सिन्दूरालक्तकं तथा ।
मधुपर्कं चतुर्थ्यां तु, तिलकं नेत्रमण्डले ॥
पञ्चम्यामङ्गरागांश्च, शक्त्यालङ्करणानि च ।
षष्ठ्यां विल्वतरौ बोधं, सायं सन्ध्यासु कारयेत् ॥
सप्तम्यां प्रातरानीय, गृहमध्ये प्रपूजयेत् ।
उपोषणमथाष्टम्यामष्टशक्तेः प्रपूजनम् ॥
नवम्यामुग्रचण्डायाः, देव्याश्चैवार्चनं दिवा ।

पूजा च बलिदानं च, तद्वन् मातॄः प्रपूजयेत् ॥
कुमारी पूजनीया च, भूषणीया च भूषणैः ।
सम्पूज्य प्रेषणं कुर्य्यात्, दशम्यां शारदोत्सवैः ॥
अनेन विधिना यस्तु, देवीं प्रीणयते नरः ।
स्कन्दवत्पालयेत्तं तु, देवी सर्वापदि स्थितम् ॥
पुत्रदारधनर्द्धीनां, संख्या तत्र न विद्यते ।
भुक्त्वेह परमान् भोगान्, प्रेत्य देवगणो भवेत्" ॥

सिन्दूरं देव्याः कुत्राङ्गे देयमित्याह—मत्स्यपुराणम्--

"सिन्दूरं नाम चूर्णञ्च, देवीशिरसि पातयेत्" । इति

अथ प्रसङ्गात् दुर्गोत्सवानुसारेण शारदी पूजा लिख्यते अथ प्रागुक्तप्रकारेण यथोक्तवेद्यां कलशस्थापनं कृत्वा वेद्यां "जयन्तीमङ्गले" तिमन्त्रेण यववपनं विधाय सति सम्भवे ब्रह्मवरणं यथाकामं निमित्तान्युपादाय श्रीमद्देव्याः साम्वरीपूजामहङ्करि इति सङ्कल्प्य, अष्टदलकमलं विलिख्य, तत्र पीठं संस्थाप्य, वामभागे त्रिपादिकाय मर्घपात्रं संस्थाप्य, तस्मिन् गन्धाक्षतादीनि दत्वाऽनन्तरं जलं च । तेन जलेनोप लिप्तपूजासामग्रीमभिषिञ्चेत् । ततः पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा यथोक्तरूपां देवीं ध्यायेत्—

"ॐ जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तां, पद्मेन्दुसदृशाननाम् ॥
अतसीपुष्पवर्णाभां, सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।
नवयौवनसम्पन्नां, सर्वाभरणभूषिताम् ॥
सुचारुदशनां तद्वत्, पीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानाम्. महिषासुरघातिनीम् ॥
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात्, खड्गं चक्रं तथैव च ।
तीक्ष्णवाणं तथा शक्तिं, वामतो विनिवेशयेत् ॥
खेटकं पूर्णचापञ्च, पाशमङ्कुशमेव च ।

····घण्टाञ्च, वामतः सन्निवेशयेत् ॥
अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।
शिरच्छेदोद्यतं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ॥
हृदि शूलेन निर्भिन्नं, तिर्य्यग्दन्तविभूषितम् ।
रक्तरक्तीकृताङ्गञ्च, रक्तविस्फूर्जितेक्षणम् ॥
वेष्टितं नागपाशेन, भ्रुकुटीकुटिलाननम् ।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्च, देव्याः सिंहं विभावयेत् ॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं, समं सिंहोपरि स्थितम् ।
किञ्चिदूर्द्धं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ॥

इति ध्यात्वा वामनाशापुटेन देवीतेजः पुष्पाञ्जलौ संयोज्य, पीठे स्थापयेत् । ततः—

"आवहयाम्यहं देवीं, सर्वकामार्थसिद्धये ।
अस्यां मूर्तौ समागच्छ, स्थितिञ्च कृपया कुरु ॥
रक्षां कुरु सदा भद्रे, विश्वेश्वरि नमोऽस्तु ते" ।

ॐ भगवति दुर्गे इहागच्छ, इह सन्निधेहि ॥ इह सुस्थिरा भव, इह सुप्रसन्ना भवेत्यावाहनादि विधाय यथा सम्भवैः षोडशोपचारैः दशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत् । पूजामन्त्रस्तु—

"ॐ जयन्ती मङ्गला काली, भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री, स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते" ॥
"ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा ।

अथ वा—

"ॐ दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै, योगिनीकोटिपरिवृतायै भद्रकाल्यै नमः" ।

एतत्त्रिषु मन्त्रेष्वेकेन पूजा कर्तव्या । तत्र षोडशोपचारो यथा—

"आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च ॥

सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवेद्यचन्दनम् ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांस्तु षोडश" ॥

पक्षान्तरं च—

"आसनं पाद्यमर्घ्यं च, तथैवाचमनीयकम् ।
मधुपर्कं स्नानजलं, वस्त्रचन्दनभूषणम् ॥
पुष्पं धूपञ्च दीपञ्च, नेत्राञ्जनमतः परम् ।
नैवेद्याचमनीयञ्च, प्रदक्षिण नमस्स्तुतिम् ॥
एते षोडशनिर्दिष्टा, उपचारास्तु षोडश" ।

दशोपचारो यथा—

"पाद्यार्घाचमनीयञ्च, मधुपर्काचमनीयकम् ।
गन्धादिपञ्चकञ्चेति, उपचारा दशोदिताः" ॥

पञ्चोपचारो यथा—

"गन्धादयो नैवेद्यान्ताः, पूजापञ्चोपचारिकाः ।
अर्घाद्याः पञ्च पञ्चैव, गन्धाद्याः इति भेदतः" । इति
ॐ आँ ह्रौँ क्राँ हं सः श्रीदुर्गादेव्याः इह प्राणाः ॥

ॐ इत्यादिजीव इह स्थितः । ॐ इत्यादि सर्वेन्द्रियाणि । ॐ इत्यादि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रप्राणघ्राणाः इहागत्य सुखञ्चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । इत्यनेन प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण लेलिहानमुद्रया प्रतिमायां प्राणप्रतिष्ठां विधाय षोडशोपचारैः पूजामारभेत् । यथा—प्रोक्तमन्त्रान्यतमेन इदमासनम् ॐ दुर्गादेव्यै नमः । इदं पाद्यं प्रोक्तमन्त्रेण ॐ दुर्गादेव्यै नमः इति दद्यात् पादयोः । ततो यथोक्तमर्घ्यमादाय तथैव स्वाहा इति शिरसि दद्यात् । ततो यथोक्तमाचमनीयमादाय तथैव ॐ दुर्गादेव्यै स्वधा इति मुखे दद्यात् । ततो यथोक्तमधुपर्कमादाय प्रोक्तमन्त्रेण एष मधुपर्कः ॐ दुर्गादेव्यै स्वधा इति मुखे दद्यात् । ततः पुनराचमनीयं मुखे दद्यात् । ततः सुगन्धिजलमादाय यथोक्तमन्त्रेण इदं स्नानीयम् ॐ दुर्गादेव्यै नमः इति सर्वाङ्गे सुगन्धिजलं दद्यात् । ततः पु-

नराचमनीयं दत्त्वा, प्रोक्तमन्त्रेण इदं रक्तवासोयुगं बृहस्पतिदैवतम् ॐ दुर्गादेव्यै नमः इति वासो दद्यात्। ततः सिन्दूरम्, अञ्जनम्, अलङ्करणानि च दद्यात्। ततः श्वेतानुलेपनम्, रक्तचन्दनम्, अक्षतञ्च क्रमेण दद्यात्। ततो द्रोणपुष्पमादाय

ॐ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां, द्रोणपुष्पं सदा प्रियम्।
तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये॥

इदं द्रोणपुष्पं ॐ दुर्गादेव्यै वषट्। किम्वा नमः इति दद्यात्। ततो विल्व-पत्रं गृहीत्वा —

"अमृतोद्भवं श्रीवृक्षम्, शङ्करस्य सदा प्रियम्।
विल्वपत्रं प्रयच्छामि, पवित्रं ते सुरेश्वरि"॥

इदं विल्वपत्रं ॐ दुर्गादेव्यै नमः इति शिरसि दद्यात्। ततः पुष्पमाल्यं दत्त्वा, यथा-लाभं जातिचम्पकपद्मकुमुदमल्लिकाकरवीरयवादिपुष्पैः समर्चयेत्। ततः फडिति प्रक्षा-लितधूपपात्रे अङ्गारं दत्वा, तस्मिन् अष्टगन्धादिधूपं निधाय ॐ जयध्वनिमन्त्र-मात्रे स्वाहा इत्यनेन घण्टां सम्पूज्य, वामहस्तेन घण्टां वादयन् दक्षिणहस्तेन धूप-पात्रं गृहीत्वा,

"ॐ वनस्पतिरसो दिव्यो, गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानाम्, धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्"॥

एष धूपः ॐ दुर्गादेव्यै नमः इत्यनेन देव्याः समीपे धूपयेत्। ततः एवं दीपं संस्कृ-त्य—

"ॐ सुप्रकाशो महातेजाः सर्वत्र तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिः, दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

एष दीपः ॐ दुर्गादेव्यै नमः इत्यनेन दृष्टिपर्य्यन्तमितो दीपं दद्यात्। ततो नैवेद्यस-म्भृतिमादाय—

"ॐ सत्पात्रशुद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम्।
निवेदयामि देवेशि, सानुगायै गृहाण तत्"॥

इति मन्त्रेण नानाविधनैवेद्यम्, ॐ दुर्गादेव्यै समर्पयामि एवं नैवेद्यं दत्त्वा, आचम

नोयं दद्यात् । ततः ताम्बूलं दत्त्वा स्तवं पठन् चामरव्यजनं कुर्य्यादिति । ततः प्रोक्तमन्त्रेण पञ्चपुष्पाञ्जलिं दद्यात् ततो भगवति दुर्गे ॐ तवावरणदेवताः पूजयामि इति तदनुज्ञां गृहीत्वा, तदावरणपूजामारभेत् । हृद्याद्यङ्ग देवताभ्यो नमः इत्येकदैव पूजयेत् । ततः ॐ आर्य्यायै नमः । ॐ दुर्गायै नमः । ॐ भद्रायै नमः । ॐ भद्रकाल्यै नमः । ॐ अम्बिकायै नमः । ॐ क्षेम्यायै नमः । ॐ देवगर्भायै नमः । ॐ क्षेमकर्य्यै नमः । ॐ चक्राय नमः । ॐ शंखाय नमः । ॐ खड्गाय नमः । ॐ खेटकाय नमः । ॐ कोदगेयाय [गदाय]नमः । ॐ शूलाय नमः । ॐ कपालाय नमः । ॐ ब्रह्माण्यै नमः । ॐ माहेश्वर्य्यै नमः । ॐ कौमार्य्यै नमः । ॐ वैष्णव्यै नमः । ॐ वाराह्यै नमः । ॐ इन्द्राण्यै नमः । ॐ चामुण्डायै नमः । ॐ महालक्ष्म्यै नमः । ततो बहिरष्टदिगन्तः । ॐ इन्द्राय नमः । ॐ अग्नये नमः । ॐ यमाय नमः । ॐ नैर्ऋतये नमः । ॐ वायवे नमः । ॐ कुवेराय नमः । ॐ ईशानाय नमः । ओँ ब्रह्मणे नमः । ओँ अनन्ताय नमः । ततः प्रोक्तमन्त्रेण पञ्चपुष्पाञ्जलिं दत्वा जपं कृत्वा, ओँ गुह्यागुह्येति मन्त्रेण देव्याः वामकरे जपं समर्प्य पुनःपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा स्तवादिकं पठित्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गप्रणतिं विधाय राजोपचारान् प्रदर्शयेत् । ततः इदं नैवेद्यं ओँ मातङ्ग्यै नमः इति निर्माल्यं निवेदयेत् । होमे कर्तव्ये स्तवादिकं पठित्वा यथोक्तप्रकारेण होमं कुर्य्यात् । सति सम्भवे बलिदानमपि कर्तव्यम् । जपकरणे गोमुखी ग्राह्या । सा कस्येति विचारः सम्मोहनतन्त्रे—

"माला मन्त्रसमा ज्ञेया, तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ।
वाससाच्छादयेन्मालां, सर्वतन्त्रेषु सुन्दरि ॥
न दद्यात्कृष्णवस्त्रञ्च, न दद्याद्बहुवर्णकम् ।
न दद्याल्लोमजं वस्त्रमुक्तवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥
कौशेयं रक्तवर्णञ्च, पीतवस्त्रं सुरेश्वरि ।
अथ कार्पासवस्त्रेण, यत्नतो गोपयेत्सुधीः" ॥ इति

परन्तु लोमजादिवस्त्रेणापि गोमुख्याः व्यवहारस्य बहुशो दृष्टत्वात् तत्र किं मूलमिति मृग्यम् । अथ यथोक्तदुर्गापाठसंकल्पं कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् । सति सम्भवे स्वय-

मपि दुर्गामाहात्म्यश्रवणं कुर्य्यात् । श्रवणानन्तरं कुमारीपूजनम् । तत्र प्रकारो यथा — प्रथममावाहनम् ।

ओँ त्र्यक्षरमयीं देवीं, मातॄणां रूपधारिणीम् ।
नवदुर्गामिमां साक्षात्कुमारीमावाहयाम्यहम् ॥

एवमावाह्य संकल्पं कुर्य्यात् । "ओँ अद्य सकलदुःखदारिद्र्यानुत्पत्तिशत्रुक्षयायुष्यबलवीर्यकामः कुमारीपूजनमहं करिष्ये । दुर्गाप्रीतिकामो वेति । संकल्पानन्तरं कुमारीणां प्रत्येकम् पादौ प्रक्षाल्य सुलिप्तस्थाने आसने उपवेशयित्वा मनोज्ञकुङ्कुममाल्यवासोभूषणैः समभ्यर्च्य खण्डमोदकगुडघृतदुग्धमधूनि यथासुखं भोजयित्वाऽन्नपानादिकं दद्यात् । ततः करे अक्षतं दत्त्वा,

"ओँ जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये, सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
पूजां गृहाण कौमारी जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥

इति नमस्कृत्य विसर्जयेत् । अत्र त्रिमूर्तिपूजनं कुशादीन्यादाय—

"ओँ अद्य दीर्घायुष्ट्वापमृत्युव्याधिपीडादुःखाभावकामः त्रिमूर्तिपूजनमहं करिष्ये" ॥

इति संकल्प्य गन्धपुष्पाक्षतैः समभ्यर्च्य भोजनादिकं दत्वा,—

"ओँ त्रिपुरां त्रिगुणाधारां, विसर्गज्ञानरूपिणीम् ।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं, त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्" ॥ इति विसर्जयेत् ।

अथ कल्याणीपूजा ।

कुशादीन्यादाय ओँ अद्य धनधान्यारोग्यापुत्रपौत्रकल्याणवृद्धिकामः कल्याणीपूजनमहं करिष्ये । पूर्ववत्सम्पूज्य भोजनादिकं दत्त्वा

"ओँ कालात्मिकां कालातीतां, कारुण्यहृदयां श्रियम् ।
कल्याणजननीं नित्यं, कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥ इति विसर्जयेत् ।

अथ रोहणीपूजा ।

कुशादीन्यादाय "ओँ अद्य आरोग्यजयशक्तिकामो रोहिणीपूजनमहं करिष्ये । इति संकल्प्य पूर्ववत्सम्पूज्य भोजनादिकं दत्त्वा—

"कामचारीं शुभां कान्तां, कालचक्रस्वरूपिणीम् ।
कामदां करुणोदारां, कालिकां पूजयाम्यहम्" ॥ इति विसर्जयेत् ।

अथ भवानीपूजा ।

कुशादीन्यादाय,

ओँ दुःखदारिद्र्यपापविनाशप्रतिपक्षनृपसम्मोहनकामो ।

''ओँ अणिमादिगुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम् ।

अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं, रोहिणीं पूजयाम्यहम्'' ॥ इति विसर्जयेत ।

अथ कालिकापूजा

कुशादीन्यादाय,

''ओँ अद्य विद्याजयराज्यशत्रुविनाशकामः

कालिकापूजनमहङ्करिष्ये'' ।

इति संकल्प्य पूजां कृत्वा भोजनादिकं दत्त्वा,

''कामचारीं शुभां कान्तां, कालचक्रस्वरूपिणीम् ।

कामदां करुणोदारां, कालिकां पूजयाम्यहम्'' ॥ इति विसर्जयेत् ।

अथ चण्डिकापूजा ।

कुशादीन्यादाय,

''ओँ अद्य ऐश्वर्य्यशुभस्वर्गसंग्रामजयकाम-

श्चण्डिकापूजनमहं करिष्ये'' ।

इति संकल्प्य पूर्ववत्सम्पूज्य भोजनादिकं दत्त्वा—

''चण्डवीरां चण्डमायां, चण्डमुण्डप्रभञ्जनीम् ।

पूजयामि सदा देवीं, चण्डिकां चण्डविक्रमाम्'' ॥ इति विसर्जयेत् ।

अथ भवानीपूजा ।

कुशादीन्यादाय,

''ओँ अद्य दुःखदारिद्र्यपापविनाशप्रतिपक्षनृपसम्मोहनकामो भवानी-पूजनमहं करिष्ये'' ॥

इति संकल्प्य पूर्ववत्सम्पूज्य भोजनादिकं दत्त्वा—

"सदाऽनन्दकरीं शान्तां, सर्वदेवनमस्कृताम ।
सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं, भवानीं पूजयाम्यहम्" ॥ इति विसर्जयेत् ।

अथ दुर्गापूजा ।

कुशादीन्यादाय,

ओँ अद्य सरलोत्कटशत्रुजनितसङ्कटनिवृत्तिकामो दुर्गापूजनमहङ्क-रिष्ये" ॥

इति संकल्प्य, पूर्ववत्सम्पूज्य भोजनादिकं दत्त्वा—

"ओँ दुर्गे सुदुस्तरे कार्य्ये, भवशत्रुविनाशिनी ।
पूजयामि सदा भक्त्या, दुर्गे दुगार्तिनाशिनीम्" ॥ इति विसर्जयेत् ।

अथ सुभद्रापूजा ।

कुशादीन्यादाय,

ओँ अद्य धनधान्यवाञ्छितफलदासीदाससमृद्धिकामः सुभद्रापूजनमहं करिष्ये ॥

इति संकल्प्य पूर्ववत्सम्पूज्य भोजनादिकं दत्त्वा—

"ओँ सुन्दरीं स्वर्णवर्णा भां, सुखसौभाग्यदायिनीम् ।
सुभद्रां जननीं देवीं, सुभद्रां पूजयाम्यहम्" ॥

क्षमस्वेति विसर्जयेत ॥

ततः ।

"न तथा तुष्यते शक्रो, होमदानजपेन च ।
कुमारीभोजनेनात्र, यथा नित्यं प्रसीदति ॥
पितरो वसवो रुद्रादित्यादिगणदेवताः
सर्वे ते तर्पितास्तेन, कुमार्य्यो येन पूजिताः ॥

इति पठित्वा नमस्कुर्य्यात् । ततो ब्राह्मणान् भूरिभक्ष्यादिभिस्तर्पयेत् ।

अथ छागबलिः ।

छागान् सम्पूज्य संकल्पं कुर्य्यात् । "ओँ अद्य घातनीयच्छागसममसंख्यवर्षशलाव-

च्छिन्नदुर्गालोकवासकामः एताँश्छागान् वह्निदैवतान् श्रीदुर्गादेव्यै घातयिष्ये" । एवं संकल्प्य छागदक्षिणकर्णे पशुगायत्रीं पठेत् । ततो यथोक्तविधिना खड्गं छागं परीक्ष्य गृहीत्वा बलिं दद्यात् ।

अथ महिषघातनम् ।

महिषपूजनपूर्वकं संकल्पं कुर्य्यात् । यथा—

ओँ घातनीयमहिषसममसंख्यशतवर्षावच्छिन्नदुर्गालोकवासपूर्वकदुर्गादर्शनाभिनन्दनस्पर्शनाभिपूजनस्नपनतर्पणजनितपूर्वपूर्वाधिकफलसमफलप्राप्तिकामः एतान् महिषान् यमदैवतान् श्रीदुर्गादेव्यै घातयिष्ये" ॥ ततः शंखपूजापूर्वकं महिषबलिं दद्यात् ।

अथ खड्गपूजा ।

तत्संकल्पो यथा—

"ओँ अद्य ममेह जन्मनि सर्वशत्रुक्षयपूर्वकसार्वत्रिकसार्वकालिकहर्षविजयकामः आयुधानां पूजनमहं करिष्ये"

इति सामान्याकारेणायुधपूजनसंकल्पं कृत्वा खड्गपूजनादिक्रमेण पूजामारभेत् । एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओँ खड्गाय नमः । ततो गन्धानुलेपनाक्षतपुष्पमाल्यनानाविधपुष्पधूपदीपनैवेद्यादिभिः सम्पूज्य नमस्कुर्य्यात् । यथा—

"ॐ असिर्विशसनः खड्गः, तीक्ष्णधारो दुरासदः ।
श्रीगर्भो विजयश्चैव, धर्माध्यक्षस्तथैव च ॥
इत्यष्टौ खड्गनामानि, स्वयमुक्तं हि वेधसा ।
नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं, गुरुर्देवो महेश्वरः ॥
रोहिणस्तु शरीरं ते, दैवतस्तु जनार्दनः ।
पिता पितामहो देवः, त्वं तु पालय मां सदा ॥
इयं येन धृता क्षोणी, हतश्च महिषासुरः ।
तीक्ष्णधाराय शुद्धाय, तस्मै खड्गाय ते नमः" ॥

इति स्तुतिं कुर्य्यात् ।

अथ क्षुरिकापूजा

"सर्वायुधानां प्रथमं, निर्मितासि पिनाकिना ।

शूलायुधाद्विनिष्कृष्य, कृत्वा मुष्टिगृहं शुभम् ॥
चण्डिकायै प्रदत्तासि, सर्वासुरनिवर्हिणि ।
तयारिस्ताडिता चासि, देवानां प्रतिपादिता ॥
सर्वसत्त्वाङ्गसम्भूता, सर्वदुष्टनिवर्हिणि ।
क्षुरिके रक्ष मां नित्यं, शान्ति देहि नमोऽस्तु ते" ॥

इति पूर्ववत्सम्पूज्य, नमस्कुर्य्यात् ।

अथ कट्टालकपूजा ।

पूर्ववत्सम्पूज्य, अनेन नमस्कुर्य्यात्—

"रक्षाङ्गानि गजात्रक्ष, रक्ष राज्यं बलानि च ।
मम देहं सदा रक्ष, कट्टालक नमोऽस्तु ते" ॥ इति

अथ धनुःपूजा ।

पूर्ववत्सम्पूज्य अनेन नमस्कुर्यात् ।

"सर्वायुध महागात्र, सर्वदेवारिसूदन ।
चाप मां समरे रक्ष, साकं शरवरैरिह ॥
धृतं कृष्णेन रक्षार्थं, संहाराय हरेण च ।
त्रयीमूर्तिगतं देवं, धनुरस्त्रं नमाम्यहम्" ॥ इति

अथ वाणपूजा ।

यद्वाणा ब्रह्मणः शस्ताः, रुद्रस्य च हरेस्तथा ।
वरुणस्य हुताशस्य, जयार्थं पूजयाम्यहम् ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्यात् ।

अथ शूलपूजा ।

पूर्ववत्सम्पूज्य,

"त्वद्भयेन पलायन्ते, रिपवो बलदर्पिताः ।
सर्ववैरिशिरःशूलं, शूल तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥

इति नमस्कुर्यात् ।

अथ चामरपूजा ।

"शशाङ्करविसङ्काशहिमहिण्डीरपाण्डुर ।
प्रोत्सारय त्वं दुरितं, चामर चामरभूषण" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्यात् ।

अथ चर्मपूजा ।

"शर्मप्रदस्त्वं समरे, परसैन्यपलायने ।
रक्ष मां रक्षणीयोऽस्मि, तापनेय नमोऽस्तु ते" ॥

नतिं कृत्वा विसर्जयेत् ।

अथ कुन्तपूजा ।

"प्रणिपातय शत्रूंस्त्वमनया लोकमायया ।
गृहाण जीवितं तेषां, मम सैन्यस्य पश्यताम्" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्यात् ।

अथ शङ्खपूजा ।

"पुण्यस्त्वं शङ्खपुण्यानां, मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ।
विष्णुना त्वं धृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्यात् ।

अथ छत्रपूजा ।

"यथाऽम्बुदश्छादयते, धारया च वसुन्धराम् ।
तथा मां छादयच्छत्र, युद्धाऽध्वनि गतं सदा" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्य्यात् ।

अथ सिंहासनपूजा ।

"विजयदो जयदो जेता, रिपुघाती प्रियङ्करः ।
दुःखहा धर्मदः शान्तः, सर्वारिष्टविनाशनः ॥

इत्यष्टौ तव नामानि, यतः सिंहपराक्रमः ।
तेन सिंहासनमिति, नाम्ना देवेषु गीयते ॥
नमस्ते सर्वतोभद्र, भद्रो भव नमोऽस्तु ते ।
त्रैलोक्यजय सर्वस्व, सिंहासन नमोऽस्तु ते ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्यात् ।

अथ कनकदण्डपूजा ।

"यशो देहि सुखं देहि, जयदो भव भूतले ।
ताडयाशु रिपून् सर्वान्, हेमदण्ड नमोऽस्तु ते ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्य्यात् ।

अथ दुन्दुभिपूजा ।

"दुन्दुभे त्वं प्रपन्नानां, घोषा हृदयकम्पनः ।
भयभूः परसैन्यानां, तथा विजयवर्द्धनः ॥
यथा जीमूतघोषेण, हर्षन्ति वरवारणाः ।
तथास्तु तव घोषेण, हर्षोऽस्माकं जयावहः" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्य्यात् ।

अथ पताकापूजा ।

"हुतभुग् वसवो रुद्राः, वायुः सोमो महर्षयः ।
नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतमहोरगाः ॥
प्रमथाश्च महादेवैः, भूतेशाः मातृभिः सह ।
शक्रसेनापतिस्कन्दो, वरुणश्च स्थितस्त्वयि ॥
कालनेमिवधे स्तम्बः, तथा त्रिपुरघातने ।
हिरण्यकश्यपयोर्युद्धे, युद्धे देवासुरे तथा ॥
शोभितासि तथैवाद्य, शोभयास्मांश्च सङ्गरे ।
नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा, नश्यन्त्वाशु ममारयः" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्य्यात् ।

अथ पाशपूजा ।

"पाश पातय शत्रूंस्त्वमनया शोककाम्यया ।
गृहाण जीवितं तेषां, मम सैन्यञ्च रक्ष माम्" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्य्यात् ।

अथ शिविकापूजा ।

"यथार्थशिविकादेवैर्विष्णुना शङ्करेण च ।
अतस्त्वां पूजयाम्यद्य, शिविके रक्ष सर्वदा" ॥

इति सम्पूज्य नमस्कुर्य्यात् ।

अथ ध्वजापूजा ।

"शक्रकेतुर्महावीर्य्य, सुपर्णस्त्वं सुखेप्सितः ।
पत्रिराज नमस्तेऽस्तु, तथा नारायणध्वजः ॥
काश्यपेयोऽमृताहर्ता, नागारिर्विष्णुवाहनः ।
अप्रमेयो दुराधर्षो, देवारिगणसूदनः ।
गरुत्मान् मारुतगतिः, त्वं मत्सन्निहितस्त्वितः ।
साधयस्वायुधान् योद्धा, रक्षात्मानं रिपून् दह" ॥

इत्यायुधपूजा समाप्ता ।

अथाश्वपूजा ।

तत्संकल्पो यथा—

"ओँ अद्य मदीयसदाविजयान्वितत्वाश्वोत्पातशान्तिपूर्वकाश्वसमृद्धिकामोऽश्वपूजनमहङ्करिष्ये" ॥

इति संकल्प्य पठेत्—

"गन्धर्वकुलजस्त्वं, मा भूयाः कुलदूषकः ।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन, सोमस्य वरुणस्य च ॥
प्रभायाश्च हुताशस्य, प्रवर्द्धस्व तुरङ्गम ।

तेजसा चैव सूर्यस्य, मुनीनां तपसा तथा ॥
रुद्रस्य ब्रह्मचर्य्येण, पवनस्य जवेन च ।
स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि, कौस्तुभञ्च मणिं स्मर ॥
याङ्गतिं ब्राह्मणे गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा ।
भूम्यर्थेऽनृतवादी च, कृत्रिमस्य पराङ्मुखः ॥
सूर्य्याचन्द्रमसौ वायुः····स्यतिदुष्कृतम् ।
व्रज त्वं तां गतिं क्षिप्रं, तच्च पापं भवत्वथ ॥
विकृतिं यदि गच्छेत, युद्धेऽध्वनि तुरङ्गम ।
नमस्ते हयरत्नाय, देवपूज्यो नमोऽस्तु ते ॥
रिपून् विजित्य समरे, मम सर्वोन्मुखी भव" । इति

अथ रेमन्तपूजा ।

"नमो देवाधिदेवाय, तुरङ्गवलधारिणे ।
सूर्य्यपुत्राय देवाय; तुरङ्गानां हिताय च ॥
तुरङ्गोपरि संयम्य, मृगयायां परिधावति ।
साश्वमश्वाधिपं रक्ष, शरणं त्वां व्रजाम्यहम् ॥
सूर्य्यपुत्रो महावाहो, छाया हृदयनन्दन ।
शान्तिं कुरु तुरङ्गानां, रेमन्ताय नमो नमः ॥

इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, वस्त्रादिकं दत्त्वा प्रणमेत् ।

इत्यश्वपूजा

अथ गजपूजा

कुमुदैरावतपद्मपुष्पदन्तोऽथ वा मनः ।
सुप्रतीकोजनानील इत्यष्टौ देवयोनयः ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च,····न्यष्टौ विपश्चितः ।
मत्तेत्रः मृगश्चैव, गजराजः स एव च ॥
वने चैव प्रसूतास्ते, स्वयोन्या महागजः ।
पान्तु ते वसवो रुद्रा, आदित्यादिमरुद्गणाः ॥
भर्तारं रक्ष नागेन्द्र, समये प्रतिपाल्यताम् ।
अवाप्य हि जयं युद्धे, गमने स्वस्तितां व्रज ॥

शिवं सोमाद्बलं विष्णोः, तेजः सूर्य्याज्जवोऽनिलात् । स्थैर्य्यं मेरोर्ज्जवं रुद्रात्, 'यशोदेवात्पुरन्दरात् । नमस्तेऽस्तु सदा तुभ्यं समरे विजयप्रदः । युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां, दिशो वैरिदिशस्तथा । अश्विनौ सह वीर्य्येण, पान्तु त्वां पर्वतास्तथा । इति गजपूजा ।

इति नित्यकृत्यम् ।

अथाश्विनशुक्लषष्ठ्यां ज्येष्ठायुक्तायां केवलायां वा सायंकाले विल्वतरुसन्निधिं गत्वाऽऽमन्त्र्य,

"रावणस्य बधार्थाय, रामस्यानुग्रहाय च ।
अकाले ब्रह्मणा बोधो, देव्या त्वयि कृतः पुरा ॥
अहमप्याश्रितः षष्ठ्याः, सायाह्ने बोधयाम्यतः" ॥

अनेन बोधयित्वा,

"श्रीशैलशिखरे जातः, श्रीफलः श्रीनिकेतनः ।
नेतव्योऽसि मया पूज्ये श्रीमद्दुर्गास्वरूपतः" ॥

इति निमन्त्र्य सप्तम्यां पत्रिकाप्रवेशः ।

"जागृष्व देवि कल्याणि, बर्द्धयस्व इमाः प्रजाः ।
अभीष्टफलदात्री त्वमभिवीक्ष्य सुदुःखितम्" ॥

इति बोधनं कृत्वा, फलद्वययुक्तां विल्वशाखामावाहयेत् ।

"ॐ आवाहितासि दुर्गे त्वं, मृन्मय्यां श्रीफलेऽपि च ।
इहात्यन्तं स्थिरा भूत्वा, गृहे मे कामदा भव" ॥

इति मन्त्रेण बोधनं कृत्वा शुक्लपक्षसप्तम्यां मृन्मयदुर्गाप्रतिमां, सफलां विल्वशाखां फलद्वययुक्तां कदल्यादिनवपत्रिकाञ्च, गृहं प्रवेशयेत् । नवपत्रिकाश्च—

"कदली, दाडिमी, धान्यं, हरिद्रा, मानकञ्चुकम् ।
विल्वाशोको, जयन्ती च, विज्ञेया नवपत्रिका" ॥ इति

तत्र गृहे उपविश्य जलपुष्पाण्यादाय—

"ओँ आवाहयाम्यहं देवीं, श्रीफले मृन्मये तथा ।

आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं, देहि देवि नमः सदा ॥

कैलासशिखरे देवि, विन्ध्यादग्रिमपर्वतात् ।

आगत्य विल्वशाखायां, मृन्मये कुरु सन्निधिम्" ॥

इत्यावाह्य--

"स्थापितासि मया देवि, श्रीफले मृन्मये तथा ।

आयुरारोग्यमैश्वर्य्यं, देहि देवि नमः सदा" ॥

इति स्थापयेत् । "ओँ ह्रीं दुर्गे रक्षिणि स्वाहा" इत्यर्धमन्त्रः । 'ओँ ह्रीं रक्षिणि स्वाहा' अनेन गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ।

"ओँ अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं, शङ्करस्य सदा प्रियम् ।

पवित्रं तत्प्रयच्छामि, विल्वपत्रं सुरेश्वरि" ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां, द्रोणपुष्पं सदा प्रियम्" ।

इत्यादिना द्रोणपुष्पं दद्यात् । ततो वरप्रार्थनम्—

"रूपं देहि जयं देहि, भाग्यं भगवति देहि मे ।

पुत्रान्देहि धनं देहि, सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥

महिषघ्नि महामाये, चामुण्डे मुण्डमालिनि ।

क्षेमदारोग्यमैश्वर्य्यं, देहि देवि नमोऽस्तु ते" ॥

इति पत्रिकाप्रवेशः । अथाष्टम्यामर्द्धरात्रे पञ्चाङ्गलक्षणोपेतमङ्गदोषरहितमजं मेषं वा सम्पूज्य खड्गमादाय

"ओँ कालिकपाणिवक्त्रेषु विलोहदन्ताय नमः" ।

इति मन्त्रं जपित्वा तं पशुं घातयेत् । तत्र प्रयोगः—

"ओँ अस्यां रात्रौ शुक्लाष्टम्यामर्द्धरात्रे महिषमजं मेषं वा सर्वदा विजय-हर्षकामो दुर्गाप्रीतिकामो वा दुर्गादेव्यै अहं घातयिष्ये" ।

इति संकल्पं कृत्वाऽनन्तवस्त्वस्थाय रक्तमांसाभ्यावक्ष्यमाणकोशिकमन्त्राभिमन्त्रिता-भ्यां नैर्ऋत्यां दिशि ओँ पूतनायै नमः । वायव्याम् ओँ पापरक्षायै नमः । ऐशा-

न्याम्—ओँ वक्र्यै नमः। ओँ कारिण्यै नमः। इति वा। अग्नेय्याम्—ओँ विदार्य्यै नमः। इति मन्त्रैः क्रमेण बलिं दद्यात्। महाकौशिकमन्त्रस्तु—"ओँ ह्रीं ओँ हूँ ओँ कुसु २ ओँ धुन २ ओँ खलु २ ओँ तनु २ ओँ धूनु २ ओँ मारय २ ओँ विद्रावय २ ओँ कम्पय २ ओँ कम्पायय २ ओँ पुरु २ ओँ पूरय २ ओँ हूँ ओँ ह्रीं द्रवं हूँ फट् मर्दय २ ओँ हूँ"। इति अनेन शत्रुप्रतिमां पिष्टमयीं कृत्वा खड्गेन तच्छिरश्छेदयित्वा ओँ स्कन्दाय नमः इति शिरो दत्त्वा, विशाखाय कबन्धं दद्यात्।

"उपोषितैर्धूपवस्त्रैः, गन्धमाल्यानुलेपनैः।
क्षेममारोग्यमैश्वर्य्यं, देहि देवि नमोऽस्तु ते"॥

इति प्रणमेत्। इति महाष्टमीपूजाविधिः।

अथ महानवमी।

"सा सिताश्वयुजे वीर, शुक्लपक्षे त्रिशूलनीम्।
नवम्यां पूजयेद्यस्तु, तस्य पुण्यफलं श्रृणु॥
अश्वमेधसहस्रस्य, वाजपेयशतस्य च।
तत्फलं लभते वीर, दुर्गापूजाप्रसादतः"॥

इति त्रिशूले दुर्गापूजां कुर्य्यात्। तत्र संकल्पः। "ओँ अद्याश्वमेधसहस्रराजसूयशतयज्ञपुण्यफलसमफलप्राप्तिकामो महानवम्यां त्रिशूलिनीदुर्गापूजनमहं करिष्ये"। अथ पशुघाते संकल्पवाक्यम्—"ओँ अद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे महानवम्यां तिथौ देवताभिनन्दनास्पर्शनाभिपूजनतर्पणस्नपनपूर्वपूर्वाधिकपुण्यसमफलघातनीयपशु संख्य शतगुणीकृतपुण्यप्राप्तिकामनया इमान् महिषान्, मेषान्, छागान् वा अमुकामुकदेवतान् श्रीदुर्गादेव्यै घातयिष्ये"। इति संकल्प्य महिषादीन् घातयेत्।

अथ देवीविसर्जनम्।

चामरव्यजनादिकं कृत्वा पञ्च पुष्पाञ्जलीन् दत्वा वरं प्रार्थयेत्—

"रूपं देहि जयं देहि, यशो देहि द्विषो जहि।
पुत्रान्देहि धनं देहि, सर्वान् कामान् प्रदेहि मे।

महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि ।
द्रव्यमारोग्यमैश्वर्य्यं, देहि देवि नमोऽस्तु ते ।।
उत्तिष्ठ देवि चामुण्डे, शुभां पूजां प्रगृह्य च ।
व्रज क्षेत्रे जले वृद्धयै, स्थीयते च जले त्वया ।।
आगतासि यतः स्थानात्, गच्छ देवि स्वरोत्तमे ।
पूजां मदीयामादाय, पुनरागमनाय च" ।।

इति सम्प्रार्थ्य विसर्जनं कृत्वाऽभिषेकं कुर्य्यात् ।

अथाभिषेकमन्त्राः—

"ॐ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु, ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः ।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च, भवन्तु विजयाय ते ।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान्, यमो वै नैऋतिस्तथा ।।
वरुणः पवनश्चैव, धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणा सहितः शेषो, दिक्पालाः पान्तु मां सदा ।।
कीर्तिलक्ष्मीधृतिर्मेधा, पुष्टिः श्रद्धा कृपा मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः, तुष्टिः कीर्तिश्च मातरः ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, देवपत्न्यः समागताः ।
आदित्यश्चन्द्रना भौमो, बुधो जीवशितार्कजाः ।।
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु, राहुः केतुश्च तर्पिताः ।
देवदानवगन्धर्वाः, यक्षराक्षसपन्नगाः ।।
ऋषयो मुनयो गावो, देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो ध्रुवानागाः, दैत्याश्चप्सरसां गणाः ।।
अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि, राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च, रत्नानि, कालस्यावसरास्तथा ।।

सरितः सागराः शैलाः, तिर्थानि जलदाः नदाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु, सर्वकामार्थसिद्धये ॥

एभिर्मन्त्रैरभिषेकं कुर्य्यादिति नवमीपूजाविधिः ।

अथ दशम्यामपराजितापूजा ।

"सोमोल्लंघं प्रकुर्वीत, दशम्यां सर्वदा बुधैः ।
अपराह्णे प्रकुर्वीत, ऐशान्यां दिशमाश्रितः ॥
शाद्वलेन विविक्तेन, कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ।
द्वे मूर्ती च कर्तव्ये, तथा खड्गधनुर्धरे ॥
चत्वारः पर्वताः कार्य्याः, चतुर्दिक्षु समन्ततः ।

अथ प्रयोगः । ओँ भगवति अपराजिते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओँ अपराजितायै नमः । ओँ क्रियाशक्त्यै नमः । ओँ उमायै नमः । इति प्रतिष्ठामन्त्राः । ततः,

"चतुर्भुजां पीतवस्त्रां, सर्वाभरणभूषिताम् ।

खड्गचर्मवरदाभयहस्तां, त्रिनेत्रामीषत्प्रहसितवदनां ध्यात्वा, ओँ ह्रीँ अपराजितायै नमः । ओँ ह्रीँ अपराजिताहृदयाय नमः । ओँ ह्रीँ अस्त्राय फट् । ततो दक्षिणे ओँ ह्रीँ जयायै नमः इति पूजयेत् । वामे ओँ विजयायै नमः इति पूजयित्वा, हरिद्रापीतवस्त्रेण दूर्वासिद्धार्थकं बद्ध्वा देव्याः ह्यभिलषितकामनया स्वाङ्गे च धारयेत् । ततः प्रयाणञ्च कुर्य्यात । ततः ओँकारमुच्चारयन् प्रदक्षिणं कृत्वा प्रसाद्य, अनेन विसर्जयेत् ।

"ओँ इमां पूजां मया देवि, यथा शक्त्या निवेदिताम् ।
रक्षां च त्वं समादाय, व्रज स्वस्थानमुत्तमम्" ॥ इति

इत्यपराजितापूजा । आचारादस्यामेव यवाङ्कुरदानम् । तत्र "जयन्ती मङ्गला काली-त्यादि मन्त्रो ज्ञेयः । विजयदशमीमधिकृत्य

"दशमीं यः समुल्लङ्घ्य, प्रस्थानं कुरुते नृपः ।
तस्य सम्वँत्सरं राज्ये, न क्वापि विजयो भवेत्" ॥ इति

अशक्तौ खड्गादियात्रामाह–राजमार्तण्डे—कार्य्यवशात्स्वयमगमे भूभर्तुः केचिदाहु-राचार्य्याः। छत्रायुधादि वैजयिके निर्गमे कुर्य्यात्। अथ दशमीनिष्कर्षः। तद्विचारे नलकोषे नारदः।

"इषस्य दशमीं शुक्लां, पूर्वविद्धां न कारयेत्।
श्रवणेनापि सय्युँक्तां, राजपट्टाभिषेचने॥
सूर्य्योदये यदा राजन्, दृश्यते दशमी तिथिः।
आश्विने मासि शुक्ले तु, विजयां तां विदुर्बुधाः"।

व्रतकाण्डे कश्यपः––

उदये दशमी किञ्चित्सम्पूर्णैकादशी यदि।
श्रवणर्क्षं यदा काले, सा तिथिर्विजयाभिधा"॥ इति

आवाहनादिकालमाह–भविष्ये—

"प्रातरावाहयेद्देवीं, प्रातरेव प्रवेशयेत्।
प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य, प्रातरेव विसर्जयेत्॥

एतेन दशम्यामपि प्रातरेव विसर्जनमिति प्रतिभाति। अत्र मानान्तरमपि नन्दिकेश्वरे–

"भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च या क्रिया।
तिथावुदयगामिन्यां, सर्वास्ताः कारयेद्बुधः॥ इति

तथा चक्रनारायण्यां क्रियायोगसम्वादेऽपि––

"शरत्काले महापूजा, क्रियते या च वार्षिकी।
सा कार्य्योदयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता"॥ इति

एतद्वचनं दुर्गाभक्तिप्रकाशेऽप्यस्ति ततो लिखितम्। एतावतोदयगामिन्याः प्राशस्त्यम्। बौधायनोऽपि—

"आदित्योदयवेलायां, या चाल्पापि तिथिर्भवेत्।
सा पूर्णेत्येव मन्तव्या, प्रभूता नोदयं विना"॥ इति

उदयगामिन्यपि घटिकोना दशमी न कर्माही—

"व्रतोपवासस्नानादौ, घटिकैका यदा भवेत् ।
तामेव तिथिमाश्रित्य, कुर्य्यात्कर्माण्यतन्द्रितः" ।

इति व्यासोक्तनियमात् । तत्र श्रवणायोगे अतीव प्राशस्त्यम् ।

"मूले नावाहयेद्देवीं, श्रवणेन विसर्जयेत्" ।

इति वचनात् । यत्राऽग्रिमदिने घटिकोना दशमी तत्र पूर्वदिन एव पूजनादिकं कार्य्यम् । अत एव—

"आश्विने शुक्लपक्षस्य, दशम्यां पूजयेत्तथा ।
एकादश्यां न कुर्वीत, पूजनञ्चापराजितम्" ॥

इति शिवरहस्योक्तं निषेधवचनमपि संगच्छते । तादृशस्थले पूर्वदिन एव पूजनम् । तर्हि देवीविसर्जनमपि तत्रैव "तदन्तापकर्षन्यायात्" इति वाचस्पतिमिश्राः अपि कृत्यमहार्णवे प्राहुः । यत्तु एकादश्यामित्यस्य एकादशीयुक्तायामित्यर्थमाहुः । तन्न, उदये दशमीं किञ्चित् सम्पूर्णैकादशीति कश्यपवचनविरोधात्, व्यवहारविरोधापत्तेश्च । तस्मादेकादश्यधिकरणकमेव पूजनं निषिद्धमिति मन्तव्यम् । दिनद्वये तिथिलाभे नवमीयुक्ताऽष्टमी ग्राह्या । रात्रिद्वये तु रात्रिद्वये तल्लाभे एवमित्युपक्रम्य मिश्रैरिदं वचनमलेखि । तस्मादुदयकालीनाया अलाभे पूर्वविद्धादरः ।

"सीमालंधं प्रकुर्वीत, दशम्यां सर्वदा बुधैः ।
अपराह्णे प्रकुर्वीत, ऐशानीं दिशमाश्रितः" ॥

इति वचनं यथावकाशम् बोधयति । तत्र दशमीनियमः आचारात् । विजयदशम्यामेव नीलकण्ठदर्शनम् । इति दशमीप्रकरणम् ।

अथ हस्तार्के खञ्जनदर्शनम् ।

तिथितत्त्वे यथा—

"हस्तगते तु सूर्ये, यया दिशा तु खञ्जनं नृपो यान्तम् ।
पश्येत्तया प्रयातस्य, क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति" ॥
तथा कृत्वा नीराजनं राजा, बलवृद्धयै यथाबलम् ।

शोभनं खञ्जनं पश्येत्, जलगोगोष्ठसन्निधौ" ।

नमस्कारमन्त्रः—

"नीलकण्ठ शुभग्रीव, सर्वकामफलप्रद ।
पृथिव्यामवतीर्णोऽसि, खञ्जरीट नमोऽस्तु ते ॥

वसन्तराजे—

"दृष्टोदितोऽगस्त्यमुनौ स्वदेशे ।
सुचेष्टितं खञ्जनको विदध्यात्" ॥
त्वं योगयुक्तो मुनिपुत्रकस्त्व-
मदृश्यतामेषि शिखोद्गमेन ।
संदृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां
त्वं खञ्जनाश्चर्य्यमयो नमस्ते ॥

अथ दर्शनफलम्—

"अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु
राजप्रदः कुशलदः शुचिशाद्वलेषु ॥
भस्मास्थिकेशनखलोमतुषेषु दृष्टो
दुःखं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः ।

वर्षकृत्ये—

"वित्त ब्रह्मणि कार्य्यसिद्धिरतुला, शक्रे हुताशे धनं ।
याम्यामग्निभयं, हरारिकलहो लाभः समुद्रालये ॥
वायव्यां म्वरवस्त्रजातसदनं, दिव्याङ्गना चोत्तरे ।
ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं, दिग्लक्षणं खञ्जने ॥
ज्येष्ठी रुते क्षुते चैवमूचुः केचिच्च कोविदाः ।
अशुभं खञ्जनं दृष्ट्वा, देवब्राह्मणपूजनम् ॥
दानं कुर्वीत स्नानञ्च, कुर्य्यात् सर्वौषधीजलैः" । इति

अथ कृत्यमहार्णवे—

"हस्तगतेऽम्बुजबन्धौ, यया दिशा खञ्जनं नृपो यान्तम् ।
पश्येत्तया गतस्य, क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ॥
खञ्जनको नामायं विहगस्तस्य विलोकने प्रथमे ।
प्रोक्तानि यानि मुनिभिः, फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ॥
समन्तभद्रस्तदनु प्रभद्रस्ततोऽर्द्धभद्रो बलभद्रकश्च ।
एषां चतुर्णामपि खञ्जनानामाचक्ष्महे सम्प्रति लक्षणानि ।
यः कन्धरारेः शिरसा समन्तात्,....
कृष्णेन युक्तः शिरसोरसा च, भवेत्प्रभद्रः सितकण्ठपृष्ठः ।
कण्ठोरसी यस्य तु मेचकौ स्तां, समन्तपश्चात् पिशितोऽर्द्धनुभद्रः ॥
कृष्णा भवेत्कठगतैकरेखा, यस्याथ सोऽयं बलभद्रनामा ।
एषां चतुर्णामपि कार्य्यसिद्धयै, यो यो भवेत्पूर्वतरः स मुख्यः ।
तलोऽभ्युन्नतकण्ठः, कृष्णगलो भद्रकारको भद्रः ॥
आकण्ठरेखाकृष्णः, स पूर्णः पूरयत्याशाः ।

निन्दितानाह—

"आकारभद्रो गलमात्रकृष्णः, सिताननः कार्यविनाशनाय ।
आद्यो हरिद्राद्रवसन्निकाशो, गोमुत्रवर्णः खलु खञ्जरीटः ॥
निरीक्षितः प्राग्दिवसे प्रभूतम्, दुःखोदयं शंसति यावदव्दम् ।

वराहसंहितायाममुमधिकरणमधिकृत्य—

"अथ मधुरसुरभिकुसुमफलपादपसलिलाशयेषु पुण्येषु ।
दधिपात्रधान्यकूटे, दृष्टोऽभीष्टानि चेष्टते विहगः ॥
पङ्के स्वादुधनाप्तिः, गोरससम्पच्च गोरसोपलिप्ते ।
शाद्वलके वस्त्राप्तिः, शकटस्थे देशविभ्रमो भवति ॥
गृहपटलेषु भ्रंशो, रन्ध्रे रन्ध्रश्चोपरोगः ।
पृष्ठेष्वजाविकानां, प्रियसङ्गमं वहत्याशु ॥

महिषोष्ट्रगर्दभास्थिश्मशानगृहके शर्करादृष्टः ।
प्राकारभस्मसुनियतमसौ मरणरुग्भयदः ॥
पक्षौ धुन्वन्नशुभः, शुभः पिवन् वारिधारस्थः ।
सूर्य्योदये प्रशस्तोऽनिष्टकरः खञ्जनोऽस्तमये ॥

वारिवाह इह जलप्रणालिका ।

"भस्मास्थिकाष्ठनखलोमतुषेषु दृष्टः ।
कष्टं ददाति नियतं खलु खञ्जरीटः" ॥

अथास्य दर्शनमन्त्रः पूर्ववत् । फलमपि पूर्ववदेव । किञ्च—

"कुचेष्टितो यः कुवपुः कुदेशे, निरीक्षितः खञ्जनकः कदाचित् ।
दृष्टो विशेषात्परितोषयेत्तं, किं घातयेत्सूचितदुष्कृतन्तु ॥
मांसं न भुञ्जीत शयीत भूमौ, स्त्रियं न सेवेत दिनानि सप्त ।
स्नायाज्जपेत् संजुहुयाच्च वह्नौ पैष्टं ।था खञ्जनमर्चयेच्च ॥

वाराहसंहितायाम्—

"नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे, खगमवलोक्य महीतले विदध्यात् ।
सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घं, भवति दिनानि न सप्तमांसभोजी ॥

अथाश्विनपूर्णिमा

तत्र ब्रह्मपुराणम्—

"आश्वयुज्यां पूर्णिमायाम्, निकुम्भो वालुकार्णवात् ।
आयाति सेनया सार्द्धं, कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ।
तस्मात्तत्र नरैर्मार्गाः, स्वगेहस्य समीपगाः ॥
शोभितव्याः प्रयत्नेन, भूषितव्याश्च मण्डनैः ।
पुष्पार्घफलधूपान्नसर्षपप्रकरैस्तथा ॥
वेश्मानि भूषितव्यानि, नानारङ्गैर्विशेषतः ।
सुस्नातैरनुलिप्तैश्च, नरैर्भाव्य सवालकैः ॥
दिवा तत्र न भोक्तव्यम्, मनुष्यैश्च विवेकिभिः ।

स्त्रीवृद्धमूर्खबालैश्च, भोक्तव्यं पूजितैः सुरैः ॥
पूज्यश्च सकलैः,····तथा द्वारोर्द्धभित्तयः ।
द्वारोपान्ते प्रदीपश्च, सम्पूज्यो हयवाहनः ॥
सम्पूज्य विप्रान् भोक्तव्यं, स्वानुलिप्तैः स्वलङ्कृतैः ।
बन्धुमित्रकलत्रैश्च, सह भुक्त्वा यथाक्रमम् ॥
गोमद्भिः सुरभिः पूज्यः, छागवद्भिर्हुताशनः ।
और्णवद्भिर्वरुणो, गजवद्भिर्विनायकः ॥
पूज्यः साश्वैश्च रेमन्तो, यथा विभवविस्तरैः ।
ततः पूज्यो निकुम्भश्च, समाषैस्तिलतण्डुलैः ॥
सुगन्धिभिर्घृतोपेतैः, कृशराद्यैश्च भूरिभिः ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु, भोक्तव्यं मांसवर्जितम् ॥
शंखवाद्यवरोन्मिश्रैः, गीतनृत्यैश्च सा निशा ।
वह्निपार्श्वगतैर्नेया, दृष्ट्वा क्रीडाः पृथग्विधाः ॥
ततः प्रभातसमये, स्वानुलिप्तैः स्वलङ्कृतैः ।
मङ्गलालम्भनं कार्य्यं, वह्निसम्पूजनं तथा ॥
भोक्तव्यं बान्धवैः सार्द्धं, क्रीडितव्यं यथासुखम् ।
तस्यां रात्रौ व्यतीतायां, द्वितीयायामनन्तरम् ॥
प्रभाते कर्दमोक्तैस्तु, क्रीडितव्यं पिशाचवत् ।
निर्लज्जैश्चाथ सर्वत्र, रुद्रवत् सर्ववेश्मसु ॥
तस्मात्स्वदेशैः सोत्कण्ठैः, पिशाचैः सानुवाहनैः ।
लब्धं तु कश्यपात्सर्वं, सक्रोधस्य प्रजापतेः ॥
आनीय चाथ मित्राणि, लेपनीयानि कर्दमैः ।
कामाग्निजनकैर्वाक्यैः, स्त्रीपुँल्लिङ्गानुवादिभिः ॥
वाचा पैशाचमाचारं, कीर्तयद्भिरितस्ततः ।
अश्लीलान्यपि जल्पद्भिः, क्रोशद्भिश्चापि संमुखम् ॥

तस्मिन्नहनि मध्याह्ने, निकुम्भस्यानुयायिभिः ।
क्लान्तवेशाः पिशाचाश्च, प्रविशन्ति नराश्च तान् ॥
अपराह्णे ततः स्नातान्, त्यक्त्वा गच्छत बन्धुवत् ।
दर्पाभिमानदोषेण, तत्र युध्वाऽगतान् नरान् ॥
न पूजयति मोहेन, क्रीडान्न कुरुतेऽथ वा ।
तं निर्दहन्ति ते क्रोधात, पिशाचाः रौद्रदर्शनाः ॥
ततः स्नातैर्नरैः पूज्यो, देवो दामोदरो हरिः ।
ततः प्रभृतिषण्मासान , स्वेषु वेश्मसु मानवैः ॥
अग्निः सन्निहितः कार्य्यो, रात्रौ सिद्धार्थकास्तिलाः ।
मासं समग्रं दीपश्च, देयो नित्यं गृहाद्बहिः" ॥ इति

अत्र शिष्टाः—

"आश्विने पौर्णमास्यां तु, चरेज्जागरणं निशि ।
कौमुदीमासविख्याता सर्वकार्य्यविभूतये ॥
कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतं स्थितम् ।
सुगन्धैर्निशि सद्वेशो, अक्षैर्जागरणं चरेत ॥

लक्ष्मीपूजामन्त्रः—

"नमस्ते सर्वभूतानां, वरदासि हरिप्रिये ।
या गतिस्त्वप्रपन्नानां, सा मे भूयात्त्वदर्चनात् ॥

इन्द्रपूजामन्त्रस्तु—

"विचित्रैरावतस्थाय, भास्वत्कुलिशपाणये ।
पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय, सहस्राक्षाय ते नमः" ॥

अथैतत्पूजाप्रयोगो व्रतपद्धतौ यथा—

अथ कोजागराकृत्यम् ।

गृहाणि सर्वाणि आवाससमीपमार्गाश्च परिष्करणीयाः शरीरञ्च चन्दनादिना

विभूषितव्यम्—स्त्रीबालवृद्धमूर्खान् विहाय अन्यैर्दिने न भोक्तव्यम्। प्रदोषसमये द्वारोर्द्धमित्तिहव्यवाहनपूर्णेन्दुसभार्य्यरुद्रस्कन्दनन्दीश्वरमुनिसुरभिनिकुम्भलक्ष्मीन्द्रकुवेरा एते पूज्याः। येषां मेषा भवन्ति तैर्वरुणः पूज्यः। येषां हस्तिनो भवन्ति तैर्विनायकः पूजनीयः। येषामश्वास्तै रेमन्तः पूज्यः। येषां गावः सन्ति तैः सुरभिः पूज्या तत्र प्रयोगः—

आचन्तः सफलैः पत्रैः ॐ द्वारोऽर्द्धमित्तिभ्यो नमः। इति वारत्रयं गृहाभ्यन्तरे उपविष्टः पूजयेत्। ततः ॐ हव्यवाहन इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य एतानि पाद्यदीनि ॐ हव्यवाहनाय नमः। इदमनुलेपनम् ॐ हव्यवाहनाय नमः। ततो वारत्रयं पुष्पं दत्त्वा एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ हव्यवाहनाय नमः। एते अक्षतयवघृतसहिततण्डुलाः ॐ हव्यवाहनाय नमः। ॐ हव्यवाहनपूजितोऽसि प्रसीद इति विसर्जयेत्। ततः पूर्णेन्दो इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ पूर्णेन्दवे नमः। एवम् एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि, इदं पयः ॐ पूर्णेन्दवे नमः। इदं पायसम्, ॐ पूर्णेन्दवे नमः। ॐ भगवन् पूर्णेन्दो पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्वेति विसर्जयेत्। ॐ सभार्य्यरुद्र इहागच्छ इहतिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि ॐ सभार्य्यरुद्राय नमः; एवं गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि दत्त्वा विसर्जयेत्। ॐ नन्दीश्वरमुने इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ नन्दीश्वरमुनये नमः। एवं गन्धादीनि दत्त्वा विसर्जयेत्। ततः ॐ स्कन्द इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि ॐ स्कन्दाय नमः। एवं गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा विसर्जयेत्। ॐ सुरभि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि ॐ सुरभ्यै नमः। एवम् गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि दत्त्वा विसर्जयेत्। ॐ निकुम्भ इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ निकुम्भाय नमः। एवं गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि दद्यात्। ततः इदं माषतिलतण्डुलघृतसुगन्धिकृशरादिकमन्नम् ॐ निकुम्भाय नमः इति दत्त्वा, निकुम्भमुने पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्वेति विसर्जयेत्। ततो लक्ष्मीपूजा। ॐ लक्ष्मीरिहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि ॐ लक्ष्म्यै नमः। ततः इदमनुलेपनम्, इदमक्षतम्, इदं सिन्दूरम्, इदं पुष्पमाल्यम, एतानि पुष्पाणि, एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ लक्ष्म्यै नमः इति दत्त्वा---

"ओँ नमस्ते सर्वदेवानां, वरदासि हरिप्रिये ।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां, सा मे भूयात्त्वदर्चनात् "॥

इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा ॐ लक्ष्मीः पूजितासि प्रसीद क्षमस्वेति विसर्जयेत् । ततः ॐ भगवन् इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि ॐ इन्द्राय नमः । इदमनुलेपनम्, इदमक्षतम्, इदं पुष्पम्, एतानि गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यानि इन्द्राय नमः ।

"ॐ विचित्रैरावतस्थाय, भास्वत्कुलिशपाणये ।
पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय, सहस्राक्षाय ते नमः " ॥

इत्यनेन वारत्रयं पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, ॐ इन्द्र पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्वेति विसर्जयेत् । ॐ भगवान् कुवेर इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि ॐ कुवेराय नमः । इदमनुलेपनम्, इदमक्षतम् । एतानि पुष्पाणि, एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ कुवेराय नमः ।

"ॐ धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च ।
भगवन् त्वत्प्रसादान्मे धनधान्यादिसम्पदः " ॥

अनेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा, ॐ कुवेर पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्वेति विसर्जयेत् । रात्रौ अक्षैर्जागरणं ब्राह्मणानां बान्धवानाञ्च भोजनम् । नारिकेलजलपानम् ।

"नारिकेलजलं पीत्वा, को जागर्ति महीतले "।
इति मत्स्यपुराणे ।
" आश्विने पञ्चदश्यां तु यो दद्याद्धेमसंयुतम् ।
परां सिद्धिमवाप्नोति, पुनरावृत्तिदुर्लभाम् " ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—"आश्वयुज्यां कांस्यपात्रं, पूर्णं दद्याद्द्विजातये ।
ससुवर्णं तथा दत्त्वा, दीप्ताङ्गस्त्वभिजायते ॥
पौर्णमासीषु चैतासु, मासर्तुसहितासु च ।
एतेषामेव दानानां, फलं शतगुणं भवेत् ।
महत्पूर्वा चैतासु, फलमक्षयमश्नुते ॥

महत्पूर्वा च— "दृश्यते सहितौ यस्यां, दिशि चन्द्रबृहस्पती ।
पौर्णमासी तु महती, प्रोक्ता संव्वत्सरे तु सा ॥
तस्यां दानोपवासादि, अक्षयं परिकीर्तितम् ॥

इति विष्णुवचनेन लक्षिता । सहितौऽमासंसज्ञानिमित्तर्क्षगतौ ॥ एतच्च सर्वपौर्णमासीसाधारणमुक्तम् ।

"अश्वकयुक्कृष्णपक्षे तु, या च पञ्चदशी भवेत् ।

गृहद्वारेषु दातव्यास्तदा दीपाः द्विजातयः ॥

दाक्षिणात्यास्तु—"आश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या"

आश्वयुजि कर्मणि पूर्वाह्णव्यापिनी । अस्यां पौर्णमास्यां जागरणं व्रतं, तत्र लक्ष्मीपूजनं रात्रौ कार्य्यम्—मदनरत्ने—

"नारिकेलोदकं पीत्वा, अक्षैर्जागरणं निशि ।

तस्मै वित्तं प्रयच्छामि को जागर्ति महीतले ॥

आश्विनशुक्लैकादश्यां कार्तिकव्रतारम्भः । पाद्मे यथा—

आश्विनस्य तु मासस्य, या शुक्लैकादशी भवेत् ।

कार्तिकस्य व्रतादीनि, तस्यां वै प्रारभेत्सुधीः" ॥इति ।

विष्णुसंक्रान्तिमारभ्य कर्तव्यत्वमुक्तम् । हेमाद्रौ पूर्णिमामारभ्य कर्तव्यत्वमुक्तमित्याहुः । ठक्कुरास्तु—

आश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या । "सावित्रीव्रतमन्तरेण पौर्णमास्यः पराः" इति तत्त्वदीपिकायाम् बृहस्पतिः ॥ अत्र तिथितत्त्वे विशेषो यथा—आश्विने पौर्णमास्यान्त्वित्यादि अक्षैः क्रीडां करोति यः इत्यन्तम् । आश्वयुज्यामाश्वयुजं कर्मप्रोक्तं तत्रैव । तत्र हि पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । पूर्णिमा दैवकर्मत्वादित्याहुः । वाचस्पतिमिश्रास्तु—लक्ष्मीन्द्रव्यतिरिक्त द्वारोर्द्धमित्ति" इत्यादिसुरपूजनम् पूर्वाह्ले—तथा हि—

"स्त्रीवालवृद्धैस्तु भोक्तव्यं पूजितैः सुरै"रित्यत्र पूर्वाह्णः पूर्वाह्ण एव कर्तव्यत्वं देवतानाञ्च पूजनम्" इत्यादिवाक्यात । इत्याश्विनमासकृत्यम् ।

अथ कार्तिकमासस्तत्कृत्यञ्च निरूप्यते ।

कृत्यमहार्णवे नारदीये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्तिकप्रशंसा ।

यथा-- "इतो वै सर्वतीर्थानि, सर्वयज्ञाः सदक्षिणाः ।
अन्यतः कार्तिको मासः, सर्वपुण्याधिको मतः ॥
सुवर्णमेरुतुल्यानि, सर्वदानानि चैकतः ।
एकतः कार्तिको मासः सर्वदा केशवप्रियः ॥
अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु, मासं दामोदरप्रियम् ।
तिर्यग्योनिमवाप्नोति, सर्वधर्मवहिःकृतः" ॥इति ।

अथात्र व्रतप्रशंसा— "व्रतानामिह सर्वेषामेकजन्मानुगं फलम् ।
इह विष्णुव्रतोक्तं हि, जन्मशतानुगम् ॥
यतिश्च विधवा चैव, विशेषेण वनाश्रमी ।
कार्तिके नरकं याति अकृत्वा वैष्णवं व्रतम् ॥
जन्मप्रभृतियत्पुण्यम् , विधिवत्समुपार्जितम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिकव्रतम् ॥
कार्तिके नार्चितो येस्तु, भक्तियोगेन केशवः ।
नरकं ते गमिष्यन्ति, यमदूतैः सुयन्त्रिताः ॥

अथ कार्तिके त्याज्यानि—निष्पारान् राजमाषांश्च,सुप्ते देवे जनार्दने ।
यो भक्षयति राजेन्द्र, चाण्डालादधिको हि सः ।

निष्पारः = श्वेतशिम्बः ।
"कार्तिके तु विशेषेण, राजमाषांस्तु भक्षयेत् ।
निष्पारान् मुनिशार्दुल, यावदाहूतनारकी ॥
कदम्बानि पटोलानि, वृन्ताकसहितानि च ।
न त्यजेत्कार्तिके मासि, यावद्वाहूत नारकी ॥
एतानि भक्षयेद्यस्तु, सुप्ते देवे जनार्दने ।
देशजन्माजितं पुण्यं, दहते नात्र संशयः ॥

किञ्च—
"जन्मकोटिसहस्रैस्तु, मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।

कार्तिके नार्चितो विष्णुः, तस्य स्याद्यमयातना ॥

गवां कोटिप्रदानेन, सुवर्णकोटिजं फलम् ।

तत्फलं कोटिगुणितमेकाहे केशवार्चनात ॥

पद्मैः पद्मालयाभर्ता, अर्चितः पद्महस्तधृक् ।

ददाति वैष्णवान् पुत्रान् भक्तिश्चाव्यभिचारिणीम् ॥

यः करोति नरो नित्यं, कार्तिके पत्रभोजनम् ।

न दुर्गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

भोजनं पद्मपत्रेषु, महापातकनाशनम ।

कार्तिके मुक्तिदं प्रोक्तं, ब्रह्मपत्रेषु भोजनम् ॥

देवीपुराणे—

कार्तिके ग्रहणं श्रेष्ठं, गंगायमुनसङ्गमे ।

महाभारते—

"मासि मास्यश्वमेधेन, यो यजेच्छतं समाः ।

न खादति च यो मांसं, सममेतद्युधिष्ठिर ॥

यस्तु वर्षशतं पूर्णं, तपस्तप्येत्सुदारुणम् ।

यश्चैव वर्जयेन्मांसं, समं तत्स्यान्न वा समम् ॥

कौमुदं तु विशेषेण, शुक्लपक्षं नराधिप ।

वर्जयेत्सर्वमांसानि, धर्मो ह्यत्र विधीयते" ॥

नन्दिपुराणे—

"यो नरः कार्तिके मासे, मांसं तु परिवर्जयेत् ।

सव्वँत्सरस्य लभते, फलं मासविवर्जनात् ॥

विष्णुः—"मासः कार्तिकोऽग्निदैवत्यो, ऽग्निश्च सर्वदेवानां मुखं तस्मात्कार्तिके मासि बहिः स्नायी गायत्रीजपनिरतः सदैव हविष्याशी वत्सरकृतात्पापात् पूतो भवति । अत्र प्रातः कालो नाङ्गम् । अतो मध्याह्नस्नानेऽपीदमेव फलम् । बहिः = ग्रामात् गृहाच ।

"कार्तिकं सकलं मासं, नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुक् शान्तः, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

नित्यं स्नानं = प्रातः स्नानम् । अत्रोभयत्र आचारात् सौरमासपरिग्रहः । भविष्य-पुराणे—

"यः कुर्यात्कार्तिके मासि, शोभनां दीपमालिकाम् ।
चण्डिकायतने भक्त्या, स हि सूर्य्योपमो भवेत् ॥
ददाति कार्तिकं यस्तु, सूर्य्यायतनदीपकम् ।
अव्याहतेन्द्रियत्वञ्च, स प्राप्नोति न संशयः ॥

ब्रह्मपुराणे—

"तुलां प्रत्यागते सूर्य्ये, संक्रान्तौ विषुवे सति ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदेयानि, शस्यानि भवनानि च ॥

अत्र स्वर्गः फलं विश्वजिन्न्यायात् । देवीपुराणे—

"तुलास्थे दीपदानेन, पूजा कार्य्या महाफला ।
दीपवृक्षः प्रकर्तव्यो, दीपचक्रमथापरम् ॥
दीपयात्रा प्रकर्तव्या चतुर्दश्यां कुहूषु च ।
सिनीवाली यदा वत्स, तदा कार्य्या महाफला ॥
सर्वमेव प्रकर्तव्यं, बलिपूजामहोत्सवम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

"आश्वयुज्यामतीतायां, यावद्राजेन्द्र कार्तिकी ।
तावद्दीपप्रदस्योक्तम्, फलं राजेन्द्र शाश्वतम् ॥
तावत्कालं प्रयच्छन्ति, ये तु दीपं सदा निशि ।
तुङ्गे देशे बहिस्तेषाम्, महत्पुण्यफलं भवेत् ॥
अप्यन्धकारे गहने, प्राकाश्यं तेन जायते ।
प्राकाश्यात्कुरु शार्दूल, तेन यान्ति हि तत्सुखम्" ॥

अत्र कार्तिकप्रतिपदादिपौर्णमास्यन्तं कार्तिके दीपदानमिति दानसागरः ।

भविष्यपुराणे—

"दिने दिने जपन्नमन् भास्करस्य विशेषतः ।
ददाति कार्तिके यस्तु, भगाय तदनुत्तमम् ॥
तस्य स्मरत्वं प्रज्ञां च, प्राकाश्यं सर्वजन्तुषु ।
अव्याहतेन्द्रियत्वञ्च, स प्राप्नोति न संशयः ॥

भगः = आदित्यः । विष्णुधर्मोत्तरे—

"कार्तिके दीपदानेन, सर्वान् कामानवाप्नुयात्" ।

अत्रापि शुक्लप्रतिपदमारभ्यामावास्यान्तं कार्तिके दीपदानमिति दानसागरः । ब्रह्मोवाच—

दीपं प्रयच्छति नरः, सूर्यस्यायतने तु यः ।
तेजसा रविसंकाशः, सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥
कार्तिके तु विशेषेण, कौमुदे मासि दीपकम् ।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति, तदन्येन न लभ्यते ॥
कार्तिके तु विशेषेण, कौमुदे मासि दीपकम् ।
दत्त्वा सूर्यस्यायतने, न याति नरकं नरः ॥
एष प्रभावो दीपस्य, कार्तिके मासि सुव्रत ।
अर्कायतनदत्तस्य, यथा रुद्रवचः पुरा" ॥

कौमुदे = कौमुद्या = चन्द्रज्योत्स्नया युक्ते । सर्वाहोरात्रे शुक्लपक्ष इत्यर्थः । मासविशेषे पक्षवैयर्थ्यापत्तेः ।

"सर्वकालञ्च चक्षुष्मान्, मेधावी दीपदो नरः ।
जायते नरकञ्चापि, तमः संज्ञं न पश्यति ॥
षष्ठीं वा सप्तमीं वापि, प्रतिपक्षं तु यो नरः ।
दीपं ददाति दत्त्वा च, यत्फलं तन्निबोधत ॥
काञ्चनं मणिमुक्ताद्यमनोज्ञमतिशोभनम् ।
दीपमालाकुलं दिव्यं, विमानमधिरोहति" ॥

कार्चूर = काञ्चनम् ।

"तस्मादायतने भानोः, दीपं दद्यात्सदाऽच्युतम ।
तं प्रदीप्तं न हिंसेत, न च तैलविवर्जितम् ॥
अदाता दीपहर्ता च, मूषिकोऽन्धश्च जायते ।
तस्माद्दद्यन्न च हरेच्छ्रेयोऽर्थी दीपकं नरः ॥

तत्तत्सकलपक्षषष्ठीसप्तमीषु दीपदानम् प्रसङ्गात्कार्तिके लिखितम् । गौडाः—

"उच्चैः प्रदीपमाकाशे, यो दद्याद्विष्णवे नरः
स सर्वं कुलमुद्धृत्य, विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥

कार्तिके प्रकरणात् ।

"यस्तु केशबमुद्दिश्य, दीपं दद्यात्तु कार्तिके ।
आकाशस्थं जलं चापि, शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥
धनधान्यसमृद्धस्तु, धनगनीश्वरो भवेत् ।
लोचने च शुभे तस्य, विद्वानपि च जायते ॥
तुलायां तिलतैलेन, मासं सन्ध्यासमागमे ।
आकाशदीपं यो दद्यात् , मासमेकं निरन्तरम् ॥
श्रीकामश्च श्रीपतये, स श्रिया न वियुज्यते ।

दीपदानसमये पठनीयो मन्त्रः—

"दामोदराय नभसि, तुलायां लोलया सह ।
प्रदीपन्ते प्रयच्छामि, नमोऽनन्ताय वेधसे ॥

एतत्पर्य्यन्तंकृत्यमहार्णवीयं ज्ञेयम् । अतः परन्तु तिथितत्त्वचिन्तामणिसम्मतं प्रदर्श्यते—
"तुलासंक्रमणे दशघटिकाः प्रागपराः पुण्यकालाः । तत्र गौडमैथिलसम्प्रदायस्तु विष्णु-स्मृतिपद्मपुराणे यथा—

"तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नानं विधीयते ।
हविष्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च, महापातकनाशनम्" ॥

इति सौरमासक्रमो ज्ञेयः ।

"तुलार्कसंक्रमे चैव, धान्यगर्भसमुद्भवः ।
ततः पक्षमभिव्याप्य, शस्यं नैवावलोकयेत् ॥
यदि दैवाद्धान्यगर्भाच्छस्यगर्भं विलोकयेत् ।
अनिष्टमापतेत्तस्य, ततः शान्तिं समाचरेत्" ॥

इति व्यासस्मृतौ वृहन्मनुवाक्यम । धान्यगर्भसंक्रान्तिशान्तिश्च दीपदानादिपुराणश्रवणादिव्यवहारो मासं यावदिति बोध्यम् । दाक्षिणात्यास्तु—

"आश्विनस्य तु मासस्य, या शुक्लैकादशी भवेत् ।
कार्तिकस्य व्रतानीह, तस्यां वै प्रारभेन्नरः" ॥

इति पद्मपुराणीयम् । भृगुस्मृतौ तु—

"प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः ।
प्रातः स्नानं प्रकुर्वीत, यावत्कार्तिकभास्करम्" ॥ इति

विष्णुरहस्येऽपि—

"पूर्वं आश्वयुजे मासि, पौर्णमास्यां समाहितः ।

इत्यभिधाय, "मासं समग्रं परया च भक्त्या समाप्यते, कार्तिकपौर्णमास्याम् इत्यन्तेऽभिधानाचाश्विनशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वाऽरभ्य कार्तिकशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा समापयेदिति पञ्चद्राविड़सम्प्रदायः । विष्णुवचने सामान्योक्तिर्यथा—

"कार्तिकं सकलं मासं, नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुक् शान्तः, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति ।

तथापि सौरक्रम एवेदं ज्ञेयमिति मैथिलस्मार्ताः । कार्तिके तीर्थविशेषे फलं तथा—

"कुरुक्षेत्रे कोटिगुणः गङ्गायामपि तत्समः ।
ततोऽधिकः पुष्करे स्याद् द्वारवत्याञ्च भार्गव" ॥
"पुण्याः पुर्य्यश्च सप्तैव, संख्याताः मथुरादिकाः ।
दुर्लभः कार्तिको मासे, मथुरायां नृणामिह ॥

यत्रार्चितः स्वकं रूपं, भक्तेभ्यः सम्प्रयच्छतीति ।

स्नानमिदं काशीस्थपञ्चनदेऽतिप्रशस्तमित्याह—

"शतं समास्तपस्तप्त्वा, कृते यत्प्राप्यते फलम् ।
तत्कार्तिके पञ्चनदे, सकृत्स्नानेन लभ्यते" ॥

स्नानमन्त्रस्तु काशीखण्डे—यथा—

कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातः स्नानं जनार्दन ।
प्रीत्यर्थं तव देवेश, दामोदर मया सह ॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य, मौनी स्नायाद् व्रती नरः" । इति

अर्घमन्त्रोऽपि तत्रैव यथा—

"व्रतिनः कार्तिके मासि, स्नातस्य विधिवन्मम ।
गृहाणार्घं मया दत्तं, राधया सहितो हरे" ॥ इति

अर्घदाने फलमाह—

"सुवर्णरत्नपुष्पाम्बुपूर्णशंखेन पुण्यवान् ।
सुवर्णपूर्णा पृथिवी, तेन दत्ता न संशयः" ॥ इति

सम्पूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहमपि स्नायादित्यपि विधिः । तथा हि—

"अशक्तस्त्रिदिनं स्नायान्मद्भक्तः कार्तिके यदि ।
तस्मै पुण्यफलं लोके, दास्यामि सकलं मुदा" ॥

इति विष्णुरहस्ये ।

"वाराणस्यां पञ्चनदे, त्र्यहस्नातास्तु कार्तिके ।
अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोऽतिनिर्मलाः" ॥

इति काशीखण्डोक्तम् । कार्तिके धात्रीमालाधारणमतिप्रशस्तम् ।

"स्पृशेत्तु यानि लोमानि, धात्रीमाला कलौ नृणाम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्" ॥

इति विष्णुधर्मवचनात् । धात्रीछायायां कार्तिके पिण्डदानं प्रशस्तम् ।

"धात्रीछायायां तु यः कुर्य्यात्, पिण्डदानं महामुने ।

मुक्तिं गच्छन्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य च" ॥

इति कार्तिकमाहात्म्यवचनात् । किञ्च—

"धात्रीफलविलिप्ताङ्गो, धात्रीफलविभूषितः ।
धात्रीफलकृताहारो, नरो नारायणो भवेत् ॥
धात्रीछायां समाश्रित्य, योऽर्चयेच्चक्रपाणिनम् ।
पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य, फलं प्राप्नोति मानवः" ॥

किञ्च—

"कार्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे, दीपदानाद्दिवं व्रजेत् ।
कार्तिके तु कृता दीक्षा, नृणां जन्मविमोचिनी ॥
कार्तिके विष्णुसेवी यः, प्राजापत्यपरोऽपि वा ।
एकान्तरोपवासी वा, त्रिरात्रोपोषितोऽपि वा ॥
षड् वा द्वादशपक्षं वा, मासं वा वरवर्णिनि ।
एकभक्तेन नक्तेन, तथैवायाचितेन च ॥
उपवासेन भैक्ष्येण, व्रजते परमं पदम्" । इति

नरसिंहपुराणे—

"अगस्तिकुसुमैर्देवम्, योऽर्चयेच्च जनार्दनम् ।
दर्शनात्तस्य देवर्षे, नरकं नाप्नुयान्नरः ॥
विहाय सर्वपुष्पाणि, मुनिपुष्पेण केशवम् ।
कार्तिके योऽर्चयेद् भक्त्या, वाजपेयफलं लभेत्" ॥

तथा—

"मालतीमालया चैव, केतक्या कमलेन च ।
समः सहस्रं प्रीतः सन् , मुक्तिं दिशति वै हरिः ॥

पुष्करपुराणे—

"तुलायां तिलतैलेन, सायंकाले समागते ।

आकाशदीपं यो दद्यात्, मासमेकं हरिं प्रति ॥
महतीं श्रियमाप्नोति, रूपसौभाग्यसम्पदमिति" ।

महाभारते—

"कार्तिकं तु नरो मासं, यः कुर्य्यादेकभोजनम् ।
नरः स वहुभार्य्यश्च, कीर्तिमांश्चैव जायते" ॥

भविष्यपुराणे—

"एकभक्तेन या नारी, कार्तिकं च क्षिपेन्नृप ।
क्षमाऽहिंसानियमैः, सय्युँता ब्रह्मचारिणी ॥
गुडान्नमिश्रं शाल्यन्नं, भास्कराय निवेदयेत् ।
पुष्पाणि करवीराणि, सगुग्गुलुमाज्यमादरात् ॥
सप्तम्यामथ वा षष्ठ्यामुपवासरतिर्भवेत् ।
पक्षयोरुभयोः स्नात्वा, श्रद्धया परयान्विता ॥
इन्द्रनीलप्रतीकाशैरालोकैः सार्वकालिकैः ।
नारीयुगशतं साग्रं, सूर्यलोके महीयते ॥
तस्मादागत्य लोकेऽस्मिन्, यथेष्टं विन्दते पतिम् ।
इत्येवं सर्वयज्ञेषु, विधिस्तुल्यः प्रकीर्तितः ॥
एकभुक्तोपवासस्य, फलञ्च सदृशं भवेत् ।

स्कन्दपुराणे—

"कार्तिकं वै तु यो मासमेकभुक्तेन तिष्ठति ।
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य, विष्णुलोके महीयते ॥

विष्णुधर्मे—

"द्विजवेश्मनि यो दद्यात्, कार्तिके मासि दीपकम् ।
अग्निष्टोमफलं तस्य, प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

भविष्यपुराणे—

"यो दद्यात्कार्तिके मासि, शोभनां दीपमालिकाम् ।

चन्द्रिकायतने भक्त्या, स सूर्य्यालयमाव्रजेत् ॥
घृतेन कुरुशार्दूल, आमावस्यायां तु भक्तितः ।
विशेषतो नवम्यां तु, भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥
यावन्तो दीपसंघास्तु, तैलेनापूर्य रोधिताः ।
तावत्कल्पसहस्राणि, दुर्गालोके महीयते" ॥

कार्तिके कृष्णचतुर्थी "करक चतुर्थी" सा तिथिद्वयवेधे चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । तत्रैव पूजोक्तेः । कार्तिककृष्णद्वादशी = "गोवत्स" संज्ञा । सा च प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वयलाभे पूर्वा युग्मवाक्यात् । "वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्या प्रथमेऽहनि" इति निर्णयसारेऽभिधानात् । कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गं कुर्य्यात् । तदाह स्मृतिदर्पणे—

"पूर्वविद्धा चतुर्दश्यां, कार्तिकस्य सितेतरे ।
पक्षे प्रत्यूषसमये, स्नानं कुर्य्यात्प्रयत्नतः ॥

चतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदये चतुर्दशीसत्त्वे तदभावेऽप्यरुणोदये सम्पूर्णे खण्डे वा चतुर्दशीसत्त्वे च पूर्वदिनेऽभ्यङ्गं कुर्य्यात् । पूर्वविद्धचतुर्दश्यामिति वचनात । करकचतुर्थीमारभ्येयत्पर्य्यन्तं व्यवहारो दाक्षिणात्यानाम् । ज्योतिर्निबन्धे नारदोऽपि—

"इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि ।
ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते, तदा दीपावली भवेत्" ॥

इति स्कान्दे ।

ततः प्रदोषसमये, दीपान् दद्यान्मनोरमान् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां, भवनेषु मठेषु च" ॥ इति

तथा—

"कार्तिके कृष्णपक्षे तु, प्रदोषे भूतदर्शयोः ।
उल्काहस्ताः नराः कुर्य्युः, पितॄणां मार्गदर्शनम्" ॥ इति

अत्र वृद्धमनुना यमतर्प्पणमुक्तम्—

"दीपोत्सवे चतुर्दश्यां, कार्य्यं तु यमतर्पणम् ।

ब्रह्मपुराणे—

"अपामार्गस्य पत्राणि, भ्रामयेच्छिरसोपरि ।
ततश्च तर्पणं कार्य्यम्, धर्मराजस्य नामभिः ॥

नामभिस्तर्पणं यथा —

"यमाय धर्मराजाय, मृत्यवे अन्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय, सर्वभूतक्षयाय च ।
औदुम्बराय दध्नाय, नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय, चित्रगुप्ताय वै नमः ॥
जीवत्पितापि कुर्वीत, तर्पणं यमभीष्मयोः" । इति

तिथितत्त्वे ज्योतिषे—

"तुलाराशिगते भानौ, आमावास्यां नराधिप ।
स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या, सम्पूज्याथ प्रणम्य च ॥
कृत्वाऽथ पार्वणश्राद्धं, दधिक्षीरगुडादिभिः ।
ततोऽपराह्णसमये, घोषयेन्नगरे नृप ॥
लक्ष्मीः सम्पूज्यतां लोकाः, उल्काभिश्चापि वेष्टिता ।

दर्शद्वैधे प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः ।

"तुलासंस्थे सहस्रांशौ, प्रदोषे भूतदर्शयोः ।
उल्काहस्ताः नराः कुर्य्युः पितॄणां मार्गदर्शनम्" ॥

इति ज्योतिषात् । उभयतः प्रदोषव्याप्तौ परदिन एव युग्मवाक्यात् ।

"दण्डैकरजनीयोगो, दर्शः स्यात्तु परेऽहनि ।
तदा विहाय पूर्वद्युः, परेद्युः सुखरात्रिका" ॥

इति ज्योतिर्वचनात् । उभयत्र प्रदोषव्याप्त्यभावेऽपि उल्कादानं कुर्वीत परदिने पार्वणानुरोधात् ।

"भूताहे ये प्रकुर्वन्ति, उल्काग्रहणचेतसः ।

निराशाः पितरो यान्ति, शापं दत्त्वा सुदारुणम्" ॥

इति ज्योतिर्वचनाच्च । अत्रैव लक्ष्मीः पूर्वाह्णे रात्रौ पूज्याः ।

"अमावास्या यदा रात्रौ, दिवाभागे चतुर्दशी ।
पूजनीया तदा लक्ष्मीः विज्ञेया सुखरात्रिका" ॥

इति ज्योतिर्बन्धवचनात् । उल्काग्रहणादिः पितृकुलत्वात्प्राचीनरीत्या दक्षिणमुखेन कर्तव्यः । तत्र मनुः —

"प्राचीनारीतिना सम्यगपसव्यममन्त्रिणा ।
पित्र्यमानिधनात्कार्य्यम्, विधिवद्दर्भपाणिना" ॥ इति

अथ उल्काग्रहणमन्त्रः—

"शस्त्राशस्त्रहतानाञ्च, मृतानां भूतदर्शयोः ।
उज्ज्वलज्योतिषा देहं, दहेयं व्योमवह्निना ॥

दानमन्त्रस्तु—

"अग्निदग्धाश्च ये जीवा, येऽप्यदग्धाः कुले मम ॥
उज्ज्वलज्योतिषा दग्धाः ते यान्तु परमां गतिम्" ॥ इति

उल्काविसर्जनमन्त्रस्तु—

"यमलोकं परित्यज्य, आगता ये महालये ।
उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म, प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते ॥ इति

अथ कार्तिकामावास्याप्रदीपनम् । तत्र ब्रह्मपुराणम् ।

शालायां ब्राह्मणः कुर्य्यात्, स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।
प्रतिपदि ब्राह्मणश्च, गुडमिश्रैः प्रदीपकैः ॥
वासोभिर्विहितैः पूज्यः, स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।
गन्धैः पुष्पैः नवैर्वस्त्रैरात्मानं भूपयेत्तु यः ॥
तस्यां प्रदीपदायां तु, स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।
महापुण्या तिथिरियं, बलिराज्यप्रवर्तिनी ॥

ब्रह्मणः स्वप्रिया नित्यं, वालेयी परिकीर्तिता ।
ब्राह्मणात् पूजयित्वा तु, स्वात्मानं च प्रपूजयेत् ॥
स याति परमं स्थानं, विष्णोरतुलतेजसः" ।

तथा—

"अमावास्यायान्तु वै देवाः, कार्तिके मासि केशवात् ।
अभयं प्राप्य सुप्तास्तु, सुखं क्षीरोदसानुषु ॥
लक्ष्मीः दैत्यभयान् मुक्ता, सुखं सुप्ताऽम्बुजोदरे ।
चतुर्युगसहस्रं तु, ब्रह्मा स्वपिति पङ्कजे ॥
अतोऽत्र तिथिवत्कार्य्या, मनुष्यैः सुखसुप्तिका ।
दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् ॥
प्रदोषसमये लक्ष्मीं, पूजयित्वा यथाविधि ।
दीपवृक्षास्तदा कार्य्याः, भक्त्या देवगृहेषु च ॥
चतुष्पथे श्मशाने च, नदीपर्वतवेश्मसु ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु, चत्वरेषु गृहेषु च ॥
वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्या, क्रयविक्रयभूमयः ।
दीपमालापरिक्षिप्ते, प्रदेशे तदनन्तरम् ॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वादौ, विभोज्य च बुभुक्षितम् ।
अलङ्कृतेन भोक्तव्यम्, नववस्त्रोपशोभिना ॥
स्निग्धैर्मुग्धैर्विदग्धैश्च, बान्धवैर्भृतकैः सह" ।

यद्यपि तत्रेत्यनेन अमावास्या परामृश्यते । तथापि प्रदोषश्रवणात् दिवाभोजी प्रदोषे लक्ष्मीं सम्पूज्य ब्राह्मणान् बुभुक्षितांश्च भोजयित्वा विसृज्य भुञ्जीतेत्यर्थः । तेनामावास्याप्रदोषात्प्राक् चतुर्दश्यामल्पभोजनमेकवाक्यताऽनुरोधात् । भविष्योत्तरे तु—

"एवं प्रभातसमये, त्वमावास्यां नराधिप ।
स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या, सम्पूज्याथ प्रणम्य च" ॥ इति

दक्षिणात्यमते तु–

"ओँ लक्ष्म्यै नमः" इत्येव पूजामन्त्रः ।

प्रार्थनामन्त्रस्तु–

"ओँ नमस्ते सर्वदेवानां, वरदासि हरिप्रिये ।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात् ॥ इति

दीपदानमन्त्रस्तु—

"अग्निर्ज्योती रविर्ज्योतिश्चन्द्रो ज्योतिस्तथैव च ।
उत्तमः सर्वज्योतीनां, दीपोऽयं प्रतिगृह्यतामिति ॥
मन्त्रेणानेन कमलां, दीपहस्तां स्त्रियो द्विजाः ।
देवीं प्रबोधयेद्यश्च, ततः कुर्य्याच्च भोजनमिति ।

उल्काभ्रामणनिशाप्रभाते किं कर्तव्यमित्याह-मदनरत्ने-भविष्यपुराणम्—

"एवंगते निशीथे तु, जने निद्रान्धलोचने ।
तावन्नगरनारीभिः, सूर्यडिण्डिमावादनैः ॥
निष्काश्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणाद् । इति

तिथितत्त्वे दीपदानानन्तरं ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयं भुक्त्वा प्रत्यूषे भविष्योक्तं कुर्य्यात् । यथा–

"सुखरात्रेरुदयः काले, प्रदीपोज्वलितालये ।
बन्धुबन्धूनबन्धूँश्च, वाचा कुशलयार्चयेत् ।
गोरोचनाक्षतैश्चैव, दद्यादङ्केषु सर्वतः ॥

लक्ष्मीपूजामन्त्रस्तु–

ओँ विश्वरूपस्य भार्यासि, पद्मे पद्मालये शुभे ।
महालक्ष्मि नमस्तुभ्यम्, सुखरात्रिं कुरुष्व मे ।
वर्षाकाले महाघोरे, यन्महादुष्कृतं कृतम् ॥
सुखरात्रिप्रभाते तु, तन्मे लक्ष्मीर्व्यपोहतु ।

कुङ्कुमालक्तकाभ्याञ्च, रक्तसूत्रैः सकङ्कणैः ॥

नानाविधैस्तथा पुष्पैः द्रव्यैर्वीर क्रयाहृतैः ।

कुठेरकं तु क्रयविक्रययोः विक्रेतुः पण्यम् तन्मूल्यत्याजनेन क्रयः। शुक्ल-द्वादशीमुपक्रम्य विष्णुधर्मोत्तरे—

"सरोमवस्त्रदानेन, कार्तिके दिवमाप्नुयात्"। सरोमवस्त्रं पट्टादि।

"कौमुदस्य तु मासस्य, या सिता द्वादशी भवेत्।

अर्चयेद्यस्तु मां तत्र, तस्य पुण्यफलं शृणु ॥

यावल्लोकास्तु वर्तन्ते, यावत्त्वं चैव माधवि।

मद्भक्तो जायते तावदन्यभक्तो न जायते।

कृत्वा वै मम कार्याणि द्वादश्यां मत्परो नरः ॥

ममैव बोधनार्थाय, इमं मन्त्रमुदीरयेत्।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो, भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः।

प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या, जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥

मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्रशारद्यपुष्पाणि मनोहराणि।

अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द, त्यज निद्रां जगत्पते।

त्वया चोत्थीयमानेन, उत्थितं भुवनत्रयम्" ॥

इति सम्प्रदायागतस्तृतीयः श्लोकः।

"एवं कर्माणि कुर्वन्ति, द्वादश्याञ्च यशस्विनि।

मम भक्ता नरश्रेष्ठास्ते यान्ति परमाङ्गतिम् ॥

एवं वै शारदं कर्म, निखिलं निर्मितं मया।

मोदते देवि संसारे, मम भक्तः सुखावहः ॥

मन्वन्तरादिश्चेयं द्वादशी। ब्रह्मपुराणे—

"पुण्या महाकार्तिकी स्यात्, जीवेन्द्वोः कृत्तिकास्थयोः।

मघास्थयोश्च जीवेन्दोः, महामाघीति चोच्यते"॥

तथा—

आग्नेयं तु यदा ऋक्षं, कार्तिक्यां भवति क्वचित् ।
महती सा तिथिर्ज्ञेया, स्नानदानेषु चोत्तमा ।
यदा याम्यं तु भवति, ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित् ॥
तिथिः साऽपि महापुण्या, मुनिभिस्तु प्रकीर्तिता ।
प्राजापत्यं यदा ऋक्षम्, तिथौ तस्यां नराधिप ॥
सा महाकार्तिकी प्रोक्ता, देवानामपि दुर्लभा ।

आग्नेयम् = कृतिका । प्राजापत्यम = रोहिणी ।

एवम् मासर्क्षे जीवेन्दुसमागमाभावेऽपि महाकार्तिकी भवति । अत्र शिष्टाः—

"माससंज्ञे यदा ऋक्षे, चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ।
गुरुणा याति संयोगं, सा महाकार्तिकी स्मृता" ॥इति ।
"कार्तिके पूर्णिमायां तु सोपवासोऽर्चयेत्तु माम् ।
सोऽग्निष्टोमफलं विन्दन् सूर्यलोकञ्च गच्छति" ॥इति भविष्यपुराणे ॥

देवीपुराणे—

कार्तिक्यां कारयेत्पूजां, यागं देवीप्रियं तथा ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां, तत्र पूजा महाफला ॥
यज्ञोत्सर्गश्च कर्तव्यो, नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।
सर्वयज्ञफलं वीर, प्राप्नुयादविचारतः" ॥

मत्स्यपुराणे-

कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ।
स शैवं पदमाप्नोति वृषव्रतमिदं स्मृतम् ॥
कार्तिक्यां कार्तिके स्नातः, सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

महाभारते—

"तस्मात्तु कपिलादयो, कौमुद्यां ज्येष्ठपुष्करे ।
न तस्य विषमं किञ्चित्, न दुःखं न च कण्डकम् ॥
यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रं समाचरेत् ।
कार्त्तिकीं वा वसेदेकां, सममेतद्युधिष्ठिर"

वसेत् ज्येष्ठपुष्करे प्रकरणवशात् । विष्णुधर्मोत्तरे—

"चन्द्रसूर्य्यग्रहे पुण्ये कार्त्तिक्यामयने तथा ।
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां, सूर्य्यसंक्रान्तवासरे ।
यदा वा जायते वित्तं, चित्तञ्च कुलनन्दन ।
तदैव देया महिषी, संसारभयभीरुणा ॥
सुपयोधरा सुजघना, सुश्रृङ्गी मुखरा तथा ।
प्रथमप्रसूता तरुणी सुलीला दोषवर्जिता ॥
सुवर्णश्रृङ्गी तिलकघण्टाभरणभूषिता ।
रक्तवस्त्रावृता रम्या, ताम्रदोह्यान्विता शुभा ॥
पिण्याकपिटकोपेता, सहिरण्या च शक्तितः ।
सप्तधान्ययुता देया, ब्राह्मणे वेदपारगे ॥
पुराणपाठके तद्वद्धर्मशास्त्रविदे तथा ।
देया न वेदरहिते, न वकव्रतिने तथा ॥
द्रव्यैरेभिः समायुक्ता, पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ॥
दद्यान्मन्त्रेण राजेन्द्र, पुराणपठितेन च ।
इन्द्राग्निलोकपालानां, या रजन्महिषी शुभा ॥
महिषीदानमाहात्म्यादस्तु मे सर्वदा यदा ।
धर्मराजस्य माहात्म्याद्यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ॥
महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम" ।

एष दानमन्त्रः—

"दद्यात्प्रदक्षिणीकृत्य, ब्राह्मणं तां पयस्विनीम् ।
प्रतिग्रहः स्मृतः तस्याः, पृष्ठदेशे स्वयंभुवा ॥
एवं तत्त्वविधानेन, ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ।
क्षमापयेत्ततो विप्रं, सन्तुष्टश्च भवेद्यथा ॥
अनेन विधिना दत्त्वा, महिषीं द्विजपुङ्गवे ।
सर्वान् कामानवाप्नोति, इह लोके परत्र च ॥
या स्त्री ददाति महिषीं, राज्ञां सा महिषी भवेत् ।
महाराजो भवेत्पुरुषो, व्यासस्य वचनं तथा ॥
यज्ञराजो भवेद्विप्रः, क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यस्तु धान्यधनवान शूद्रः सर्वार्थसय्युँतः ॥
तस्मात् सर्वेण दातव्या, महिषीविभवे सति ।
पुत्रपौत्रप्रपौत्राणामात्मनः शुभमिच्छता ।
दशधेनुसमानां यन्महिषीं, नारदोऽब्रवीत् ॥
त्रिंशद्धेनुसमां व्यासः, सर्वदा चोत्तमां कवि ।
सगरेण ककुत्स्थेन, जनकेन च गाधिना ॥
दत्ताः सविधविप्रेभ्यो, महिष्यः सर्वकामदाः ।
महिषीदानवाक्यं तु, यः शृणोति सदा नरः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः, स्वर्गलोके महीयते ।
दुग्धाधिकां तु महिषीं, वरमेधवर्णां ॥
संघट्टपट्टकवतीं, जघनाभिरामाम् ॥
दत्त्वा सुतिलकां, द्विजपुङ्गवाय ।
लोकत्रयं विजयतेऽप्रतिमप्रभावः ॥

इति महिषीदानविधिः ।

सप्तधान्यानि—यव-गोधूम-चीणक-तिल-श्वेत-श्यामाक-धान्यानि । अग्नेयपु रा-

णे तु—महिषीदाने विंशतिवृषदानसमानतोक्ता । पुंसो महाराजभवनं नोक्तम् । शेषं समानम् ।

अथात्र व्रतपद्धत्यनुसारेण कार्तिककृत्यं प्रदर्श्यते—उच्चैः प्रदीपमाकशमित्यादि यत्पूर्वमलेखि तत्संकल्पो लिख्यते—

कार्तिके संक्रान्तिक्रमेण प्रथमदिने प्रातःकाले कृतस्नानादिराचान्तः "ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता अद्यादिकार्तिकमासं व्याप्य प्रतिरात्रि विष्णुसम्प्रदानकाकाशदीपव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य कुशादीन्यादाय, ॐ सर्वकुलोद्धरणपूर्वकविष्णुलोकप्राप्तिकामनया अद्यादिकार्तिकमासं व्याप्य प्रतिरात्रि केशवसम्प्रदानकाकाशस्थदीपं विष्णवेऽहं दास्ये" । इति । अथ वा भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता अद्यादिकार्तिकमासं व्याप्य, प्रतिनिशं केशवसम्प्रदानकाकाशस्थदीपदानव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, कुशादीन्यादाय, "ॐ धनधान्यसमृद्धत्वपुत्रवत्त्वैश्वर्य्यशुभलोचनत्वविद्वत्त्वकामनया अद्यादिकार्तिकमासं व्याप्य प्रतिनिशमाकाशस्थदीपम् केशवायाऽहं दास्ये" इति सङ्कल्पं कृत्वा, रात्र्युपक्रमे विष्णुं सम्पूज्य,—

"ॐ दामोदराय नभसि, तुलायां लोलया सह ।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि, नमोऽनन्ताय वेधसे" ॥

इति पठित्वा, ॐ विष्णवे नमः, इति जलेन दद्यात् । द्वीतीयव्रते केशवं सम्पूज्य, एष दीपः ॐ केशवाय नमः, इति जलेन दद्यात् । एवं मासं यावत् कुर्य्यात् । तथा 'तुलायां तिलतैलेने' त्यादि । अत्रापि संक्रान्तिक्रमेण कार्तिकोपक्रमे प्रातः काले "ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता अद्यादितुलास्थरवौ मासं व्याप्य प्रतिसायमाकाशस्थश्रीपतिसम्प्रदानकदीपदानव्रतमहमाचरिष्यामीति निवेद्य, कुशादीन्यादाय, "ॐ श्रीवियोगाभावकामनया अद्यादितुलास्थरवौ मासं व्याप्य प्रतिसायं सन्ध्यामाकाशस्थदीपं श्रीपतयेऽहं दास्ये' इति सङ्कल्पः । सायंकाले तिलतैलेन पूर्ववद्दीपो देयः । प्रत्यहं स एव मन्त्रः । दानवाक्ये श्रीपतये इति विशेषः । एवमन्यत्रापि दीपदाने संकल्पः ऊह्यः ।

अथ प्रातःस्नानादिफलम् ।

कार्तिकं सकलं मासमित्यादि अत्रापि सौरो मास इति शिष्टसम्प्रदायः । तत्र सौरकार्तिकोपक्रमे अरुणोदयवेलायां कुशादीन्यादाय "ॐ सर्वपापक्षयकामोऽद्य-

दिकार्तिकमासं व्याप्य, प्रतिप्रातः स्नानमहं करिष्ये' इति संकल्पः । 'जितेन्द्रियत्वं ब्रह्मचर्य्यम् जपो गायत्र्याः, हविष्यभोजनं शान्तत्वम् हिंसादिनिवृत्तिः एतान्यङ्गानि अग्निपूजा च । मांसभक्षणनिवृत्त्येकभुक्तयोः फलमग्रे वक्ष्यामः । शिवाधिकारे भविष्यपुराणे——

"यः कुर्य्यात्कार्तिके मासि, शोभनां दीपमालिकाम् ।"

इत्यादि रुद्रलोके महीयते इत्यन्तम् पूर्वं लिखितम् । अतः संकल्पोऽत्र लिख्यते—कार्तिककृष्णचतुर्दश्याममावास्यायां वा बहून् दीपान् प्रज्वाल्य, कुशादीन्यादाय, "ॐ एतद्दीपसमसंख्ययुगसहस्रावच्छिन्नरुद्रलोकमहितत्वकामोऽद्यकार्तिककृष्णचतुर्दश्यामेमां दीपमालिकाम् शिवायाऽहं ददे । येन पितृपक्षे पार्वणश्राद्धं न कृतम् तेन कार्तिकामावास्यायां कर्तव्यम् । यदाह——

"येयं दीपान्विता राजन्, ख्याता पञ्चदशी भुवि ।
तस्यां दद्यान्न चेद्दत्तं, पितॄणां तु महालये" ॥

महालये उत्सवाश्रये–पितृपक्षे नचेद्दत्तमित्यर्थः[1] ।

यावल्लोकपृथिव्यवस्थानम् तावत्पर्य्यन्तविमुक्तत्वपरमगतित्वप्राप्तिकामो विष्णुपूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य, पञ्चोपचारै विष्णुं पूजयेत् । पूजयित्वा च "ॐ ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवानित्यादि एकादश्यां लिखितं पठेत् । ततो विसर्जयेत् । कार्तिक्यामुमापूजायां भविष्यपुराणे——

कार्तिके पौर्णमास्यामित्यादि । तत्र चतुर्दश्यामुपवासं कृत्वा, पूर्णिमायाम् । 'ॐ अद्य कार्तिकपौर्णमास्यामग्निष्टोमफलप्राप्तिपूर्वकसूर्यलोकगतिकामः उमापूजनमहं करिष्ये' इति संकल्प्य, ॐ उमे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ उमायै नमः, अनेन प्रकारेण पञ्चोपचारैः पूजयेद्विसर्जयेच्च । अस्यां तिथौ सूर्य्यपूजा चाधिकफला ज्ञेया । स्नानादिकञ्च प्रशस्तम् ।

अथ दाक्षिणात्याः——

'अथ कार्तिकशुक्लद्वादशी' अस्यामेव चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः ।

---

१ ३३२ पृष्ठात् ३३४ पृष्ठपर्यन्तं मातृका नोपलब्धा ।

"चतुर्दा गृह्य वै चीर्णं, चातुर्मास्यव्रतं नरैः ।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु, द्वादश्यां तत्समापयेत्" ॥

इति महाभारतवचनात् ।

प्रार्थनामन्त्रस्तु—

"इदं व्रतं मया देव, कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ।
न्यूनञ्च सम्पूर्णतां यातु, त्वत्प्रसादाज्जनार्दन" ॥ इति

अस्यां रेवतीनक्षत्रान्तपादे पारणं न कार्य्यम् । इदञ्च शुक्रास्तादावपि कार्य्यम् । नियमकालत्वात् । इयञ्च मन्वादिः पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । अथ कार्तिकशुक्लचतुर्दशी = वैकुण्ठचतुर्दशी । उक्तञ्च हेमाद्रौ भविष्ये—

"कार्तिकस्य सिते पक्षे, चतुर्दश्यां नराधिप ।
सोपवासञ्च सम्पूज्य, हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः" ॥

अत्रेयं रात्रिव्यापिनी ग्राह्या । कार्तिकशुक्लचतुर्दश्यां पूर्वदिने कृतोपवासोऽरुणोदयवेलायां मणिकर्णिकायां स्नात्वा, विश्वेश्वरं पूजयेत्—

"सक्षेपज्योतिषस्तस्य, प्रतिष्ठाख्यां तदाऽकरोत् ।
स्वमेव स्वमात्मानं चरन् पाशुपतव्रतम्" ॥

तथा—

"ततः प्रभाते विमले, कृत्वा पूजां महाद्भुताम् ।
दण्डपाणेर्महानाम्नि, वनेऽस्मिन् कृतपारणः ॥
श्रीमद्भवानीसदनं सम्प्रविश्येदनुत्तमम्" ।

इति सनत्कुमारसंहितोक्तेः । काशीखण्डे—

"कार्तिकस्य चतुर्दश्यां, विश्वेशं यो विलोकयेत् ।
स्नात्वा चोत्तरवाहिन्यां, न तस्य पुनरागमः" ॥ इति

अस्यामेव कार्तिकव्रतोद्यापनं कार्य्यम्—

"ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्य्यादुद्यापनं व्रती" ।

इति पद्मपुराणात् ।

अथ कार्तिकपौर्णमासी ।

इयं मन्वादिः सामान्यनिर्णयात्परा ।

"कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे, यः कुर्य्याच्छम्भुदर्शनम् ।
सप्तजन्म भवेद्विप्रो, धनाढ्यो वेदपारगः" ॥

इति काशीखण्डे । अत्र नक्षत्रयोगविशेषेण पद्मकादियोगाः भवन्ति त्रिपुरोत्सवोऽप्यत्रैवोक्तो भविष्ये—

"पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां, कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः ।
दद्यादनेन मन्त्रेण, सुदीपांश्च सुरालये ॥
कीटाः पतङ्गाः मशकाश्च वृक्षाः, जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ।
दृष्ट्वा मदीयं नहि जन्मभाविनो, भवन्ति सत्यं श्वपचोऽपि विप्राः" ॥ इति

मत्स्ये—

"यः कार्तिक्यां वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ।
शैवं पदमवाप्नोति, शिवव्रतमिदं स्मृतम्" ॥

इति कार्तिककृत्यम् ।

अथ मार्गशीर्षकृत्यम्

महाभारते—

"मार्गशीर्षं तु यो मासमेकभुक्तेन यः क्षिपेत् ।
भोजयेच्च द्विजान् भक्त्या, मुच्यते सोऽथ किल्बिषैः" ॥

मत्स्यपुराणे—

"एकभुक्तेन नक्तेन, मार्गमासं तु यः क्षिपेत् ।
स तेन कर्मणा युक्तः, सुभगः सर्वतो भवेत्" ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

"लवणं मार्गशीर्षं तु, दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते । इति

देवीपुराणे—

"मार्गे रसोत्तमं दद्याद् व्रतं पौषे महाफलम् ।
तिलान् माघे मुनिश्रेष्ठ, सप्तधान्यानि फाल्गुने ॥
विचित्राणि च वस्त्राणि, चैत्रे दद्याद् द्विजोत्तमे ।
वैशाखे यवगोधूमान्, ज्येष्ठे तोयभृतं घटम् ॥
आषाढे चन्दनं देयं, सकर्पूरं महाफलम् ।
नवनीतं नभोमासि, छत्रं प्रोष्ठपदे स्मृतम् ॥
गुडशर्करवर्णाढ्यान्, लड्डुकानाश्विने मुने ।
दीपदानं महापुण्यम्, कार्तिके यः प्रयच्छति ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति, क्रमेण यदुदाहृतम् ।
व्रतान्ते गां शुभां दद्यात्, सवत्सां कांस्यदोहभाम् ॥
वस्त्रयुक्तां सवत्साञ्च, दापयेद्विधिना मुने ।
देयं विरञ्चिनं सूर्य्यं, विष्णुं वापि तथाविधि ॥
स्वभावशुद्धो विधिवत्पूजयित्वा द्विजोत्तमे ।
दातव्या वीतरागे तु, कामक्रोधविवर्जिते ॥
अयाचकसदाचारे, विनीते विनयान्विते ।
गोदानाल्लभते कामान्, गोलोकेषु मनोहरान् ॥

व्रतं चेदमेकवर्षनिर्वाह्यम् । अनावृतानुवादस्वरसात्, अन्यथा क्रमेण यत् स्वकृतमिति व्यर्थत्वप्रसङ्गाच्च । गोदानञ्च व्रतसमाप्तिनिमित्तकम्, फलान्तरनिमित्तकमिति केचित् ।

वराहपुराणे—वराह उवाच—

"ये यजन्ति वरारोहे, मासे मार्गेऽपि वै द्विजाः ।
तान् सर्वाननुगृह्णामि, हव्यकव्यपथिस्थितान् ॥

यजन्तीत्यस्य मामिति शेषः । वामनपुराणे—

"खरोष्ट्राश्वतरान् नागान् यथोक्तं युग्यजाविकम् ।
केशवप्रीणनार्थाय मासि मार्गशिरे नरः" ॥

अश्वतरे = सवि इति प्रसिद्धः । युगी = युगयुक्तोरश्वः इति दानसागरः। अजः = छागः । अविः = मेषः । भविष्यपुराणे—

"कृष्णषष्ठ्यां प्रयत्नेन, कृत्वा नक्तं विधानतः ।
मासि मार्गशिरस्याद्यावंशुमानिति पूजयेत् ॥
विधिवत्प्राप्य गोमूत्रमनाहारो निशि स्वपेत् ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य, फलं प्राप्नोति मानवः ॥
योऽप्येवं सहस्रांशुम् , भानुमन्तमुशन्ति वै ।
वाजपेयफलं तस्य, कृतं प्राप्य लभेन्नरः ॥
माघे दिवाकरं नाम, कृष्णषष्ठ्यां नियोजयेत् ।
निशि पीत्वा तु गोमूत्रं, गोमेधफलमश्नुते ॥
मार्तण्डं फाल्गुने मासि, पूजयेद् भक्षयेत्तिलान् ।
राजसूयस्य यागस्य, फलं पुण्यमवाप्नुयात् ॥
चैत्रे तु हंसनामानं, कृष्णषष्ठ्यां प्रपूजयेत् ।
पीत्वा कुशोदकं मूल्यं, जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥
महामेधस्य यज्ञस्य, वैनतेय फलं लभेत् ।
वैशाखे सूर्य्यनामानं, कृष्णषष्ठ्यां प्रपूजयेत् ॥
शुक्लं पुष्पं नरः प्राप्य, अश्वमेधफलं लभेत् ।
ज्यैष्ठे दिवस्पतिं पूज्य, गवां श्रृङ्गोदकं पिबेत् ॥
गवां कोटिप्रदानस्य, निखिलं फलमश्नुते ।
आषाढे त्वर्कनामानमिष्ट्वा प्राप्य च गोमयम् ॥
प्रयात्यर्कसलोकत्वं, वर्षाणां तु शतं विभो ।
श्रावणेऽर्थनामानं, पूजयित्वा पयः पिबेत् ॥
वर्षाणामयुतं साग्रं, शिवलोके महीयते ।
मासि भाद्रपदे षष्ठ्यां, भगाख्यं नाम पूजयेत् ॥
गोमूत्रफलमश्नीयादश्वमेधफलं लभेत् ।

वर्षान्ते भोजयेद्विप्रान् , सूर्य्यभक्तिसमन्वितान् ॥
पायसं मधुसय्युँक्तमाज्येन तु परिप्लुतम् ।
शक्त्या हिरण्यवासांसि, भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥
सूर्य्याय कृष्णाय गां चैव, निवेदयेत् पयस्विनीम् ॥
वर्षमेकं चरेदेवं, नैरन्तर्य्येण यो नरः ।
कृष्णषष्ठीव्रतं भक्त्या, तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः, सर्वकामसमन्वितः ।
मोदते सूर्य्यलोके तु, स नरः शाश्वतीः समाः" ॥

भविष्यपुराणे—विष्णुरुवाच—

"कृष्णाष्टम्यां प्रयत्नेन, कृत्वा नक्तं विधानतः ।
मासि मार्गशिरे वीर, शङ्करं देवमर्चयेत् ॥
पीत्वा शक्त्याऽथ गोमूत्रमनाहारो निशि स्वपेत् ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य, फलमष्टगुणं भवेत् ॥
चैत्रे तु स्थाणुनामानं, कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत् ।
यवाँश्च भर्जितान् प्राश्य, सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
ज्येष्ठे पशुपतिं पूज्य, गवां शृङ्गोदकं पिवेत् ।
गवां कोटिप्रदानस्य, यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥
आषाढे चोग्रनामानमिष्ट्वा प्राप्य च गोमयम् ।
वर्षाणाञ्च शतं साग्रं, शिवलोके महीयते ॥
श्रावणे मासि पूज्यार्कं, प्राशयेन्निशि गोरसम् ।
गोरसस्य तु यज्ञस्य, फलं प्राप्नोति मानवः ॥
त्र्यम्बकं भाद्रपदे मासि, कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत् ।
सम्प्राप्य विल्वपत्रन्तु, वाजपेयफलं लभेत् ॥
मासे चाश्वयुजे प्रोक्तं, प्राशनं तण्डुलोदकम् ।

नाम्ना ईशं यजेद्देवं, पुण्डरीकफलं लभेत् ॥

वर्षान्ते भोजयेद्विप्रान्, शिवभक्तिपरायणान् ।

पायसं मधुसंयुक्तं, घृतेन च परिप्लुतम् ॥

निवेदयेत्तु रुद्राय, कृष्णां गाञ्च पयस्विनीम् ।

वर्षमेकं तथा कुर्य्यान्नैरन्तर्य्येण यो नरः ॥

कृष्णाष्टमीव्रतं भक्त्या, तस्य पुण्यफलं शृणु ।

सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः, सर्वैश्वर्य्यसमन्वितः ॥

वसेच्छिवपुरे नित्यं, न चेहायाति नार्कभाक् ।

तदेतयोः सूर्यशिवव्रतयोः । कृत्वा नक्तमिति नक्तव्रतं संकल्पयेदित्यर्थः । न तु नक्तभोजनानन्तरं रात्रौ पूजयेदिति बोध्यम् । एवं पौषेऽपीति । गोमूत्रप्राशनं तदन्तरमनाहारत्वं चातिदिश्यते । एवं मासान्तरेऽपि विहितद्रव्यविशेषं निशि प्राश्य अनाहारः स्वपेत् । यत्राऽपि विहिततिथिर्न निशा च श्रुता तत्राऽपि मासे कृष्णाष्टम्यां निशीति बोध्यम् । पूर्वापरपरामर्शादेतद्व्रतयोः प्रतिमासप्राशनं फलं गुणफलरीत्या । सम्वँत्सरफलं चाधिकारिविशेषणमिति सर्वं समञ्जसमिति केचित् । अन्ये तु प्रयोगमध्ये समाम्नाताल्लघुतात्पर्य्यकतया प्रकरणयुक्ताश्रयोपजीवित्वेऽस्तु तथा । अत्र फलश्रुतेरविशेषान्नियोगभेदः । इच्छाभेदाच्चानुष्ठानव्यवस्थेति वाचस्पतिमिश्रकृतकृत्यमहार्णवानुसारी पन्थाः । तिथितत्त्वचिन्तामणौ—मार्गशीर्षाष्टमी = कालाष्टमी । सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या ।

"मार्गशीर्षाऽसिताष्टम्यां, कालभैरवसन्निधौ ।

उपोष्य जागरं कुर्य्यात्, सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥

अत्र निशि कालभैरवः आविर्बभूव । अत्रोपवासः प्रधानम् । अर्घदानादिकमङ्गम् । यामचतुष्टये सन्ध्यायामपि पूजैव । तेन मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति । दिनद्वये सम्पूर्णायां वा तद्व्याप्तौ पूर्वैव । पूर्वोक्तयुक्तेः । अत्र कालभैरवः उक्तपञ्चोपचारैः पूजनीयः । मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचमोचनतीर्थे श्राद्धविधानम् । तस्यां च लब्धपिशाचत्वेऽपि पित्रादिकमुद्दिश्य श्राद्धविधानादपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रयो-

त्पत्तिः । इयं प्रदोषव्यापिनी गाह्येति वृद्धाः । मार्गपौर्णमास्यनन्तराऽष्टमी = अष्टका । एवं पौषादिमासत्रयेऽपि बोध्यम् ।

"मार्गशीर्षे च पौषे च, माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने" ।

इति स्मृतिवचनात् । तत्त्वचिन्तामणौ—"वृश्चिकत्रयोदशांशे द्वाविंशांशे वा शालिपाकनिमित्तकश्राद्धं कुर्य्यादिति विधिः ।

"नन्दायां न भार्गवदिने, त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।
नवान्नं नैव कुर्वीत, पुत्रदारधनक्षयात्" ॥
चैत्रे पौषे कृष्णपक्षे, नवान्नं वर्जयेद् बुधः ।
जन्मान्तरे भवेद्रोगी, पितॄणां नोपतिष्ठते" ॥

इति मनुस्वरस इत्याहु । अत्रेदं विचारणीयम्—"वृश्चिकद्वाविंशांशे शालिपाकनिमित्तकश्राद्धविधेः सर्वत्रादृष्टत्वात् कथमिदमादरणीयम्" इति ।

"वृश्चिके पूर्वभागे तु नवान्नं प्राश्यते बुधैः ।
उत्तरे क्रियमाणे तु, धनुष्येव कृतं भवेत् ॥
धनुषि यत्कृतं श्राद्धं, मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
पितरस्तत्र गृह्णन्ति, नवान्नामिषगर्हिणः" ॥

इति ब्रह्मपुराणे निषेधात् । पूर्वभागे वृश्चिकस्य कियत्पर्य्यन्तं गृहीतव्यमित्याह चण्डेश्वरनिबन्धादौ—

"वृश्चिकस्थे रवौ त्यक्त्वा वासराणि त्रयोदश ।
नवान्ने विहितं श्राद्धं, धनुष्येव कृतं भवेत्" ।

इति वृश्चिके त्रयोदशांशानन्तरमेव ज्योतिश्शास्त्रे धनुषोऽतिदेशात् । तथा-

"धनुषि यत्कृतं श्राद्धम्, मृगनेत्रासु रात्रिषु" ।

इत्यादिना निषेधात् । मृगनेत्रा च—

"दिनानि दश मार्गस्य, पौषस्य सकलं दिनम् ।
मृगनेत्रेति सा ज्ञेया, नवान्नं तत्र वर्जयेत्" ॥ इति

अथ सूर्यव्रतविचारः ।

वृश्चिकस्थे रवौ सति शुक्लपक्ष एव रविवासरे षाण्मासिकस्य साम्वत्सरिकादेर्वा सूर्य्यव्रतस्य प्रारम्भो विधेयः । यथा ज्योतिःशास्त्रे—

"शुक्लपक्षे रवौ कुर्य्याद् व्रतं देवस्य भास्वतः" । इति

इदं तु डोलकनामाव्रतं फाल्गुनेऽपि इति ।

हरिशो व्रतस्य कार्तिके शुक्लप्रतिपद्यारम्भः । मार्गशुक्लप्रतिपदि तत्समापनमिति दैव ष।न्धवीयम् । अत्र प्रतिपद्द्वितीया युता ग्राह्या ।

"प्रतिपत्सद्द्वितीया स्यादिति युग्मवाक्यात्
यथा व्यवहारं वा आदरणीयम् ।

इति मार्गनिर्णयः ।

अथ पौषकृत्यम् ।

भविष्यपुराणे—

"पौषे मासे तु सम्प्राप्ते, यः कुर्य्यान्नक्तभोजनम् ।
जितेन्द्रियः सत्यवादी, कामक्रोधविवर्जितः ॥
क्षपयेन्नवमीं यत्नादुपवासेन पालयेत् ।
त्रिकालं पूजयेदार्य्यां, गन्धपुष्पोपहारतः ॥
कृत्वाग्निकार्य्यं विधिवत् , भूमौ शय्यां प्रकल्पयेत् ।
नैवेद्यं तण्डुलप्रस्तं, क्षीरसिद्धं निवेदयेत् ॥
कुमारीं भोजयेच्चाष्टौ, विप्रान् भागवतांस्तथा ।
कृत्वा पिष्टमयीं देवीं, नाम्ना चार्य्येति पूजयेत् ॥
चतुर्भुजां शूलधरां, कुन्दपुष्पैः सगुग्गुलैः ।
स्नानं कृत्वा तिलैर्विप्र, तिलानां प्राशनं तथा ॥
य एवं पूजयेदार्य्यां, तस्य पुण्यफलं श्रृणु ।
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं, विमानवरमास्थितः ॥
दोधूयमानश्चमरैः, स्तूयमानः सुरासुरैः ।

गच्छेद् दुर्गापुरं रम्यं, यत्रास्ते चण्डिका स्वयम् ॥
क्रीडते देवगन्धर्वैः यावदाहूतसंप्लवम् ।
त्रिःसप्तकुलजैः सार्द्धं, भोगान् भुक्त्वा यथेप्सितान् ॥
पुनरेत्य भवं वीरो, राजा भवति भूतले" ॥ इति

सूर्यपूजा—

"यः पूजयेत्सदा पूज्यं, भानुं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
घृताभिषेकं यः कुर्य्यादहोरात्रं तु भास्करे ॥
कुम्भैर्नानाविधैर्द्रव्यैः, पुष्यमासे समुद्यतः ।
गीतनृत्योपहारेण, शंखवादित्रनिःस्वनैः ॥
कुर्य्याज्जागरणं देवि, प्रदीपाद्यैः सुशोभनैः ।
वसेत् सूर्य्यपुरे धीमान् , सूर्यतुल्यपराक्रमः ।
ग्रहणे विषुवे चैव, पुण्येषु दिवसेषु च ॥
कृताभिषेकं यः पश्येदासमाप्तेरुपोषितः ।
विधूय सर्वपापानि, सूर्य्यलोकं स गच्छति ॥
घृताभिषेकं यः कुर्य्यादहोरात्रं शिवस्य च ।
सूक्ष्मधारेण भाण्डेन, पुष्यमासे द्विजोत्तम ॥
गीतनृत्योपहारेण, शंखवादित्रनिःस्वनैः ।
कुर्य्याज्जागरणं चापि, प्रदीपाद्युपशोभितम् ॥
समस्तपापान्निर्मुक्तः, समस्तकुलवर्द्धनः ।
मुक्तिः शिवपुरे श्रीमान् , मोदते शिववत्सुधीः ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे —

पौषे कनकदानेन परां तुष्टिं तथैव च ।
पुष्यायां तु सिते पक्षे, दानं लक्ष्मीकरं स्मृतं ।
फलानाञ्च तथा दानं, कृष्णपक्षे महाफलम् ॥

ग्रहणमुपक्रस्य देवीपुरणे—

"पौषे तु नर्मदा पुण्या, स्नानदानादिकर्मणि !

एकभुक्तमुपक्रम्य स्कन्दपुराणे—

"पौषे मासे तु पुत्राँश्च, बहूनाप्नोति धार्मिकान् ।

ब्रह्मपुराणे—

"पौषे कृष्णाष्टकायां तु, शाकैः श्राद्धं सुशोभनम् ।

पद्मपुराणे—

"पितृदानाय मूले स्युरष्टकास्तिस्र एव हि ॥
कृष्णपक्षे वरिष्ठा हि, पूर्वा चैत्रीति भाषते ।
प्राजापत्यं द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदेवकी ॥
आद्या पूपैः सदा कार्य्या, मांसैर्वन्यभवैस्तथा ॥
शाकैः कार्य्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः ॥
अन्वष्टका पितृणां तु, नित्यमेत्र विधीयते ।

पद्मपुराणे—

प्रथममपूपविधानात् , ब्रह्मपुराणे— तस्यामेव शाकविधानात्, अनयोर्विरोधेन शाखाभेदेन विकल्पः ॥

भविष्यपुराणे—महादेव उवाच—

"पौषे मासि यदा देवि, शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत !
तदा सा तु महापुण्या, महाभद्रेति कीर्तिता ॥
तस्यां स्नानं जपो होमः, तर्पणं विप्रभोजनम् ।
यत्प्रीतये कृतं देवि, शतसाहस्रिकं भवेत् ॥
तस्मात्तस्यां महादेवि, पूज्योऽहं विधिवद्बुधैः !
गन्धपुष्पोपहारैश्च, ब्राह्मणानाञ्च भोजनैः" ॥

इति कृत्यमहार्णवानुसारी पन्थाः ॥

अथार्द्धोदययोगः ।

स च रविव्यतीपातश्रवणानक्षत्रैर्युक्ता चेत् पौषमाघयोरमावस्या स्यात्तदा भवति-यथा पाश्चात्त्यनिर्णयामृते—

"अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः ।
अर्द्धोदयः स विज्ञेयः, कोटिसूर्य्यग्रहैः समः" ॥

अत्र सूर्य्यपर्वशताधिक इति तीर्थचिन्तामणौ पाठः ।

यथा—

"दिवैव योगः शस्तोऽयं, न तु रात्रौ कदाचन ॥

स्कन्दपुराणे—

"अर्द्धोदये तु सम्प्राप्ते, सर्वां गङ्गासमं जलम् ।
शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे, भवेयुर्ब्रह्मसन्निभाः ।
यत्किञ्चित् क्रियते दानं, तद्दानं सेतुसन्निभम् ॥

विष्णुशिवस्नानप्रशस्तकालेऽपि । बृहन्नारदीये—

"अर्द्धोदये तु पुष्यार्के, हस्तार्के रोहिणीबुधे" ॥ इति

स्कान्दे तु—

मघामायां व्यतीपाते, आदित्ये विष्णुदैवते ।
अर्द्धोदयमिदं प्राहुः, सहस्रार्कग्रहैः समम्" ॥ इति

अत्र च—

"माघमासे कृष्णपक्षे, पञ्चदश्यां रवेर्दिने ।
वैष्णवेन तु ऋक्षेण, व्यतीपाते सुदुर्लभे ॥

व्रतं कुर्य्यादिति विशेषः । अर्द्धोदयविवेचनं तिथिप्रदीपे यथाऽह तथा प्रदर्श्यते—पौषमाघयोः रविवारश्रवणानक्षत्रव्यतीपातयोगयुक्ता दिवाऽमावास्या चेत्—अर्द्धोदययोगः । अत्र—

"दिवैव योगः शस्तोऽयं, न तु रात्रौ कदाचन" । इति

दिवैवेत्यनेन दिवापदवाच्यसूर्य्यक्रियावच्छिन्नकालमात्रलाभे तदतिरिक्तकालस्य एवकार-व्यवच्छेद्यत्वप्राप्तो न तु रात्रो कदाचनेत्यस्य वैयर्थ्यापत्त्या ज्ञाप्यते—अनुशासनादिसिद्धरात्रिपदवाच्यायास्त्रियामाया एव निषेधात् आतिदेशिकदिवसेऽपि योगस्य प्रशस्तत्वं भवती"ति। यथा प्रदोषे घटिकाद्वयं, प्रभाते घटिकाद्वयं दिनवत्सर्वकर्माणि कारयेन्न विचारयेदिति। रात्रिपदस्य त्रियामापरत्वे कोषादयः प्रमाणम्।

"त्रियामाक्षणदाक्षपे"त्यमरः।

"त्रियामां रजनीं प्राहुः, त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम्"।
नाडीनां तदुभे सन्ध्ये, दिवसाद्यन्तसंज्ञिते"।

इति स्मृतेश्च। तदुभे = तयोराद्यन्तचतुष्टययोरुभे नाड्यौ। सन्ध्ये = दिवसाद्यन्तसंज्ञिते" इति। सन्ध्या चाहोरात्रस्य यः सन्धिः = सूर्य्यनक्षत्रवर्जितः इति स्मृत्युक्ता चात्र "तदुभे सन्ध्ये" इति ग्राह्या।

"सन्ध्या मुहूर्तमाख्याता, ह्रासवृद्धौ समा स्मृताः"।

इति स्मृत्युक्ता तु तदुपासनकालविषयैव। न च सन्ध्यापि रात्रेर्भागविशेष इति वाच्यम्, स्मृतिशास्त्रवैशेषिकग्रन्थविरोधात्। यथा—

"सन्ध्यारात्र्योर्न कर्तव्यम्, श्राद्धं खलु विचक्षणैः।
तयोरपि च कर्तव्यं, यदि स्याद्राहुदर्शनम्" ॥ इति

अत्र भेदे द्वन्द्वनिर्देशात्।

"दिवारात्रौ च सन्ध्यायां, गङ्गायां हि प्रसङ्गतः।
स्नात्वाऽश्वमेधजं पुण्यं, गृहेप्युद्धृततज्जलैः" ॥

इत्यत्र भेदः स्फुट एव। वैशेषिकग्रन्थे च—

"विद्यासन्ध्योदयोद्रेकादविद्या रजनोक्षये।
यदुदेति नमस्तस्मै, कस्मैचिद्विश्वतस्त्विषे" ॥

इत्युदयनाचार्य्यैर्भेदेनोपादानात्। तदुपायकृतापि सन्ध्या न रात्रेर्भागविशेषः।

निरस्तैतद्दीपवर्तिरविरश्मिजालः कालविशेषो रात्रिः"।

इति रात्रिलक्षणाव्यापनादित्युक्तम्।

प्रभातप्रदोषयोस्तु सूर्य्यकिरणप्राचुर्य्यादेव तिमिरनाशः । अतो न रात्रित्वमिति । परे तु रात्रौ प्राशस्त्याभावेऽपि योगे सति कर्माचरणं कर्त्तव्यम् । यथा चन्द्रक्षयाभावेऽपि दर्शश्राद्धाचरणमिति वदन्ति । अत्र गौणे न माघोल्लेखस्तदर्थमेव माघपदप्रयोगात् । सूर्य्यग्रहाणां बहुकोटिरिति विद्यापतिकृतवचनात् कोटिसूर्य्यग्रहैरित्यत्र सूर्य्यग्रहाणां कोटिरिति राजदन्तादित्वात् । स्नानादौ बहुकोटिसूर्य्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलत्वं सामान्यजलस्नानेऽपि गङ्गास्नानजन्यफलसमत्वं गौणेन वाक्यमवधेयमित्याहुः । इत्यर्द्धोदयविचारः । अथ पौषपौर्णमास्यां कौशिकीस्नानम् ।

इति पौषकृत्यम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ माघकृत्यम् ।

तत्र पद्मपुराणे—

"मकरस्थे रवौ माघे, न स्नात्यनुदिते रवौ ।
कथं पापैः प्रमुच्येत, कथं वा त्रिदिवं व्रजेत् ॥
मकरस्थे रवौ माघे, गोविन्दाच्युत माधव ।
स्नानेनानेन मे देव, यथोक्तफलदो भव ।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य, स्नायान्मौनं समाश्रितः ।
वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवं च स्मरेत्पुनः ॥

अत्र सौरक्रम एव स्नानमिति मैथिलस्मार्ताः ॥

दाक्षिणात्यमते तु—पौषशुक्लैकादश्यादावपि माघस्नानारम्भे । ब्राह्मे—

"एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषे मासे समारभेत्
द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा, शुक्लपक्षे समापयेत्" ॥

अस्य माघे इति शेषः ।

"दर्शे वा पौर्णमास्यां वा, प्रारभ्य स्नानमाचरेत् ।
पुण्याहनि त्रिशत्तु, मकरस्थे दिवाकरे ॥ इति

किञ्च स एव—

'तुलामकरमेषेषु, प्रातः स्नायी सदा भवेत् ।

हविष्यं ब्रह्मचर्य्यं च, महापातकनाशनम्" ॥ इति

माघस्नाने विशेषो यथा--

"माघे मासि च यः स्नायात्, नैरन्तर्य्येण भारत ।
पौण्डरीकं फलं तस्य, दिवसे दिवसे भवेत्" ॥ इति

ब्राह्मे--

"उत्तमन्तु सनक्षत्रं, लुप्ततारन्तु मध्यमम् ।
सवितर्य्युदिते भूप, ततो हीनं प्रकीर्तितम्" ॥ इति

तथा च—

"माघे मासि रटन्त्यापः, किञ्चिदभ्युदिते रवौ ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा, कम्पन्तं तं पुनीमहे" ॥

इत्यादिकं त्वशक्तविषयकं बोध्यम् । ब्राह्मे--

"सरित्तोयं महायोगं, नवकुम्भस्थितं तथा ।
वायुना ताडितं रात्रौ, गङ्गास्नानसमं स्मृतम्" ॥

तत्त्वचिन्तामणौ दानविशेषे स्कान्दे यथा--

"धेनुं तिलमयीं राजन्, दद्याद्यश्चोत्तरायणे ।
सर्वान् कामानवाप्नोति, विन्दते परमं सुखम्" ॥

विष्णुधर्मे--

"उत्तरे त्वयने विप्राः, वस्त्रदानं महाफलम् ।
तिलपूर्णं तथा पात्रं, दत्त्वा नेत्रैः प्रमुच्यते" ॥ इति

शिवरहस्येऽपि--

"तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं, कार्य्यं चोद्वर्त्तनं शुभैः ।
तिलाः देयाश्च विप्रेभ्यः, सर्वं दैवोत्तरायणे ॥
तिलतैलेन दीपाश्च, विष्णोः शिवगृहेऽथ वा" । इति

तस्यां = मकरसंक्रान्तावित्यर्थः । माघामावास्यायामपि कदाचिदर्द्धोदययोगः । सम्भ-

वति स च पौषकृत्यनिरूपणे प्रागभिहितः । माघकृष्णचतुर्थी = गणेशचतुर्थी । अत्र गणेशः आविरभूत् ।

"सर्वदेवमयः साक्षात, सर्वमङ्गलकारकः ।
माघकृष्णचतुर्थ्यान्तु, प्रादुर्भूतो गणाधिपः" ॥

इति शिवधर्मोक्तेः । सा चतुर्थी तृतीयायुता ग्राह्या । यस्यां विशेषतः कृत्यम्—चतुर्थी-तिथिनिरूपणे द्रष्टव्यम् । माघकृष्णचतुर्दश्याम् यमतर्पणमाह—यमः—

"अनर्काऽभ्युदिते काले, माघकृष्णचतुर्दशीं ।
स्नातः सन्तर्प्यतु यमं, सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥ इति

अन्यच्च—

"माघाऽसिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ।
ऋक्षेण कालः स परः पितॄणां, नह्यल्पपुण्यैः नृप लभ्यतेऽसौ ॥
तत्रैव चेद् भाद्रपदा तु पूर्वा, काले तदा यत्क्रियते पितॄणां ।
यद्यद्ददातीह विशेषतश्च, तदक्षयं याति न संशयोऽत्र" ॥

महाभारतेऽपि

"काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्,
भवेच्च भूपाल तदा पितृभ्यः ।
दत्तं यवान्नं प्रददाति तृप्तिं,
वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः ॥
अमावास्या तु सोमेन, सप्तमी भानुना युता ।
चतुर्थी भूमिपुत्रेण, सोमपुत्रेण वा युता ॥
चतस्रस्तिथयस्त्वेताः, सूर्य्यग्रहणसन्निभाः ।
स्नानं दानं तथा श्राद्धं, सर्वं तत्राऽक्षयं भवेत्" ॥

माघशुक्लचतुर्थी = तिलचतुर्थी । सा च प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।

"माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणाः" ।

इति काशीखण्डवचनात् ।

"माघशुक्लचतुर्थ्यां तु, तस्मिन् काले उपोषितः ।
अर्चयित्वा ततो देवि, जागरं तत्र कारयेत्" ॥

इति लिङ्गपुराणोक्तेः । इयमेव कुन्दचतुर्थी । सा च प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ।

"माघशुक्लचतुर्थ्यां तु, कुन्दपुष्पैः सदाशिवम् ।
सम्पूज्य यो हि नक्ताशी, स प्राप्नोति श्रियं नरः" ॥

इति कूर्मोक्तेः । माघशुक्लसप्तमीकृत्यम् सप्तमी निरूपणेऽवसेयम् । माघशुक्लसप्तमी = मन्वादिरपि शुक्लपक्षस्थत्वात् । सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या इति, यदा तु माघ एव मलिम्लुचः पतति तदा मासद्वयेऽपि मन्वादिश्राद्धम् कुर्य्यादिति द्राविडादयः । "मन्वादिकं तैर्थिकञ्च, कुर्य्यान्मासद्वयेऽपी"ति स्मृतिचन्द्रिकायाम् । माघशुक्लाष्टमी = भीष्माष्टमी । अत्र श्राद्धमप्युक्तम् पाद्मे —

"माघे मासि सिताष्टम्यां, सलिलैः भीष्मतर्पणम् ।
श्राद्धञ्च ये नराः कुर्य्युः, ते स्युः सन्ततिभागिनः" ॥ इति

अन्यदस्य अष्टमीनिर्णये द्रष्टव्यम् । मादशुक्लैकादशी भैमी । द्वादश्यपि तथा । तद्विशेषो द्वादशीनिरूपणे मृग्यः । माघी पूर्णिमा तु परयुता । "व्रतोपवासस्नानादावित्युक्तेः ।

"चतुर्दश्यथ पूर्णिमेति गौडमैथिलाः ।
तथा तयोश्च जीवेन्दोः, महामाघीति कथ्यते ।

ज्यौतिषे तु—

"मेषपृष्ठे यदा शौरिः, सिंहे च गुरुचन्द्रमाः ।
भास्करः श्रवणर्क्षे च, महामाघीति सा स्मृता" ॥

तथा भविष्ये—

"वैशाखी कार्तिकी माघी, तिथियोऽतीव पूजिताः" ।

इत्यादि । तथा—

"चारातिचारवक्रैश्च, पितृ ऋक्षे गुरुर्यदा ।

माघी च मघायुक्ता, महामाघी स उच्यते" ॥

इति महामहोपाध्यायसट्टकुरस्वरसानुसारी पन्थाः । अथ व्रतपद्धत्यनुसारेण माघकृत्यम् प्रदर्श्यते—माघमासस्य शिशिरऋतौ प्राथम्यात् । शिशिरऋतुकृत्यकथनमत्र विष्णुः—

"यदीच्छेद्विपुलान् भोगान् , चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमान् ।
प्रातः स्नायी भवेन्नित्यं, द्वौ मासौ माघफाल्गुनौ" ॥

इति संक्रान्तिक्रमेण माघमासीयारुणोदयवेलायाम् "ॐ चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमभोगकामोऽद्यादिमाघफाल्गुनमासौ व्याप्य प्रातः स्नानमहं करिष्ये । स्नाने चैवं नरसिंहपुराणे—

"शीतकाले अग्निं, प्रज्वालयति यो नरः ।
सर्वं सत्त्वहितार्थाय, स्वर्गं चाप्सरसं लभेत्" ॥

माघमासीयप्रातःकाले तु—

"स्वर्गलोके चिरं वासो, येषां मनसि वर्तते ।
यत्र क्वापि जले तैस्तु, स्नातव्यं मृगभास्करे ॥
आयुरारोग्यसम्पत्तौ, रूपे शुभगतागुणे ।
येषां मनोरथास्तैस्तु, न त्याज्यं माघमज्जनम् ॥
दारिद्र्यपापदौर्भाग्यं, पापप्रक्षालणाय वै ।
माघस्नानाद्व चान्योऽस्ति उपायो नरसत्तम ॥
मकरस्थे रवौ यो हि, न स्नात्यर्द्धोदिते रवौ ।
कथं पापैः प्रमुच्येत, कथं स त्रिदिवं व्रजेत्" ॥

इत्यादिपद्मपुराणीयवाक्यानि एव प्रमाणानि । तत्र प्रकारः । माघमाससंक्रमणप्रथमेऽरुणोदयवेलायाम्—"ॐ पद्मपुराणोक्तमाघमासजन्यफलसमफलप्राप्तिकामोऽद्यादिमाघमासं व्याप्य प्रातःस्नानमहं करिष्ये इति संकल्पः । ततः स्नानं कर्तव्यमिति मन्त्रं पठित्वा—

"ॐ मकरस्थे रवौ माघे, गोविन्दाऽच्युत माधव ।
स्नानेनानेन मे देव, यथोक्तफलदो भव" ॥

उष्णोदक-परोदकैरपि माघमासे प्रातः स्नातव्यम्। त्र्यहस्नानमपि पुण्यप्रदम्। भीष्मतर्पणं तु अष्टम्यां देवादितर्पणं निर्वर्त्य देवविधिना कुशत्रययवैः "ॐ वैयाघ्रपदगोत्राये"-त्यादिना मन्त्रेण कुर्य्यात्। तर्पणमेतत् देवविधिना सर्ववर्णैश्च कर्तव्यमिति समयप्रदीपः माघ्यां दानं सति सम्भवे विभवे अवश्यं कर्तव्यम्। यथा रामायणे—

"आषाढी कार्तिकी माघी, तिथयः पुण्यसंज्ञिताः।
अप्रदानवतो यान्तु यस्यार्य्योऽनुमतो गतः" ॥

इति भरतशपथेऽदाने अधर्मप्रतिपादनात्।

अथ हलमुहूर्तम्

दशम्येकादशीत्रयोदशीपञ्चमीसप्तमीषु प्रतिपत्पूर्णिमा च विहितनिषिद्धा। रविबुधवृहस्पतिशुक्रचन्द्रवासरेषु उत्तरत्रयरेवतीश्रवणामघाऽनुराधामूलाश्विनीरोहिणीहस्तपुष्यपुनर्वसूमृगशिरःस्वातीविशाखाकृत्तिकाशतभिषाज्येष्ठासु वृषमिथुनकन्यामीनेषु लग्नेषु चन्द्रतारानुकूले दिने क्षेत्रं गत्वा शुक्लाम्बरयुगधरः कृतस्नानः आचान्तः गर्तं खनित्वा जलेनापूर्य्य तत्र जले-ॐ प्रजापते इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीन्येषोऽर्घः प्रजापतये नमः। इदमनुलेपनम्, इदं पुष्पम् ॐ प्रजापतये नमः। इति वारत्रयं दत्त्वा, एवं गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा ॐ प्रजापते क्षमस्वेति विसर्जयेदिति। ॐ नवग्रहा गच्छत इह तिष्ठत। एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः, इदमनुलेपनम्। इदं पुष्पम्। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ नवग्रहेभ्यो नमः। ॐ नवग्रहाः क्षमस्वेति विसर्जयेत्। ॐ पृथिवि इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि, इदमनुलेपनम्, इदमक्षतम्, इदं पुष्पम्, एतानि धूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि, एष दुग्धोऽर्घः ॐ पृथिव्यै नमः। ॐ पृथिवि क्षमस्वेति विसृज्य, दधिभक्तं किञ्चिदाम्रपल्लवं च गर्ते निःक्षिप्य, मृत्तिकाभिर्गर्त्तं पूरयेत्। ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणां दद्यात्। ॐ अद्य कृतैतद्धलमुहूर्तकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति दक्षिणां दत्त्वा, हले वृषभौ नवनीतेन गुडेन मुखं पार्श्वौ च लिप्त्वा योक्तव्यौ। फालाग्रे कनकयोगः कर्तव्यः। भग्नशृङ्गभग्नखुर-

छिन्नलाङ्गूलकपिलवृषभाः न योक्तव्याः । हलवाहकाः समर्थाः कर्तव्याः । हलानि दृढानि कर्तव्यानि । वृषभयुद्धादिकं न शुभदम् । वृषभाणां नर्दने चतुर्गुणं शस्यम् ।

एका जयकरी रेखा, तृतीया चान्नवृद्धिदा ।
पञ्चमी या भवेद्रेखा, बहुशस्यफला हि सा ॥
अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यं, महादोषस्ततो भवेत् ।

किञ्चिदन्नं शरावद्वये कृत्वा शालायां वध्नन्ती समाचार इति रुद्रधरोपाध्यायाः ।

दाक्षिणात्यनिबन्धे—

"नित्यं प्रज्वालयेदग्निं, सेवनार्थं द्विजन्मनाम् ।
दिवाकर नमस्तुभ्यं, प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥
परिपूर्णं करिष्येऽहं माघस्नानं तवाज्ञया ।

इति समापनमन्त्रः । नित्यदाने—

"अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः, शर्करयाऽन्विताः ।
त्रिंशत्तु मोदकाः देयाः, शर्करातिलसंयुताः ॥
भागत्रयं तिलानां तु, चतुर्थः शर्करांशकः ।
अनभ्याङ्गं वरारोहे, सर्वं मासं नयेद् व्रती" ॥

मकरसंक्रान्तिकृत्यं शिवरहस्ये—

"तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं, कुर्वीतोद्वर्तनं शुभैः ।
तिलाः देयाश्च विप्रेभ्यः, सर्वदैवोत्तरायणे ॥
तिलतैलेन देयाश्च, दीपाः शिवगृहे शुभाः ।
होमं तिलैः प्रकुर्वीत, सर्वदैवोत्तरायणे ॥

इति माघकृष्णद्वादश्यां तिलद्वादशीव्रतम् । ब्रह्मपुराणे—

"तस्यामुपोषितः स्नातः, तिलैस्तस्यां यजेद्धरिम् ।
तिलतैलेन दीपाश्च, देयाः देवगृहेषु च ॥
निवेदयेत्तिलानेव, होतव्याश्च तिलास्तथा ।

तिलाः देयाश्च विप्रेभ्यः, भक्षयेच्च तिलानिति" ॥

माघशुक्लचतुर्दश्यां यमतर्पणम् , तदुक्तमेव । माघशुक्लसप्तमी = रथसप्तमी । यथा काशीखण्डे—

"लोकार्के रथसप्तम्यां, स्नात्वा गङ्गाऽसिसङ्गमे ।
सप्तजन्मकृतैः पापैः, मुक्तो भवति तत्क्षणात्" ॥

गर्गः—

"षष्ठी च सप्तमीयोगे, वारञ्चेदं सुमालिनः ।
योगोऽयं पद्मको नाम, सहस्रार्कग्रहैः समः" ॥ इत्याह

अथ माघस्नाने पद्मपुराणमाह—

"उपपातकसंज्ञानि, पातकानि महान्त्यपि ।
भस्मीभवन्ति सर्वाणि, माघस्नायिनि मानवे ।
वेपन्ते सर्वपापानि, माघमाससमागमे ॥
नाशकालोऽयमस्माकं, यदि स्नास्यति मानवः ।
पावका इव दीप्यन्ते, माघस्नानेन मानवाः ॥
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो, मेघभ्य इव चन्द्रमाः ।
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं, वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ॥
माघस्नानं दहेत्पापं, पावकः समिधो यथा ।
प्रामादिकञ्च यत्पापं, ज्ञानाज्ञानकृतञ्च यत् ॥
स्नानमात्रेण तत्सर्वं, नश्यते तूलराशिवत्" ।

महाभारते—

"माघे मासि तिलान्यस्तु, ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
सर्वसत्त्वसमाकीर्णं, नरकं स न पश्यति ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

"तिलप्रदानान्माघे तु, याम्यं लोकं न पश्यति ।

कृत्यमहार्णवे—वामनपुराणे—

"माघे मासि तिलाः शस्ताः तिलधेनुश्च दानव ।
इध्मेन्धनोदयाश्चान्ये, माधवप्रीणनाय तु" ॥

इध्मं = होमोपयोगि दारु । इन्धनम् = अग्निज्वलनोचितम् । संवर्तः—

"इन्धनानि च यो दद्याद्, विप्रेभ्यः सम्प्रयच्छति ।
स सुखी दीप्तकायाग्निः, सुभगश्चैव जायते" ॥

शिशिरोपक्रमे दानारम्भः । दानस्य मासद्वयव्याप्तत्वात् ।

अथ कुन्दचतुर्थीव्रतम् ।

"सर्वोपहारसम्पन्नः, सर्वोपस्करमाहरेरेत् ।
कुन्दपत्रं फलं शाकं, लवणं गुडशर्कराः ॥
खण्डजीरककुस्तुम्बुद्रव्याणि विविधानि च ।
दातव्यानि सुरश्रेष्ठ, कन्यकानान्तु शक्तितः ॥
सूर्पपात्रं तथा भाण्डम् , मृण्मयञ्च विशेषतः ।
उद्दिश्य दापयेद्देव्यः, प्रीयन्ताम्मे सदा इति ॥
अनेन विधिना शक्र, सौभाग्यं पुत्रसन्ततिः ।
वर्द्धते नात्र सन्देहो, नान्यथा मम भाषितम्" ॥

उपहारो = पूजोपकरणद्रव्याणि । देवीपूजनानन्तरं तद्दानम् । करः = उपस्कन्दादिरेव । कुस्तुम्बुरु = धान्यादिकम् । अत्र चोपवासे फलम् । अग्रिमकर्मणि सौभाग्यादिति बोध्यम्

"माघं तु नियमे मासमेकभुक्तेन यः क्षिपेत् ।
श्रीमत्कुले जातिमाँश्च, महत्त्वं प्रतिपद्यते" ॥

तथा—

"माघमासे तु कुर्वाणः, स्त्रियं प्राप्नोति च प्रियाम्" । इति

कुर्वाणः = एकभुक्तमित्यर्थः ।

"माघे मासि समुद्युक्तः, त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेच्छिवम् ।

लभेत्षाण्मासिकं पुण्यं, मासेनैव न संशयः ॥
यथा माघे तथाऽऽषाढे, कार्तिके तु विशेषतः ।
त्रिषु पुण्यं समं ज्ञेयम्, मासेष्वेवं तु यत्फलम्" ॥

पद्मपुराणीयमाघमहात्म्ये राजानम्प्रति वशिष्ठवाक्यम्—

"ततः स्नात्वा शुभे तीर्थे, कृत्वा पाणियुगे जलम् ।
वेदोक्तविधिना तात, सूर्य्यायार्घं निवेदयेत्" ॥
दिवाकर जगन्नाथ, प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।
परिपूर्णं कुरुष्वेह, माघस्नानं ममानघ ॥
मकरस्थे रवौ माघे, गोविन्दाऽच्युत माधव ।
स्नानेनाऽनेन मे देव, यथोक्तफलदो भव ॥
पितॄन् सन्तर्पयेद्भक्त्या, जलस्थो निःसृतस्ततः ।
इष्टदेवं नमस्कृत्य, पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥
शंखचक्रधरं देवं, माधवं नाम पूजयेत् ।
वह्निं हुत्वा विधानेन, एकाकी च ततो भवेत् ॥
भूशय्या ब्रह्मचर्य्येण, शक्त्या दानं समाचरेत् ।
अशक्तो ह्यधनोऽपि स्याद्यथाशक्ति समाचरेत् ॥
अवश्यमेव कर्तव्यं, माघस्नानमिति श्रुतिः ।
ईश्वरेण यथाकामं, फलं धर्मानुवर्तितम् ॥
एवं स्नात्वाऽवसाने तु, भोज्यं देयं तु मे मतम् ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु, यथा शक्त्या च नारद ॥
ततो दानानि देयानि, यथाविभवसारतः ।
एकत्रिंशत्पदं कृत्वा, कलशं त्रिंशदेव च ॥
उपानन्मुद्रिका छत्रं, वस्त्रयुग्मं कमण्डलुः ।
कम्बलञ्चैव वस्त्राणि, तिलाः देयाः गुणान्विताः ॥
नानाविधानि चान्नानि, फलानि विविधानि च ।

प्रदेयानि महावाहो, लक्षणा गौः सवत्सका ॥
ब्राह्मणाय दक्षिणाः देयाः, स्नानसम्पूर्णहेतवे ।
नियमस्य विसर्जत्वम् , कार्य्यं द्विजवरार्जनम् ॥
एवं यः कुरुते माघे, प्रातः स्नानन्तु मानवः ।
स लभेद्वाञ्छितान् कामान् , पुत्रपौत्रसमन्विान् ॥
धनं धान्यं पशुं लक्ष्मीं, भोगाँश्च विविधांस्तथा ।
दशाश्वमेधैर्यत्पुण्यम् , वाजपेयशतैरपि ।
सर्वतीर्थाऽवगाहस्य, तत्पुण्यं लभते ध्रुवम् ॥
अन्ते विमानमारूढस्तूयमानोऽप्सरोगणैः ।
प्रयाति वैष्णवं लोकम् , यत्र गत्वा न शोचति" ॥

इति पद्मपुराणे प्रयागमधिकृत्य कार्तवीर्य्यार्जुनम्प्रति दत्तात्रेयवाक्यम्—

"पापौघभूरिभारस्य, दाहहेतुं प्रजापतिः ।
प्रयागं विदधे भूप, प्रजानां हितकाम्यया ॥
मोक्षस्थानमिदं सम्यक् , सितासितजलं नृप ।
पापरूपपशूनाञ्च, ब्रह्मणा विहितं परम् ॥
सिताऽसिता च या धारा, सरस्वत्या विगर्भिता ।
तं मार्गं ब्रह्मलोकस्य, सृष्टिकर्ता ससर्ज ह ॥
सिताऽसिते च मज्जेदपि पापसमावृतः ।
मकरस्थे रवौ माघे, स न गर्भेषु जायते ॥
दुःसहा वैष्णवी माया, देवैरपि स दुस्त्यजा ।
प्रयागे दह्यते सा तु, माघे मासि नराधिप ॥
तेजोमयेषु लोकेषु, भुक्त्वा भोगाननेकशः ।
पश्चाचक्रिणि लीयन्ते, प्रयागे माघमज्जनात् ॥
उपस्पृशन्ति ये माघे, मकरार्के सितासिते ।

न तत्पुण्यस्य संख्यानं, चित्रगुप्तोऽपि वेत्यलम् ॥
सम्वत्सरशतं साग्रं, निराहारस्य यत्फलम् ।
प्रयागे माघमासे तु, त्र्यहस्नानस्य तत्फलम् ॥
योगाभ्यासस्य यत्पुण्यम्, सम्वँत्सरशतत्रये ।
प्रयागे माघमासे तु, त्र्यहस्नानस्य तत्फलम् ॥
स्वर्णभारसहस्रेण, कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ।
तत्फलं लभते माघे, वेणीस्नानाद्दिने दिने ॥
राजसूयसहस्रस्य, राजन्न विकलं फलम् ।
सिताऽसितेषु स्नातानां, माघे भवति तत्क्षणात् ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि, पुर्य्यः सप्तैव याः पुनः ॥
स्नातुमायान्ति ताः वेणीं, माघे मासि नराधिप ।
सर्वतीर्थानि कृष्णानि, पापिनां सङ्गतो यतः ।
भवन्ति शुक्लवर्णानि प्रयागे माघमज्जनात् ॥
आकल्पजन्मभिः पापं, सञ्चितं यन्नरैरपि ।
तद् भवेद् भस्मसान् माघे, स्नातानां तु सिताऽसिते ॥
वाङ्मनःकायजं पापं, नरस्य सुदृढं महत् ।
प्रयागे माधमासे तु, त्र्यहस्नातस्य तत्क्षयम् ॥
प्रयागे माघमासे तु, यस्त्र्यहं स्नाति मानवः ।
पापं त्यक्त्वा दिवं याति, जीर्णत्वचमिवोरगः ।
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा, यत्र कुत्रावगाहिता ।
तस्माद्दशगुणा प्रोक्ता, यत्र विन्ध्येन सङ्गता ॥
तस्माद्दशगुणा गङ्गा, काश्यामुत्तरवाहिनी ।
काश्याः शतगुणा प्रोक्ता, गङ्गायमुनासङ्गमे॥
सहस्रगुणिता साऽपि, भवेत्पाश्चिमवाहिनी ।

सा राजन् दर्शनादेव, ब्रह्महत्यापहारिणी ॥
पश्चिमावाहिनी गङ्गा, कालिन्द्या सह सङ्गता ।
हन्ति कल्पकृतं पापं, सा माघे नृप दुर्लभा ।
अमृतं कथ्यते राजन्, तद्वेणी भुवि कीर्तिता ॥
तस्यां माघे मुहूर्तस्तु, देवानामपि दुर्लभः ।
इति प्रयागमाहत्म्यविचाराः ॥

अथ सामान्यतो माघस्नाने पद्मपुराणे—

माघे मासि नरः स्नात्वा, सर्वदा शान्तनो व्रती ।
तत्प्राप्नोति पदं विष्णोः, स्नानं त्रैलोक्यबन्दितम् ॥
कृत्वा भूरि तु यत्पापं, ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
माघस्नानेन राजेन्द्र, दह्यते तूलराशिवत् ।
कर्मणा मनसा वाचा, यत्पापं समुपार्जितम् ॥
दह्यते नात्र सन्देहो, माघस्नानेन नारद ।
स्नानं दानं जपं होमं, समुद्दिश्य जनार्दने ।
नरैर्यत्क्रियते माघे, तदनन्तफलं स्मृतम् ।
ये भविष्यन्ति ये भूताः आकल्पं पुरुषाः कुले ।
ताँस्तारन्ति विप्रेन्द्र, माघस्नानेन मानवाः ॥
विभवे सति यो होमान्न कुर्य्यात् विधिविस्तरम् ।
न च तत्फलमाप्नोति, लोभाक्रान्तमानवः ।
सम्प्राप्ते माघमासे तु, तपस्वी जनवल्लभः ॥
विलयं यान्ति पापानि, तमः सूर्य्योदये यथा ।
वृथा तूष्णोदकस्नानं, वृथा जप्यं सवैदिकम् ॥
अश्रोत्रिये वृथा दानम्, वृथा श्राद्धमदक्षिणम्" । इति ।

माघकृत्यं समाप्तम् ।

अथ फाल्गुनमासः ।

तिथितत्त्वचिन्तामणौ—फाल्गुनकृष्णाष्टमी = अष्टका । तत्प्रातर्नवमी = अन्वष्टका । तत्र विवेकस्तु पूर्वास्वष्टकासु सामर्थ्याभावे इयमावश्यकी । हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामवर-पक्षाणामष्टमी ह्यष्टका । एकस्यां वेत्याश्वलायनः । तदन्यत्र पर्वाभावान्न लिखितं किञ्चिदिति ।

अत्र कश्चन विशेषः ।

"फाल्गुनस्य च मासस्य, कृष्णाष्टम्यां महीसुता ।
याता दाशरथेः पत्नी, तस्मिन्नहनि जानकी ।
उपोषितो रघुपतिः, समुद्रस्य तटे तदा ।
रामपत्नी च सम्पूज्या, सीताजनकनन्दिनी ॥

फाल्गुनी पूर्णिमा च होलिका । सा सायह्नव्यापिनी ग्राह्या ।—

"प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या, पूर्णिमा फाल्गुनी सदा ।
तस्यां भद्रमुखं त्यक्त्वा, पूज्या होली निशामुखे" ।

इति नारदवचनात् । इयञ्च पूर्वविद्धा कार्य्या—

"श्रावणी दौर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी ।

पूर्वविद्धैव "कर्तव्ये" त्यादिवचनात् । इति वृहद्यमब्रह्मवैवर्तवचनम् । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परैव ।

भद्रायां होलिकानिषेधो यथा—

"भद्रायां द्वे न कर्तव्ये, श्रावणीफाल्गुनी तथा ।
श्रावणी नृपतिं हन्ति, ग्रामं दहति फाल्गुनी" ॥इति ।
"दिनार्द्धात्परतोऽपि स्यात्, फाल्गुनी पूर्णिमा यदि ॥
रात्रौ भद्रावसाने तु, होलिका दीप्यते तदा" ॥ इति ।

यदि च पूर्वदिने चतुर्दशीव्यापिनी परदिने च पूर्णिमाक्षयवशात् सायाह्नात् प्रागेव समाप्यते तदा इति पूर्वदिने सम्पूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात् तत्रैव तन्निषेधात् परेऽहनि प्रतिपद्येव कुर्य्यात् ।

"सार्द्धयामत्रयं वा स्यात, द्वितीया दिवसे यदा ।
प्रतिपदूर्द्धमाना तु, तदा सा होलिका स्मृता" ॥

इत्यादिवचनान्यवचनानि गौड़दाक्षिणात्यनिबन्धेऽन्वेष्य विवेचनीयमिति ठक्कुराः।

अथ मासादिनियतदानम् दानवाक्यावल्याम्—

"माघे मासि तिलान् यस्तु, ब्रह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
सर्वसत्त्वसमाकीर्णं, नरकं स न पश्यति ।

वामनपुराणे—

फाल्गुन्यां व्रीहयो गावो वस्त्रं कृष्णाजिनं तथा ।
गोविन्दप्रीणनार्थाय, दातव्यं पुरुषर्षभैः ।
चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि, सौभाग्यं महदश्नुते ॥

वामनपुराणे—

अपूपानां प्रदानेन वैशाखे स्वर्गमश्नुते ।
छत्रदानं तथा ज्यैष्ठे, सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

वामनपुराणे—

"उदकुम्भाश्च, धेनुश्च तालवृन्तं सचन्दनम् ।
त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थम्, दातव्यं साधुभिः सदा ।
उपानद्युगलच्छत्रं, लवणासनकानि च ।
आषाढे च मनःप्रीत्यै, दातव्यानि च भक्तितः ॥
घृतञ्च घृतकुम्भाँश्च, घृतधेनुःफलानि च ।
श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै, दातव्यानि विपश्चितैः ॥
तथा प्रौष्ठपदे मासि, प्रदानात्फालितस्य च" ॥

फालितं—शर्करादि ।

तक्रमाश्वयुजे मासि, यस्तु दद्याद्द्विजातये ।
आरोग्यं महदाप्नोति, यत्र तत्राभिजायते ॥
तिलास्तुरङ्गवृषभं दधिताम्ररसादिकम् ।

प्रीत्यर्थं पद्मनाभस्य, देयमाश्वयुजे नरैः ।
रजतं कनकं दीपान्, मणिमुक्ताफलादिकम् ।
दामोदरस्य प्रीत्यर्थं, प्रदद्यात्कार्तिके नरः ।
लवणं मार्गमासे तु दद्यात्सौभाग्यमश्नुते ॥
प्रासादनगरादीनि, गृहप्रावरणानि च ।
नारायणस्य प्रीत्यर्थं, पौषे देयानि यत्नतः ॥

इति द्वादशमासनियतदानम् ।

व्रतपद्धतौ—

"एकभुक्तं तु कुर्वीत, फाल्गुने मासि नित्यशः ।
स्त्रीषु सौभाग्यमाप्नोति, स्त्रियश्च परमप्रियाः" ॥

इति तिथितत्त्वप्रदीपे- नृपं प्रति नारदवाक्यम्—

"अद्य पञ्चदशी शुक्ला, फाल्गुनस्य नराधिप ।
अभयञ्चैव लोकानां, दीयतां परमेश्वर ॥
यथा ह्यशङ्किताः लोकाः, विरमन्ति हसन्ति च ॥
दारुणानि च खण्डानि, गृहीत्वाशु समुत्सुकाः ।
योधा इव विनिर्य्यान्तु, शैशवाः सम्प्रहर्षिताः ॥
शैशवं शुष्ककाष्ठानां, भूपलानाञ्च कारयेत् ।
तत्राऽग्निं विधिवद्धुत्वा, रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः ॥
ततः किलकिलाशब्दैः, बहुलैः सुमनोहरैः ।
तेन शब्देन सा पापा, होमेन विनिवारिता ॥
सा दृढा राक्षसी घोरा, लोकानां भयदायिका ।
सर्वदुष्टापहो होमः, सर्वरोगोपशान्तिदः ॥
क्रियतेऽस्यां द्विजः पार्थ, तेन सा होलिका स्मृता" । इति
"तमग्निं त्रिः परिक्रम्य, गायन्तु च हसन्तु च ॥

जल्पन्तः स्वेच्छया लोका, निःशङ्का यस्य यन्मनः" ।

तत्र पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या, तदुक्तं तत्रैव । तपस्यपौर्णमास्यान्तु होलिकोत्सवः इति ।

चन्द्रप्रकाशे नारदोऽपि—

"प्रतिपद्भूतभद्रासु, याऽर्चिता होलिका दिवा ।
सम्वँत्सरन्तु तद्राष्ट्रं, पुरं दहति साद्भुतम् ॥
प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या, पूर्णिमा फाल्गुनी सदा ।
तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा, पूज्या होली निशामुखे" । इति
"निशामुखे तु पूज्या तु, होलिका सर्वतो मुखैः" ।

इति पृथ्वीचन्द्रोदये दुर्वाससो वाक्यानि च । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परैव ।

"भद्रायां दीपिता होली, राष्ट्रभङ्गं करोति वै ।
नगरस्य च नैवेष्टा, तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

पूर्वदिने प्रदोषव्यापिनी भद्रायुक्ता चेत्तदा पूर्वेद्युरेव रात्रौ भद्रान्ते कार्य्या ।

"दिनार्द्धात्परतो या स्यात्, फाल्गुनी पूर्णिमा यदि ॥
रात्रौ भद्राऽवसाने तु, होलिकान्तत्र दीपयेत्" ॥

इति भविष्योत्तरात् ।

"राकायामद्वयादूर्ध्वं, चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।
होलीं भद्रावसाने तु, निशीथे सम्प्रदीपयेत्" ॥

इति पुराणसमुच्चयाच्च । यत्तु

"भद्रायां विहितं कार्य्यं होलिकायाः प्रपूजनम्" । इति

यच्च—

"मध्यरात्रिमतिक्रम्य, विष्टे पुच्छं यदा भवेत् ।
प्रदोषे ज्वालयेदग्निं, सुखसौभाग्यदायकम् ॥
प्रदोषान्मध्यरात्र्यन्तं, होलिकापूजनं शुभम्" ।

इति च कैश्चिद् लेखि तदकारणं । यदा तु पूर्वरात्रौ प्रदोषव्याप्त्यभावस्तत्सत्त्वेऽपि भद्रारहितः कालो न प्राप्यते, उत्तरदिने च प्रदोषे पूर्णिमाऽभावः तदा भद्रापुच्छे कार्य्या । तथा च लग्नः—

"पृथिव्यां यानि कार्य्याणि, शुभनि त्वशुभानि च ।
तानि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति, विष्टिपुच्छे न संशयः" ॥ इति

भद्रापुच्छं ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धम् । अस्मिन्नेव विषये उत्तरदिने पूर्णिमा, सार्द्धं याम‌त्रयपरिमिता, ततोऽधिका प्रतिपच्चोत्तरदिने बृद्धिस्तदा पूर्णिमोत्तरं प्रतिपदि प्रदोषे होलिका कार्य्या न तु पूर्वद्युर्विष्टिपुच्छे ।

"सार्द्धं यामत्रयं पूर्णा, द्वितीये दिवसे यदा ।
प्रतिपद्वर्द्धमाना तु, तदा सा होलिका स्मृता" ॥

इति भविष्योक्तेः । एवं सति या उत्तरदिने कृत्स्ने प्रदोषे तदेकदेशे वा वर्तते, पूर्वरात्रौ च भद्रारहिता नैव लभ्यते तदा सा उत्तरैव । पूर्वोक्तं पूर्वविद्धायाः ग्राह्यत्वं तूत्तरत्र प्रदोषस्पर्शे बृद्ध्यभावे च ज्ञेयम् । यदा पूर्वरात्रिः सर्वा भद्रायुक्ता उत्तरदिने प्रदोषे चन्द्रग्रहणम् , तदा तत्र स्नात्वा कार्य्या ।

"स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत, श्रीतमन्नं विवर्जयेत्" ।

इति वचनात् । फाल्गुन मलमासश्चेत्तदा शुद्धमासे होलिका कार्य्या । "स्पष्टमासविशेषाख्यविहितं वर्जयेन्मले इति वचनात् । तत्र होलिकापूजा मन्त्रस्तु

"अष्टकूपाभयत्रस्तैः, कृता त्वं होलि वालिशैः ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि, भूते भूतिप्रदा भव" ॥

इति दिक् । इति होलिकानिर्णयः । इति दाक्षिणात्याः ।

इति फाल्गुनमासः ।

इति श्रीरत्नपाणिसंगृहीते कृत्यसागरे द्वादशमासनिरूपणं नाम द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम्

अथ मलमासकृत्यम् ।

"पञ्च[५] ह्यद्रि[७] कृता[४] ष्ट[८] राम[३] रसभू[६], यामादिघट्यः शरा[६]: ।
विष्टे राश्यमसद्गजेन्दुरसरामा[३] ऽद्रयश्वि[२] वाणाऽब्धिषु[४] ॥

यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं, पुच्छञ्च तं वासरे ।
विष्टिस्तिथ्यपरार्द्धजा शुभकरी, रात्रौ तु पूर्वार्द्धजा" ॥
बहुग्रन्थाऽवलोकेन, कृत्याऽकृत्यविवेचनम् ।
मलमासे समासेन, क्रियते रत्नपाणिना ॥

अत्र रुद्रधरोपाध्यायाः—

"नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात्, प्रयतः सन् मलिम्लुचे ।
तीर्थस्नानं गजच्छायां, प्रेतश्राद्धं तथैव च ॥

नित्यम् = अहरहः क्रियमाणम् । अन्यदप्यावश्यकम् । पूर्वगृहीतपूजादिव्रतम् । नैमित्तिकम् = पुत्रजन्मचन्द्रोपरागादिश्राद्धम् । तीर्थस्नानं = प्रथमेतरत् । प्रथमतीर्थस्नाने दोष एव ।

"मलिम्लुचे त्वनावृत्तं, तीर्थस्नानमपि त्यजेत्" ।

अनावृत्तम् = प्रथममित्यर्थः ।

"गर्भे वार्द्धुषि कृत्ये च, मृतानां पिण्डकर्मसु ।
सपिण्डीकरणे चैव, नाधिमासं विदुर्बुधाः" ॥

अस्य निषिद्धमिति शेषः । गर्भे = गर्भाधानादिकर्मणि । वार्द्धुषिकृत्ये = ऋणाऽदानादिके । मृतानां पिण्डकर्मसु = नियतकालदशाहादिकप्रेतकार्य्येषु । सपिण्डीकरणे च मलमासदोषाभावः ।

"सपिण्डीकरणादूर्ध्वं, यत्किञ्चिच्छ्राद्धकं भवेत् ।
इष्टं वाप्यथ वा पूर्त्तं, तन्न कुर्य्यान्मलिम्लुचे" ॥

अत्राऽपि प्रथमाब्दिकव्यतिरिक्ते निषेधः । ज्योतिश्शास्त्रे—

"जातकर्मणि यच्छ्राद्धं, नवश्राद्धं तथैव च ।
प्रतिसम्वत्सरश्राद्धं मलमासेऽपि तत्स्मृतम् ॥
प्रतिसम्वत्सरश्राद्धमशौचात् पतितञ्च यत्" ।

नवश्राद्धं = प्रेतश्राद्धम् । अशौचादित्युपलक्षणम् । तेन अशौचादिना साम्वँत्सरिकश्राद्धं यन्नियतकाले कृतं नासीत् तदशौचाद्युपगमे मलिम्लुचेऽप्यागते कुर्य्यादित्यर्थ इत्याहुः । नरहर्य्युपाध्यायास्तु—मलमासकर्तव्यमिदमेव—यस्याननुष्ठाने पापं तच्च विश्राडादिचतुष्कशून्यं सन्ध्यावन्दनं, ब्रह्मयज्ञः, पितॄणां, मातॄणाञ्च तर्प्पणम्, समन्त्रकपञ्चदेवतापूजा, वैश्वदेवहोमः । यक्षबल्यन्तं बलिकर्म नित्यश्राद्धं हन्तकारो, गोग्रासः, एकादश्यामुपवासो, अमावास्यापार्वणम् । ग्रहोपरागे कामनां विनैव स्नानम्, पार्वणम् । न तु काम्यस्नानम् । "अन्यत्रावश्यकाद्विधेरि" ति काम्यकर्मनिषेधात् । न च—

"नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात्, प्रयतः सन् मलिम्लुचे" ।

इत्यनेन—

"तीर्थस्नानं गजच्छायां, प्रेतश्राद्धं तथैव च" ।

इत्यनेन प्रतिप्रसूतत्वात् काम्यस्नानमस्त्विति वाच्यम् "मलिम्लुचे त्वनावृत्तं तीर्थस्नानमपि त्यजेदित्यनेन तीर्थस्नानविरहादेव भवनमित्यादिज्योतिर्वचनेन च तीर्थस्नानस्य प्राथमिकसाधारणस्यानिष्टजनकत्वे बोधिते प्रथमातिरिक्ततीर्थस्नाने दोषो नास्तीति प्रतिप्रसवेन बोध्यते न तु काम्यत्वमपि । विरोधादिति वाचस्पतिमिश्राः । वस्तुतस्तु प्रथमतीर्थस्नाननिषेधेऽपि द्वितीयस्य काम्यस्यैव विधिः, प्रेतश्राद्धसमभिव्याहारात् । अकाम्यस्य तस्य नित्यनैमित्तिके कुर्य्यादित्यनेनैव प्राप्तेः । तत्र निषेधाश्रुतेः प्रतिप्रसवस्याप्रसङ्गात् । अतएव मलमासेऽपि प्रेतश्राद्धे काम्याभिलापपूर्वकः शिष्टसंकल्पोऽपि सङ्गच्छते । कामिन्येव नियोज्ये तस्यावतारात् । न च कालिकाऽपूर्वजनकेषु मासिकेषु यथा शिष्टाचारादेव संकल्पः । कालिकाऽपूर्वे हि न कामना वा नाधिकारी, किन्तु निःकामः । तद्वदिहापि संकल्पोऽस्त्विति वाच्यम् । निर्बीजस्य शिष्टाचारस्यैवासम्भवात् । प्रधानीभूतषोडशश्राद्धात्मकमासिकानां फलश्रुतावविशेषणसंकल्पस्य न्यायप्राप्तत्वान्न प्रतिबन्धावकाशः । प्रेतश्राद्धानङ्गमेकादशाहश्राद्धे शय्यादि न देयम्, प्रापकाभावात् । न चाशौचान्तद्वितीयेऽह्नि इति निमित्तसप्तमीबलाच्छय्यादिदानम् नैमित्तिकमिति वाच्यम्, अधिकरणत्वस्यैव सप्तम्यर्थत्वेनौत्सर्गिकत्वात् । अत एव भिन्नफलकत्वश्रुतेश्छत्रोपानद्दानम् काम्यं न कर्त-

व्यमिति जीवनाथमिश्राऽनुमतोऽयं पन्थाः इत्याहुः। माधवाचार्य्यस्वरसेनाऽपि प्रदर्श्यते—

तत्र पैठीनसिः—

"श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः, द्वादशे मासि कीर्तिताः।
त्रयोदशे तु सर्वास्ताः, निष्फला इति कीर्तिताः॥
तस्मात्त्रयोदशे मासि, कुर्य्यास्ता न कथञ्चन।
कुर्वन्ननर्थमेवाशु, कुर्य्यादात्मविनाशनम्"॥ इति

अत्र निष्फला इत्यभिधानात् फलकामनया प्रवृत्तं कर्म निषिद्ध्यत इति "कुर्य्यात्ता न कथञ्चन"। "कुर्वन्ननर्थमेवाशु, कुर्य्यादात्मविनाशनम्" इति। अत्र निष्फला इत्यभिधानात् फलकामनया प्रवृत्तं कर्म निषिध्यत इति गम्यते। तथा च स्मृत्यन्तरे—

"इष्ट्यादिसर्वकाम्यन्तु, मलमासे विवर्जयेत्"। इति

न च ताः सर्वाः इत्यभिधानात् नित्यनैमितिकयोरपि निषेध इति देश्यम्, नित्यनैमित्तिके कुर्य्याच्छ्राद्धं कुर्य्यान्मलिम्लुचे" "तिथिनक्षत्रवारोक्तं काम्यं नैव कदाचने" ति जावालिवचनाच्च, नित्यनैमित्तिकयोरपि यदनन्यगतिकं तदेव मलमासे कार्य्यम्। अनन्यगतिकं कुर्य्यान्नित्यनैमित्तिकं तथा इति स्मरणात्। "मले अनन्यगतिकां कुर्य्यान्नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम्" इति काठकगृह्यवचनाच्च। अनन्यगतिकानि च गृह्यपरिशिष्टे।

"अवषट्कारहोमाश्च पर्व चाग्रायणं तथा।
मलमासेऽपि कर्तव्यम्, काम्या इष्टीर्विवर्जयेत्"॥ इति

अवषट्कारहोमाः = अग्निहोत्रोपासनवैश्वदेवादयः। पर्व दर्शपौर्णमासौ। पार्वणस्थालीकश्च। दर्शादीनां नित्यत्वम्, अकरणे प्रत्यवायोऽवगन्तव्यः। यमः—

"चन्द्रसूर्य्यग्रहे स्नानं, श्राद्धदानजपादिकम्।
कार्य्याणि मलमासेऽपि, नित्यनैमित्तिकं तथा"॥ इति

सगतिकानि तु नैमित्तिकानि = जातेष्ट्यादीनि "वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वर्त्तयेत्पुत्रे

जाते" इति विहितायाः इष्टेः अशौचेऽवसिते तथाऽनुष्ठानम्, तद्वन्मलमासे व्यवसितेऽनुष्ठातुं शक्यत्वात् सगतिकत्वम्, यथोक्तरीत्या काम्यमावश्यकम् कारीरीयागादिकम् अनन्यगतिके नित्यनैमित्तिके अपि मलमासे कार्य्याणि इति सामान्यतो वर्ज्यावर्ज्य-विवेकः ।

"द्वादशाहसपिण्डान्तं, कर्मग्रहणजन्मनोः ।
सीमन्ते पुंसवे श्राद्धे, द्वावेतौ जातकर्म च ॥
रोगे शान्तिरलभ्ये च योगे, श्राद्धं व्रतानि च ।
प्रायश्चित्तं निमित्तस्य, वशात्पूर्वं परत्र च ॥
अब्दोदकुम्भमन्वादिमहालययुगादिषु" ।

इति माधवीये ।

"श्राद्धं दर्शेऽप्यहरहः, श्राद्धमूनादिमासिकम् ।
मलिम्लुचान्यमासेषु, मृतानां श्राद्धमाब्दिकम् ॥
श्राद्धं तु पूर्वदृष्टेषु, तीर्थेष्वेव युगादिषु ।
मन्वादिषु च यद्दानं, दानं दैनन्दिनञ्च यत् ॥
तिलगोभूहिरण्यानां, सन्ध्योपासनयोः क्रिया ।
पर्वहोमश्चाग्रयणं, साग्नेरिष्टिश्च पर्वणोः ॥
नित्याग्निहोत्रहोमश्च, देवतातिथिपूजनम् ।
स्नानञ्च स्नानविधिनाऽप्यपेक्ष्यापेयवर्जनम् ॥
तर्पणं वा निमित्तस्य, नित्यत्वादुभयत्र च ।
अनित्यमनिमित्तञ्च, दानञ्च महादिकम् ॥
अग्न्याधानध्व वा पूर्वतीर्थयात्रामवेक्षणम् ।
देवारामतडागादिप्रतिष्ठामौञ्जीबन्धनम् ॥
आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निःक्रमः ।
राज्याभिषेकप्रथमचूडाकर्मव्रतानि च ॥

अन्नप्राशनमारम्भो, गृहाणाञ्च प्रवेशनम् ।
स्नानं विवाहो नामानि, किञ्चिदेव महोत्सवैः ॥
व्रतारम्भसमाप्ती च, काम्याकाम्यञ्च पाप्मनाम् ।
प्रायश्चित्तन्तु सर्वस्य, मलमासे विवर्जयेत् ॥
उपाकर्मोत्सर्जनञ्च, पवित्रदमनार्पणम् ।
अवरोहश्च हैमन्तः, सर्पाणाञ्च बलिष्टकाः ॥
ईशानस्य बलिर्विष्णोः, शयनं परिवर्तनम् ।
दुर्गेन्द्रस्थापनं ध्वजस्थापनञ्चैव वज्रिणः ॥
पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि, परत्राऽन्यच्च वैदिकम्" ।

इत्यन्तेन मलमासे वर्जितानां सतां शुद्धमासे कर्तव्यत्वेन संग्रहः । कर्तव्ये यमः—

गर्भे वार्द्धुषिकृत्ये च, श्राद्धकर्मणि मासिके ।
सपिण्डीकरणे नित्ये, नाधिमासं विवर्जयेत् ॥
तीर्थस्नानं जपो होमो, यवव्रीहितिलादिभिः ।
जातकर्मान्तकर्माणि, नवश्राद्धं तथैव च ॥
मघात्रयोदशीश्राद्धं, श्राद्धान्यपि च षोडश ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे स्नानं, श्राद्धदानजपादिकम् ॥
कार्य्याणि मलमासेऽपि, नित्यं नैमित्तिकं तथा" । इति

मासिके श्राद्धकर्मणि = आमावास्या श्राद्धकर्मणीत्यर्थः । नित्ये = नित्यदाने । होमोऽत्रोपासनहोमः । अन्त्यकर्माणि = दहनोदकपिण्डदानाऽस्थिसञ्चयनादीनि । स्मृत्यन्तरे—

"श्राद्धजातकनामानि, ये च संस्कारसव्रताः ।
मलिम्लुचेऽपि कर्तव्याः, इष्टीः काम्याँश्च वर्जयेत्" ॥ इति

संस्काराः = अन्नप्राशननिःक्रमणादयः । सव्रताः = चातुर्मास्यव्रतादयः ।

"जातकर्मणि यच्छ्राद्धं नवश्राद्धं तथैव च" ।

इति निमित्तवशादिति वाक्यशेषः। स्मृतिसंग्रहेऽपि—

"जातकर्मणि पुंसूतिं, सीमन्तोन्नयनव्रतम्।
मलिम्लुचेऽपि कुर्वीत, निमित्तं यदि जायते" ॥ इति

मरीचिः—

"रोगे चालभ्ययोगे च, सीमन्ते पुंसवेऽपि च।
यद्ददाति समुद्दिष्टं, पूर्वत्राऽपि न दुष्यति" ॥

इति निमित्तवशात् प्रायश्चित्तान्यत् छिद्रकाण्डमेव बहूनि श्रूयन्ते। तद् गौरवान्नालेखि

"अब्दमम्बुघटं दद्यात्, अन्नं वापि स्वसञ्चितम्।
सव्वँत्सरे विवृद्धेऽपि, प्रतिमासञ्च मासिकम्" ॥ इति

मरीचिः—

"प्रतिमासं मृतो देयः, श्राद्धं च प्रतिवासरम्।
मन्वादौ च युगादौ च, वासयोरुभयोरपि" ॥

मत्स्यपुराणे—

"वर्षे चाहरहः श्राद्धं, दानं च प्रतिवासरम्।
गोभूतिलहिरण्यानां, मासेऽपि स्यान्मलिम्लुचे" ॥ इति

एवमभक्ष्यापेयवर्जनसन्ध्यावन्दनादिष्वपि विशेषतः साक्षिवचनान्युदाहरणीयानि। सामान्यतस्तु

"नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात्, प्रयतः सन्मलिम्लुचे"।

इति बृहस्पतिवचनम् पूर्वमेवोदाहृतम्। एवमन्यान्यपि स्वयमूहनीयानि। भृगुः—

"वृद्धिश्राद्धन्तथा सोममग्न्याधेयम् महालयम्।
राज्ञोऽभिषेकञ्च, न कुर्य्याद् भानुलङ्घिते" ॥

सत्यव्रतः—

"वर्षे वर्षे च यच्छ्राद्धं, मातापित्रोर्मृतेऽहनि।

मलमासे न कर्तव्यं, व्याघ्रस्य वचनं यथा" ॥ इति

शातातपः—

"वर्षे वर्षे च यच्छ्राद्धं, मृताहे न मलिम्लुचे ।
कुर्य्यात्तत्र प्रमीतानामन्येषामुत्तरत्र तु" ॥ इति

पैठीनसिः—

"माघमासमृतानां तु, श्राद्धं यत्प्रतिवासरम् ।
मलमासे तु कर्तव्यं, नान्येषां तु कदाचन" ॥ इति

न च शुद्धमासमृतानां मलमासे श्राद्धकर्तव्यताविधानमयुक्तमिति वाच्यम्, तस्याऽभिधानस्य प्रथमाब्दिकविषयत्वात् ।

"आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्, तत्कुर्वीत मलिम्लुचे" ।

इति स्मरणात् । तथा हारीतोऽपि—

"असंक्रान्तेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं बुधैः ।
तथैव मासिकं श्राद्धं, सपिण्डीकरणं तथा" ॥ इति

लघुहारीतोऽपि—

"प्रत्यब्दं द्वादशे मासि, कार्य्या पिण्डक्रिया बुधैः ।
क्वचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्" ॥ इति

अत्र द्वादशे मासि पूर्णे सति—अनन्तरदिने कार्य्यमिति व्याख्येयम् ।

"मासपक्षतिथिस्पृष्टे, यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि ।
प्रत्यब्दं तु तथाभूतं, क्षयाऽहं तस्य तद्विदुः" ॥

इति व्यासेनाब्दिकदिनस्य विशेषितत्वात् ।

भृगुः—

"मलमासमृतानां तु, यच्छ्राद्धं प्रतिवत्सरम् ।
मलमासे तु तत्कार्य्यं, नान्येषां तु कदाचन" ॥ इति

मलमासमृतानां कादाचित्कं प्रत्याब्दिकं मलमासे कार्य्यम् । शुद्धमासमृतानाञ्च प्रथमाब्दि-

कं मलमासे कार्य्यम् । द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धमासे इति विवेकः । अत्र कर्तव्याकर्तव्ये श्रुतयः उदाह्रियन्ते ।

तत्र वृद्धमनुः—

"अग्न्याधानं प्रतिष्ठाञ्च, यज्ञदानव्रतानि च ।
देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥
माङ्गल्यमभिषेकञ्च, मलमासे विवर्जयेत् ।
बाले वा यदि वा वृद्धे, शुक्रे वाऽस्तमुपागते ॥
मलमास इवैतानि, वर्जयेद्देवदर्शनम्" ।

राजकीय संस्कृत पुस्तकालय जयपुर पुस्तकालय क्रमांक 8565

इति पैठीनसिः । ज्योतिःपराशरयोरप्येवमेव पाठः । कौथुमिः—

"अधिमासे तु कर्तव्यं, श्राद्धमभ्युदयं तथा ।
तथैव काम्यं यत्कर्म, वत्सरात्प्रथमाद्दते ॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं, यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् ।
इष्टं वा यदि वा पूर्तं, तन्न कुर्य्यान्मलिम्लुचे ॥ इति

असङ्क्रान्तं प्रकृत्य ज्योतिश्शास्त्रे—

"तत्र दत्तमदत्तं वा, हुतमहुतमेव वा ।
सुजप्तमप्यजप्तं स्यात्, नोपवासः कृतो भवेत् ॥
न यात्रां न विवाहन्तु, न च वास्तुनिवेशनम् ।
न प्रतिष्ठाञ्च देवानां, प्रासादग्रामभूरुहाम् ॥
न हिरण्यं न वासांसि, कारयेदिति निश्चयः" ॥ इति

स्मृत्यन्तरेऽपि—

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठां यज्ञकर्म च ।
न कुर्य्यान्मलमासे च, महादानव्रतानि च" ॥ इति

महादानानि = तुलापुरुषादीनि षोडशादिनि विष्णुपुराणोक्तानि । कनकादीनि दशकूर्मपुराणोक्तानि एवमन्यान्यपि निषेधवचनान्युदाहरणीयानि । उपाकर्मोत्सादनरुचेत्यादिना

शुद्धमास एव कर्तव्यानि। तत्र ज्योतिःपराशरः—

"रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः।
तत्र यद्विहितं कर्म, उत्तरे मासि कारयेत्" ॥ इति

प्रजापतिः—

"उपाकर्म च हव्यञ्च कव्यं पर्वोत्सवं तथा।
उत्तरे नियतं कुर्य्यात्, पूर्वं तन्निष्फलं भवेत्" ॥ इति

हारीतोऽपि—

"उपाकर्म तथोत्सर्गं, काम्यमुत्सवमष्टकाः।
मासवृद्धौ पराः कार्य्याः, वर्जयित्वा तु पैतृकम्" ॥ इति

ज्योतिः पितामहोऽपि—

"मासः कन्यां गते भानावसंक्रान्तो भवेद्यदि।
दैवं पित्र्यं तदा कर्म, तुलाकर्तुरक्षयम्" ॥ इति

अत्र कन्यागते सवितरि योऽसङ्क्रान्तोऽसौ मलिम्लुचः, न आश्वयुजः भाद्रपदान्ते कन्या-श्रवणात। एवञ्च सति कन्यामुपजीव्यविहितं यद्दैवं पित्र्यञ्च तन्मलिम्लुचे आश्वयुजे न कर्तव्यं किन्तर्हि तुलासंक्रान्त्युपेयेते शुद्ध आश्वयुजे। इदमत्र बोध्यम्।

किञ्चित्कर्म मलमा एव कर्तव्यम्। तद्यथा मलमासमृतानां यदा कदाचित् प्रत्या-ब्दिकम्, अन्यमासमृतानां प्रथमाब्दिकञ्च। किञ्चित्तु शुद्धमास एव कर्तव्यम्, किञ्चि-दुभयत्रापि कर्तव्यम्। तद्यथोदकुम्भादि किञ्चिदुभयोरन्यस्मिन्निमित्तवशात्कर्तव्यम्, द्वादशाहसपिण्डादि किञ्चिन्मलमासे वर्ज्यं—"यथानित्यमनित्यञ्च" इत्यादि। इति माधवाचार्य्यानुसारो पन्थाः। अथ वृद्धवाचस्पतिमिश्राः। नेहे तत्र विशेषेज्यामन्यत्रा-वश्यकाद्विधेः" इति वचनात्। आवश्यकत्वञ्च नित्यं नैमित्तिकञ्च पूर्वसंकल्पितञ्च काम्य-मपि। यस्यैव ह्यनुष्ठाने पापं तदेव ह्यावश्यकमिति। तच्चाह्निके स्नानं विश्राडादिचतु-ष्कशून्यम् सन्ध्यावन्दनं ब्रह्मयज्ञः। षण्णां पितॄणां मातॄणाञ्च तर्पणम्, श्रौतमन्त्रेण देवता-पूजा, वैश्वदेवहोमः, यक्षबल्यन्तं बलिकर्म, नित्यश्राद्धं, हन्तकारश्च, इति। गो ग्रा-

सस्याप्यावश्यकत्वम्—"दद्यादनेन मन्त्रेण गवां ग्रासं सदैव हि" इति वचनबलात्। एकादश्युपवासः, अमावास्या पार्वणम्। अत्र ग्रहोपरागे कामनां विनैव स्नानं श्राद्धञ्च। न तु "तीर्थस्नानं गजच्छायामि" त्यनेन त्वावृत्तं यत् तीर्थस्नानं तत्र नावृत्तं तीर्थस्नानवत् दृष्टदोषो नास्तीत्यभिधीयते। न तु काम्यफलजनकत्वमपि "नेहे तत्र विशेषेज्यामि" त्यादिना मलमासे काम्यकर्मनिषेधे प्रेतषोडशी कथं क्रियते स हि नैमित्तिकी काम्या चेति उच्यते—सा ह्यावश्यकी—

"यस्यैतानि न दीयन्ते, प्रेतश्राद्धानि षोडश।
पिशाचत्वं स्थिरं तस्य, दत्तैः श्राद्धशतैरपि"॥

इत्यादिना अकारणे निन्दाप्रतिपादनात्। किञ्च तादृशाग्राहिणः पुत्रस्यापि तच्छ्राद्धानाचरणे निन्दा श्रूयते।

तद्यथा—

"अकृत्वा प्रेतकार्य्याणि, प्रेतस्य धनहारकः।
वर्णिनां यद्वधे प्रोक्तं, तद्व्रतं नियतं चरेत्"॥ इति

हन्तैवं नैमित्तिकतया क्रियतां न तु काम्यतया। तथा च काम्याभिलाषपूर्वकः संकल्पः त्यज्यताम्। कामिनैव नियोज्ये तु तस्यावतारात्। वाढं, नैमित्तिकतयैव क्रियते न तु काम्यतया। अत एव पात्रब्राह्मणाद्यङ्गहानावपि निर्विचिकित्सितं तदनुष्ठानम्। सर्वशक्त्यधिकरणे—

"आवश्यके किञ्चिदङ्गहानावपि फलसिद्धिः"।

इति सिद्धान्तात्। हन्त तर्हि कथं काम्याभिलाषपूर्वकः संकल्पः आदौ। शिष्टाचारवशादिति ब्रूमः। कथमन्यथा मासिकेष्वपि फलार्थकप्रधानापूर्वजनककालिकापूर्वमात्रजनकेषु संकल्पः संगच्छताम्। नहि कालिकापूर्वेऽपि कामी अधिकारी। किन्तु निष्कामः। अङ्गापूर्ववत्। प्रधानापूर्व एव हि वाक्यार्थभूते सोऽधिकारो। तथैव तिर्य्यगधिकरणे सिद्धान्तात्। तदयं संक्षेपः। तीर्थस्नानं मलमासे फलजनकं भवत्येव गोदानादिवत्। किन्त्वावृत्तं तदनिष्टजनकमपि न भवति। अनावृत्तं तु कालदोषात् पु-

ण्याजनकमनिष्टजनकञ्चेति। गजच्छाया तु हस्तादित्ये मघाचन्द्रे कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां भवति। तथा च माघाश्विनोयोर्यदा मलमासः तदा तदनन्तरं चतुर्दश्यां कन्यारविसंक्रान्तौ कथं ततः प्राक् गजच्छाया यदि तु भाद्रे मलमासः तदा द्वितीयभाद्रामावास्यामुलङ्घ्य कन्यासंक्रान्तौ क्व मलमासे गजच्छाया? तस्मात्कल्पतरुप्रभृतौ निबन्धे या गजच्छाया परिभाषिता सैवेह न सम्भवति इति श्राद्धाध्याये हलायुधधर्माधिकरणकैरन्यैव गजच्छाया उक्ता। तद्यथा—"राहुर्वै हस्ती भूत्वा चन्द्रमसं संग्रसति इति श्रुत्या राहुणा यश्चन्द्रमसो ग्रासः सा गजच्छाया। तथा च यद् ग्रहोपरागश्राद्धं सा गजच्छाया सूर्य्यग्रासेऽपि चन्द्रस्यैव ग्रसनीयत्वेन प्रसङ्गाद्रविग्रसनं। तेन गजच्छायाचन्द्रसूर्य्योपरागश्राद्धं तदपि मलमासे क्रियत इति सिद्धम्। प्रेतश्राद्धानि नित्यनैमित्तिकत्वेन कार्य्याण्येव बाधविरहादित्यन्ये। सम्प्रदायस्तु-"काम्यत्वेऽपि कार्य्याणि, मासे बाद्धर्षु पित्रकृत्ये च। मृतानां पिण्डकर्मसु" इति प्रतिप्रसवात्। यद्यपि पिण्डकर्म मृतानामेव। तथापि 'मृतानामि' ति विशेषणोपादानेन नवनीतघृतवदचिरत्वलाभेन प्रेतश्राद्धप्रतीतेः। यत्तु नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात् प्रयतः स न मलिम्लुचे। "तीर्थस्नानं गजच्छायां, प्रेतश्राद्धं तथैव च"। इत्यत्र नित्यमहरहः कर्तव्यं सन्ध्यास्नानं पञ्चमहायज्ञादिकम्। नैमित्तिकम्—पुत्रजन्मक्रियादिकम् एकैकविशेषणावच्छिन्नत्वात्। दर्शश्राद्धं तु नित्यनैमित्तिकम्। तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—

"पञ्च यज्ञाश्रितं नित्यं, यदेतत्कथितं तव।
नैमित्तिकं तथैवान्यत्पुत्रजन्मक्रियादिकम्॥
नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं, पर्वश्राद्धादि पण्डितैः"। इति

किञ्च "नित्यश्राद्धं सदैव स्यादि"त्यादौ नित्यपदं प्रात्यहिकपञ्चयज्ञान्तहुतश्राद्धे प्रयुक्तम्। अत एव काम्यमपि। अहरहः क्रियमाणं हिरण्यपादं मलमासेऽपि कर्तव्यमेव नित्यपदार्थत्वात्। यज्ञदानव्रतानीत्यत्र दानपदं महादानपरम्। "न कुर्य्यान्मलमासे तु, महादानव्रतानी" त्येकवाक्यतानुरोधात्। इति श्राद्धविवेकमतम्। तन्न, नित्यं हि शुचिविहितकालजीविमात्राधिकारिकम्। नैमित्तिकन्तु शुचिविहितकालजीविनिमित्तम्

यदाधिकारिकम्। काम्यन्तु शुचिविहितकालजीविकामनावदाधिकारिकम्। इति कर्म-मीमांसकानां यथा तथा च नित्यनैमित्तिके अन्वीयेते। सर्वतत्त्वसिद्धान्तसिद्धत्वेनोपस्थितिलाघवात्। न तु तदुक्तं, पञ्च यज्ञादिमूलसंशयात्। वस्तुतस्तु कामधेनु-स्मृतिमञ्जरी-स्मृतिमञ्जूषा-वाक्यकरण्डिका-प्रकाशमहार्णव-कल्पतरुहेमाद्रिप्रभृतिभिः प्रामाणिकनिबन्धैरनादरणात्। तदुक्तं वाक्यमिदममूलकमिति। यत्तु नित्यं प्रात्यहिकश्राद्धे प्रयुक्तम्। अतस्तदुक्तमिति। तन्न, सा हि परिभाषा बृहस्पत्यादेरैच्छिकी, न तु कर्ममीमांसाऽनुरुद्धा, सकलनित्यासंग्राहकत्वात्। किञ्च पञ्चमहायज्ञाः नित्यपदार्थाः इत्यभिधाय नित्यश्राद्धमात्रम् नित्यपदार्थ इति वदतस्तस्य पूर्वापरविरोधः। यच्च काम्यं हिरण्यदानादि प्रात्यहिकतया नित्यत्वान्मलमासेऽपि कार्य्यमेवेति, तन्न, तद्धि प्रात्यहिकत्वं कुतः प्राप्तम्? अहरहः कर्तव्यत्वेन पूर्वसंकल्पनादिति। बाढं, तद्धि नित्यसमं पूर्वव्रतं गृहीत्वा अपरिपालने निन्दार्थवादात्। अन्यथा चेत्तदा तस्य प्राप्तिरेव न सर्वश्रुतं यजेदित्यनेन विशेषविहितेतरकर्मणां निषेधात्। "मलं वदन्ति कालस्ये" त्यादिनाऽऽवश्यककर्मण एव तत्र विधानात् अत एव नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात्। नैमित्तिकमुपरागादिनिमित्तकम्, गोवृषन्यायात् इति निबन्धकर्तारः। एतेन दानमात्रं निषिद्धम्, गजच्छायाप्रतिप्रसवेन। अमावास्याश्राद्धादिनिषिद्धम्, प्रेतश्राद्धप्रतिप्रसवेन, एकोद्दिष्टान्तरं निषिद्धमित्यपास्तम्। एतस्य प्रपञ्चार्थत्वात्। अत एव "मलं वदन्ति कालस्ये" त्याद्यार्षः संक्षेपः। दानरत्नाकर-महादाननिर्णयादावप्येवम्।

"आनन्त्यात्फलधर्म्माणां, नराणामायुषः क्षयात्।
अस्थिते च शरीरस्य, द्वादशाहः प्रशस्यते"॥

इति व्यासवचनात् ब्राह्मणत्वजातिपुरस्कारेण प्रवृत्तिः यदि स्यात् तदा क्षत्रियादेरपीदं सपिण्डनकालं विदधीत। तथा च तेषां सपिण्डनं कृत्वा पूर्वावतिष्ठते। एकादशाहेऽहनीत्यत्र यथैकादशाहपदं जात्युक्ताशौचान्तद्वितीयाहोपलक्षकम्। तथेदमपि द्वादशाहपदं स्वजात्युक्ताशौचान्तं तृतीयाऽहस्योपलक्षकम्। न तु विजात्युक्ताशौचान्ततृतीयाऽहस्योपलक्षकम्, जातिपुरस्कारेण प्रवृत्त्या चोपस्थितिकाले जात्युक्तपुरस्कारप्रवृ-

तस्य त्र्यहाशौचादेरुपस्थितौ हेत्वभावात् द्वादशाहपदञ्च ब्राह्मणत्वजातिपुरस्कारेण प्रवृत्ताशौचान्ततृतीयाहोपस्थापकमिति स्फुटमेव। तेन जातिपुरस्कारप्रवृत्ताशौचान्ततृतीयाहस्यतदानीमुपस्थितौ हेत्वभावात्। लाघवस्य चानुपस्थापकत्वात्। अत एव श्राद्धान्ततृतीयाहस्यापि निरासः। नन्वेवमाद्यश्राद्धमपि त्वदुक्तरीत्याऽशौचान्तद्वितीयदिने न स्यात। "आद्यमेकादशेऽहनी" त्यनेन स्वजातिपुरस्कारप्रवृत्ताऽशौचान्तद्वितीयाहस्योक्तत्वात्। त्र्यहाशौचस्य च स्वजात्यनुक्तत्वादिति चेन्न, "अशौचव्यपगमे" इति विष्णुवचनेन हि तदा आद्यश्राद्धं विधीयते न त्वनेनेति प्राहुः।

मासप्रयुक्तकार्य्ये मलमासो न दोषाय। तथा ज्योतिषे—

"मासप्रयुक्तकार्य्येषु, मूढत्वे गुरुशुक्रयोः।
न दोषकृन्मलो मासो, गुर्वादित्यादिकं तथा॥
नित्यं नैमित्तिकं कुर्य्यात्, प्रयतः सन्मलिम्लुचे"॥ इत्यादि

शुक्लपक्षे सदा कुर्य्यात्, व्रतं देवस्य भास्वतः।
विशेषादलिमेषार्के, कृष्णपक्षे कदाचन॥
मार्गे मासि तथा माघे, वैशाखाऽषाढयोरपि।
शुक्लपक्षे रवौ कुर्य्यात्, व्रतं देवस्य भास्वतः"॥

इदन्तु डोलनामव्रतं फाल्गुनेऽपीति केचित्। अत्र सर्वेषां कर्तव्यानां निर्णयः। तत्रापि रद्रधरोपाध्यायमते नित्यमहरहः क्रियमाणमन्यदप्यावश्यकम् पूर्वगृहीतपूजादिव्रतम्, नैमित्तिकम् = पुत्रजन्मचन्द्रोपरागादिश्राद्धं, प्रथमेतरतीर्थस्नानम्। प्रथमतीर्थस्नाने दोषश्रवणात्। गर्भाधानं वार्द्धुषिकृत्यं मृतपिण्डकर्माणि नियतकालदशादिकप्रेतकार्य्याणि अशौचात्साम्वँत्सरिकश्राद्धं यन्नियतकाले कृतं नासीत्तदशौचव्यपगमे मलिम्लुचेऽपि कर्तव्यम्।

नरहर्य्युपाध्यायमते मलमासे कर्तव्यमिदमेव, यस्याननुष्ठाने पापम् तच्च स्नानं विश्राडादिचतुष्कशून्यं सन्ध्यावन्दनं ब्रह्मयज्ञः। पितॄणां षण्णां मातॄणाञ्च तर्प्पणम्, समन्त्रकदेवतापूजा, वैश्वदेवहोमः यक्षबल्यन्तं बलिकर्म, नित्यश्राद्धम्, हन्तकारो,

गोग्रासः, एकादश्यामुपवासोऽमावास्यापार्वणम्, ग्रहोपरागे कामनां विनैव स्नानम्, पार्वणञ्च, सपिण्डीकरणञ्च।

माधवाचार्य्यमते तु अवषट्कारहोमाः, अग्निहोत्रोपासनवैश्वदेवादयः। दर्शपौर्णमासौ, पार्वणस्थलीयपाकश्च। दर्शादीनां नित्यत्वम्, अकरणे निन्दाश्रवणात् प्रत्यवायोऽवगन्तव्यः।

चन्द्रसूर्य्यग्रहे स्नानदानजपादिकं जातेष्ट्यादीनि, कारीरीयागादिकं द्वादशाहसपिण्डान्तं कर्म, सीमन्तकर्म पुंसवनञ्च, रोगशान्तिः। अलभ्ययोगे श्राद्धं व्रतादि च। अनन्यगतिकं प्रायश्चित्तम्। अब्दोदकुम्भदानम्। मन्वादिमहालययुगादिषु पूर्वदृष्टेषु स्नानं श्राद्धञ्च। युगादिमन्वादिषु दानम्। दैनंदिनदानञ्च तिलगोभूहिरण्यानाम्, सन्ध्योपासनक्रिया च, पर्वहोमेष्वाश्रयणम्, नित्याग्निहोत्रहोमः, देवतातिथिपूजनञ्च, नित्यतर्पणम्, नित्यस्नानम्, गर्भाधानवाद्धुर्षिकृत्यं मासिकसपिण्डीकरणदशाहपिण्डदानादिकञ्च, जातकनामकरणम्, अन्नप्राशनम्, निष्क्रमणादयः, चातुर्मास्यव्रतादयः।

वृद्धवाचस्पतिमिश्रमते—नित्यकर्मनैमित्तिकञ्च, पूर्वसंकल्पितं काम्यमपि, यस्यैव ह्यननुष्ठाने पापं तदेव ह्यावश्यकमिति। तच्चाह्निकं स्नानं विश्राडादिविशेषशून्यं सन्ध्यावन्दनं ब्रह्मयज्ञः। षण्णां पितॄणां षण्णां मातॄणाञ्च तर्प्पणम्। श्रौतमन्त्रेण देवतापूजा वैश्वदेवहोमः, यक्षबल्यन्तं बलिकर्म, नित्यश्राद्धं, हन्तकारश्च इति। गोग्रासस्याप्यावश्यकत्वम्, एकादश्युपवासः। अमावास्यापार्वणम्। अत्र ग्रहोपरागे कामनां विनैव स्नानम्, श्राद्धञ्च, प्रथमतीर्थस्नानातिरिक्तं तीर्थस्नानम् वृषोत्सर्गरहिताः प्रेतक्रियाः कार्य्याः। अधिकन्तु तद्ग्रन्थे द्रष्टव्यम्।

"प्रत्यब्दं द्वादशे मासि, कार्य्या पिण्डक्रिया बुधैः।
क्वचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्॥

अस्यार्थः— प्रत्यब्दं द्वादशे मासि क्षयाहं कर्तव्यम्। यदा द्वादशो मासो मलमासो भवेत् तदा त्रयोदशे मासि क्षयाहश्राद्धं कर्तव्यम्। यदि तु प्रथमवर्षे द्वादशो मासो

मलमासो भवेत्तदा मलमास एव प्रथममेकोद्दिष्टं कर्तव्यम् ।

"असंक्रान्तेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं बुधैः" ।

इति वचनात् । असंक्रान्ते संक्रान्तिशून्ये मलमास इत्यर्थः । यद्येकादशमासाभ्यन्तरे मलमासो भवेत्तदा पञ्चदशमासिककरणपक्षे त्रयोदशे मासि क्षयाहे प्रथमाब्दिकं कर्तव्यम् । एकादशमासाभ्यन्तरे यद्यधिमासपातः तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्द्धयेदित्यत्र "सम्वँत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासपात" इत्यादिविष्णुसूत्रतात्पर्य्यात् । अन्यथा द्वादशमास्येव क्षयाहे साम्वँत्सरिककरणं स्यादित्यास्तां विस्तरः । अत्र गोकुलनाथोपाध्यायाः—"आब्दिके पितृकृत्ये च मासश्चान्द्रसमः स्मृतः ।" इति वाक्येऽष्टकासाहचर्य्येणाब्दिकादावपि कृष्णादिरेवाङ्गम्" इत्यभ्युपगमात् । तस्मात् पूर्ववर्षे कृष्णादिज्यैष्ठकृष्णपक्षे मृतस्यैषः । सोऽपि ज्यैष्ठकृष्णपक्ष एव श्राद्धम्, न तु मलमासकृष्णपक्षे सम्वँत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासपातः स्यात्तदा मासिककार्य्यं दिनमेकं वर्द्धयेदिति विष्णुसूत्रानुसारेण मासिकवृद्धौ सपिण्डनाब्दिकयोरुत्कर्षस्यार्थसिद्धत्वात् । साम्वँत्सरिकपदस्यैकादशमासिकदिवसादधिकालोपलक्षकत्वे प्रमाणाभावात् । चान्द्रसम्वँत्सरवाचकत्वेनैव निर्वाहात् । अत्रैवं मलमासेऽपि कर्तव्यमाब्दिकम् प्रथमं बुधैः ।

"तथैव मासिकं श्राद्धं, सपिण्डीकरणं तथा" । इति

"क्वचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्" ।

इति वचनम् निर्विषयमापद्येतेति चेन्न, परवैशाखशुक्लप्रतिपन्मृतस्यास्मिन्मलमासे प्रथमतिथौ साम्वँत्सरिकप्रतिप्रसवत्वेनोपयोगसम्भवात् । अमावास्यायामेव सम्वँत्सरपूर्तेः । न चैवमेषमोद्वितीयवैशाखकृष्णपक्षमृतस्याग्रिमवर्षज्यैष्ठकृष्णे प्रथमाब्दिकं प्रसज्येतेत्युल्लेखासङ्गतितादवस्थ्यमिति वाच्यम् । कृष्णपक्षमृतस्य सम्वँत्सराभ्यन्तरेऽधिमासपाताभावात् । अधिमासलक्षणघटकस्य मासस्य हि लघुहारीतेन त्रीणि चिह्नान्यभिहितानि । शुक्लप्रतिपदारब्धत्वम्, पौर्णमासीमध्यकत्वममावास्यान्तत्वं चेति । तत्र व्यापकस्यापि मध्यमचिह्नस्य अभिधानप्रयोजनमिदमेव यन्मध्यचिह्नसम्बन्धे सत्येवाधिमाससम्बन्धो व्यवहरणीयः । न पूर्वापरचिह्नसम्बन्धमात्रेण एवञ्च मलमासकृष्णपक्षमृतानां न मा-

सिकवृद्धिः । न वा पूर्ववैशाखशुक्लपक्षमृतानां द्वादशे मलमासे द्वितीयादावपि प्रथमाब्दिकमुपपादितम् ।

परे तु मासपदस्य शक्तिर्न पुष्पवन्तादिपदवद्व्यासक्तधर्मावच्छिन्ने, मासपदस्य "पक्षौ पूर्वापरौ शुक्लकृष्णौ मासस्तु तावुभाविति कोषेण पूर्वपक्षत्वसमानाधिकरणोभयत्वावच्छिन्ने मासपदस्य शक्तिबोधनात् । एवञ्च सम्वत्सराभ्यन्तरे अधिमाससम्बन्धस्तदैव सम्भवति । पूर्वपक्षस्यान्तोऽपरपक्षस्यादिश्च तत्र सम्बध्यते । अतो मलमासकृष्णपक्षमृतानां न मासिकवृद्धिः । तत्र पक्षस्ते दशपञ्च चेत्यभिधानादेकतरतिथ्यसम्बन्धे पक्षसम्बन्धो न स्यादिति पूर्णिमामृतानां मासिकवृद्धिर्न स्यादिति चिन्त्यम् ।

यद्यपि मलमासशुक्लपक्षमृतस्य पत्युः अग्रिमवैशाखशुक्लपक्षे मलमासकृष्णपक्षमृतायाः पत्न्याः अग्रिमवैशाखकृष्णपक्षे सपिण्डनं स्यादिति प्रथममृतस्य चरमं सपिण्डनमिति कालवैषम्यं स्यात् । तथाविधस्थले पत्न्याः न श्वश्र्वा ।

ॐ नमो गणेशाय ।

अथानन्तव्रतोद्यापनविधिर्लिख्यते ।

भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां कृतचतुर्दशवर्षावच्छिन्नानन्तव्रतव्रती तदुद्यापनं कुर्य्यात् । तत्रादौ स्वस्त्ययनं कुर्य्यात् । शुभे दिने यजमानहस्तेन चतुर्दशहस्तं द्वादशहस्तं वा मण्डपं विधाय मध्ये वेदीँश्च कारयेत् । वेद्याश्चतुर्दिशि कदलीस्तम्भञ्च स्थापयेत । मण्डपद्वारे द्वारपालाँश्च स्थापयेत् । पुण्यशीलसुशीलजयविजयाः द्वारापलाः ।

ततो यजमानः सर्वौषधीभिः स्नातः शुक्लाम्बरधरः पश्चिमद्वारेण मण्डपं प्रविशेत् । प्राङ्मुख उपविश्य पञ्चदेवतापूजां ततो विष्णुपूजाञ्च कुर्य्यात् । स्त्री चेत् गौरीपूजाञ्च कुर्य्यात् । ततो व्रती संकल्पं कुर्य्यात् । कुशत्रयतिलजलान्यादाय ॐ अद्य भाद्रेमासि शुक्ले पक्षे चतुर्दश्यां तिथौ गोधनधान्यालङ्करणविपुललक्ष्मीप्राप्तिचिरजीविपुत्रपौत्रादिसन्ततिमत्त्वपुरुषोत्तमदर्शनजन्यपुण्यप्राप्तिदेहावसानकालिकार्कवर्णविमानकरणकविष्णुलोकगमनतदधिकरणकालावच्छिन्नकालवासकामोऽनन्तव्र-

तोद्यापनमहं करिष्ये, इति संकल्पं कुर्य्यात् । ततः आचार्य्यवरणसम्भृतिमादाय, ॐ अद्य भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां तिथौ मत्कर्तव्यानन्तव्रतोद्यापनाङ्गभूतसकलपूजादिहोमकर्म कर्तुममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलयज्ञोपवीताङ्गुरीयककटिसूत्रवासोयुगैराचार्य्यत्वेन त्वामहं वृणे इति वृणुयात् । ॐ वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् । ॐ यथाविहितं कर्म कुरु इति व्रती वदेत् । ॐ करवाणीति प्रतिवचनम् । तत आचार्य्यो हरितपीतरक्तश्यामश्वेतवर्णिकाभिः सुशोभनमष्टदालरव्यपद्मं भूमौ लिखेत् । तत्र कर्णिकायां सौवर्णीं श्रीसहिताम् अनन्तप्रतिमां तैजसपात्रस्थां स्थापयेत् । ततो नवग्रहवेद्यामष्टदलं लिखेत् । आदित्यादिग्रहान् साधिदैवतान् लोकपालान् संस्थाप्य, तत इन्द्रादिलोकपालानां दशकलशानेवंविधान् अभिरामयेत् । ततः कुण्डोत्तरतः तोयपूर्णसदीपं कलशमाम्रपल्लवयुतं वस्त्रवेष्टितम् पञ्चरत्नयुतं स्थापयेत् । "ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यक्ष पृथिवींदृंन्ह पृथिवीं माहिंसीः" अनेन भूमिस्पर्शनम् । "ॐ मानस्तोके तनये मान आयुषिमानो गोषुमानोऽश्वेषु रीरिषः मानो वीरान् रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे" इति मन्त्रेण गोमयस्पर्शनम् । "ॐ आजिघ्र कलशं मह्या त्वाविशन्त्विन्दवः पुनरूर्जानिवर्तस्व सा नः सहस्त्रन्धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः" अनेन कलशस्थापनम् । "ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्यऽऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋत सदनमासीद" अनेन कलशे जलं क्षिपेत् ।

"ॐ अश्वस्थो भास्करो गङ्गा, नैमिषारण्यमेव च ।
प्रयागं ब्रह्मतीर्थञ्च, दण्डकारण्यमेव च ॥
एतानि सप्ततीर्थानि, घटेऽस्मिन् निवसन्तु मे ।
गोदावरी गोमती च नर्मदा यमुना सरित् ॥
सरस्वती गण्डकी च, कौशकी सरयू तथा ।
हृदाश्च सरितः पुण्याः, घटेऽस्मिन् निवसन्तु मे ॥

सर्वे समुद्राः सरितः, सरांसि जलदाः नदाः।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः" ॥

इति तीर्थान्यावाह्याभिमन्त्रयेत्—

"ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पाः याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः" ॥

अनेन पूंगीफलं दद्यात्। ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम" अनेन द्रव्यम्। "ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः पुरुषस्परि एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च" अनेन दूर्वादानम्। "ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके नमानयति कश्चन सशस्त्यःश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्" अनेन आम्रपल्लवप्रक्षेपः। "ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायत्वोदानायत्वा व्यानायत्वा दीर्घामनुप्रसिति मायुषेधान् देवोवः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वामहीनां पयोसि" अनेन धान्यम। "ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। "ॐ अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। "ॐ सूर्य्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा" ॥ अनेन दीपः। "ॐ एषो हि देवः प्रतिमोनुसर्वा जाग्रतः सो गर्भे अतः स एव जातः सजनिष्य-माणः। प्रत्यङ्गनातिष्ठति सर्वतो मुखः। "ॐ भगवन्तः कलश-गणेश-वरुणा इहागच्छत इह तिष्ठत। एतानि पाद्यादीनि, एषोऽर्घः ॐ कलशगणेशवरु-णेभ्यो नमः। ॐ कलशगणेशवरुणाः पूजितास्थ क्षमध्वम्। ततोऽष्टद-लाग्रे पूर्वादिदिशि इन्द्रादिदशदिक्पालान् पूजयेत्। तत्र क्रमः। पूर्वस्यां दिशि इन्द्रं पूजयेत्। प्रथमं पूर्वकलशे

"ॐएह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतोधरामरेश।
संबीज्यमानोऽप्सरसाङ्गणेन गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते" ॥

इत्यावाह्य ॐ इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ इन्द्राय नमः । इदमनुलेपनम् । इदमक्षतम् । "ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुवहवं शूरमिन्द्रं ह्वयामि शुक्रं पुरहूतमिन्द्रं स्वस्तिनो मघवा धात्विन्द्रः" इदं पुष्पम् ॐ इन्द्राय नमः । इदं माल्यम् । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ इन्द्राय नमः । इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतमिन्द्राय नमः । ततः आग्नेयकोणकलशेऽग्निं पूजयेत् ।

"ॐ स्वाहाप्रिय महाज्वाल, हुताशन सुरानन ।
सर्वयज्ञभुजां श्रेष्ठ, सन्निधेहि नमोऽस्तु ते ॥

इत्यग्निमावाह्य, ॐ अग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ । एतानि पाद्यादीनि, एषोऽर्घः, ॐ अग्नये नमः । इदमनुलेपनम् । इदमक्षतम् । "ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे, हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ ३ आसादयादिह" इदं पुष्पम् ॐ अग्नये नमः । इदं माल्यम् एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ अग्नये नमः । ततो दक्षिणकलशे

"ॐ धर्मराज महावाहो, महामहिषवाहन ।
हिताय मम लोकेश, सन्निधेहि नमोऽस्तु ते" ॥

इति यममावाह्य, ॐ यम इहागच्छ, इह तिष्ठ, एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ यमाय नमः । इदमनुलेपनम् । इदमक्षतम् । इदं पुष्पम् । इदं माल्यम् ॐ यमाय नमः ।

"ॐ असि यमो, अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त, आहुस्ते त्रीणि बन्धनानि" ॥

इति पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । नैर्ऋतकोणकलशे—

"ॐ एह्येहि रक्षोगणनायक, विशालवेतालपिशाचसंघैः ।
ममाध्वरं रक्ष शुभादिनाथ, लोकेश्वर त्वं भगवन्नमस्ते" ॥

ॐ निर्ऋते इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य, एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनरा-

---

१ यज्ञे ।

चमनीयानि ओँ नैर्ऋतये नमः । इदमनुलेपनम् । इदमक्षतम् । ओँ एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहा । अग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः सद्भ्यः स्वाहा । यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा । एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व । इति पुष्पं दद्यात् । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ निर्ऋतये नमः । इदं वस्त्रम् । ततः पश्चिमदले—

"ॐ एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यमहाप्सरोभिः ।
विद्याधरेन्द्रैरवगीयमानः, पाहि त्वमस्माद् भगवन्नमस्ते ॥

इति वरुणमावाह्य, ॐ वरुण इहागच्छ, इह तिष्ठ पूर्ववत्पूजयेत् ।

"ॐ इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडयः ।

त्वामवस्युराचके । इति मन्त्रेण पुष्पं दद्यात् । इदं वस्त्रम् । इदं माल्यम् । वायव्यकोणे कलशे वायुं पूजयेत् ।

"ॐ एह्येहि यज्ञे मम रक्षणीयो, मृगाधिरूढः सहसिद्धसंघैः ।
प्राणाधिप कालकरे सहाय, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

इति वायुमावाह्य, पूर्ववत्पूजयेत् । पुष्पदाने—

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ।

"ॐ वातो वा वामनो वा, गन्धर्वाः सप्तविंशतिः ।
ते अग्रे स्वमयुञ्जस्ते, अस्मिन् जवमादधुः"

इति मन्त्रेण पुष्पं दद्यात् । तत उत्तरदले सोमं पूजयेत् ।

"ॐ एह्येहि यज्ञे सुर यज्ञरक्षां, विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव, गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते" ॥

इति सोममावाह्य पूर्ववत्पूजयेत् ।

पुष्पदाने—"ॐ इम देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय इममुमुष्यपुत्रमुष्यै पुत्रमस्यै शिव एषवोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा" । इति मन्त्रेण पुष्पम्[१] ।

तत ऐशान्यामीशानं पूजयेत् ।

---

१ ग्रन्थान्तरे कुबेरस्य पूजनमुत्तरस्यां दिशि । तदा ओँ कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथादान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ;

"ॐ एह्येहि सर्वैः सुरसिद्धसंघैः, त्रिशूलखडगधरेण सार्द्धम् ।
लोकेश यज्ञेश्वर सिद्धसर्वैः गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते" ॥

इतीशानमावाह्य पूर्ववत्पूजयेत् । पुष्पदाने—

"ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिम् धियं जिन्वमवसे हूमहे वयं पूषानो यथावेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये"॥

इति पुष्पं दद्यात् । निर्ऋतिवरुणयोर्मध्येऽनन्तं पूजयेत् ।

"ॐ एह्येहि पातालधराधरेन्द्र, नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।
यक्षोरगेन्द्राऽमरलोकसंघैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम्" ॥

इति अनन्तमावाह्य पूर्ववत्पूजयेत् । पुष्पदाने—

"ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनुयेऽन्तरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः" ॥ अनेन पुष्पम् । इन्द्रेशानयोर्मध्ये ब्रह्माणम् पूजयेत् ।

"ॐ एह्येहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र लोकेश सार्द्धं पितृदेवताभिः ।
सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभाव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

इति ब्रह्माणमावाह्य पूर्ववत्पूजयेत् । पुष्पदाने—

"ॐ ब्रह्मय ज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचिर्वेन आवः सबुध्न्या उपमास्य विष्ठाः सतश्च योनिरसतश्च विव्वः" ॥

अनेन पुष्पम् । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ ब्रह्मणे नमः । वस्त्रं, माल्यम् । एवं दशदिक्पालान् पूजयेत् । वस्त्राद्यभावे पञ्चोपचारैणैव पूजयेत् । ततः कर्णिकोपरिस्थापितसौवर्णानन्तप्रतिमायाम् व्रती अनन्तं ध्यायेत् ।

"नवोद्धृतसुमनःस्निग्धं, श्यामवर्णं चतुर्भुजम् ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गं, विभूषितकराम्बुजम् ॥
हारकेयूरवलयमणिकुण्डलमण्डितम् ।
पीतवसनं श्यामवदनम् , लसद्गरूडवाहनम् ॥
श्रिया शारदया युक्तम् , सनकाद्यैरुपासितम् ।
पुरोऽवसद्देवेन्द्र, समाश्वासपरायणम् ॥

स्मेरवक्त्रं विनिर्य्यान्तम, भक्तानां वरदायकम्" ॥

ततः पूजां कुर्य्यात् । ततोऽष्टदलमध्ये आचार्य्यः श्रीसहितानन्तपुरुषं पूजयेत् ।
तत्र क्रमः—

"ॐ एह्येहि पातालधाराधरेन्द्र, नागाङ्गना-किन्नरगीयमान ।
रक्षोरगेन्द्रामरलोकसंघैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम्" ॥

इत्यनन्तरमावाह्य, श्वेततण्डुलैः पूजयेत् । ॐ भूर्भुवः स्वर्भगवन् अनन्त इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य —

"ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु विश्वेदेवाः स इह मादयन्ताम् ॐ प्रतिष्ठ इति प्रतिष्ठाप्य—

"ॐ अनन्तसंसारमहासमुद्रे, मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव ।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व, अनन्तरूपाय नमो नमस्ते" ॥

इति मन्त्रेण पाद्यादिभिः पूजयेत् । इदं वस्त्रम् इदं यज्ञोपवीतम् ॐ अनन्ताय नमः । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ओँ अनन्ताय नमः । अत्रावसरे अन्यान्यपि स्वेष्टवस्तूनि संपत्तौ सत्यां यथारुचितत्तत्फलकामनया दद्यात् एतानि पादुकासनशय्यादीनि, एतानि पाकपात्रभोजनपात्रधान्यानि, एते चतुर्दशघटाः, नानापक्वान्नसंयुक्ताः अनन्तपुरुषाय नमः । ओँ सवाहनाय सपरिवाराय श्रीअनन्ताय नमः इति पूजयेत् । अनन्तदक्षिणे लक्ष्मीं पूजयेत् । वामभागे सरस्वतीञ्च पूजयेत् । तत्राचार्य्ययजमानाभ्यां स्तुतिः पठनीया—

"ओँ नमोऽनन्ताय शान्ताय, पीतनिर्मलवाससे ।
प्रलये विश्वरूपाय मीनाय, बेदपारगाय कमठायेश्वराय च ॥
नमो वराहरूपाय, बोधकरणकारिणे ।
नमो नृसिंहरूपाय, श्रीमद्दैत्यविदारिणे ॥
नमो वामनरूपाय, बलिराज्याऽपहारिणे ।
नमः परशुरामाय, क्षत्रवंशविनाशिने ॥

नमो बुद्धस्वरूपाय, पराधीनाय भैरवे ।
नमोऽस्तु कल्किने तुभ्यम् , म्लेक्षसंहारकारिणे ॥
श्रियं देहि धनं देहि, पुत्रान् देहि सुरेश्वर ।
देहान्ते शरणं देहि, जगन्नाथ नमेऽस्तु ते ॥
इति पठति यः स्तोत्रं, अनन्ताऽग्रे च मानवः ।
सर्वाऽभिलषतिान् कामान् , माप्नोतीह न संशयः ॥

ततश्चतुर्दशडोरकाः पृथक् पृथगनन्तं पूजयेत् । अनन्त इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य पूजयेत् ।

एवं केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, त्रिविक्रम, विष्णु, मधुसूदन, वामन, श्रीधर पद्मनाभ, परमात्मा, सर्वभूतात्मा, दामोदर, हृषीकेश इत्येतेषां सर्वेषां पूजा ।

"धृतोऽसि भगवन्भक्त्या यथावत्सादरं मया ।
डोरकेश समीपं त्वं, गच्छ कामान् कुरुष्व मे" ॥

इत्यभिमन्त्र्य,

"प्रसादात्तव देवेश व्रतं सम्पूर्णतां मम ।
पुनः प्रसादाद् गृहाणैवं, डोरकं तु नमोऽस्तु ते" ॥

इति अनन्ताय समर्पयेत् । पुराणडोरकोत्तारणमन्त्रः—

"नमोऽस्तु देवदेवाय, विश्वरूपधराय च ।
नमो महात्मनाथाय, कृष्णायाऽनन्त ते नमः" ॥

तत आचार्य्यलिखिताष्टदले नवग्रहादिपूजां कुर्य्यात् । तत्र क्रमः ओँ भूर्भुवः स्वः सूर्य्य इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य। एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओँ सूर्य्याय नमः । इदमनुलेपनम् , इदमक्षतम् ओँ सूर्य्याय नमः । "ओँ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्मयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्" । इति पुष्पम् । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ओँ सूर्य्याय नमः । ओँ भूर्भुवः स्वः सोम इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य पूर्ववत्पूजयेत् ।

"ओँ इमं देवा असपत्नं सुबध्वं महते क्षत्राय, महते ज्येष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय इमममुष्यपुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै शिव एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा" इति पुष्पम्, माल्यं, नैवेद्यञ्च दद्यात्। ओँ भूर्भुवः स्वः भौम इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, पाद्यादिभिः सम्पूज्य, "ओँ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् अपां रेतांसि जिन्वति" इति पुष्पम्, माल्यम् नैवेद्यञ्च दद्यात्। ओँ भूर्भुवः स्वः बुध इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, पाद्यादिभिः पूजयेत्। इदमनुलेपनम्, इदमक्षतम्, इदं माल्यम् "ओँ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयञ्च अस्मिन्सत्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत," इति पुष्पम्। ओँ भूर्भुवः स्वः बृहस्पते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, पूर्ववत्पूजयेत्। पुष्पदाने—"ओँ बृहस्पते अति यदर्य्यो ऽर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु, यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणम् धेहि चित्रम्" इति पुष्पम्। "ओँ भूर्भुवः स्वः शुक्र इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य, पाद्यादिभिः पूजयेत्। ओँ अन्नात् परिश्रुतो रसं ब्राह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं। पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियम् विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतम् मधु" इति पुष्पम्। ततो नैवेद्यादि। शनैश्चरमावाह्य पाद्यादिभिः पूर्ववत्पूजयेत्। पुष्पदाने "ओँ शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः" इति पुष्पम्। राहुमावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत्। इदमनुलेपनं, इदमक्षतम्। पुष्पदाने—"ओँ कया नश्चित्र आभुव दूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता" इति पुष्पम्। नैवेद्यञ्च दद्यात्। केतुमावाह्य पूर्ववत्पूजयेत्। "ओँ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्य्या अपेशसे समुषद्भिरजायथाः"। इति पुष्पं नैवेद्यञ्च दद्यात्। ततः वेदिपश्चिमदिशि उपविश्य कुशकण्डिकामारमेत्। तत्र क्रमः—कुशैर्हस्तपरिमितां चतुरस्रां भूमिं परिसमुह्य, तान् कुशानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य, उत्तरोत्तरक्रमेण प्रादेशमात्रं त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणाऽनामिकाऽङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेनाऽभ्युक्ष्य कांस्यपात्रेणाऽग्निमादाय प्रत्यङ्मुखं निदध्यात्। ततो ब्रह्मवरणसम्मतिमादा-

याऽचार्य्यः ओँ अद्य कर्तव्याऽनन्तव्रतोद्यापनाङ्गभूतहोमकर्मणि कृताऽकृताऽवेक्षण-रूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुङ्गीफलताम्बूलयज्ञोपवीता-ङ्गुरीयककटिसूत्रवासोयुगैः ब्रह्मत्वेन त्वाममहं वृणे। ओँ वृतोऽस्मीति प्रतिवच-नम्। ततः आचार्य्येण यथाविहितं कर्म कुरु इत्युक्ते ओँ करवाणीति प्रतिवचनम्। ततः शुद्धमासनं दत्त्वा, ओँ अस्मिन् कर्मणि त्वमेव ब्रह्मा भवेत्यभिधाय, अग्निप्रदक्षि-णं कारयित्वा तत्रोपवेशयेत्। ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणापूर्य्य कुशैरा-च्छाद्य, ब्रह्मणो मुखमवलोक्याऽग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्। बर्हिषश्चतुर्थभा-गमादाय, आग्नेयादीशानान्तं, ब्रह्मणोऽग्निपर्य्यन्तं, नैर्ऋताद्वायव्यान्तम् अग्नितः प्रणीतापर्य्यन्तं परिस्तरणं कुर्य्यात्। अन्यान्यपि स्तुवादीन्यासादनीयानि। ततः पवित्रच्छेदनकुशैः।

श्रीगणेशाय नमः।

"अथ संक्रान्तिस्तत्कृत्यं, वक्ष्ये संक्षेपतोऽधुना।
लम्बोदरपदाम्भोजयुगलं हृदि भावयन्॥

संक्रान्तिमधिकृत्य देवीपुराणे—

"एकधाऽपि कृतं तस्मिन् कोटिकोटिगुणं भवेत्।
धर्माद्विवर्धते ह्यायूराज्यपुत्रसुखादयः॥
अधर्माद्व्याधिशोकादिविषुवायनसन्निधौ।
विषुवेषु च यज्जप्तं, दत्तं भवति वाक्षयम्॥
एवं विष्णुपदे चैव, षडशीति मुखे तथा।

अथ संक्रान्तिनामानि——

"अयनविष्णुपदीषडशीतयो-
विषुवविष्णुपदीषडशीतयः।
अयनविष्णुपदीषषशीतयो-
विषुवविष्णुपदीषडशीतयः"॥

अत्र स्नानमावश्यकम् ।

"रविसंक्रमणे चैव, न स्नायाद्यस्तु मानवः ।
सप्तजन्मन्यसौ रोगी, दरिद्रश्चोपजायते ॥

अथ पुण्यकालव्यवस्था व्रतपद्धतौ यथा—

तत्र शातातपः—

"अर्वाक् षोडशविज्ञेयाः नाड्यः पश्चाच्च षोडश ।
कालः पुण्योऽर्कसंक्रान्तेः, विद्धद्भिः परिकीर्तितः ॥

देवीपुराणे—

"षडशीति मुखेऽतीते, वृत्ते च विषुवद्वये ।
भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे" ॥

दक्षिणा इत्यर्थ । उत्तरायणस्य विशिष्योपादानात् । अत्र देवीपुराणवाक्येन संक्रान्ति-विशेषे पुण्यकालविशेषकथनात् शातातपवाक्यमश्रुतविशेषे विष्णुपदीमात्रे व्यवतिष्ठते । एषा च व्यवस्था न संक्रान्तिषु । देवीपुराणे—

"मानार्द्धं भास्करे पुण्यमपूर्णे शर्वरीदले ।
सम्पूर्णे तूभयोर्दयमतिरेके परेऽहनि ॥

मानार्द्धम् = दिनार्द्धम् । भास्करे–अस्य निरंशके इति शेषः । उभयोः = दिनयोः । अतिरेके = अर्द्धरात्रातिरेके । तदयमर्थः–अपूर्णे रात्र्यर्द्धे यदि संक्रान्तिः तदा पूर्वदि-नोत्तरार्द्धं पुण्यम् । पूर्णे रात्र्यर्द्धे यदि संक्रान्तिः तदा पूर्वदिनस्योत्तरार्द्धम् , उत्तर-दिनस्य च पूर्वार्द्धम्पुण्यम् । अर्द्धरात्रोपरि संक्रान्तौ उत्तरदिनपूर्वार्द्धमेव पुण्यम् । यदा च पूर्वदिने संक्रान्तिकाले च एकैव तिथिर्भवेत् तदा पूर्वदिनोत्तरार्द्धमेव पुण्यम् । यदाह–तत्रैव–

'आदौ पुण्यं विजानीयाद्यद्यभिन्ना तिथिर्भवेत्' ।

एवमेव समयप्रदीपादयः । ज्योतिश्शास्त्रे—

"निरंशको यदा भानुः, पूर्वापरदिनद्वयम् ।

पूजयेद्वासरं पूर्वमपरं पुण्यवर्जितम्" ॥ इति

भुजबलभीमे—

"अर्द्धरात्रे कलान्यूने, यदि संक्रमते रविः ।
तदहः पुण्यमिच्छन्ति, गार्ग्यगालवगौतमाः" ॥

अथ तिथितत्त्वे मत्स्ये—

"मृगकर्कटसंक्रान्ती, द्वे तूदयदक्षिणायने ।
विषुवतीतुलामेषे, गोलमध्ये तथाऽपरा" ॥

मृगो = मकरः । गोलो = राशिचक्रम् ।

"धनुर्मिथुनकन्यासु, मीने च षडशीतयः ।
वृषवृश्चिककुम्भेषु, सिंहे विष्णुपदी स्मृता ॥
यावद्विंशकलाभुक्तः, तत्पुण्यञ्चोत्तरायणे ।
निरंशे भास्करे दृष्टे, दिनान्तं चोत्तरायणे ॥
अर्द्धरात्रे त्वसम्पूर्णे, दिवापुण्यमनागतम् ।
अर्द्धरात्रे व्यतीते तु विज्ञेयञ्चापरेऽहनि ॥
सम्पूर्णे त्वर्द्धरात्रे तु, उदयेऽस्तमयेऽपि वा ।
यानार्द्धं भास्करे पुण्यसपूर्णे शर्वरीदले ॥
सम्पूर्णे तूभयोर्ज्ञेयमतिरेकं परेऽहनि ।
षडशीतिमुखेऽतीते, वृत्ते च विषुवद्वये ॥
भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे ।
आदौ पुण्यं विजानीयाद्ययभिन्ना तिथिर्भवेत् ॥
अर्द्धरात्रे व्यतीते तु, विज्ञेयञ्चापरेऽहनि ।

विंशकला = विंशतमी कला । संक्रान्तिक्षणादूर्ध्वं यावद् भवति तावत्पुण्यं निरंशके । शून्यसंक्रान्तिकाले हि भास्करोंऽशरहितो भवति । तस्मिन् दृष्टे दिवेति यावत् । दिनञ्च दिनकरकरयुतास्त्रिंशन्नाडिकाः इति ज्योतिर्विदः । तथा च वृहद्वशिष्ठः ।

"त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो, मकरे विंशतिः स्मृताः" ।

नाडी = दण्डः ।

"तत्परा द्विपलं षष्ठ्याऽधिपलाश्च पलेऽन्वयेत् ।

पलात्षष्ट्याऽन्वयेन्नाडीं, ततः षष्ठ्या रवेर्दिनम्" ॥

इति ध्यानसन्दर्भात् । ततश्च देवीपुराणवशिष्ठवचनयोरेकवाक्यतया कलानाड्योः पर्य्यायता । रात्रिसंक्रमे त्वाह—अर्द्धरात्रे = द्विकलान्यूनार्द्धरात्रे ।

"कलान्यूनार्द्धरात्रे तु, यदि संक्रमणं भवेत् ।

तदहः पुण्यमिच्छन्ति, गार्गगालवगौतमाः" ॥

इति कृत्यचिन्तामणिधृतगर्गवचनात् । ततश्च कलार्द्धन्यूनार्द्धरात्राऽभ्यन्तरे द्वादशस्वेव संक्रमणेषु । अनागतम्—न अ गतं संक्रमणं यत्र तत् । पुण्यपुञ्जजनकम् । तत्र तु पूर्वदिने । तदैव संक्रान्तेरनागतत्वसम्भवात् । तेन संक्रमणकालादर्वागेव दिवाऽपरार्द्धे स्नानादि कर्तव्यमित्यर्थः । असम्पूर्णे अर्द्धरात्रे । भुजबलभीमे—

"अर्द्धरात्रे कलाऽधिक्ये, यदा संक्रमते रविः ।

तदोत्तरदिनं ग्राह्यं, स्नानदानजपादिषु ॥

अर्द्धरात्रे तु सम्पूर्णे, यदा संक्रमते रविः ।

प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं, त्यक्त्वा मकरकर्कटौ" ॥

इति प्रतीतेः । कालविवेक–कालकौमुद्याञ्च शातातपजाबाली—

"पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु, रविसंक्रमणं भवेत् ।

आहुर्दिनद्वयं पुण्यं, त्यक्त्वा मकरकर्कटौ" ॥

एतयोर्व्यवस्थामाह—कालमाधवीये—भविष्यपुराणम्—

"मिथुनाऽर्केऽर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः ।

प्रदोषे वा निशीथे वा, कुर्य्यादहनि पर्वतः ॥

कार्मुकञ्च परित्यज्य, झषं संक्रमते रविः ।

प्रभाते चार्द्धरात्रे वा, स्नानं कुर्य्यात्परेऽहनि" ॥ इति

ततश्च । रात्रिमध्यदण्डद्वयात्मकाऽर्द्धरात्रे सञ्चारे संक्रान्तौ । "उदयेऽस्तमयेऽपि वा" इत्यनेन उदयोपक्रमाऽस्तमयान्तमानार्द्धम् । एवञ्चोभयदिनेऽपि पुण्यकालेऽपि पूर्वदिवाऽकरण एव परदिने कर्तव्यम् ।

"श्वः कार्य्यमद्य कुर्वीत, पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः, कृतमस्य न वा कृतम्" ॥

इति लिङ्गपुराणात् । तत्राऽपि दक्षिणायने पूर्वदिनार्द्धरात्रे । उत्तरायणे परदिनार्द्धमात्रम् पुण्यमिति शेषः । मानार्द्धम् पुण्यम् । भास्करे = भास्करोपलक्षिते काले = दिवेति यावत् । तस्मिन् संक्रमणेऽपि मानार्द्धं पुण्यम् । एतच्च विषुवषडशीतिविषयम् । अयनकालयोः पूर्वयुक्तत्वात् । विष्णुपद्याश्चोभयतः षोडशकलानां पञ्चदशनाडिकानां वा पुण्यत्वस्य शातपादिवचने वक्ष्यमाणत्वात् । तेन दिवासंक्रमण एवायनादित्वेन पुण्यकाले विशेषः । रात्रिसंक्रमणेऽर्द्धरात्रीयमकरकर्कटव्यतिरिक्तानां सर्वेषाम् तुल्यतेति। अपूर्णे शर्वरीदले = कालन्यूनरात्र्यर्द्धे । अत्राऽपि मानार्द्धमनुषज्यते । दिवापुण्यमिति यत्प्रागुक्तम् अत्र तु तदेव मानार्द्धत्वे सविशेषमिति पुनरुक्तिः । एवमुदयास्तमयेषु यन्मानार्द्धमुक्तम् तत्किमेकदिने दिनयोर्वेति अत्राह— "सम्पूर्णे तूभयोरि"ति उभयोः = पूर्वापरदिनयोः । मानार्द्धं पुण्यम् । तेन पूर्वदिनस्यास्तमयपर्य्यन्तम्, परदिनस्योदयमारभ्य मानार्द्धं पुण्यमित्यर्थः । अतिरेके = अर्धरात्रात्परतः संक्रमणे परेऽहनि । मानाऽर्द्धं पुण्यमित्यनुषज्यते । मानाऽर्द्धं = प्रहरद्वयम् ।

"अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन्, मध्याह्नस्योपरि क्रिया ।
ऊर्ध्वं संक्रमणे यावदुदयात्प्रहरद्वयम् ॥
पूर्वाऽर्द्धं रात्रिसंक्रान्तौ; द्वे दिनादूर्ध्वे तु पुण्यदे" ॥

इति सम्वत्सरप्रदीपधृतवशिष्ठसौरधर्म्मैकवाक्यत्वात् ।

"अदूर्धरात्रादधश्चैव, दिनादूर्धस्योपरिक्रिया ।
अदूर्धसंक्रमणे भानोरुदयात्प्रहरद्वयम्" ॥

इति भोजराजकृत्यचिन्तामणिश्रुतैकवाक्यत्वाच्च । एवं गार्गवचनम्—तदहरिति यामद्वयं पुण्यम्, अन्यथा मूलभूतश्रुत्यन्तरकल्पनापत्तेः। एवञ्च "षडशीतिमुखेऽतीते" इति दिवासंक्रमणविषयम्। तेन दिवासंक्रमणे भविष्यन्मानाऽर्द्धं पुण्यम्। एवं विषुवद्वयेऽपि दिवोत्तरायणेऽपि भविष्यद्विंशतिदण्डानां पुण्यत्वम्। अत्रोत्तरायणस्य पृथग्विधानात्, अयन इति पदं दक्षिणायनपरम् "गोबलीवर्दन्यायात्"। तेन दिवादक्षिणायने भविष्यति भूतविंशतिदण्डानां पुण्यत्वम्। एवञ्च षडशीतिन्यायेन विषुवकालमलभमानम्—

"अर्वाक् षोडश विज्ञेयाः, नाड्यः पश्चाच्च षोडश।
कालः पुण्यार्कसंक्रान्तिः, विद्वद्भिः परिकीर्त्तितः"॥

इति शातातपीयम्। अतीताऽनागतभोगाः—"नाड्यः पञ्चदशस्मृता" इति देवीपुराणीयं वचनम्, दिवाविष्णुपदीविषयम्। अत एव वृहद्वशिष्ठः—

"पुण्यायां विष्णुपद्याञ्च, प्राक् पश्चादपि षोडश"।

अर्द्धरात्रे विशेषमाह—आदावित्यादि। अर्द्धरात्रे संक्रान्तौ आदौ पूर्वदिन एव मानार्द्धम्। यद्यभिन्ना = संक्रान्तिकाले तत्पूर्वदिने चैकैव तिथिर्भवेत्। तेन मध्यरात्रसंक्रमणे यदुभयदिनमानादर्द्धमुक्तम्, तत् भिन्नतिथिविषयम्। अतीते पुनरर्द्धरात्रे पूर्वेणाहृतिथिभेदेन परस्यैव पूर्वार्द्धम् पुण्यमिति तात्पर्य्यम्। एवञ्च रात्रिसंक्रान्तौ दिन एव पुण्यत्वाऽभिधानात्—

"राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु।
स्नानदानादिकं कुर्य्यात्, निशि काम्यव्रतेषु च"॥

इति देवलेन संक्रमस्येति रात्रिप्रविष्टपुण्यकलांशे संक्रान्तिनिमित्तको न स्नानादि विधीयते इति भविष्यमात्स्ययोः।

"मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने।
विषुवती तुलामेषे, गोलमध्ये तथापराः"॥

मृगो = मकरः। गोलो राशिचक्रम्।

"धनुर्मिथुनकन्यासु, मीनेषु षडशीतयः ।
वृषवृश्चिककुम्भेषु, सिंहे विष्णुपदी स्मृता" ॥

यत्तु—

"मन्दा मन्दाकिनी ध्वांक्षी, घोरा चैव महोदरी ।
राक्षसी मिश्रिता प्रोक्ता, संक्रान्तिः सप्तधा नृप" ॥
मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया, मृगे मन्दाकिनी तथा ।
क्षिप्रा ध्वांक्षी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्तिता ॥
चरैर्महोदरी ज्ञेया, क्रूरैर्ऋक्षैस्तु राक्षसी ।
मिश्रिता चैव विज्ञेया, मिश्रितर्क्षैस्तु संक्रमे" ॥

इत्येतैः द्वादशैरेव संक्रान्तिषु नक्षत्रयोगान्मन्दादिरूपतया सप्तधा भिन्ना ।

"त्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टनवद्वादशमेव च ।
क्रमेण घटिका ह्येताः, तत्पुण्यं पारमार्थिकम्" ॥

इति देवीपुराण एव त्रिचतुरादिघटिकानां पुण्यत्वमुक्तम् । तद्दिवारात्र्योस्तत्कालोपदेशादवकाशमलभमानं सन्ध्याद्वयं संक्रान्तिविषयम् । इति समयप्रकाशः । ध्रुवादिगणास्तु दीपिकायाम् —

"उग्रः पूर्वमघान्तगः ध्रुवगणस्त्रीण्युत्तराणि ।
स्वभुर्वातादित्यहरित्रयं चरगणः पुष्पाऽश्विहस्ताः लघुः ॥
चित्रामित्रमृगान्त्यभमृदुगणः स्तुत्यो हि रुद्रेन्दुषु ।
कमित्रोऽग्निः सविशाखभः शुभफलाः सर्वे हि कृत्ये गणाः ॥

कल्पतरुस्तु क्रमेण यथासंख्येन एताः घटिकास्तत्पुण्यं तस्य संक्रमस्य पुण्याहत्वात् । पुण्यं पारमार्थिकं मुख्यं फलम् —

"त्रुटेः सहस्रभागो यः, स कालो रविसंक्रमः" ।

इत्युक्तेः । सूक्ष्मसंक्रमणकालाः नानुष्ठानजन्यसमपुण्यहेतवः । अत एव देवानलयोः—

"सन्निहिताः नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः" ।

इत्युक्तम् । एवञ्चैताः घटिकाः पुण्यतमाः । मानाऽर्द्धादिकन्तु पुण्यमात्रम् इति तस्यार्थो न सन्ध्याविषयकमिति । सन्ध्यासंक्रान्तिविषयत्वे पारमार्थिकमित्यनुपपत्तेः । पुण्यमित्यनेनैव सिद्धेः । परमार्थिकमित्यत्र कल्तरुव्याख्यानाऽनवलोकनात् ।

"रविसंक्रमणे पुण्यमहःकृत्यं प्रकीर्तितम् ।
रात्रौ संक्रमणे भानोः, दिनार्द्धं स्नानदानयोः" ॥

इति वृहद्वशिष्ठवचनपर्य्यालोचनया दिवासंक्रान्तौ दिनमात्रं पुण्यम्, पुण्यतरास्तु विशेषविहिताः नाड्य इत्याह । अत एव तदुधृतजाबालिवृहस्पतिशातातपवचनानि संगच्छन्ते । तद्यथा—

"वर्तमाने तुलामेषे, नाड्यस्तूभयतो दश" ।

कालमाधवीयेऽपि—"अह्नी"त्यभिधाय प्राशस्त्यमुक्तम् । तस्मात्षडशीति मुखेऽतीते" इति प्राशस्त्येऽर्थे । दिनसंक्रान्तौ दिनं पुण्यमित्यर्थः । त्रुटिस्तु—

"लववश्चतुर्भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ।
त्रुटिद्वयं लवः प्रोक्तो, निमेषस्तु लवद्वयम्" ॥

इति स्मृत्युक्तेः । ननु देवीपुराणे दिवारात्र्योः संक्रमे विशिष्य कालाऽभिधनात सन्ध्यासंक्रम इत्येकः काल इति चेत्,

"त्रिंशन्मुहूर्तं कथितमहोरात्रं तु यन्मया" ।

इति विष्णुपुराणेन सन्ध्ययोः पृथगनुपादानात् । दिवारात्रिसम्बन्धित्वान्मुहूर्ताऽर्द्धत्वेन तयोरन्तर्भावः । तथा च यक्षः—

"अहोरात्रस्य यः सन्धिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः ।
सा तु सन्ध्या समाख्याता, मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः" ॥

याज्ञवल्क्यः—

"ह्रासबृद्धी च सततं, दिवारात्र्योर्यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमाख्याता, ह्रासबृद्धौ समा स्मृता" ॥

तथा च सूर्य्यसिद्धान्तः—

"अर्द्धाऽस्तमयात्सन्ध्या, व्यक्ता भूता न तारका यावत् ।
तेजःपरिहानिमुखाद् भानोरर्द्धोदयं यावत्" ॥

अत एव केनाऽपि मुनिना नानादेशीयसंग्रहकरणे च विशेषो नाऽभिहितः । तदयं संक्षेपः—दिनसंक्रमणे कृत्स्नं दिनं पुण्यम् । षडशीतिमुखेऽतीत इत्याद्युक्तमुक्तं पुण्यतरम् । मन्दा मन्दाकिनीत्यादिरूपेण त्रिचतुरादिघटिकाः पुण्यतमाः । दिन-वृत्तोत्तरायणादिविहितत्रिंशद्दण्डानां रात्रिप्रविष्टभागस्याऽपि पुण्यत्वम् । रात्रि-संक्रमणे तु कलान्यूनप्रथमार्द्धरात्रे तद्दिवसोयशेषयामद्वयम्—पुण्यम् । कालद्वया-त्मकमध्यरात्रिगते तद्दिवसीयतिथ्यभेदे तद्दिवसीयशेषयामद्वयम् , उत्तरायणे परदिव-सीयाऽद्ययामद्वयञ्च पुण्यमिति । मध्यरात्रीयकालोत्तरशेषाऽर्द्धरात्रे । संक्रमणमात्रे परदिनार्द्धयामद्वयम् पुण्यम् । सन्ध्यासंक्रमणे तु दिनदण्डे दिनस्य रात्रिदण्डे रात्रेर्व्य-वस्थेति । अथ मतान्तरं माधवीयम्- मेषादिद्वादशराशिषु क्रमेण सञ्चरतः सूर्य्यस्य, पूर्वस्माद्राशेरुत्तरराशौ संक्रमणं = प्रवेशः, संक्रान्तिः । अतस्तद्राशीनामपुरस्सरम् सा संक्रान्तिर्व्यपदिश्यते । राशयश्च—मेष वृष मिथुन कर्कट-सिंह-कन्या-तुला वृ-श्चिक-धनु मकर-कुम्भमीननामकाः अमी । एतेषु द्वादशसु चत्वारि त्रिकाणि भवन्ति । तत्रैकस्मिंस्त्रिके क्रमेण चरस्थिरद्विस्वभावास्त्रयो राशयः । तथा चतु-र्षु त्रिकेषु मध्ये मध्यमाः—वृषसिंहवृश्चिककुम्भनामकाः स्थिरराशयश्चत्वारः । तेषां विष्णुपदमिति नाम स्मृतिषु प्रसिद्धम् । ये त्वन्तिमाः मिथुनकन्याधनुर्मीननाम-काः द्विस्वभावाः राशयः, ते षडशीति मुखसंज्ञकाः । ये पुनर्मेषकर्कटतुलामकर-रूपाः चराः राशयः, तेषु मेषतुले विषुवसंज्ञके कर्कटमकरावयनसंज्ञकौ । तदेत-त्सर्वं वृद्धवशिष्ठ आह—

"अयने-विषुवे द्वे, चतस्रः षडशीतयः ।
चतस्रो विष्णुपद्याश्च, संक्रान्त्यो द्वादशस्मृताः ॥
झषकर्कटसंक्रान्ती, द्वे उदग्दक्षिणायने ।

विषुवे तु तुलामेषौ, गोलमध्ये ततोऽपराः ।

कन्यायां मिथुने मीने, धनुष्यपि रवेर्गतिः ॥

एतद्विष्णुपदं नाम, विषुवादधिकं फले:" । इति
विषुवाभ्यामयनाभ्यां युक्तं राशिचतुष्कं गोल इत्यभिधीयते । सिंहकन्ये, तुलामकर-योर्मध्ये वृश्चिकधनुषी एवमन्यदप्युदाहार्य्यम् । अन्यत्समानं ज्ञेयम् । अत्र पक्षान्तरम्—

"निशार्कचारान्निकटं दिनार्द्धं, दिवार्कचारान्निकटास्त्रिघट्यः ।

ताः कर्कटे प्राक् कथितेतरेऽर्वाक् , पुण्याय विष्वकघटगोलसिंहे ॥

इति सकलजनसिद्धा व्यवस्था ।

अथ मुहूर्तचिन्तामणौ—

"संक्रान्तिकालादुभयत्र नाडिकाः, पुण्याः मताः षोडश षोडशोष्णगोः ।

निशीथतोऽर्वागपरत्र संक्रमे, पूर्वापराहान्तिमपूर्वभागकौ ॥

पूर्णे निशीथे यदि संक्रमः स्यात्, दिनद्वयं पुण्यमथोदयस्तुतात् ।

पूर्वं परस्ताद्यदि याम्यसौम्यायने पूर्वपरे तु पुण्ये ॥

सन्ध्या त्रिनाडीप्रमितार्कविम्बादर्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र ।

चेद्याम्यसौम्ये अयने क्रमात्स्तः, पुण्यौ तदानीं परपूर्वघस्त्रौ ॥

याम्यायने विष्णुपदे, चाद्या मध्यास्तुलाऽजयोः ।

षडशीत्ययने सौम्ये, परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥

अथ तत्त्वचिन्तामणौ संक्रान्तिव्यवस्था ।

मीनसंक्रान्तौ पुण्याः षोडशघटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु निशीथात् प्राक् परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरदिनार्द्धं पुण्यम् । निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति विवेकः । मेषसंक्रान्तौ प्रागपराः दशघटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु निशीथात् प्राक् । परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरदिनाऽर्द्धं पुण्यम् । निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति विवेकः ।

मेषसंक्रान्तौ प्रागपराः दशघटिकाः पुण्यकालः । अत्राऽचाराद्घटदानं कुर्वन्ति । तत्र प्रकारः—संक्रान्तिपुण्यवेलायां नूतनकलशं पुष्पादिनाऽभ्यर्च्य,

"एष धर्मघटो दत्तो, ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
अस्य प्रसादात्सफलाः, मम सन्तु मनोरथाः ॥

इति श्लोकं पठित्वा जलेन धर्मघटं सिक्त्वा, ओँ अद्य यवविषुवसंक्रान्तौ स्वर्गप्राप्तिकामो अमुं जलपूर्णं घटं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् विष्णुदैवतं यथानामगोत्रायेत्यादिवाक्येन कुशतिलजलैरुत्सृजेत् । यदि मासं व्याप्य जलं दीयते तदेदं वाक्यम्—ओँ स्वर्गप्राप्तिकामोऽद्यादिमासं व्याप्य प्रत्यहं घटपरिमितजलं वरुणदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे । अन्यत्सर्वं मासविचारविचारे द्रष्टव्यम् ।

वृषसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडशघटिकाः पुण्यकाल इति बहवः । मिथुनसंक्रान्तौ पराः षोडशघटिकाः पुण्यकालः । कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं दशघटिकाः पुण्यकालः । भानोरुदयोत्तरसंक्रमणे परत एव पुण्यम् । रात्रौ तु निशातः प्राक् परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरदिनयोः पञ्च नाड्यः पुण्यकालः ।

"धनुर्मीनावतिक्रम्य, कन्याञ्च मिथुनं तथा ।
पूर्वापरविभागेन, रात्रौ संक्रमते रविः ॥
दिनान्ते पञ्च नाडयस्तु, तदा पुण्यतमाः स्मृताः ।
उदयेऽपि तथा पञ्च, दैवे पित्र्ये च कर्मणि" ॥

इति स्कन्दः प्राह पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कटसंक्रान्तिपरम् । तदयं निर्गलितोऽर्थः —रात्रौ पूर्वभागे मकरे उदये पञ्च नाड्यः पुण्याः । रात्रावपरभागे कर्कटसंक्रमे दिनान्ते पुण्याः । विषुवयोस्तु पूर्वदिने च । अपरदिने तु पञ्चेति वचनान्तराऽनुरोधात । तेन हेमाद्रिमाधवयोः सर्ववचनाऽविरोधः । माधवाऽचार्य्यमते तु ।

"अर्द्धरात्रे तदर्द्धे वा संक्रान्तौ दक्षिणायने ।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं, यावन्नोदयते रविः" ॥ इति

बृद्धगार्ग्यः,

"मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिः यदि स्यादंशुमालिनः ।
प्रभाते वा निशीथे वा, तदा पुण्यं तु पूर्ववत्" ॥

इति भविष्यपुराणीयं वचनमेत्र दाक्षिणात्याः आद्रियन्ते इति चिन्त्यम् ।

"अथ भाद्रपदे मासि सिंहसंक्रान्तौ षोडशघटिकाः = प्रहराः ग्राह्याः । ताः एव पुण्यकालः । सिंहराशिगते सूर्य्ये यदनिष्टं, तन्निवारणञ्च तत्सर्वं भाद्रनिरूपणे बोध्यम् । कन्यासंक्रमे पराः षोडशघटिकाः पुण्यकाल इति । अथ तुलासंक्रमे दशघटिकाः प्रागपराः पुण्यकालाः । तत्र गौडमैथिलसम्प्रदायस्तु विष्णुस्मृतिपद्मपुराणेषु यथाऽभिहितम् तत्सर्वं कार्तिकनिरूपणे द्रष्टव्यम् । वृश्चिकसंक्रान्तेरर्वाक् अष्टघटिकाः पुण्यकालः । धनुःसंक्रमणे पराः षोडशघटिकाः पुण्यकालः । मकरसंक्रमे माधवाचार्य्यमते विंशतिघटिकाः पुण्यकालः । "त्रिंशत् कर्कटे नाड्यो मकरे तु दशाधिका" इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् । माधवमते तु—

"त्रिंशत्कर्कटे पूर्वा, मकरे विंशतिः परा" ।

इति वृद्धवशिष्ठोक्तेः । यदा तु सूर्य्यास्तात्पूर्वम् संक्रान्तिर्भवति तदोभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः । रात्रौ तु प्रदोषे निशीथे वा मकरसंक्रमे माधवाचार्य्यमते द्वितीयदिन एव पुण्यम् ।

"यद्यस्तमयवेलायां, मकरं याति भास्करः ।
प्रदोषे वा ऽर्द्धरात्रे वा, स्नानं दानं परेऽहनि" ॥

इति वृद्धगार्ग्योक्तेः । अस्तमयः = प्रदोषः ।

"कार्मुकं तु परित्यज्य, झषं संक्रमते रविः ।
प्रदोषे वाऽर्द्धरात्रे वा, स्नानं दानं परेऽहनि" ॥

इति भविष्योक्तेः इत्येव द्राविडसम्प्रदायः । तीरभुक्त्यादिमध्यदेशे तु—

"धनुर्मीनावतिक्रम्य, कन्यां च मिथुनं तथा ।
पूर्वापरविभागेन, रात्रौ संक्रमणं यदा ॥
दिनान्ते पञ्च नाड्यस्तु, तदा पुण्यतमाः स्मृताः ।
उदयेऽपि तथा पञ्च, दैवे पित्र्ये च कर्मणि" ॥

इति स्कन्दोक्तेः । पूर्वाऽपरविभागेनेति मकरकर्कटभिन्नविषयकम् । पूर्वोक्तवचन-

कथने, राजगामिपैशुन्ये। मिथ्यादोषाऽभिगमे। वेदत्यागे। गोरजतवस्त्रहरणे ज्ञानतोऽत्यन्ताऽभ्यासे कृते द्वादशवार्षिकम्। अज्ञानतः षाड्वार्षिकमिति। अथाऽगम्यागमनप्रायश्चित्तम्।

पितृस्वसृमातृश्वश्रू पितृव्यपत्नी-शिष्यस्त्री-स्वसृसखी-आचार्य्यपत्नी-सगोत्रा शरणाऽगता-चाण्डालिनी-प्रव्रजिता-धात्री-साध्वीवर्णोत्तमाऽगम्यानां सकृदज्ञानतो गमने द्वादशवार्षिकम्। ज्ञानतो मरणमेव। तथा चाण्डालाऽन्त्यजस्त्रीणां गर्भोत्पादकस्य तत्समत्वात् प्रायश्चित्तं नास्ति। किन्तु दण्डयित्वा बहिः करणीयम्।

अथैकोद्दिष्टसारिणी।

कुतपे चारम्भदानयोरनन्ताऽक्षयफलत्वात् त्रिमुहूर्तात्मकमध्याह्ने मुहूर्तत्रयेऽप्येकस्मिन् यथालाभमेकोद्दिष्टं कर्तव्यम्। तदसम्भवे मन्वादिनिबन्धेन निषिद्धेतरकालेऽपि श्राद्धाऽधिकार इति। पूर्वदिने रोहिणस्य लाभे, अग्रिमदिने कुतपस्य च लाभे पूर्वदिने रोहिण एव एकोद्दिष्टं कार्य्यम्। विहितकालजीवित्वेन तत्रैवाऽधिकारात्। एकोद्दिष्टस्य मध्याह्ने विहितत्वात्, रौहिणस्य मध्याह्नान्तर्गतत्वाच्च। तत्राऽपि श्राद्धकरणकालस्याऽवच्छेदकाकांक्षायाम्, यावति काले साङ्गं प्रधानं सिद्ध्यति तावान् कालोऽनुष्ठानाऽङ्गमिति निश्चेतव्यमिति। यदा तु पूर्वदिने रौहिणलाभः तदग्रिमदिने कुतपरौहिणयोर्द्वयोरेव लाभः तदा व्याप्तिद्वयबलात् तद्दिन एवैकोद्दिष्टं कार्य्यमिति व्याप्तिद्वयबलेन केवलरौहिणप्रतिक्षेप एव गरीयान इति मादृशां परिशीलितः पन्थाः। रौहिणकुतपाऽन्यतरालाभे सङ्गव एवैकोद्दिष्टकर्तव्यमितिशिष्टाऽऽचारः। पञ्चचत्वारिंशत्पलपरिमितरौहिणव्याप्ततिथिलाभः पूर्वदिने यदा तदा पूर्वदिने एवैकोद्दिष्टकरणमिति यदि वाचस्पतिमिश्रलिखनं तु यथाव्यवहारमादरणीयम्। अथैकोद्दिष्टप्रापकवाक्यान्यपि वक्ष्यामः। व्यासः—

"एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धं, दैवहीनं विधीयते।
एकोद्दिष्टन्तु तत्प्रोक्तम्, मध्याह्ने तत्प्रकीर्तितम्"॥ इति

मध्याह्नश्च—सप्तमाऽष्टमनवममुहूर्तात्मकः। ते च मुहूर्ताः—गन्धर्वकुतपरौहिण-

संज्ञकाः । पुनर्व्यासः ।

"कुतपप्रथमे भागे, एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् ।

आवर्तनसमीपे वा, तत्रैव नियताऽऽत्मवान् ॥ इति

समाप्तौ गौतमः—

"आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्य्यादारौहिणं बुधः ।

विधिज्ञो विधिमास्थाय, रौहिणं न तु लंघयेत् ॥ इति

"अह्नो मुहूर्ताः विख्याताः, दशपञ्च च सर्वदा ।

तत्राऽष्टमो मुहूर्तो यः, स कालः कुतपः स्मृतः ॥

तस्मादनन्तफलदस्तत्राऽऽरम्भो विशिष्यते" ।

मत्स्यपुराणे—

"ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् ।

मुहूर्तपञ्चकञ्चैव, स्वधावाचनमिष्यते" ॥

मुहूर्तपदमत्राह पञ्चदशभागपरम् । यथा—

"प्रातः कालो मुहूर्तांस्त्रीन्, सङ्गवस्तावदेव हि ।

मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परम् ॥

सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।

राक्षसी नाम सा वेला, गर्हिता सर्वकर्मसु ॥

पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धमपराह्णे तु पैतृकम्" इति

एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकमि"ति । ब्रह्मपुराणीयम् ।

शातातपः—

"दिवसस्याष्टमे भागे, मन्दी भवति भास्करः ।

स कालः कुतपो ज्ञेयः, पितॄणां दत्तमक्षयम्" ॥ इति

श्राद्धरत्ने—

"रुद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च, तथा गारुभटस्तथा ।

सावित्रो विजयश्चैव, गान्धर्वः कुतपस्तथा ॥

रौहिणेयो विरञ्चिश्च, सोमोऽथ निरृतिस्तथा ।

माहेन्द्रो वरुणश्चैव, भटः पञ्चदशस्मृतः" ॥

इति क्रमेण पञ्चदशमुहूर्तानां नामानि ज्ञेयानि । शातातपः--

"रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत, राहोरन्यत्र दर्शनात् ।

सूर्य्योदयमुहूर्ते च सन्ध्ययोरुभयोरपि" ॥ इति

एकोद्दिष्टाऽकरणे दोषो यथा--

"पण्डितो ज्ञानिनो वाऽपि, मूर्खो योषित एव वा ।

मृताऽहं समतिक्रम्य, चाण्डालः कोटिजन्मसु" ॥

पण्डिताः ज्ञानिनो मूर्खाः, स्त्रियो वा ब्रह्मचारिणः ।

मृताऽहं समतिक्रम्य, चाण्डालेष्वभिजायते ॥

मृतेऽहनि पितुर्य्यस्तु, न कुर्य्याच्छ्राद्धमादरात् ।

मातुश्चैव वरारोहे, वत्सरान्ते मृतेऽहनि ॥

नाऽहं तस्य वरारोहे, पूजां गृह्णामि नो हविः । इति

भोजको यस्तु वै श्राद्धम् , न करोति खगाऽधिप ।

मातापितृभ्यां सततं, वर्षे वर्षे मृतेऽहनि ॥

स याति नरकं घोरं, तामिस्रं नाम नामतः" ॥ इति

किं बहुना । श्राद्धकरणे याज्ञवल्क्यः--

"आयुः प्रजां धनं विद्यां, स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।

प्रयच्छन्ति तथा राज्यं, नृणां प्रीताः पितामहाः ॥

मत्स्यपुराणे--

"रतिशक्तिर्वराकान्ता, भोज्यं भोजनशक्तता ।

दानशक्तिः सविभवा, रूपमारोग्यमेव च ॥

श्राद्धपुष्पमिदं प्रोक्तं, फलं ब्रह्मसमागमः" ।

हारीतः—

"न तत्र वीरा जायन्ते, नारोगा न शतायुषः ।

न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति, यत्र श्राद्धं विवर्जितम्" ॥ इति

अकरणे दोषः । दक्षिणादाने ब्रह्मवैवर्तः—

"दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य, तत्कालं चेन्न दीयते ।

एकरात्रे व्यतीते तु, तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥

मासे शतगुणं प्रोक्तं, द्विमासे तु सहस्रकम् ।

सँव्वत्सरे व्यतीते तु, स दाता नरकं व्रजेत् ॥

न ददाति यदा दाता, ग्रहीता न च याचते ।

उभौ तौ नरकं यातौ, वातव्याधियुतो भवेत्" ॥ इति

शातातपः—

"श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे, भुञ्जते ये तु जिह्वलाः ।

पतन्ति पितरस्तेषां, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥

जिह्वला = जिह्वालोलुपाः । अत्र च तदहरिति कात्यायनवचनात् । क्रोधाऽध्वमैथुनस्वाध्यायवर्जनम् । श्राद्धात्प्रागपि ।

"श्राद्धे नियुक्तो भुक्त्वा वा, भोजयित्वा नियुज्य वा ।

व्यवायी रेतसी गर्भे, मज्जयत्यात्मनः पितॄन्" ॥

इत्येकदेशे ब्रह्मपुराणसँव्वादाच्च । मात्स्ये—

"पुनर्भोजनमध्वानम्, द्यूतमायासमैथुनम् ।

श्राद्धकृत् श्राद्धभोजी च, सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥

स्वाध्यायं कलहञ्चैव, दिवास्वप्नञ्च सर्वदा ।

अध्वगमनं तु क्रोशाधिकं निषिद्धम् । अध्वगमने क्रोशपूरणे । इति हारीतचनात् ।

व्यासः—

"अध्वनीनो भवेदश्वः, पुनर्भोजी च वायसः ।

होमकृन्नेत्ररोगी स्यात्पाठादायुः प्रहीयते ॥
दानं निःफलतामेति, प्रतिग्राहो दरिद्रताम् ।
कर्मकृज्जायते दासो, मैथुनी शूकरो भवेत्" ॥

होमोऽत्र अनावश्यकः । पाठोऽध्ययनाध्यापने । दानम् अन्नाद्यतिरिक्तस्य । प्रयागमाहात्म्ये पद्मपुराणोक्तानि वचनानि ।

"दन्तानां काष्ठसंयोगं, तैलाभ्यङ्गं रतिं तथा ।
भेषजञ्च परान्नं च, श्राद्धकर्तैव वर्जयेत् ॥
पुनर्भुक्तिं व्यवायञ्चाध्ययनाऽध्यापने तथा ।
दानप्रतिग्रहौ शूद्रभाषणाऽनृतभाषणे ॥
दिवास्वापाध्वगमने, क्रोधञ्च कलहं तथा ।
एतान् कर्ता च भोक्ता च, श्राद्धाह्नि परिवर्जयेत् ॥
अङ्गीकृत्य परित्यागमाह्वाने च विलम्बितम् ।
सन्ध्यां प्रतिग्रहं होमं, श्राद्धभोक्तैव वर्जयेत् ॥
रक्तं चित्राम्बरञ्चैव, उपानत्पादुके तथा ।
रक्तं पुष्पं चन्दनञ्च, श्राद्धभूमौ विवर्जयेत् ॥
स्वयं पत्न्यथ वा बन्धुः, सपिण्डः सोदरस्तथा ।
कृतोपकारः कुर्वीत, श्राद्धीयं पचनं द्विजः ॥
सम्बन्धं प्राक् समुच्चार्य्य, ततस्तन्नामगोत्रके ।
ततो रूपं वदेत्कर्ता, क्रम एष सनातनः" ॥

एकोद्दिष्टे कर्तव्ये यद्यशौचं भवेत्तदा का गतिरित्यत्राऽह द्वैतपरिशिष्टे—

देये तु पितॄणां श्राद्धे, अशौचं जायते यदि ।
तदशौचे व्यतीते तु, तेषां श्राद्धं विधीयते ॥

अशौचमत्र पुरुषप्रयत्नाऽनपनेयम् , तदपनेयस्य तु श्राद्धाहविहितशौचादेवापगमात् । तथा च जननमरणव्रणरजोयोगाऽत्यये विहितमुहूर्ते श्राद्धं कर्तव्यम् । अत एव

विहितमुहूर्ते श्राद्धं कर्तव्यम्। अत एव विहितमुहूर्ते क्षताद्यभावे अग्रिमदिनेऽपि तत्करणम्। तत्राऽपि कुत्रदिने इत्यपेक्षायामाह—

"शुचीभूतेन दातव्यं, या तिथिः प्रतिपद्यते।

सा तिथिस्तत्र कर्तव्या, नत्वन्या वै कदाचन"॥ इति

एवञ्च स एव मासः, स एव पक्षः, सा एव तिथिः प्रधानतयोल्लेख्या। 'या तिथिः प्रतिपद्यते' इत्यादेर्द्वन्द्वबलाच्च श्राद्धप्रतिबन्धकाऽशौचाऽपगमे इत्यपि निवेश्यम्। तदशौचे व्यतीते त्वित्यादेः तदित्थमत्र प्रयोगः–'ॐ अद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथौ क्षयाहश्राद्धप्रतिबन्धकाशौचापगमे अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः साम्वत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धमहङ्करिष्ये'। इति। अत्रेदं बोध्यम् जननमरणाऽशौचाऽपाय एव क्षयाहश्राद्धं कुर्वन्ति, न तु व्रणाऽद्यशौचाऽपाये। तथैव शिष्टाऽचारादिति। अशौचाऽतिरिक्तमृताऽहश्राद्धप्रतिबन्धे विशेषमाह–लघुहारीतः—

"श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने मृताऽहे विदिते तथा।

एकादश्यां प्रकुर्वीत, कृष्णपक्षे विशेषत इति॥

श्राद्धविघ्ने देशविप्लव-प्रमाद-मार्गगमन-राजरोधादिरूपे विशेषत इति वचनात् कृष्णैकादश्यामसम्भवे शुक्लैकादश्यामपि कर्तव्यम्। मृताऽहाज्ञाने प्रचेताः—

"अविज्ञाते मृताहे अमावास्यायां श्रवणदिवसे वा"। इति

अत्र च मृताहनिमित्तकं श्राद्धं कर्तव्यमिति विशेषः। यस्मिन् दिने देशान्तरे मृतः श्रूयते स एव श्रवणदिवसः। अत्र चैकादश्यमावास्यायां विघ्ननिमित्ता ऽव्यवहिते श्राद्धे मासज्ञाने साम्वत्सरिके कर्तव्ये तन्मासस्यैव। तन्मासपक्षयोरज्ञाने यस्मिन् मासि श्रूयते तस्यैव। एवञ्च मृताहविस्मरणेऽप्येकादश्यामेव क्षयाऽहस्याऽविदितत्वात्। अयमत्र निष्कर्षः—श्राद्धविघ्ने एकादश्याम्, तिथ्यज्ञाने तत्पक्षैकादश्याम्। तिथिपक्षयोरज्ञाने तन्मासैकादश्याममावास्यायां वा एषामज्ञाने यस्मिन् तिथौ श्रूयते तस्मिन्नेव। तत्तिथेरपि विस्मरणे तन्मासैकादश्याममावास्यायां वा एकोद्दिष्टम्। श्रवणमासस्यापि विस्मरणे न कार्य्यं मानाभावादिति वाचस्पतिमिश्राः।

साम्वँत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धं विभक्ताऽविभक्तैः सर्वैरेव पुत्रैः कार्य्यम्—

"प्रत्यब्दमितरे कुर्य्युरेकोद्दिष्टं सुताः पृथक् ।
यावन्त एव पुत्राः स्युः, पिण्डास्तावन्त एव हि" ॥

इति स्मृतेः । इतरे = ज्येष्ठादन्ये ।

"विभक्ता अविभक्ता वा, कुर्य्युः श्राद्धमदैवकम् ।
मघासु च तथा ऽन्यत्र, नाधिकारः पृथग्विना" ॥

इति स्मृतेः । अविभक्तभ्रात्रादीनां मध्ये पार्वणादीनि ज्येष्ठेनैव कार्य्याणि । अपृथग्द्रव्याः अपृथक्क्रियाः इति पलत्रीयस्मृतेः । एकोद्दिष्टादौ निमन्त्रणे देवलः—

"अक्रुद्धो निभृतः स्वस्थः, श्रद्धावानत्वरः शुचिः ।
समाहितमनाश्चात्र क्रियायामधिकृत्सदा ॥
श्वः कर्ताऽस्मीति निश्चित्य, दाता विप्रान्निवेदयेत् ।
निराऽमिषं सकृद् भुक्त्वा, सर्वभक्तजने गृहे ॥
असम्भवे परेद्युर्वा, ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत् ।
अज्ञातीनसमानार्षानयुग्माऽनात्म····

निरामिषभोजनपूर्वकत्वस्य विशिष्टनिमन्त्रणविषयत्वान्न सार्वत्रिकत्वम् । मार्कण्डेयपुराणे—

"निमन्त्रयेत्तु पूर्वेद्युः, पूर्वोक्तान् द्विजसत्तमान् ।
अप्राप्ते तु दिने वाऽपि, हित्वा योषित्प्रसङ्गितम् ॥

मत्स्यपुराणे—

"दक्षिणं जानुमालेख्य, मया त्वं च निमन्त्रितः ।
एवं निमन्त्र्य नियमान् , श्रावयेत्पैतृके बुधः ॥
अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मवादिभिः ।
भवितव्यं भवद्भिश्च, मया च श्राद्धकारिणा ॥

इतोऽधिकं बहुग्रन्थगौरवान्नाऽलेखि । स्मृतिः—

"आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं, दश यत्र न भुञ्जते ।

असम्पत्तौ सप्तपञ्चत्रयाणामपि भोजनम्" ॥ इति

दक्षिणाप्रकरणे बृहस्पतिः—

"हतमश्रोत्रिये दानम् , हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ।
तस्मात्पणं काकिणीं वा, फलं पुष्पमथाऽपि वा ॥
प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे, तया स सफलो भवेत्" । इति

यज्ञोऽत्र श्राद्धम् प्रक्रमाज्ज्ञेयम् । किञ्च रामायणे—

"ततः पितरमुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ।
महार्हाणि च वस्त्राणि, गाश्च वाहनमेव च ॥
यानानि दासीदासाँश्च, वेश्मानि सुमहान्ति च ।
भूषणानि च मुख्यानि, राज्ञस्तस्यौर्द्धदैहिके" ॥

बृहस्पतिः—

श्रोत्रियाः भोजनीयाश्च, नव सप्त त्रयोदश ।
ज्ञातयो बान्धवाश्च स्वाः, तथा चाऽतिथयोऽपरे ॥
प्रदद्याद्दक्षिणां तेषां, यथाशक्तिस्वरूपतः । इति

अथ तीर्थश्राद्धम्—तत्र देवीपुराणे—

"तीर्थे तु ब्राह्मणान्नैव, परीक्षेतु कदाचन ।
अन्नार्थिनमनुप्राप्तम् , भोज्यन्तं मनुरब्रवीत् ॥
सक्तुभिः पिण्डदानञ्च, शय्यांवै पायसेन च ।
कर्तव्यमृषिभिर्दृष्टं, पिण्याकेन गुडेन वा ॥
देयञ्च तिलपिण्याकं भक्तिमद्भिर्नरैः सदा ।

शय्यां वः सघृतगोधूमचूर्णसाधितं भक्ष्यम् । पिण्याकस्तिलखरिः ।

"श्राद्धं तु तत्र कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ।
ध्वांक्षकाकगृध्राणां, नैव दृष्टिहतञ्च यत् ॥
श्राद्धं तु तीर्थकं प्रोक्तं, पितॄणां तृप्तिकारकम् ।

अकालेऽप्यथ वा काले, तीर्थश्राद्धं तथा नरैः ।
प्राप्तैरेव तथा कार्य्यं, कर्तव्यं पितृतर्पणम् ॥
पिण्डदानं ततः शस्तं, पितॄणां चातिदुर्लभम् ।
विलम्बो नैव कर्तव्यो, नैव विघ्नं समाचरेत्" ॥

अकाले = विहितामावास्यातिरिक्ते । न तु निषिद्धेऽपि । विलम्बो नैव कर्तव्यो यदेव तीर्थप्राप्तिस्तदैव स्नानादिदेवताऽर्चनान्तं कृत्वा, निषिद्धाऽतिरिक्तवेलायां श्राद्धं कर्तव्यम् । एकस्यां यात्रायामैकस्मिन् तीर्थे एकमेव श्राद्धं, तीर्थभेदे चावर्तते प्राप्तिनिमित्तकत्वात् । पिण्डदानं ततः शस्तमिति वचनात् । श्राद्धसम्पत्तौ केवल-पिण्डदानमप्यायाति । आमश्राद्धं कुत्र कुत्र केन वा कार्य्यमित्यत्राऽऽह जावालिः—

"आपद्यग्नौ च तीर्थे च, ग्रहणे चान्द्रसूर्य्ययोः ।
आमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यं, शूद्रेण तु सदैव हि" ॥ इति

उशनाः—

"आत्मनो देशकालाभ्यां, विप्लवे समुपस्थिते ।
अमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यम् , शुद्रेण तु सदैव हि ॥

लघुहारीतः—

"श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् ।
आमावास्यादिनियतं, माससम्वँत्सराद्दते ।
एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यम् , पाकेनैव सदा स्वयम् ॥
अभावे पाकपात्राणां, तदहः समुपोषणम्" ।

इति वचनद्वयं त्रैवर्णिकपरम् , शूद्रस्य तु सदैव आमश्राद्धविधानात् । श्राद्धाऽक-रणे श्राद्धलतायाम्—

"अकृत्वा प्रेतकार्य्याणि प्रेतस्य धनहारकः ।
वर्णिनां यद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं नियतं चरेत् ॥
सपिण्डीकरणान्तानि, यानि श्राद्धानि षोडश ।

यथाकाले तु कार्य्याणि, नाऽन्यथा मुच्यते हि सः ॥
गयायां पिण्डदानेन प्रेतत्वं नश्यति ध्रुवम् ।
अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः" ॥ इति

पार्वणमधिकृत्य निरग्निकं प्रति विष्णुपुराणे—

"अन्येन वा यथा शक्त्या, कालेऽस्मिन् भक्तिसय्युतः ।
भोजयिष्यति विप्राग्र्याँस्तन्मात्रविभवो नरः ॥

असामार्थ्येऽन्नदानस्य

प्रदास्यति द्विजाग्रेभ्यः, स्वल्पाम्वा पितृदक्षिणाम् ।
तत्राऽप्यसामर्थ्ययुतः, कराऽग्रावस्थितान् तिलान् ॥
प्रणिपत्य द्विजाग्राय, कस्मैचिदुपदास्यति ।
तिलैः सप्ताष्टभिर्वाऽपि, समवेतान् जलाञ्जलीन् ॥
भक्तिनम्रः समुद्दिश्य, यदि मह्यं प्रदास्यति ।
यतः कुतश्चित्सम्प्राप्य, गोभ्यो वाऽपि गवाह्निकम् ॥
अभावे प्रीणयन्नस्मान् श्रद्धायुक्तः प्रदास्यति ।
सर्वाऽभावे वनङ्गत्वा, कक्षामूलप्रदर्शकः ॥
सूर्य्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति ।
न मेऽस्ति वित्तं न धनं, न चाऽन्यच्छ्राद्धोपयुक्तम् ॥

स्वपितॄन्नतोऽस्मि, तृप्यन्तु भक्त्या पितरौ मयैतौ कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य । अशक्तं प्रतीदं बोध्यम् । गवाह्निकम = गवां दिवसाहारम् । तिलतर्प्पणनिषेधमाह—

"निषिद्धदिनमासाच, यः कुर्य्यात्तिलतर्प्पणम् ।
रुधिरं तद् भवेत्तोयम् , दाता च नरकं व्रजेत्" ॥

इति स्मृतिः ।

"संक्रान्त्यां निशि सप्तम्यां, रविशुक्रदिने तथा ।

जन्मनि श्राद्धदिवसे, न कुर्य्यात्तिलतर्प्पणम् ॥

इति मात्स्ये ।

"रविशुक्रदिने चैव, द्वादश्यां श्राद्धवासरे ।
सप्तम्यां जन्मदिवसे, न कुर्य्यात्तिलतर्प्पणम् ॥

इत्यपि स्मृतिः । अथ मुण्डनाऽवश्यकता । निगमे यथा ।

"गङ्गायां भास्करक्षेत्रे, मातापित्रोर्गुरौ मृते ।
आधाने सोमपाने च, वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥
क्षौरं नैमित्तिकं कार्य्यम् , निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ।
पित्रादिमृतदीक्षासु, प्रायश्चित्ते च तीर्थके ॥
विना तीर्थं विना यागं, मातापित्रोर्मृतिं विना ।
ये वापयन्ति लोमानि, स पुत्रः पितृघातकः ॥
स्नानादिकं विधायादौ, तीर्थमुण्डनमाचरेत्" ।

इति संग्रहे । तीर्थचिन्तामणौ—

"गङ्गां सम्प्राप्य यो धीमान् , मुण्डनं नैव कारयेत् ।
क्रिया तस्याऽक्रिया सर्वा, तीर्थद्रोही भवेन्नरः ॥
गङ्गायां भास्करक्षेत्रे, मुण्डनं यो न कारयेत् ।
स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं व्रजेत् ॥
गङ्गां प्राप्य सरिच्छ्रेष्ठां, कल्पान्ते पापसञ्चयाः ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति, तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥
यावन्ति नखलोमानि, गङ्गातोये पतन्ति वै ।
तावद्वर्षसहस्राणि, स्वर्गलोके महीयते ॥

गङ्गाभक्तिरङ्गिण्याम्—

"यावन्ति नखलोमानि, वायुना प्रेरितानि वै ।
पतन्ति जाह्नवी-तोये, नाराणां पुण्यकर्मणाम् ॥

तावद्वर्षसहस्राणि, स्वर्गलोके महीयते ।

केशानां यावती संख्या, छिन्नानां जाह्नवीजले ॥

तावद्वर्षसहस्राणि, स्वर्गलोके महीयते ।

गङ्गायां भास्करक्षेत्रे, मातापित्रोर्गुरौ मृते ॥

आधाने सोमपाने च, मुण्डनं सप्तसु स्मृतम्" ।

इत्येतैर्वचनैर्गङ्गायां सर्वत्र वपनमावश्यकमित्येव प्रतिभाति । कामरूपिणां दाक्षिणात्यानां तथा व्यवहारोऽपि । परन्तु

"मुण्डनञ्चोपवासश्च, सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ।

वर्जयित्वा गयां गङ्गां, विशालां विरजां तथा" ॥

इति स्कन्दपुराणीयबलात् प्रयागाऽवच्छिन्नगङ्गां विना नाऽन्यत्र शिष्टा अपि मैथिलाः गङ्गातीरे वपनमाचरन्ति । गङ्गावपनविधायकवचनानां प्रयागगङ्गावपनादिपरत्वात् सर्वसामञ्जस्यम् । न च मैथिलाद्या अपि मैथिलवदाचरन्त्विति देश्यम् ,

"वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रम् विशालाञ्च गयां विना" ।

इति स्वकीयनिबन्धवचनमेव तीर्थवपननिषेधेऽनुमन्यन्ते, तेषां व्यवहारोऽपि तथैव । इति ।

न च प्रयागाऽवच्छिन्नगङ्गायामपि वचननिषेध एवाऽस्त्विति वाच्यम् ,

"प्रयागे वपनं कुर्य्याद् गङ्गायां पिण्डपातनम् ।

दानं दद्यात्कुरुक्षेत्रे, वाराणस्यां तनुं त्यजेत् ॥

इति विशेषवचनात् ।

"केशमूलान्युपाश्रित्य, सर्वपापानि देहिनाम् ।

तिष्ठन्ति तीर्थस्नानेन, तस्मात्तान्यत्र वापयेत्" ॥

इत्यादिना केशमूलवपनस्यैव तीर्थे विशिष्य विहितत्वात् । अत एव स्त्रीणामपि मुण्डनमेव विहितमस्ति ।

न च—

"सर्वान् समुद्धृत्य, छेदयेदङ्गुलिद्वयम् ।

एवमेव तु नारीणां, मुण्डमुण्डनमादिशेत् ॥

इति कथमिति वाच्यम्, एतद्वचनस्य प्रायश्चितप्रकरणीयत्वात् सर्वमुण्डनव्यवहाराच्च ।

अथ महागुरुनिपाते कर्तव्याकर्तव्यविचारो यथा—गौडनिबन्धे—महागुरुनिपाताऽशौचेऽन्यश्राद्धं तर्पणं तद्वर्षं न कार्य्यम् । स्मृतिः—

"अन्यश्राद्धं तर्पणञ्च, गन्धं माल्यञ्च मैथुनम् ।
वर्जयेद् गुरुपाते हि, यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥

मैथुनम् = रागप्राप्तमैथुनम् । बृहस्पतिः—

"पितर्य्युपरते पुत्रो, मातुः श्राद्धान्निवर्तते ।
मातर्य्यपि च वृत्तायां, पितुः श्राद्धादृते समाः ॥
प्रमीतौ पितरौ यस्य, देहस्तस्याशुचिर्भवेत् ।
नाऽपि दैवं न वा पैत्र्यं, यावत्पूर्णो न वत्सरः" ॥

इति देवीपुराणात् ।

"महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् ।
आर्त्विज्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च, श्राद्धं देवयुतञ्च यत् ॥
तीर्थयात्रां विवाहञ्च, स्वाऽध्यायं वाऽन्यतर्पणम् ।
सम्वँत्सरं न कुर्वीत, महागुरुनिपातने" ॥

इति मनुः ।

महागुरुनिपाते हि, काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् ।
विशेषतः शिवपूजां, प्रमीतपितृको द्विजः" ॥

महागुरुनिपाते हि सर्वकर्माणि वर्जयेत् ।

विहाय प्रेतकार्यञ्च, सन्ध्योपासनमेव च" ।

इति मरीचिः । स्मृतिसारे—

"तीर्थस्नानं महादानं, यच्चान्यच्छुभकर्म च ।

अब्दमेकं न कुर्वीत, महागुरुनिपातने ॥

पितुरब्दमशौचं स्यात, षण्मासं मातुरेव हि ।

मासत्रयं तु भार्य्यायास्तदर्द्धं भ्रातृपुत्रयोः" ॥ इति

अथ श्राद्धकालाः । तत्र याज्ञवल्क्यः—

"अमावास्याष्टका वृद्धिः, कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् ।

द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिः, विषुवत्सूर्य्यसंक्रमः ॥

व्यतीपातो गजच्छाया, ग्रहणं चन्द्रसूर्य्ययोः ।

श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव, श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः" ॥

आवश्यकश्राद्धकाले विष्णुः—

अमावास्यास्तिस्रोऽष्टकाः माघीप्रोष्ठपद्युद्धर्वं कृष्णत्रयोदशी व्रीहियवपाकौ चेति ।

"एताँस्तु श्राद्धकालान्वै, नित्यानाह प्रजापतिः ।

श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो, नरकं प्रतिपद्यते ॥

व्रीहियवपाकौ = शरदि वसन्ते च । विष्णुधर्मोत्तरे—

"व्रीहिपाके तु कर्तव्यं, यवपाके तु पार्थिव ।

न तावद्यौ महाराज विना श्राद्धं कथञ्चन ॥

पौर्णमासी तथा माघी, श्रावणी च नरोत्तम ।

प्रौष्ठपद्यामतीतायां, तथा कृष्णात्रयोदशी ॥

एताँस्तु श्राद्धकालान्वै, नित्यानाह प्रजापतिः" ।

इदञ्च त्रयोदशीश्राद्धम् आरब्धाऽपरपक्षश्राद्धेन तन्त्रणैव कार्य्यम् , न तु स्वातन्त्र्येणैवेति विज्ञेयम् । अष्टकासु द्रव्यमाह–वायुपुराणम्—

"कृष्णपक्षेऽवशिष्टा तु, पूर्वा चैन्द्री विभाव्यते ।

प्राजापत्या द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदेवकी ॥

आद्या पूपैः सदा कार्य्या, मासैरन्या भवेत्तथा ।

शाकैः कार्य्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः ॥

कृष्णपक्ष इत्यभिधानात् पौषादिकृष्णपक्षत्रये क्रममेतत्त्रयम्। मांसैः = छागमांसैः। तदभावे स्थालीपाकेन। यथा छन्दोगपरिशिष्टे —

"स्थालीपाकं पशुस्थाने, कुर्य्याद्द्याच्च कल्पितम्।
श्रयेत्तं सवत्सायाः तरुण्याः गोः पयस्यनु" ॥

आश्विनाऽष्टकाऽपि नित्यगणे ग्राह्या।

"या चाऽप्यन्या चतुर्थी स्यात्, सा न कुर्य्याद्विशेषतः।
आशु श्राद्धं द्विजः कुर्य्यात् सर्वस्वेनाऽपि यत्नतः॥

इति वायुपुराणात्।

"वर्षासु मघ्ये शाकैश्च, चतुर्थ्यामेव सर्वदा" ॥

इति ब्रह्मपुराणात् शाकप्रधाना। सा चाऽपरपक्षे।

"प्रौष्ठपद्यामतीतायामष्टका त्वं भविष्यसि"।

इति वरदानश्रवणात्। इदञ्चाष्टकाश्राद्धम् अपरपक्षश्राद्धेन तन्त्रेणैव कर्तव्यम्। अन्येन तु स्वातन्त्र्येणेति द्रष्टव्यम्। अन्वष्टकाश्राद्धोत्तरदिने। तत्र च नवमी-नियमः। "श्वोऽष्टकमि" ति विष्णूक्तेः। अत्र च द्रव्यमष्टकोक्तं ग्राह्यम्। अन्वष्टकास्वष्टकावदिति कात्यायनोक्तेः। अत्र च मातॄणां ततः पितॄणां ततो मातामहानां श्राद्धं हुत्वा मात्रे प्रमागे च दद्यादिति भविष्योत्तरात्। एतच्च साऽग्निपरम्। वह्नौ हुत्वा दद्यादिति श्रुतेः। अष्टकादौ श्राद्धकालः पूर्वाह्णसञ्ज्ञवरूपः।

"पूर्वाह्णे मातृकाश्राद्धमिति वचनात्।

शातातपः—

"सर्वस्वेनापि कर्तव्यं, श्राद्धं वै राहुदर्शने।
अकुर्वाणस्तु तच्छ्राद्धं, पङ्के गौरिव सीदति॥
नवोदकेन चाऽन्नेन, गृहप्रच्छादने तथा।
पितरः स्पृहयत्यन्नमष्टकासु मघासु च॥
तस्माद्दद्यात्सदोद्युक्तो, विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च।

तीर्थद्रव्योपपत्तौ च, न कालमवधारयेत् ॥

पात्रञ्च ब्राह्मणं प्राप्य, सद्यः श्राद्धं विधीयते ।

नवोदकश्राद्धादेश्च नित्यत्वम् सदा श्रवणात् । तथा च नवोदकश्राद्धं मलमासेऽपि कर्तव्यम् ।

"अग्निहोत्रञ्च कर्तव्यम् नवश्राद्धं नवोदकम् ।

नित्यनैमित्तिके चैव नैव दोषो मलिम्लुचे" ॥

इति स्मृतेः ।

रुद्रयामले—

"अश्विन्यादि च मित्रेषु, विवाहे कृत्तिकादि च ।

वर्षाकाले तथाऽर्द्रेति, नक्षत्रगणनं मतम्" ॥ इति

"प्रवृट्काले समायाते, रौद्रऋक्षगते रवौ ।

नाडीवेधसमायोगे, जलयोगं वदाम्यहम्" ॥

इति गौरीं प्रति शिववाक्यम् । तत्रैव । आर्द्राया एव प्रावृडुपजन्यत्वप्रतीतेः । तदैव नूतनवृष्ट्यारम्भोऽपि । इति ज्ञेयम् । यत्तु व्रीहिश्राद्धमुक्तम् तच्छरदि शुक्लपक्ष एव । शुक्लपक्षे नवधान्यं पक्वं ज्ञात्वाऽशुशोभनम् । गच्छेत्क्षेत्री विधानेन गीतवाद्यपुरःसरः" ॥ इत्युपक्रम्य,

"तेन देवान् पितॄँश्चैव, तर्प्पयेदर्च्चयेत्सदा" ।

इति शरत्कृत्ये कामधेनुलिखितब्रह्मपुराणात् । इदञ्च श्राद्धं नवव्रीह्यलाभे पुराणैरपि । तदभावे शाल्यादिनाऽपि कार्य्यमावश्यकत्वात् । एवं हैमन्तिकसंस्कारार्थमपि श्राद्धमावश्यकम् । यथा वराहपुराणे—

"अकृताग्रयणञ्चैव, धान्यजातं द्विजोत्तम ।

राजमाषानणूँश्चैव मसूराँश्च विवर्जयेत्" ॥

आग्रयणम् = प्रथमाग्रयणश्राद्धम् । तदपि शुक्लपक्ष एव ।

"वृश्चिके पूर्वभागे तु, नवान्नं शस्यते बुधैः ।

उत्तरे क्रियमाणे तु धनुष्येव कृतं भवेत् ॥
धनुषि यत्कृतं श्राद्धम् , मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
पितरस्तत्र गृह्णन्ति, नवाऽन्नमिव गर्हिणः" ॥

इति ब्रह्मपुराणे निषेधात् । वृश्चिकशुक्लपक्षे चैतदकरणे माघेऽपि कार्य्यमावश्यकत्वात्। हरिहरपद्धतौ—

"मुख्यकाले यदावश्यकङ्कर्म कर्त्तुं न शक्यते ।
गौणकालेऽपि कर्तव्यम् , गौणोऽप्यत्रेदृशो भवेत् ॥
आसायमाहुतेः कालात् , कालः स्यात् प्रातराहुतेः ।
पौर्णमासस्य कालोऽस्ति, पुरादेशस्य कालतः ॥
स्यात्साकमेचकालोऽपि, आशुनासीरकालतः ।
सुनासीरीयकालोऽप्यावैश्वदेवककालतः ॥
श्यामाकैः व्रीहिभिश्चैव, यवैरन्योऽन्यकालतः ।
प्राग् यष्टुं युज्यतेऽवश्यं, न त्वत्राऽग्रयणाऽत्ययः ॥
दक्षिणायनकालेज्या, पश्विज्या चोत्तरायणे ।
अन्योऽन्यकालतः पूर्वम् , यष्टुं युक्ते उभे अपि ॥
एवमागामियागीयमुख्यकालादधस्ततः ।
स्वकालादुत्तरो गौणः, कालः पूर्वस्य कर्मणः ॥
यद्वाऽगामिक्रियामुख्यकालस्याऽप्यन्तकालवत् ।
गौणकालत्वमिच्छन्ति, केचित्प्राक्तनकर्मणि" ॥

इदञ्च नन्दादौ न कार्य्यम् ।

"नन्दायां भार्गवदिने, त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।
श्राद्धमेषु न कर्तव्यं, पुत्रदारधनक्षयात्" ॥

इति ज्योतिःशास्त्रात् सावकाशश्राद्धविषयतया कामधेनुकृताऽवतारितत्वात् । अत एव यवश्राद्धमपि नन्दादौ न कार्य्यम् । नाऽपि कृष्णपक्षे ।

"कृष्णपक्षे नवान्नं तु न कुर्य्यान्मानवो यतः ।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति, दाता च नरकं व्रजेत्" ॥

इति कामधेनुवचनात् ।

"चैत्रे पौषे कृष्णपक्षे, नवान्नं नाचरेद् बुधः ।
भवेज्जन्मान्तरे रोगी, पितॄणां नोपतिष्ठते ।

इति भुजबललिखितवचनाच्च । ज्योतिश्शास्त्रे—

"नवान्नं नैव नन्दायां, न प्रसुप्ते जनार्दने ।
न कृष्णपक्षे धनुषि, तुलायां न च कारयेत् ॥

धनुरतिदेशश्च वृश्चिकत्रयोदशांशानन्तरमेव सर्वराशिष्वपि । चण्डेश्वरनिबन्धे च—

"वृश्चिकस्थे रवौ त्यक्त्वा, वासराणि त्रयोदश ।
नवान्नैर्विहितं श्राद्धं, धनुष्येव कृतं भवेत्" ॥

अत्र धनुरतिदेशश्च, गोचरफलाऽभिप्रायेणैव । अत एव

"द्विपञ्चनवमस्थोऽपि, यदा भवति भास्करः ।
तदा त्रयोदशाहानि, वर्जयित्वा शुभप्रदः" ॥ इति

तेन शुक्लपक्षाऽतिदेशेन कृष्णपक्षपञ्चमीपर्य्यन्तं शुक्लपक्ष एव ।

"कृष्णा तु पञ्चमी यावच्छुक्लमारभ्य पञ्चमी" । इत्यादिकञ्च

"शुक्लपक्षे तु षष्ठ्यादौ पञ्चम्यन्ते सितस्य च ।
शस्तः पूर्वतनुः शुक्लपक्षे तु गुरुवच्छशी" ॥ इति

तेन तत्र नवाऽन्नकरणे न कृष्णपक्षसंकोचः । तत्राऽकरणे माघे । तत्राऽप्यकरणे फाल्गुनेऽपि । किञ्च—

"कियद्दूरं पुराणत्वं, नवत्वं कियनन्तरम् ।
शस्थानामवधिः षष्ठी, पौर्णमासी प्रसिद्ध्यति" ॥

तेन षण्मासपर्य्यन्तं नवत्वम् । यवनवाऽन्नन्तु आषाढेऽपि मलमासेऽपि ।

"नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात्प्रयतः सन् मलिम्लुचे" ॥

इति वचनादिति बोध्यम् । अत्र नरहर्य्युपाध्यायाः । हैमन्तिकनवान्नश्राद्धम् कृष्णपक्षेऽपि कर्तव्यम्

"वृश्चिके पूर्वभागे तु, नवान्नं शस्यते बुधैः ।
उत्तरे क्रियमाणे तु, धनुष्येव कृतम्भवेत् ॥
धनुषि यत्कृतं श्राद्धम् , मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति, नवान्नाऽमिषकांक्षिण" ॥

इति वचनात् । वृश्चिकपूर्वभाग एव कृष्णपक्षसाधारणतद्विधानात् धनुरतिदेशश्च वृश्चिकत्रयोदशांशाऽनन्तरं ज्योतिःशास्त्रात् । न च

"चैत्रे पौषे कृष्णपक्षे, नवाऽन्नं नाचरेद् बुधः ।
भवेज्जन्मान्तरे रोगी, पितृणां नोपतिष्ठते" ॥

इति भोजराजलिखितवचनान्नैवमिति वाच्यम् । चैत्रे यवपाकनिमित्तकस्य पौषे हैमन्तिकस्य कृष्णपक्षे व्रीहिपाकनिमित्तस्य यथायोग्यनिषेधः । तस्य प्रकृताऽनिषेधकत्वात् ।

"शुक्लपक्षे नवं धान्यं, पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम् ।
सुतिथौ सुमुहूर्ते च, नवान्नफलकांक्षिणम्" ॥ इति

अथाऽश्विनकृत्याऽधिकृत्य रत्नाकरलिखनात् । धान्यं षष्ठिकेति व्याख्यानात् । विशेषविधेः शेषनिषेधफलकत्वव्युत्पत्तेः, व्रीहिपाकनैमित्तिकस्य श्राद्धस्य कृष्णपक्षे निषेधव्यवस्थितेः । तदेकवाक्यतया कृष्णपक्षनिषेधकवाक्यानां तन्निषेधपरत्वेनोपपत्तेः । अत एव——

"कृष्णपक्षे नवाऽन्नं तु, न कुर्य्यान्मानवो यतः ।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति, दाता च नरकं व्रजेत् ॥
नवाऽन्नं नैव नन्दायां, न प्रसुप्ते जनार्दने ।
न कृष्णपक्षे धनुषि, तुलायां नैव कारयेत्" ॥

इति वचनबाधकं कृष्णपक्षे निषेधस्य सर्वत्रैककल्पनालाघवेन व्रीहि-श्राद्धपरत्वात् । "न कृष्णपक्षे धनुषी" त्यत्र पदाऽवृत्तिभयेन धनुः कृष्णपक्षस्यैव प्रतिषेधाच्च । धनुषीत्यनेन तत्प्रतिषेधसिद्धावपि कृष्णपक्षस्याऽत्यन्तनिषेधत्वप्रतिपादनपरत्वान्न निषेधव्यर्थताऽपि । "न पर्वते = पर्वत-मस्तके" इति वन्नवान्न-श्राद्धकं सर्वत्र नन्दादौ कार्य्यम् ।

"नन्दायां भार्गवदिने, त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।
श्राद्धमेषु न कर्तव्यम् , पुत्रदारधनक्षयाद्" ॥

इति साऽवकाशश्राद्धविषयतया कामधेनुकृताऽवतारितत्वात् । इदं द्रव्यसंस्कारमपि—

"अकृताग्रयणञ्चैव, धान्यजातं द्विजोत्तम ।
राजमाषानणूँश्चैव, मसूराँश्च विवर्जयेत् ॥

इति वराहपुराणचनाच्च । आग्रयणं = प्रथमान्नागमनश्राद्धम् वृश्चिकत्रयोदशांशे अकरणे माघेऽपि कार्य्यमावश्यकत्वात् । स्वकालादुत्तरो गौणः, पूर्वस्य कर्मणः" इति हरिहरपद्धतौ लिखनात् । केचित्तु व्रीह्यप्राप्तौ व्रीहिपाकनिमित्तकमेव श्राद्धं धान्येन वृश्चिके कर्तव्यम् ।

"शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ।
धान्ये पाकवशादन्ये, श्यामाको बलिनः स्मृतः" ॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनादाहुः ।

"भेषुग्राहिशिवाऽन्येषु, तिथावशनिवासरे ।
अन्नप्राशनवत्कुर्य्यात् , नवान्नफलभक्षणम्" ॥ इति श्रीनिवासः

पितृभ्योऽहुत्वा न शस्यं खादेदिति आपस्तम्बः ।

"असन्तर्प्य पितॄन् देवान् , नाद्यादन्नं नवं क्वचित् ।
न पक्वान्नं नैव माषं, दीर्घकालं जिजीविषुः" ॥

इति काशीखण्डम् ।

"वृश्चिकस्थे रवौ त्यक्त्वा, वासराणि त्रयोदश ।
नवान्नैर्विहितं श्राद्धं, मृगनेत्राकृतं भवेत्" ॥

"दिनानि दश मार्गस्य, पौषस्य सकलं दिनम् ।
मृगनेत्रेति सा ज्ञेया, नवाऽन्नं तत्र वर्जयेत् ॥

तत्त्वचिन्तायां तु वृश्चिके शुक्लपक्षे स्थिति शूलपाणिलिखित एव श्रेयान् । गौणकाले यदा कर्मणोऽदनादिष्टपूर्वकं यदि गौणोऽप्यतिक्रान्तः कर्मलोपो न प्रजायते इति विवेकः ।

"श्यामाकैः व्रीहिभिश्चैव, यवैरन्योऽन्यकातराः ।
प्राग् यष्टं यजतेऽवश्यं, नत्वग्रायणात्यये ॥

इति हरिहरपद्धतिरिति सम्प्रदायः । अत्र रघुनन्दनभट्टाचार्य्याः । नवाऽन्नश्राद्धकालञ्च ज्योतिषे—

"सूर्य्ये चैव विशाखगे स्मरतिथौ, तारे त्रिजन्माऽन्विते ।
नन्दामन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मधौ कार्तिके ॥
सेपूग्राहिशिवेषु विष्णुशयने, कृष्णे शशिन्यष्टमे ।
श्राद्धं भोजनकं नवाऽन्नविहितं पुत्राऽर्थनाशप्रदम् ॥
ज्येष्ठा शेषार्थगे सूर्य्ये, मृगनेत्रा निशात्मके ।
नवान्नै र्भोजनं श्राद्धं जन्मचन्द्रतिथौ न च ॥

सूर्य्ये चैव विशाखगे । मार्गशीर्षस्य विंशतिदण्डोऽधिकप्रथमदिनत्रयाऽवस्थिते स्मरतिथौ त्रयोदश्यां पापे पञ्चमताराऽत्रये उग्रगणः = पूर्वात्रयमघाभरण्यः । अहिः = अश्लेषा । शिवः = आर्द्रा । भोजराजः—

"ब्रह्मविष्णुवृहस्पतिशशधरो मार्तण्डपौषादितो ।
मैत्रे चित्राविशाखवायुधनभे, मूलाऽश्विवह्नौ तथा ॥
शक्रे वारुणऋक्षके शुभदिने श्राद्धं नवं शस्यते" ।
"नन्दा भार्गवभूमिजेषु न भवेच्छ्राद्धं नवान्नोद्भवम्" ।

ब्रह्मादयः = "रोहिणी--श्रवण--पुष्य-मृगशिरो-हस्ता-रेवती-पुनर्वस्वनुराधा-चित्रा-विशाखा-स्वातिधनिष्ठा-मूलाश्विनी-कृत्तिका-ज्येष्ठाशतभिषजः । नवान्नश्राद्धे मूलकृतिका-ज्येष्ठा-विधानाच्छेषभक्षणप्राप्तेः ।

"अश्लेषा-कृत्तिका-ज्येष्ठा मूलाऽजपदकेषु च ।
भृगु-भौमदिने रिक्ता, तिथौ नाद्यान्नवोदनम्" ॥

इति श्राद्धशेषभक्षणमात्रपरम् । अजपदकं = पूर्वभाद्रपदा ।

"हरियुगले दितियुगले, पूषायुगले विरञ्चियुगले च ।

करपञ्चकोत्तरेषु नवान्नफलभक्षणं शुभदम् । चन्द्रताराघशुद्धौ प्रतीकारमाह देवलः—

कर्म्म कुर्य्यात्फलाऽवाप्तौ, चन्द्राऽदिशोभने बुधः ।
स्वस्थकाले त्विदं सर्वं, नाऽर्तकालमपेक्षते ॥
चन्द्रे च शंखं लवणञ्च तारे, तिथावभद्रे सिततण्डुलाँश्च ।
धान्यञ्च दद्यात्करणर्क्षवारे, योगे तिलाऽहे समणिञ्च लग्ने ॥

तारे = जन्मविरूपाऽष्टके । ऋक्षमवहितनक्षत्रम् । ताराभेदाल्लवणमाह—एकत्रिपञ्च-सप्तपलानि दद्यात् द्विजातये । पलानि क्रमशो लवणस्य क्रमशो, लवणस्य, क्रमशो जन्म-विपत्प्रत्यरिमरणाऽख्यताराषु ।

"पलन्तु लौकिकैर्मानैः, साऽष्टरक्तिद्विमाषकम् ।
तोलकं त्रितयं ज्ञेयं, ज्योतिर्ज्ञैः स्मृतिसम्मतमि" ॥ त्याहुः
"शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा, कृष्णेऽप्यापञ्चमादिनात् ।
नवाऽन्नं तत्र कुर्वीत, गृहकर्म प्रशस्यत" ॥ इति प्रमाणपल्लवे ।

अत्र वर्द्धमानोपाध्यायाः—

"नवोदके नवाऽन्ने च, गृहप्रच्छादने तथा ।
पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु, मघासु च ॥
तस्माद्द्यात्सदोद्युक्तो, विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च" ।

नवोदके इति । वर्षोपक्रमे जलसम्भवे इत्यर्थः । स चाऽचारादार्द्रानक्षत्राऽवस्थितसूर्य्या-वच्छिन्नसमयः । नवाऽन्न इति । शरदि वसन्ते चेति प्राञ्चः । गृहप्रच्छादन इति । गृहोपरि तृणेन आच्छादने एतत्पार्वणश्राद्धनिमित्तम् , गृहप्रवेशस्थाऽभ्युदयिकश्राद्धनि-मित्तम् "प्रवेशे नववेश्मन" इति वाक्येन विहितः । तीर्थप्राप्तिनिमित्तं पूर्वं कथितम् ।

नवाऽन्नभक्षणञ्च निमित्तं पार्वणश्राद्धकर्म्मणि प्रतिपादितम् । तत्र च पितृदेवेभ्योऽदत्वा नवाऽन्नभक्षणं निषिद्धमिति नवाऽन्नभक्षणानां काले आवश्यकं श्राद्धं यद्यपि नवानि = नानाविधानि अन्नानि । तथाऽपि गृह्ये— नवाऽन्नप्राशननिमित्तकनवप्राशनकर्मकथने गृह्ये भाष्ये—"गृहमेधी व्रीहियवाभ्याम् शरद्वसन्तयोर्वर्जयेत्" । श्यामाकैर्वलीवर्षास्वितिलिखितेन वाक्येन षष्ठिकयवश्यामाकरूपाऽन्नसम्भवकाल एव नियमितः । तत्र श्यामाकोत्पत्तिर्वाणप्रस्थानाम् । श्राद्धकालः गृहस्थानाम् व्रीहियवप्राशनं परं श्राद्धकालः । यद्यपि नवप्राशनकर्मणि इष्टेर्विधानम् तथाऽपि तदुभयमेव निमित्तमिति । तत्र षष्ठिकव्रीहिभक्षणनिमित्तकं शरदि यवाऽन्नभक्षणनिमित्तम् वसन्ते । हेमन्ते—हैमन्तिकनवान्नभक्षणनिमित्तम् ज्योतिषाऽनुसारात् । तथा हि—ज्योतिषे भोजराजः । वृश्चिके पूर्वभाग इत्यादि । पूर्वभागोऽत्र वृश्चिकत्रयोदशांशक आचारात् ।

"धनुषि यत्कृतं श्राद्धं, हैमन्तीषु निशासु च ।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति, नवाऽन्नाऽमिषकांक्षिणः" ॥

शुक्लपक्षे नवं धान्यमित्यादि नवाऽन्नफलभक्षणमित्यन्तम् ।

"त्रिजन्मसु त्रयोदश्यां, नन्दायां पितृभेऽपि वा ।
श्राद्धं शुक्रदिनेनैव, कार्य्यं सन्ततिमिच्छता"॥

"चैत्रे पौष" इत्यादि । अत्र चैत्रपौषयोर्न्निषेधात् वृश्चिके नवाऽन्नभक्षणाऽसम्भवे माघादौ श्राद्धपूर्वकं नवाऽन्नभक्षणं युज्यत एवेति चैत्रे नवाऽन्नभक्षणनिषेधात् यवेऽपि नवाऽन्नभक्षणनिमित्तकम् यवपाकात् पृथक् श्राद्धमायातीत्याहुः । किञ्च ज्योतिषे—

"वृषे मिथुनकन्यायां, मीनलग्ने शुभाऽन्विते ।
भक्षणञ्च नवाऽन्नस्य, दद्यादायुर्बलं धनम्" ॥ इति

"नवाऽन्नं नैव नन्दायामित्यादि ।

"सूर्य्ये चैव विशाखगे स्मरतिथौ, तारे त्रिजन्माऽन्विते ।
नन्दामन्दमहीजकाव्यदिवसे, मासे च पौषे तथा ॥
प्राच्याः पश्चिमताङ्गते, दिनकरे चन्द्रे तथा चाऽष्टमे ।

श्राद्धं तत्र नवाऽन्नमत्र दिवसे, रोगादिकं वर्द्धयेत्" ॥

विहितनक्षत्रं यथा—

"हस्ता-स्वाति-पुनर्वसु मृगशिरः-पुष्याऽनुराधा तथा ।
मूलायां श्रवणे च रेवतीधने, चित्राऽनले वारुणे ॥
ब्रह्मा शक्रविशाखयोश्चतुरगे, सौम्यार्कजीवाहके ।
चन्द्रे आरव-शोभने च शुभदं, श्राद्धं नवाऽन्नैः कृतम् ॥

यच्च—

"अश्लेषा कृत्तिकाज्येष्ठा, मूला च पादकेषु च ।
भृगु भौम-शनौ रिक्ता, तिथौ नाद्यान्नवौदनम्" ॥

भक्षणे निषेधः ।

"भेषूग्राहिशिवाऽन्येषु, रविभौम-शनिवासरे ।
अन्नप्राशनवत्कार्य्यं, नवाऽन्नस्य च भक्षणम् ॥
दिनत्रयाधिके विंश-पादे मार्गस्य वै गते ।
मृगनेत्रा स्मृता रात्रिः, नवान्नं तत्र वर्जयेत्" ॥

इति मूलम् । अस्य टीका = त्रिजन्मनीति । जन्मचन्द्रे जन्मनक्षत्रे, जन्मतिथौ । सूर्य्ये चैव इत्यादि । पापे पञ्चमतारायां त्रिजन्माऽन्विते जन्मचन्द्रे = जन्मनक्षत्रे = जन्मतिथौ । तारे त्रिजन्माऽन्विते । अस्य विवरणम्—तृतीयाऽवृत्तिगणने जन्मतारा त्याज्या । न तु प्रथमाऽवृत्तौ, न तु द्वितीयाऽवृत्तौ । त्रिजन्मनीत्यस्याऽपि तद्वत् ।

ग्रन्थान्तरे च—

"श्राद्धं नैव नवं तथाऽवमदिनम् रोगादिसम्वर्द्धनम्" ।

इत्यनेन अवमदिनेऽपि नवान्नश्राद्धतिषेधः । किञ्च ।

"एकविंशद्दिनादूर्ध्वं, नवाऽन्नं परिवर्जयेत् ।
कृष्णपक्षे भृगुदिने, विशाखस्थे विवस्वति" ॥

ज्योतिःसारसमुच्चये—

"नन्दायां नवाऽन्नं न मघायां जन्मभे कुर्य्यात् ।

भूमिजभृगुजशशिनां दिनेषु नैव शुभःशशी ॥
चित्रास्वाती विशाखा च, अनुराधा–पुनर्वसुः।
रेवतीरोहिणो चैव कृतिका पुष्यसंयुता ॥
अश्विनी चैव हस्ता च, मृगश्चपललोचनः।
एषु होमादिकं कृत्वा, नवधान्यादिभोजनम् ॥
लाभत्रिषष्ठदशमोपगताश्च पापाः।
सौम्यग्रहा नवमपञ्चमकण्टकस्थाः ॥
लग्नेषु दैत्यसचिवज्ञबृहस्पतीनाम्।
अन्नोपभोगकरणे विविधोपभोगः ॥
भौमभास्करिचन्द्रार्काः, लग्नस्था इह मृत्युदाः।
बुधशुक्रसुराचार्य्याः, कुर्य्युरन्नाशने शिवम् ॥
चैत्रे पौषे कृष्णपक्षे, नवाऽन्नं वर्जयेत्सदा।
भवेज्जन्मान्तरे रोगी, पितॄणां नोपतिष्ठते" ॥

दीपिका—

"मेषग्राहिशिवान्येषु, विभौ सशनिवासरे ॥
अन्नप्राशनवत्कुर्य्यात्, नवाऽन्नफलभक्षणम्।

बालबोधे—शुक्रचन्द्रौ विहितनिषिद्धौ। अथ वामदेवोपाध्यायाः—
"नवोदके नवाऽन्नादौ सावकाशश्राद्धे।

ज्योतिषे—

"नन्दायां भार्गवदिने, त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि।
श्राद्धमेषु न कर्तव्यम्, पुत्रदारधनक्षयात् ॥
नवाऽन्नं नैव नन्दायां, न प्रसुप्ते जनार्दने।
न कृष्णपक्षे धनुषि, तुलायां नैव कारयेत् ॥

कामधेनौ—

"कृष्णपक्षे नवान्नं तु न कुर्य्यान्मानवो यतः।

पितरस्तत्र गृह्णन्ति, नवाऽन्नामिषकांक्षिणः ॥

भोजराजनिबन्धे—

"पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे न नवान्नं नाचरेद् बुधः ।
भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितॄणां नोपतिष्ठते ॥

वाराहे—

"अकृताऽग्रायणञ्चैव, धान्यजातं द्विजोत्तम ।
राजमाषानणूँश्चैव, मसूरांश्च विवर्जयेत् ॥
वृश्चिके पूर्वभागे तु, नवाऽन्नं शस्यते बुधैः ।
उत्तरे क्रियमाणे तु, धनुष्येव कृतं भवेत् ॥
धनुषि यत्कृतं श्राद्धं, मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
पितरस्तत्र गृह्णन्ति, नवाऽन्नामिषग्राहिणः ॥

ज्योतिःसारसमुच्चये—

"वृश्चिकस्थे रवौ त्यतक्त्वा, वासराणि त्रयोदश ।
नवाऽन्नविहितं श्राद्धम् , धनुष्येव कृतं भवेत् ॥

हरिहरपद्धतौ—

"श्यामाकैः व्रीहिभिश्चैव, यवैरन्योऽन्यकालतः ।
प्रागयष्टुं युज्यतेऽवश्यं, न त्वत्राग्रयणाऽत्ययः ॥

दक्षिणायनकाले—

"दक्षिणायनकालेज्या, पश्विज्या चोत्तरायणे ।
अन्योऽन्यकालतः पूर्वं, यष्टुं युक्ते उभे अपि ॥
एवमागामियागीयमुख्यकालादधस्तनः ।
स्वकालादुत्तरो गौणः, कालः स्यात्पूर्वकर्मणः ।
यत्त्वागामिक्रियामुख्यकालस्याऽप्यन्तरालवत् ।
गौणकालत्वमिच्छन्ति, केचित्प्राक्तनकर्मणः ॥

त्रिजन्मनि—जन्म १ दशमं १० । ऊनविंशति १९ नक्षत्रेषु ॥ चैत्रे कृष्णपक्षे इति न विशिष्टं निषेधविषयः । न वाऽश्विनकृष्ण इत्यर्थः । न वा धनुषि कृष्ण इत्यर्थः । न वा धनुषि कृष्ण इति ज्योतिर्वचनेऽन्वयः । कामधेनुवचने कृष्णपक्ष-निषेधात् ।

अर्थत्रये विनिगमकाभावात् । शिष्टाचारविरोधाच्च । चैत्रस्तु सौरो निषिद्धः पौषवत् । कार्तिकवचनन्तु मुख्यत्वाच्छुक्लादि । तन्मुख्यत्वस्य वर्षकृत्यप्रकरणे नि-रस्तत्वात् ।। अत एव मलमासे वैशाखे यवपाकश्राद्धं लिखितं रुद्रधरोपाध्यायैः । तत्तु चिन्त्यम्, अन्यदाऽपि कर्तव्यत्वेन सावकाशतया मलमासदोषादित्यन्यदेत-त् । कृष्णपक्षनिषेधस्तु पञ्चम्युत्तरमेव । "शुक्लपक्षे विशेषेण कृष्णे पञ्चमदिनमिति लिङ्गं संस्कारप्रकरणे अग्निपुराणवचनेन पुत्रतडागाद्यसंस्कारकेषु यज्ञश्राद्धनामकर्मा-दिषु न्यायसाम्यतस्तथाऽवगतेः । अत एव तडागसंस्कारपद्धतौ कृष्णपञ्चम्यन्तकालो लिखितः । "श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव पितृणामि"ति वाक्ये, "श्यामाकैः व्रीहिभिरि" त्यादिहरिहरवाक्ये च स्मरणादाग्रयणपदं श्राद्धपरम्, अन्त्ये त्विष्टपरमप्यणवः । अकटेति प्रसिद्धा । पूर्वभागे त्रयोदशांशमध्ये शस्यते । मृगो = मृगशिरानक्षत्रम् । नेता = प्रवर्तयिता । प्रथमक्षणसम्बन्धीयासां तद्व्यवच्छिन्नाहस्त्रयोविंशत्यंशपर्यन्तम् श्राद्धयोग्यवेलायां हैमन्तिसंस्कारकश्राद्धमाचरणीयम् । यदि त्रयोदशांशाः कृष्ण-पक्षाऽशौचादिना दूषिताः अन्नाऽलाभाऽसामर्थ्यादिना वा अतिक्रान्ताः । न पर्वत इति निषेधाऽनन्तरं पर्वतमस्तके इति निषेधादशक्तौ पर्वते मैत्रादित्यागाऽचारः । आगामीत्यादि आगामिक्रियाऽचरणं = प्राक्तनक्रियामुख्यकालः । तदन्तकालवत्त-न्मध्यकाल इत्यर्थः । एवमागामिक्रियापूर्वस्तन्मुख्यकालपूर्वश्च गौण इति प्रसिद्धम् । अवीरायाः पार्वणकर्तृदेवरादिविहिताऽन्नसंस्कारोऽभिनवबर्द्धमाननिबन्धे स्मृतौ—

"देवताभ्यो द्विजायाऽथ, नवाऽन्नं प्राशयेन्नरः" ।

पितुरकृतनवाऽन्नश्राद्धस्य मृतस्य श्राद्धे पुत्रेण क्रियमाणेऽसमर्थेन श्राद्धाकरणे चायं प्रकारः । अत एवाग्नये दत्त्वा ब्राह्मणं भोजयित्वा स्त्रीबालाः नवाऽन्नं भुञ्जते । शत्रु-घ्नोपाध्यायस्तु—शस्यते बुधैरित्यनन्तरमन्यत्र क्वचिन्माघे शुक्ले समाचरेदिति कृत्य-

कौमुदी-लिखितवचनान्माघे। अन्यत्र फाल्गुने यवपाकश्राद्धपूर्वम् वैशाखे श्राद्धम् क्वचित्फाल्गुनाऽकरणे इत्याहुः। लिखन्तिस्म च प्राक्तनकर्म्मणीत्यनन्तरम्। एवमन्यत्र विशेयं, नवाऽन्नमिति विपश्चिते। हरिशयननिषेधस्तु व्रीहिपाकश्राद्धभिन्ने सौरश्चाश्विनस्तस्य कालः। तुलानिषेधेनाऽन्यत्र कन्याप्राशस्त्येन च तथाऽवगमात्। एवञ्च भाद्रशुक्ले, कार्तिकशुक्ले, चैत्रशुक्ले च शारदहैमन्तिकयवानां संस्कारकाणि श्राद्धानि कार्य्याणीति सिद्धम्। अमावास्यादिकन्तु न प्रतिपदादौ कार्य्यम्। तत्र गौणकालस्मरणात्। व्रीहियवशालिश्यामाकानां संस्कारकं श्राद्धमन्नदानञ्चेति। श्राद्धीयद्रव्यनिषेधप्रकरणे शाल्यादिना नवेनेति वक्तव्यम्। निबन्धेषु—

"अदत्त्वा यो न चाऽन्नानि मम कर्मपरायणः।
भुङ्क्ते भूमिष्चाऽन्नानि, पत्रदत्तानि कानिचित्॥
पितरस्तस्य नाश्नन्ति, दशवर्षाणि पञ्च च"। इति

वराहपुराणे अपराद्धगणनञ्च। व्रीहिश्राद्धन् नवव्रीहिभिरेव कार्य्यम्। क्षेत्रता तु नवक्षेत्रोद्भवैरेव तै।

"शुक्लपक्षे नवं धान्यं, पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम्।
गच्छेत्क्षेत्री विधानेन, गीतवाद्यपुरस्सरः।
तेन देवान् पितॄँश्चैव, तर्पयेदर्चयेत्तथा"॥

इति शरदुपक्रमे ब्रह्मपुराणात्। क्षेत्रीत्यभिधानादन्यस्याऽन्यत्। आहृतेन नवव्रीहिणा तत्पदप्रतिपाद्येन श्राद्धादि। अत एव व्रीह्यलाभे व्रीहिपाकश्राद्धं नाचरन्ति शिष्टाः। तद्दिनैकभुक्तादौ न भक्षयन्ति। न वा शारदान्नेन पूजादिकमाचरन्ति। "श्यामाको बलिनः स्मृतः" इति वचनात्। वानप्रस्थस्यैतच्छ्राद्धेऽधिकारः। ग्रीष्मजातौ कुंकुममुद्गौ गृहस्थस्य श्यामाकेऽपि नीवारादौ श्राद्धं विनाऽपि भक्ष्यत्वं श्राद्धाद्यर्हत्वञ्चेति मन्तव्यम्। हैमन्तिकाऽन्नञ्च पूजाभोजनश्राद्धभिन्ने अकर्मण्यकृताग्रयणमपि विनियोज्यं त्रिष्वेव बलिश्रवणादिति स्मृतिदीपिकायामाहुः। अथ द्वैतपरिशिष्टे केशवमिश्राः। शरदि शुक्लपक्षे षष्ठिकाभिःपार्वणम्, निरग्निनामपि नित्यं

व्रीहियवपाकौ चेत्यन्तमभिधाय,

"एतांस्तु श्राद्धकालान्वै, नित्यानाह प्रजापतिः"।

इत्यनेन विष्णुना तन्नित्यत्वाऽभिधानात्। इदञ्च व्रीहिभिर्गृहमेधी शरद्वसन्तयोर्व्रीहियवाभ्याम् यजेतेति वचनात्।

"शुक्लपक्षे नवं धान्यं, पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम्।
गच्छेत्क्षेत्री विधानेन, गीतवाद्यपुरस्सरः॥
तेन देवान् पितॄंश्चैव तर्प्पयेदर्चयेत्तथा।
प्राश्नीयाद्दधिसंयुक्तम्, नरं विप्राऽनुमोदितम्"॥

इत्यादिना शरच्छुक्लपक्षमुपक्रम्य ब्रह्मपुराणकथनात्। इदञ्च नवव्रीहिणामभावे पुराणैरपि तदभावे प्रतिनिधिना शाल्यादिनाऽपि कार्य्यमिति केचित्। तदुभयमपि मन्दम्, नवं धान्यमित्युपक्रम्य तेनेत्युपसंहारात्। यवपाके श्राद्धञ्च वसन्ते तदपि नित्यं, व्रीहियवपाकौ चेत्युपक्रम्य विष्णुना तन्नित्यत्वाऽभिधानात्। इदञ्च वसन्तेऽपि न चैत्रे वा कृष्णपक्षे कार्य्यम्।

"पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे, नवाऽन्नं नाचरेद् बुधः।
भवेज्जन्माऽन्तरे रोगी, पितॄणां नोपतिष्ठते"॥

इति भोजराजलिखितज्योतिषवचनात्। एतच्च वैशाखशुक्लपक्ष एव कार्य्यम्—"शरदि वसन्ते चेति वसन्तनियमनात्। वसन्तव्यतिरिक्ते प्रापकाभावात्। इदञ्च वैशाखशुक्लपक्षे मलमासेऽपि कार्य्यम्।

"नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात्, प्रयतः सन् मलिम्लुचे।
तीर्थस्नानं गजच्छायां, प्रेतश्राद्धं तथैव च"॥

इति प्रतिप्रसवात्। "गृहमेधी शरद्वसन्तयोः व्रीहियवाभ्यां यजेतेति सूत्रात्। ऋतुनियमे श्रीपतिरत्नमालायाम्—

"मृगादिराशिद्वयभानुभोगात्, षडर्त्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः।
ग्रीष्मोऽथ वर्षाश्च ततः शरद्वै, हेमन्तनामा कथितश्च षष्ठः॥

इति शिष्टाऽऽचाराच्चेति सम्प्रदायः । नव्यास्तु प्रेतः श्राद्धं तथैव चेत्युपक्रम्य पृथ-गुपादानबलात् नित्यनैमित्तिकयोरपि तद्दिनकर्तव्यताकयोरेव प्रतिप्रसवो न तु साऽव-काशयोरपीति । अत एव--

"नेहेताऽत्र विशेषेज्यामन्यत्राऽवश्यकाद्विधेः" ।

इत्यर्थे संक्षेपे यस्यैव तदानीमननुष्ठानेन पापं तदेवाऽवश्यकमिति तद्विवरणमपि सङ्गच्छते । तथा च यवपाकश्राद्धम् द्वितीयशुक्लपक्ष एव कार्य्यम् "तस्मिंस्तु प्रकृते मासि कुर्य्याच्छ्राद्धं यथाविधि" इति श्रुतेः । न च वसन्तबाधापत्तिः ।

"पक्षौ पूर्वाऽपरौ शुक्लकृष्णौ मासस्तु तावुभौ ।
द्वौ द्वौ माघादिमासौ स्यात्, ऋतुस्तैरयनं त्रिभिः ॥

इति शक्तिग्राहकाच्चान्द्रमासस्यैव तत्र प्रयोजकत्वात् । तस्य च षष्ठिदिवसात्मकस्य सत्त्वादित्याहुः । एवं हैमन्तिकसंस्कारकमपि पार्वणमावश्यकम् ।

"अकृताऽऽग्रयणश्चैव धान्यजातं द्विजोत्तम ।
राजमाषानणूँश्चैव मसूराँश्च विवर्जयेत" ॥

इति वराहपुराणवचनेनाऽकृतनवाऽन्नश्राद्धानां शस्यानामकर्मण्यत्वप्रतिपादनात् । आ-ग्रयणमिति वचनेन शाल्यादिना प्रथमागमननिमित्तकम् श्राद्धं विवक्षितम्, नत्वाऽग्रय-णेष्टिः । पारिजातादिव्याख्यानसम्वादात् ।

"श्यामाकैरिक्षुभिश्चैव, पितॄणां सर्वकालिकम् ।
कुर्य्यादाग्रयणं यस्तु, स शीघ्रं फलमाप्नुयात्" ॥

इत्यादिवचनाच्च । किञ्चाग्रयष्टिपरत्वे 'राजमाषानणूनि' त्यत्रोत्तरार्द्धे वाक्यभेदापत्ते-रिति । इदञ्च श्राद्धं न नन्दायां, न हरिशयने, न धनुःस्थे रवौ, नाऽपि तुलास्थे न च कृष्णपक्षे ।

"नवाऽन्नं नैव नन्दायां, न प्रसुप्ते जनार्दने ।
न कृष्णपक्षे धनुषि, तुलायां नैव कारयेत् ॥

इति ज्योतिर्वचनात् । इदञ्च श्राद्धम् वृश्चिकत्रयोदशांशमध्ये कार्य्यम् "वृश्चिके पूर्वभागे

तु नवाऽन्नं शस्यते बुधैः। उत्तरे क्रियमाणे ते धनुष्येव कृतं भवेत्।

"धनुषि यत्कृतं श्राद्धं, मृगनेत्रासु रात्रिषु।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति, नवाऽन्नाऽमिषग्राहिणः" ॥

इति वचनात्। अत्र वृश्चिके शुक्लपक्षे त्विति लिपिप्रमादः। यद्यप्यपरभागकृतं श्राद्धं फलतो धनुषि कृतत्वान्निरर्थकमतः पञ्चदशदिनानन्तरं धनुरतिदेश इत्यापाततः प्रतीयते, तथाऽपि पूर्वभागपदस्य वृश्चिकत्रयोदशांशपरतैव। त्रयोदशांशाऽनन्तरमेवासाम् प्रति रवेरयनांशक्रमेणाऽग्रिममेषादिद्वादशराशौ फलदातृत्वात्। अत एव ज्योतिःसारसमुच्चये—

"वृश्चिकस्थे रवौ त्यक्त्वा, वासराणि त्रयोदश।
नवाऽन्नविहितं श्राद्धं, धनुष्येव कृतं भवेत्" ॥

इति कण्ठतोऽप्युक्तम्। ननु चैतानि कृष्णपक्षे निषेधकानि वचनानि शारदनवाऽन्नपराण्येव स्युरेकवाक्यताऽनुरोधात्। चैत्रे पौष इत्यादिप्रत्येकनिषेधादिति चेत्, उच्यते—अनयोर्वैषम्ये मूलयोरपि वैषम्यस्य वज्रलेपायितत्वात्। मूलमूलिनोरेकवाक्यतानियमात्। अत एव—

"न जीर्णमलवद्वासाः स्नातकः स्याद् द्विजोत्तम"।

इत्यत्र "सुवाससा भवितव्यमि"ति श्रुतिर्न्न मूलमिति सकलतन्त्रसिद्धान्तः। तस्माद् ब्रह्मपुराणवचनम् शुक्लपक्षविधायकमेव। ज्योतिषवचनानि तु सामान्यतः कृष्णपक्षनिषेधकान्येवेति तत्त्वम्।

यद्यपि परमगुरुचरणैः तत्त्वालोके लाघवात्पर्य्युदासलक्षणया द्वयोरेकताऽपि स्वीकृता। तथाऽपि प्रकृते कृष्णपक्षे "नवाऽन्नं कुर्वीतेति लाघवात् पर्य्युदासे सिद्धं नः समीहितमिति प्रत्येकनिषेधे वाक्यभेदापत्तिः। न नन्दायामिति सामान्यनिषेधाच्च।

ननु कथं तर्हि 'न सुप्ते जनार्दने' इति विशेषनिषेधः। अन्यथाऽनुपपत्तेरिति गृहाण। अत एव कामधेनुकृता "कृष्णपक्षे नवाऽन्नं तु, न कुर्य्यान्मानवो यतः।

पितरस्तत्र गृह्णन्ति, दाता च नरकं व्रजेद्" । इति वचनात् सामान्यनिषेधोऽयमिति । वृश्चिकशुक्लपक्षे तदकरणे माघेऽपि कार्य्यमावश्यकत्वादनिषेधाच्च । शस्यते इत्यभिधानाच्च । यत्तु प्रकृतवचनं व्रीहिपाकश्राद्ध एव गौणकालविधायकं लाघवादिति, तन्न, अस्य गौणकालविधायकत्वे शस्यते इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । सर्वाणि च साऽवकाशश्राद्धानि नन्दादौ न कार्य्याणि । "नन्दायां न भार्गवदिने" इत्यादिवचनात् विवाहादौ च प्रधानाऽधिकारिण एवाऽङ्गाऽधिकारान्नाऽनुपपत्तिः । न चेज्यावच्छास्त्रबाध एवाऽस्तु निषेधसंकोचस्यावश्यकत्वादिति । एवं पित्राग्रयणेऽह्निकृते तदेकपाकेन वसतां पुत्राणामपि हैमन्तिकशस्यमकर्ण्यमेवासंस्कृतत्वादिति ।

[इति श्रीरत्नपाणिसंगृहीते कृत्यसागरे एकोद्दिष्टसारिणीरूपणं नाम प्रकरणं समाप्तम् ।]

8564